प्रकाशक
श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर, बीकानेर ३३४४०३

प्रकाशन सौजन्य
श्रीमान् पीरदानजी रावतमलजी गुलगुलिया, देशनोक

संस्करण
सप्तम सन् २००६

मूल्य पचास रुपये मात्र

मुद्रक
कल्याणी प्रिन्टर्स
अलख सागर रोड, बीकानेर
दूरभाष २५२६८६०

प्रकाशकीय

साधुमार्गी जैन परम्परा मे महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा की पाट–परम्परा में षष्ठ युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा विश्व–विभूतियों में एक उच्चकोटि की विभूति थे अपने युग के क्रातदर्शी, सत्यनिष्ठ तपोपूत सत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन वैराग्य से ओत–प्रोत साधुत्व, प्रतिमा–सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एव भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व–पर–कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक, सार्वभौम और मानव मात्र के लिए उपादेय था। उन्होंने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नहीं अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुज बन गया। उन्होने व्यक्ति समाज ग्राम नगर एव राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वों को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भॉति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरग मे मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होंने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जाग्रत करने का सम्यक प्रयास अपने प्रेरणादायी उदबोधनों के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यों को सरल भाषा में आबद्ध कर जन–जन तक जिनेश्वर देवो की वाणी को पहुचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। साथ ही प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषों एव महासतियों के जीवन–वृत्तान्तों को सुबोध भाषा मे प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने–सवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया है। अस्तु! आज भी समग्र मानवजाति उनके उदबोधन से लाभान्वित हो रही है। इसी क्रम मे बीकानेर–मौरवी–जामनगर के व्याख्यान किरणावली का यह अक पाठको के लिए प्रस्तुत है। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक लाभ प्राप्त करेगे।

युगद्रष्टा युगप्रवर्तक ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का महाप्रयाण भीनासर मे हुआ। आपकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने और आपके कालजयी प्रवचन–साहित्य को युग–युग में जन–जन को सुलभ कराने हेतु समाजभूषण, कर्मनिष्ठ आदर्श समाजसेवी स्व सेठ चम्पालालजी बाठिया का चिरस्मरणीय श्लाघनीय योगदान रहा। आपके अथक प्रयासो और समाज के उदार सहयोग से

श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर की स्थापना हुई। सस्था जवाहर–साहित्य को लागत मूल्य पर जन–जन को सुलभ करा रही है और पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के सम्पादकत्व में सेठजी ने 33 जवाहर किरणावलियों का प्रकाशन कर एक उल्लेखनीय कार्य किया है। बाद में सस्था की स्वर्णजयन्ती के पावन अवसर पर श्री बालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी के अथक प्रयासों से किरणावलियों की सख्या बढाकर 53 कर दी गई। आज यह सैट प्राय बिक जाने पर श्री जवाहर विद्यापीठ मे यह निर्णय किया गया कि किरणावलियों को नया रूप दिया जावे। इसके लिए सस्था के सहमत्री श्री तोलाराम बोथरा ने परिश्रम करके विषय–अनुसार कई किरणावलियों को एक साथ समाहित किया और पुन सभी किरणावलियों को 32 किरणो मे प्रकाशित करने का निर्णय किया गया।

ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्यजी म सा के साहित्य के प्रचार–प्रसार मे जवाहर विद्यापीठ, भीनासर की पहल को सार्थक और भारत तथा विश्वव्यापी बनाने मे श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ बीकानेर की महती भूमिका रही। सघ ने अपने राष्ट्रव्यापी प्रभावी सगठन और कार्यकर्ताओ के बल पर जवाहर किरणावलियो के प्रचार–प्रसार और विक्रय–प्रबन्धन मे अप्रतिम योगदान प्रदान किया है। आज सघ के प्रयासो से यह जीवन निर्माणकारी साहित्य जैन–जैनेतर ही नहीं अपितु विश्व–धरोहर बन चुका है। सघ के इस योगदान के प्रति हम आभारी हैं।

धर्मनिष्ठ, सुश्राविका श्रीमती राजकुवर बाई मालू धर्मपत्नी स्व डालचन्दजी मालू द्वारा आरम्भ मे समस्त जवाहर–साहित्य–प्रकाशन के लिए 60 000 रु एक साथ प्रदान किये गये थे जिससे पूर्व मे लगभग सभी किरणावलियॉ उनके सौजन्य से प्रकाशित की गई थीं। सत्साहित्य–प्रकाशन के लिए बहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरणावली का पिछला सस्करण श्री समता युवा सघ मद्रास श्रीमान् छगनलालजी बैद, भीनासर के सोजन्य से प्रकाशित किया गया और प्रस्तुत किरण 12 (बीकानेर–मौरवी–जामनगर के व्याख्यान) के अर्थ सहयोगी श्री पीरदानजी रावतमलजी गुलगुलिया हैं। सस्था सभी अर्थ–सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

निवेदक

चम्पालाल डागा
अध्यक्ष

सुमतिलाल बाठिया
मत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	थादला, मध्यप्रदेश
जन्म तिथि	वि स 1932, कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड़
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स 1948, माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (म प्र)
युवाचार्य पद तिथि	वि स 1976, चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स 1976 आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	मीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स 2000 आषाढ शुक्ला अष्टमी

आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा.

आचार्यश्री जवाहर–ज्योतिकण

+ विपत्तियो के तमिस्र गुफाओ के पार जिसने सयम–साधना का राजमार्ग स्वीकार किया था।
+ ज्ञानार्जन की अतृप्त लालसा ने जिनके भीतर ज्ञान का अभिनव आलोक निरतर अभिवर्द्धित किया।
+ सयमीय साधना के साथ वैचारिक क्राति का शखनाद कर जिसने भू–मण्डल को चमत्कृत कर दिया।
+ उत्सूत्र सिद्धातो का उन्मूलन करने, आगम–सम्मत सिद्धातो की प्रतिष्ठापना करने के लिए जिसने शास्त्रार्थो मे विजयश्री प्राप्त की।
+ परतत्र भारत को स्वतत्र बनाने के लिए जिसने गाव–गाव, नगर–नगर पाद–विहार कर अपने तेजस्वी प्रवचनो द्वारा जन–जन के मन को जागृत किया।
+ शुद्ध खादी के परिवेश मे खादी–अभियान चलाकर जिसने जन–मानस मे खादी–धारण करने की भावना उत्पन्न कर दी।
+ अल्पारभ–महारभ जैसी अनेको पेचीदी समस्याओ का जिसने अपनी प्रखर प्रतिभा द्वारा आगम–सम्मत सचोट समाधान प्रस्तुत किया।
+ स्थानकवासी समाज के लिये जिसने अजमेर सम्मेलन मे गहरे चितन–मनन के साथ प्रभावशाली योजना प्रस्तुत की।
+ महात्मा गाधी, विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, सरदार वल्लभ भाई पटेल प श्री जवाहर लाल नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओ ने जिनके सचोट प्रवचनो का समय–समय पर लाभ उठाया।
+ जेन व जैनेत्तर समाज जिसे श्रद्धा से अपना पूजनीय स्वीकार करता था।
+ सत्य सिद्धातो की सुरक्षा के लिये जो निडरता एव निर्भीकता के साथ भू–मडल पर विचरण करते थे।

"हुक्म संघ के आचार्य"

1 आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा – दीक्षा वि स 1870, स्वर्गवास वि स 1917

ज्ञान-सम्मत क्रियोद्धारक साधुमार्गी परम्परा के आसन्न उपकारी।

2 आचार्य श्री शिवलालजी म सा – दीक्षा वि स 1891, स्वर्गवास वि स 1933

प्रतिभा–सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान, परम तपस्वी, महान शिवपथानुयायी।

3 आचार्य श्री उदय सागरजी म सा – दीक्षा 1918, स्वर्गवास वि स 1954

विलक्षण प्रतिभा के धनी, वादी–मान–मर्दक, विरक्तो के आदर्श विलक्षण।

4 आचार्य श्री चौथमलजी म सा – दीक्षा 1909, स्वर्गवास वि स 1957

महान क्रियावान, सागर सम गमीर, सयम के सशक्त पालक, शात–दात, निरहकारी, निर्ग्रन्थ शिरोमणि।

5 आचार्य श्री श्रीलालजी म सा – दीक्षा 1944, स्वर्गवास वि स 1977

सुरा–सुरेन्द्र–दुर्जय कामविजेता, अद्‌भुत स्मृति के धारक जीव–दया के प्राण।

6 आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा – दीक्षा 1947, स्वर्गवास वि स 2000

ज्योतिर्धर, महान क्रातिकारी, क्रातदृष्टा, युगपुरुष।

7 आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा – दीक्षा 1962 स्वर्गवास वि स 2019

शात क्राति के जन्मदाता, सरलता की सजीव मूर्ति।

8 आचार्य श्री नानालालजी म सा – दीक्षा 1996 स्वर्गवास वि स 2056

समता–विभूति, विद्वद्‌शिरोमणि जिनशासन–प्रद्योतक धर्मपाल–प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यानयोगी।

9 आचार्य श्री रामलालजी म सा – दीक्षा 2031, आचार्य वि स 2056 से

आगमज्ञ, तरुण तपस्वी तपोमूर्ति उग्रविहारी, सिरीवाल–प्रतिबोधक व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक बालब्रह्मचारी प्रशातमना।



अर्थ–सहयोगी परिचय

श्रेष्ठीवर्य समतासाधक, शासननिष्ठ समाजसेवी, श्रीमान् पीरदानजी रावतमलजी गुलगुलिया, देशनोक

'बीकानेर–मौरवी–जामनगर के व्याख्यान' श्रीमान् सेठ पीरदानजी रावतमलजी गुलगुलिया देशनोक (बीकानेर) की तरफ से प्रकाशित हो रही है। गुलगुलियाजी मूलत नाल (बीकानेर) के निवासी हैं। आप सवत् 1925 मे देशनोक आकर बसे। स 1936 में सेठ पीरदानजी सिलहट जैसे दूरवर्त्ती प्रान्त मे गये तथा 1942 मे आपने मालवी बाजार (सिलहट) मे व्यापार आरभ कर दिया। दो वर्ष बाद सेठ रावतमलजी भी सिलहट पहुँच गये और दोनों भाइयो ने मिलकर व्यापार की खूब उन्नति की। स 1947 मे इस फर्म की एक ब्राच श्रीमगल (सिलहट) मे भी खोल दी गई। स 1965 मे दोनो भाइयो का कारबार अलग–अलग हो गया। तब से मालवी बाजार की दुकान सेठ रावतमलजी के हिस्से मे आई और श्रीमगल की दुकान सेठ पीरदानजी के भाग मे। मगर दोनो जगह पुराने नामों से ही व्यापार चालू रहा।

स 1978 मे सेठ पीरदानजी का स्वर्गवास हो गया। सेठ पीरदानजी बडे ही सुयोग्य पुरुष थे। देश मे भी और परदेश मे भी आपकी खूब ख्याति थी। आपका हसमुख चेहरा सब को आकर्षित कर देता था। प्रसन्नवदन और विनोदमय स्वभाव प्रकृति की मनुष्य के लिए बडी से बडी देन है। यह देन आपको पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त थी। इसके साथ ही धर्म की ओर आपकी गभीर अभिरुचि थी। व्यापार करते हुए भी धर्म का परिपालन किस प्रकार किया जा सकता है दोनो का किस प्रकार समन्वय किया जा सकता है, यह बात सेठ पीरदानजी के जीवन व्यवहार से सीखने योग्य है। आपका स्वर्गवास हुए एक लम्बा अर्सा हो गया है फिर भी आपका नाम जिह्वा पर रहता है।

आपके पॉच पुत्र हुए तोलारामजी, मोतीलालजी, प्रेमसुखजी, नेमिचन्दजी तथा सोहनलालजी। दो पुत्रिया भी हुई। इनमे से श्री तोलारामजी स 1972 मे ही छोटी उम्र मे अपनी बुद्धिमत्ता और व्यापारकुशलता का परिचय देकर असार ससार का त्याग कर गये। श्री प्रेमसुखजी अपने काका सेठ रावतमलजी के यहा दत्तक हैं।

सेठ रावतमलजी का जन्म स 1918 मे हुआ था। आपने भी मालवी बाजार मे उच्च श्रेणी की प्रतिष्ठा प्राप्त की। एक प्रतिष्ठित व्यापारी समझकर सरकार ने आपको वहॉ के लोकल बोर्ड का सदस्य बनाकर अपनी कद्रदानी

का परिचय दिया। सवत् 1977 मे आपने श्रीमगल मे एक नवीन दुकान खोली। इस प्रकार व्यापार को विस्तृत करके और उसमे सफलता प्राप्त करके आपने निवृत्तिमय जीवन बिताने की इच्छा की। लौकिक सफलताएँ प्राप्त करके विवेकशील व्यक्ति उनमे फसा नही रहता। वह वर्तमान को ही सबकुछ समझकर अनन्त भविष्य को विस्मरण नहीं कर देता। तदनुसार सेठ रावतमलजी ने व्यापार से निवृत्ति ले ली और देशनोक मे आकर निवृत्तिमय धार्मिक जीवन यापन करने लगे, अन्तत स 1999 मे आपका स्वर्गवास हुआ।

श्री प्रेमसुखजी आपके उत्तराधिकारी हैं। उल्लिखित दोनो दुकानो के अतिरिक्त प्रेमनगर चाय का बगीचा चारो भाइयो की भागीदारी मे हे। दोनो दुकानो पर 'रावतमल प्रेमसुख' नाम से व्यापार चलता है और अब सिलचर मे भी इसी नाम से एक ब्राच खोली है। आपके दो पुत्र हैं, जिनका नाम पाचीलालजी और फतहचन्दजी हैं।

सेठ मोतीलालजी ने भी खूब प्रतिष्ठा प्राप्त की है। आप श्रीमगल म्युनिसिपैलिटी के जनता द्वारा चुने हुए सदस्य हैं। आपकी व्यापारिक प्रामाणिकता से प्रसन्न होकर वायसराय और आसाम–गवर्नर के द्वारा छठे जार्ज के सिहासनारोहण के अवसर पर आपको पदक और प्रमाणपत्र प्रदान किये गये हैं। श्रीमगल और सिलचर मे आपका कारबार 'पीरदान रावतमल के नाम से ही चालू है। आपके आन्दनमलजी मानमलजी मगनमलजी, हनुमानमलजी एव डालचन्दजी नामक पाच पुत्र हैं।

श्री नेमिचन्दजी सोहनलालजी का कारबार साथ ही है। आपके श्रीमगल मे 'पीरदानजी सोहनलालजी' भानुगाछ मे 'पीरदान नेमीचन्द तथा शमशेरनगर मे नेमीचन्द सोहनलाल' के नाम से व्यापार चल रहा हे। श्री नेमीचन्दजी के छगनलालजी, भीखमचन्दजी, रामचन्दजी और शान्तिलालजी नामक चार पुत्र हैं। श्री सोहनलालजी के सम्पतलालजी, ईश्वरचन्दजी और भोमराजजी नामक तीन पुत्र हैं।

देशनोक के गुलगुलिया परिवार का यह सक्षिप्त परिचय है। यह परिवार जहॉ–जहॉ अपना कारवार कर रहा है वहॉ–वहॉ और देशनोक मे भी अत्यन्त उच्च श्रेणी की प्रतिष्ठा प्राप्त परिवार माना जाता हे। ऐसे प्रतिष्ठित और प्रामाणिक परिवार हमारे समाज की शोभा हैं। आन्तरिक कामना है कि इस परिवार की प्रतिष्ठा सपत्ति और धर्मभावना दिनोदिन बढती रह।



अनुक्रम

मौरवी के व्याख्यान

जामनगर के व्याख्यान

1. भगवान शान्तिनाथ

विश्व के असख्य प्राणी निरन्तर प्रवृत्ति मे रत रहते हैं।अगर सामान्य रूप से उनकी प्रवृत्तियो के मूल उद्देश्य को खोजा जाय तो इसी परिणाम पर पहुँचना होगा कि सभी प्राणी शान्ति प्राप्त करने के एक मात्र ध्येय की पूर्ति करने के लिए उद्योग मे लगे हैं। जिसके पास धन नही है या कम है वह धन प्राप्ति के लिए आकाश–पाताल एक करता है। जिसे मकान की आवश्यकता है वह मकान खडा करने के लिए नाना प्रयत्न करता है। जिसके हृदय मे सत्ता की भूख जागी है वह सत्ता हथियाने की चेष्टा कर रहा है। इस प्रकार पाणियों के उद्योग चाहे भिन्न–भिन्न हो पर उन सबका एकमात्र उद्देश्य शान्ति प्राप्त करना ही है। यह बात दूसरी है कि अधिकाश प्राणी वास्तविक ज्ञान न होने के कारण ऐसे प्रयत्न करते हैं कि उन्हे अपने प्रयत्नो के फलस्वरूप शाति के बदले उलटी अशान्ति ही प्राप्त होती है लेकिन अशान्ति कोई चाहता नही। चाहते हैं सभी शाति।

शान्ति के लिए प्रयत्न करने पर भी अधिकाश प्राणियो को अशाति क्यो प्राप्त होती है इसका कारण यही है कि उन्होने शाति के यथार्थ स्वरूप को नही समझा है। वास्तविक शाति क्या है? कहा है? उसे प्राप्त करने का साधन क्या है? इन बातो को ठीक–ठीक न जानने के कारण ही प्राय शाति के बदले अशाति पल्ले पडती है। अतएव यह आवश्यक है कि भगवान् शातिनाथ की शरण लेकर शाति का सच्चा स्वरूप समझ लिया जाय और फिर शाति प्राप्त करने के लिए उद्योग किया जाय।

भगवान शातिनाथ का स्वरूप समझ लेना ही शाति के स्वरूप को समझ लेना है। गणधरो ने भगवान् शातिनाथ के स्वरूप को ऊचा बतलाया है। उस स्वरूप मे चित्त को एकाग्र करके लगा दिया जाये तो कभी अशाति

न हो। मित्रों! आओ, आज हम लोग मिलकर भगवान् के स्वरूप का विचार करे और सच्ची शाति प्राप्त करने का मार्ग खोजे।

भगवान् शातिनाथ के सम्बन्ध मे शास्त्र का कथन है–

चइता भारह बास चक्कवट्टी महड्ढियो।
सन्ति सन्ति करे लोए,पात्तेगइमणत्तर।।

यहा भगवान् के विषय मे कहा गया है–

सन्ती सतीकरे लोए।'

अर्थात् शान्तिनाथ भगवान् लोक मे शाति करने वाले हैं। वाक्य बडा महत्वपूर्ण है। यह छोटा–सा वाक्य इतना पूर्ण है कि मानो सब ज्ञान इसी मे समाप्त हो जाता है। शान्ति क्या हैं और वह किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है, इस विषय पर मैं कई बार कह चुका हू और आज फिर इसी विषय मे कह रहा हू, क्योकि शाति प्राप्त करना ही जगत् के प्राणियो का एक मात्र ध्येय हैं।

कई लोग विषमभाव– मे पक्षपात में शाति देखते हैं। लेकिन जहा विषमभाव है वहा वास्तविक शाति नही रह सकती। वास्तविक शाति तो समभाव के साथ ही रहती है।

बहुत से लोग अपनी कुशल के आगे दूसरे की कुशल की कोई कीमत नहीं समझते। वे दूसरों की कुशल की उपेक्षा ही नहीं करते वरन् अपनी कुशल के लिए दूसरो को घोर अकुशल भी कर डालते हैं। उन्हे समझना चाहिए कि शाति प्राप्त करने का मार्ग यह नहीं है। यह तो शाति के घात करने का ही तरीका है। सच्ची शाति तो भगवान् शातिनाथ को पहिचानने से ही प्राप्त की जा सकती है। जिस शाति मे से अशाति का अकुर न फूटे जो सदा के लिए अशाति का अन्त कर दे वही सच्ची शाति हे। सच्ची शाति करने के लिए 'सर्वभूतहिते रत' अर्थात् प्राणीमात्र के कल्याण मे रत होना पडता हे। कुछ लोग दुर्गापाठ आदि करके होम करके यहा तक कि जीवो का बलिदान तक करके शाति प्राप्त करना चाहते हैं। दुखविपाक सूत्र देखने से पता चलता है कि कुछ लोग तो अपने लडको का होम करके भी शाति प्राप्त करना चाहते थे। कुछ लोग आज भी पशुबलि यहा तक कि नरबलि मे शाति बतलाते हें। इस प्रकार शाति के नाम पर न जाने कितनी उपाधिया खडी कर दी गई हें। लेकिन गणधरो ने एक ही वाक्य मे वास्तविक शाति का सच्चा चित्र अकित कर दिया हे–

सती सतिकरे लोए।

नरमेध करने वालो ने नरमेध मे ही शाति मान रखी है। लेकिन नरमेध से क्या कभी ससार में शान्ति हो सकती है? मारने वाला और मरने वाला दोनो ही मनुष्य है। मारने वाला शक्ति चाहता है तो क्या मरने वाले को शाति की अभिलाषा नही है? फिर उसे अशाति पहुचा कर शाति की आशा करना कितनी मूर्खतापूर्ण बात है।

नरमेध करने वाले से पूछा जाय कि तू ईश्वर के नाम पर दूसरे मनुष्य का वध करता है तो क्या ईश्वर तेरा ही है? ईश्वर मरने वाले का नही है? अगर मरने वाले से पूछा जाय कि हम ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए तेरा लिदान करना चाहते हैं तो वह क्या उत्तर देगा? क्या वह बलि चढना पसन्द करेगा? क्या वह स्वीकार करेगा कि जो इस प्रकार की बलि लेकर पसन्न होता है वह ईश्वर है? और इस बलि का विधान जिसमे किया गया है वह क्या शास्त्र है? वह तो यही कहेगा कि ऐसी बलि की आज्ञा देने वाला ईश्वर नही हो सकता कोई हिसालोलुप अनार्य हो सकता है और ऐसा शास्त्र भी किसी अनार्य का ही कहा हुआ है।

किसी जमाने मे नरमेध भी किया जाता था और पशुमेध तो साधारण बात हो गई थी। नरमेध मे मनुष्य की और पशुमेध मे पशुओ की बलि दी जाती थी। नरमध की बात जाने दीजिए वह तो घृणित है ही, पर पशुमेध भी कम घृणित नही है। निर्दयता के साथ पशुओ को आग मे झोक देना शाति प्राप्त करने का कैसा ढोग है यह बात एक आख्यान द्वारा समझना ठीक होगा।

एक राजा पशु का यज्ञ करने लगा। राजा का मन्त्री न्यायशील, दयालु और पक्षपात रहित था। उसने विचार किया – शाति के नाम पर वध करना कोन–सी शाति है? क्या दूसरो को घोर अशाति पहुचाना ही शाति प्राप्त करना है? अपनी शाति की आशा से दूसरो के प्राण लेना जघन्यतम स्वार्थ है। क्या इसी निकृष्ट स्वार्थ मे शाति विराजमान रहती है? शातिदेवी की सोम्य मूति इस विकराल और अधम कृत्य मे नही रह सकती। उसने यज्ञ कराने वाले पुरोहित से पूछा– आप इन मूक पशुओ को अशाति पहुचाकर शाति किस प्रकार चाहते हैं?

पुरोहित ने कहा– इन बकरो का परमात्मा के नाम पर बलिदान किया जायगा। इस बलिदान के प्रताप से सबको शाति मिलेगी।

मन्त्री– ईश्वर अगर सबका स्वामी है तो इन बकरो का भी स्वामी है या नही? और जैस सब लोग शाति चाहते है उसी प्रकार ये शाति चाहते है या नही? अगर यह भी शाति चाहते हे तो इन्हे क्यो मारा जा रहा है?

पुरोहित मन्त्री के प्रश्न का समुचित उत्तर नहीं दे सका। अतएव उसने क्रोध मे आकर कर्कश स्वर मे कहा – आप नास्तिक मालूम होते हैं। यहा से दूर चले जाइए, अन्यथा यज्ञ अपवित्र हो जायेगा।

मन्त्री – मैं नास्तिक नहीं आस्तिक हू। परन्तु यह जानना चाहता हूँ कि जिन जीवो के लिए तुम शाति चाह रहे हो उनमें यह बकरे भी हैं या नहीं?

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति, जीविउ न मरिज्जिउ।

अर्थात् सभी जीव जीवित रहना पसन्द करते हैं। मरना कोई नहीं चाहता।

जब सभी जीव जीना चाहते हैं और मरना नही चाहते तो उन्हे अशाति पहुचा कर, मारकर शाति चाहना कहा का न्याय है? तुम भी शाति चाहते हो, यह बकरे भी शान्ति चाहते हैं, फिर इन्हे क्यो मारते हो?

पुरोहित के पास इस सरल प्रश्न का कोई उत्तर नही था। वह ऊटपटाग बात करके मन्त्री को टालने का उपाय करने लगा।

मन्त्री ने विचार किया कि यह यज्ञ राजा की आज्ञा से हो रहा है। पुरोहित लोग यो कहने से नही मानेगे। अतएव उसने प्रधान पुरोहित से कहा– मैं लौटकर आता हू तब तक इन पशुओ को मारने का काम बन्द रखा जाय। यह मेरी अधिकृत आज्ञा है।

मन्त्री सीधा राजा के पास पहुचा। उसने राजा से कहा– महाराज! नगर मे बड़ा अत्याचार हो रहा है।

राजा– तो आप किस काम के लिए हैं? अत्याचार को रोकते क्यो नहीं?

मन्त्री – अत्याचार करने वाले तो स्वय राजगुरू हैं। उनके सम्बन्ध मे जब तक आप विशेष आज्ञा न दे मैं क्या कर सकता हूं?

राजा – राजगुरू क्या अत्याचार कर रहे हैं?

मन्त्री – लोगों के बच्चो को जबर्दस्ती मूडकर साधु बना रहे हैं। सब बच्चे और उनके मा–बाप रो रहे हैं। आप जैसी आज्ञा दे वेसा ही किया जाय।राजा को राजगुरू की जबर्दस्ती अच्छी नहीं लगी। उसने मन्त्री से कहा– इस अत्याचार को जल्दी रोको। न माने तो कानून के अनुसार उचित कार्यवाही करो।

राजा की आज्ञा प्राप्त कर मन्त्री फिर यज्ञस्थल पर आया। उसने यज्ञ करने वाले पुरोहितो से कहा– इन पशुओं को छोड दो इनका हवन नही किया जायेगा।

प्र पुरोहित – क्यों?

मन्त्री – इनकी आत्मा नही चाहती।

प्र पुरोहित – आप शास्त्र की बात नही समझते। हम लोग इन पशुओ की कुछ भी हानि नही कर रहे हैं। हम तो इन्हे सीधे स्वर्ग भेज रहे हैं। स्वर्ग मे पहुँच कर इन्हे दिव्यसुख प्राप्त होगा। न आप यह बात जानते हैं और न बकरे ही जानते हैं। हम ज्ञानी हैं। हमने शास्त्र पढे हैं। अतएव इन बकरो की भलाई मे बाधा मत डालिये।

मन्त्री –आपका ज्ञान तो आपके कामो से और आपकी बातो से प्रकट ही है परन्तु जब यह पशु स्वर्ग चाहते हो, तब तो इन्हे स्वर्ग भेजना उचित भी कह सकते थे। मगर यह स्वर्ग नही चाहते। जबर्दस्ती करके क्यो भेज रहे हो?

आखिर बकरे बचा लिये गये। पुरोहित घबराया। उसकी दुकानदारी जो उठ रही थी। फिर उन्हे पूछता ही कौन। वे भी राजा के पास पहुँचे। कहने लगे –अन्नदाता! शाति के लिए यज्ञ प्रारम्भ किया गया था परन्तु यज्ञ मे बलि दिये जाने वाले बकरो को मन्त्री ने छुडा लिया और यज्ञ रोक दिया।

राजा असमजस मे पड गया। सोचने लगा– मामला क्या है? आखिर उसने मन्त्री को बुलवाया। बकरे छुडवाने के विषय मे प्रश्न करने पर मन्त्री ने उत्तर दिया– महाराजा! मैंने आपकी आज्ञा से पशुओ को मरने से बचाया है।

राजा– मैंने यह आज्ञा कब दी है?

मन्त्री – आपने आज्ञा दी थी कि जबर्दस्ती साधु न बनाया जाय।

राजा– वह तो साधु बनाने के विषय में थी। बकरो के विषय मे तो कोई आज्ञा नही दी गई।

मन्त्री – जैसे दूसरे लोग कहते हैं कि हम साधु बनाकर स्वर्ग भेजते है उसी प्रकार इनका कहना है कि हम बकरो को मार कर स्वर्ग भेजते हैं। जब जबर्दस्ती साधु नही बनाने दिया जाता तो फिर जबर्दस्ती बकरो को कैसे स्वर्ग भेजा जा सकता है?

राजा विवेकवान् था। उसने मन्त्री की बात पर विचार किया। विचार करने पर उसे जचा कि मन्त्री कि बात सही है।

राजा ने फिर पुरोहित को बुलवाया। पुरोहितो के आने पर राजा ने पूछा– उन पशुओ को मारने का उद्देश्य क्या है? उन्हें अमर क्यो न रखा जाय? उन्हे अमर रखने से क्या ईश्वर प्रसन्न नही होगा?

प्रधान पुरोहित ने कहा– महाराज, आप भी भ्रम मे पड गये हैं। हम पशुओ को मारते नही, स्वर्ग भेजते हैं।

मन्त्री ने कहा– महाराजा, मैं पशुओ की ओर से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। उन पशुओ ने बडी ही दीनता के साथ प्रार्थना की है। वह प्रार्थना यह है–

कहे पशुदीन सुन यज्ञ के करैया मोहि,
होमत हुतासन मे कौन सी बडाई हैं।
स्वर्गसुख मैं न चहू देहु मुझे यो न कहूँ।
घास खाय रहू मेरे दिल यही भाई है।
जो तू यह जानत है वेद यो बखानत है।
यज्ञ–जरौ जीव पावे स्वर्ग–सुखदायी हैं।
डारो क्यो न वीर! या मैं अपने कुटुम्ब ही को,
मोहि जिन जारै जगदीस को दुहाई हैं।

पशुओ की यह प्रार्थना है। वे दीन से दीन स्वर मे यज्ञ करने वाले से कहते हैं– क्या तुम ईश्वर से मुक्त हो? जिस वेद के नाम पर तम हमे होमते हो उसमे कहे हुए अहिसा धर्म को छिपा कर हमे होमने मे तुम्हारी कौन–सी बडाई है? मैं स्वर्ग का सुख नही चाहता। मैं तो घास खाकर जीवित रहना चाहता हू। हे याज्ञिक! अगर तू सच्चे दिल से समझता है कि यज्ञ मे होमा हुआ जीवधारी स्वर्ग मे जाता हैं तो अपने कुटुम्ब को ही स्वर्ग भेजने के लिए क्यो नहीं होम देता? हम मूक पशुओ से क्यो रूठा है।

एक आदमी अपने हाथ मे हरी–हरी घास लेकर खड़ा हो और दूसरा स्वर्ग मे भेजने के लिए तलवार लिए खडा हो तो इन दोनो मे से पशु किसे पसन्द करेगा? वह किसकी ओर मुह लपकाएगा?

घास वाले की ओर।'

इससे प्रकट हैं कि पशु स्वर्ग जाने के लिए मरना नही चाहता ओर घास खाकर जीवित रहना चाहता है। मन्त्री कहता हे– अगर यज्ञ करने वाले कहते हैं कि पशुओ को अज्ञान हैं और हम ज्ञानी हें, इसलिए उन्हे स्वर्ग भेजते हैं, तो इसके उत्तर मे पशुओ का कहना है कि हमे तो इस बात पर विश्वास है नहीं, अगर इन्हे विश्वास है तो ये लोग अपने कुटुम्ब को स्वर्ग भेजे। अगर इन्होने अपने बेटे को इस प्रकार मारकर स्वर्ग भेजा होता तो हमे विश्वास हो जाता कि ये दिल से ऐसा मानते हैं। मगर जब यज्ञ करने वाल अपने माता–पिता और पुत्र आदि को स्वर्ग–सुख से वचित रखकर हमे स्वर्ग भेजने

की बात कहते हैं तो हमे इनकी बात पर विश्वास नही होता। इसके लिए हमे मारने वाले को परमात्मा की दुहाई है।

मन्त्री कहता है– उन पशुओ की तरफ से यह फरियाद है और वे इसका उत्तर मागते हैं।

राजा ने यज्ञ करने वाले पुरोहितो से पूछा– क्या आप लोग अपने परिवार को यज्ञ मे होम सकते हैं

पुरोहित – शास्त्र मे पशुओं को होमने का विधान है, कुटुम्ब को होमने का नही है।

राजा – तब तो कहना पडेगा कि आपका शास्त्र भी पक्षपात से भरा है। बस सब रहने दीजिये। क्षमा कीजिये। मैं ऐसी शाति नही चाहता। मेरा उद्देश्य किसी को अशाति पहुचाकर शान्ति प्राप्त करना नही है। मेरा कर्त्तव्य मुझे सबको शाति पहुचाने के लिए प्रेरित करता है।

मतलब यह है कि किसी भी जीव का हवन करने से शाति प्राप्त नहीं हो सकती। किसी भी प्राणी को दु ख न पहुचाने से ही वास्तविक शाति प्राप्त हो सकती है। आज तो जैन–परम्परा के अनुयायी भी नाना प्रकार से आरम्भ–समारम्भ करते हैं और होम आदि करते हैं मगर उसमे वास्तविक शाति नही है। लोगो ने शाति प्राप्त करने के उपायो को गलत समझ लिया है और इसी कारण शाति प्राप्त करने के लिए यज्ञ, होम आदि करने पर भी सच्ची शाति प्राप्त नही होती। सच्ची शाति प्राणी मात्र की कल्याणसाधना मे है। किसी का अकल्याण करने मे शाति नही है। भगवान् शान्तिनाथ के नाम पर जो शातिदीपक जलाया जाता है, क्या उसमें अग्नि नहीं होती? इस प्रकार अग्नि से लगाया हुआ दीपक शातिदीपक नही है? शातिदीपक वह है जिसमे ज्ञान उजाला किया जाता हो।

ऐसी आरति करो मन मेरा।
जन्म–मरण मिट जाय दुख तेरा।
ज्ञान दीपक का कर उजियाला,
शान्ति स्वरूप निहारो तुम्हारा।।ऐसी।।

मित्रो! शातिनाथ भगवान् की आराधना करने का अवसर बार–बार नही मिलता। इसलिए शातिनाथ भगवान् की आराधना करो। अग्नि से दीपक जलाकर 'शाति–शाति' भले करते रहो पर इस उपाय से शातिनाथ को नही पा सकते। ज्ञान का दीपक जलाकर उजाला करोगे तो शातिनाथ भगवान् का स्वरूप स्पष्ट रूप से देख सकोगे। इस बात पर मनन करो और इसे हृदय

मे उतार लो तो शातिनाथ हृदय मे ही प्रकट हो जाऐगे। प्राचीन ऋषियो ने कहा है–

देहो देवालय प्रोक्तो जीवो देव सनातन ।
त्यदेज्ञाननिर्माल्य सोऽह वावेन पूजयते।।

यह देह देवालय है। इसमे आज का नहीं सनातन का कृत्रिम नहीं अकृत्रिम, जीव परमेश्वर है।

तुम्हारी देह अगर मन्दिर है तो दूसरे जीवो की देह भी मन्दिर है या नहीं?

हॉ।'

यदि केवल अपनी ही देह को मन्दिर माना, दूसरे की देह को मन्दिर नहीं माना तो तुम पक्षपात मे पडे होने के कारण ईश्वर को नहीं जान सकते। ईश्वर ज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापी और सबकी शाति चाहने वाला है। अगर आप भी सबकी शाति चाहते हैं, सबकी देह को देवालय मानते हैं तो सबकी देह भी देवालय हैं, अन्यथा नही।

जिस मकान को देवालय मान लिया, उस मकान के ईंट–पत्थर कोई विवेकी खोदना चाहेगा?

'नहीं।'

अगर कोई खोदता है तो कहा जायगा कि इसने देवालय की आसातना की। लेकिन जब सभी जीवो के शरीर को देवालय माल लिया तो फिर किसी के शरीर को तोडना–फोडना क्या देवालय को तोडना–फोडना नही कहलाएगा?

मित्रो! परमात्मा मे शान्ति चाहने के लिए दूसरे जीवो को कष्ट पहुचाना, उसका घात करना कहा तक उचित है? देवालय के पत्थर निकालकर कोई आसपास दीवाल बनावे ओर कहे कि हम देवालय की रक्षा करते हैं तो क्या यह रक्षा करना कहलाएगा? इसी प्रकार शान्ति के लिए जीवा का घात करना क्या शान्ति प्राप्त करना हे? शान्ति तो उसी समय प्राप्त होगी जब ज्ञान–दीपक से उजाला करके आत्मा को वेर–विकार से रहित बनाओग। सर्वदेशीय शाति ही वास्तविक शाति है–

शातिनाथ भगवान् की प्रार्थना मे कहा गया हे–

श्री शाति जिनेश्वर सायब सोलवॉ
जनमत शाति करी निज देश मे।
मिरगी मार निवार हो सुभागी।।

तन मन वचना शुद्ध करि ध्यावता,
पूरे सगली हाम हो सुभागी।।श्री ।।

उन शातिनाथ भगवान् को पहिचानो, जिन्होने माता के उदर में आते ही ससार मे शाति का प्रसार कर दिया था। उस समय की शाति, सूर्योदय से पहले होने वाली उषा के समान थी।

उषा प्रात काल लालिमा फैलने और उजाला होने का कहते हैं। भगवान् शातिनाथ का जन्मकाल शातिपसार का उषाकाल था। इस उषाकाल के दर्शन कब और कैसे हुए इत्यादि बाते समझाने के लिए शातिनाथ भगवान् का जन्मचरित सक्षेप में बतला देना आवश्यक है जिस प्रकार सूर्योदय की उषा से सूर्य का सम्बन्ध है उसी प्रकार भगवान् शातिनाथ के उषाकाल से उनका सम्बन्ध है। अतएव उसे जान लेना आवश्यक है।

हस्तिनापुर मे महाराजा अश्वसेन और महारानी अचला का अखण्ड राज्य था। हस्तिनापुर नगर अधिकतर राजधानी रहा है। प्राचीनकाल मे उसकी बहुत प्रसिद्धि थी। आजकल हस्तिनापुर का स्थान देहली ने ले लिया है।*

भगवान् शान्तिनाथ सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर महारानी अचला के गर्भ मे आये। गर्भ मे आते समय महारानी अचला ने जो दिव्य स्वप्न देखे वे सब उस उषाकाल की सूचना देने वाले थे। मानो स्वप्न मे दिखाई देने वाले पदार्थो मे कोई भी स्वार्थी नही हैं। हाथी, वृषभ, सिह और पुष्पमाला कहते है कि आप हमे अपने मे स्थान दीजिए। चन्द्रमा और सूर्य निवेदन कर रहे है कि हमारी शाति और तेज हे प्रभो ! तेरे मे ही है।

उग्गए विमले भाण

हे प्रभो ! हमारे प्रकाश से अधकार नही मिटता है, अतएव प्रकाश कीजिए।

उधर फहराती हुई ध्वजा कहती है– मैं तीन लोक की विजयपताका हूँ। मुझे अपनाईए। मगलकलश कहता है– मेरा नाम तभी सार्थक है जब आप मुझे ग्रहण कर ले। मानसरोवर कहता है– यह मगलकलश मेरे से ही बना है। मै और किसके पास जाऊँ? मै ससार के मानस का प्रतिनिधि होकर आया हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि तू सबके मानस मे प्रवेश कर और उसे उज्ज्वल बना। क्षीरसागर कहता है– यह सरोवर तो छोटा–सा है। लेकिन अगर आप

* (हस्तिनापुर के परिचय के लिए देखिए किरण 17 पाण्डव–चरित पृष्ठ 9।)

मुझे न धारण करेगे तो मैं कहाँ रहूँगा? प्रभो। इस ससार को अमृतमय कर दो। ससार मुझ से अतृप्त है, अत आप तृप्त कीजिए।

इस प्रकार उषाकाल की सूचना देकर भगवान् शातिनाथ सर्वार्थसिद्धि विमान से महारानी अचला के गर्भ मे आये। सब देवी–देवताओ ने भगवान् से प्रार्थना की– प्रभो। सब लोग अपने पक्ष मे पडे हुए हैं। आप ससार का उद्धार कीजिये। हमारे सिर पर भी आशीर्वाद का हाथ फेरिये।

लोकोत्तर स्वप्नो ने मानो अचला महारानी को बधाई दी। उसके बाद अचला महारानी के गर्भ में भगवान् का आगमन हुआ। क्रमश गर्भ की वृद्धि होने लगी।

जिन दिनो भगवान् शातिनाथ गर्भ मे थे, उन्ही दिनो महाराजा अश्वसेन के राज्य मे महामारी का रोग फैल गया।

प्रश्न हो सकता है कि जब भगवान् गर्भ मे आये तो रोग क्यो फैला? मगर वह रोग नही, उषाकाल की महिमा को प्रकट करने वाला अन्धकार था। जैसे उषाकाल से पहले रात्रि होती है और उस रात्रि से ही उषाकाल की महिमा जानी जाती है, उसी प्रकार वह महामारी भगवान् शातिनाथ के उषाकाल के पहले की रात्रि थी। उसका निवारण करने के कारण ही भगवान् 'शातिनाथ' पद को प्राप्त हुए। यद्यपि भगवान गर्भ मे आ चुके थे और उस समय रोग फैलना नही चाहिए था फिर भी रोग के फैलने के बाद भगवान के निमित्त से उसकी शाति होने के कारण भगवान् की महिमा का प्रकाश हुआ। इससे भगवान् के आने की सूचना और भगवान के प्रताप का परिचय उनके माता–पिता को मिल गया।

राज्य मे मरी रोग फैलने की सूचना महाराजा अश्वसेन को मिली। महाराजा ने यह जानकारी की मरी रोग के कारण लोग मर रहे हैं रोग की उपशाति के अनेक उपाय किये। मगर शाति न मिली।

यह मरी लोगो की कसौटी थी। इसी से पता चलता था कि लोग मार्ग पर हैं या मार्ग भूले हुए हैं। यह मरी शाति से पहले होने वाली क्राति थी।

उपाय करने पर भी शाति न होने के कारण महाराज बडे दु खी हुए। वह सोचने लगे– जिस प्रजा का मैंने पुत्र के समान पालन किया हे जिसे मैंने अज्ञान से सज्ञान निर्धन से धनवान और निरुद्योगी से उद्योगवान बनाया है, वह मेरी प्रजा असमय मे ही मर रही हे। मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ हो रहा है। मेरे राजा रहते प्रजा को कष्ट होना मेरे पाप का कारण है। पहल

के राजा, राज्य मे दुष्काल पडना, रोग फैलना, प्रजा का दु:खी होना आदि अपने पाप का ही फल समझते थे।

रामायण मे लिखा है कि एक ब्राह्मण का लडका बचपन मे ही मर गया। ब्राह्मण उस लडके को लेकर रामचन्द्रजी के पास गया और बोला– आपने क्या पाप किया है कि मेरा लडका मर गया?

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि पहले के राजा प्रजा के कष्ट का कारण अपना ही पाप समझते थे। इसी भावना के अनुसार महाराजा अश्वसेन मरी फैलने का अपना ही दोष मान कर दु:खी हुए। उन्होने एकान्त मे जाकर निश्चय किया कि जब तक प्रजा का दु:ख दूर न होगा, मैं अन्न–जल ग्रहण नही करूगा।

सुदृढ निश्चय बडा बल होता है। भक्त तुकाराम ने कहा हैं–

निश्चयाचा बल तुका म्हणे तो च फल।

निश्चय के बिना फल की प्राप्ति नही होती।

इस प्रकार निश्चय करके महाराजा अश्वसेन ध्यान लगा कर बैठ गये। भोजन का समय होने पर महारानी अचला ने दासी को भेजा कि वह महाराजा को भोजन करने के लिए बुला लावे। दासी गई, किन्तु महाराज को ध्यानमुद्रा मे बैठा देखकर वह सहम गई। भला, उसका साहस कैसे हो सकता था कि वह महाराज के ध्यान को भग करने का प्रयत्न करे। वह धीमे–धीमे स्वर से पुकार कर लौट गई। उसके बाद दूसरी दासी आई, फिर तीसरी आई, मगर ध्यान भग करने का किसी को साहस न हुआ। महारानी अचला बार–बार दासियो को भेजने के अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करके कहने लगी– स्वामी को बुलाने के लिए दासियों का भेजना उचित नही था, स्वय मुझे जाना चाहिए था। यद्यपि मैंने पति से पहले भोजन करने की भूल नहीं की है, लेकिन स्वय उन्हे बुलाने न जाकर दासियो को भेजने की भूल अवश्य की है।

समय अधिक हो जाने के कारण भोजन ठण्डा हो गया था। इस कारण दासियो को दूसरा भोजन बनाने की आज्ञा देकर महारानी अचला स्वय महाराज अश्वसेन के समीप गई।

महारानी सोच रही थी – पत्नी पति की अर्द्धांगिनी है। उसे पति की चिन्ता का भी भाग बटाना चाहिए। जो स्त्री पति की प्रसन्नता में भाग लेना चाहती है और चिन्ता मे भाग नही लेना चाहती वह आदर्श पत्नी नही हो सकती। ऐसी स्त्री पापिनी है।

अचला देवी ने जो विचार किया, क्या वह स्त्री का धर्म नहीं है? अवश्य। किन्तु आजकल तो बचपन मे ही लड़कियो को उलटी शिक्षा दी जाती है। कन्या को ऐसी विनयशील होना आवश्यक है, जिससे गृहस्थावस्था मे वह अपने परिवार को शाति दे सके, स्वय शाति प्राप्त कर सके और कुटुम्बजीवन पूरी तरह आनन्दमय हो सके।

बीकानेर मे लडकियो को लडके के भेष मे रखने की प्रथा देखी जाती है। मेरी समझ मे ही नहीं आता कि ऐसा करने से क्या लाभ है? पुरुष की पोशाक पहिनने से कोई स्त्री पुरुष तो हो ही नहीं सकती। समव है, कन्या के माता–पिता उसे लडके की पोशाक पहनाकर सोचते हो– लडके की पोशाक पहिनकर हम कन्या की लडका होने की भावना पूरी कर रहे हैं। मगर ऐसा करने से क्या हानि होती है, इस बात पर उन्होने विचार नही किया। लडकी को लडका बनाने का विचार करना प्रकृति से युद्ध करना है। प्रकृति से युद्ध करके कोई विजय नही पा सकता। फल यह होता है कि ऐसा करने से लडकी के सस्कार बिगड जाते हैं। कोई–कोई बचपन के मूल्य को नही समझते। वे बाल्यावस्था को निरर्थक ही मानते हैं। पर बाल्यावस्था मे ग्रहण किये हुए सस्कारो के आधार पर ही बालक के सम्पूर्ण जीवन का निर्माण होता है। जिसका बालकपन बिगड गया उसका सारा जीवन बिगड गया और जिसका बालकपन सुधर गया उसका सारा जीवन सुधर गया। किसी कवि ने कहा है –

यन्नवे भाजने लग्न सस्कारो नान्यथा भवेत्।

कच्चे घडे पर बेलबूटे बना दिये जाते हैं वे घडे के पकने पर भी नही मिटते। लेकिन पक्के घड़े पर बनाये हुए बेलबूटे कायम नहीं रहते। यही बात बाल्यावस्था के विषय मे हैं। अतएव जीवन निर्माण की दृष्टि से बाल्यावस्था का मूल्य बहुत अधिक है। माता–पिता को यह बात दिल मे बिठा लेनी चाहिये कि बालक के सस्कार, चाहे वे भले हो या बुरे हो, जीवनभर जाने वाले नही हैं। अतएव उन्हे बुरे सस्कारो से बचाकर अच्छे सस्कारो से सुसस्कृत करना चाहिए। अगर बालको को प्रारम्भ से ही खराब बोलचाल और खानपान से बचाते रहो तो आगे चलकर वे इतने उत्तम बनेगे कि आपका गृहस्थजीवन सुखमय, शातिमय और सन्तोषमय बन जायेगा।

कविसम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने एक निबन्ध म लिखा है कि पाच वर्ष तक के बालक को सिला हुआ कपडा पहनाना उसकी वृद्धि मे बाधा डालना है। खुले शरीर मे जो क्राति आ सकती है, वह सिले कपडो से बन्द

किये हुए शरीर मे नही आ सकती। चुस्त कपडो से बन्द किये हुए शरीर का विकास भी रुक जाता है। ऐसी स्थिति मे यह समझना कठिन नही है कि गहनो से भी बालक का विकास अवरुद्ध हो जाता है। जो बालक 'सोना' शब्द का उच्चारण भी नही कर सकता, न सोने को पहिचानता ही है उसे सोना पहिनाने से क्या लाभ है? सोना बालक के प्राणो का ग्राहक भले ही बन सकता है, लाभ तो उससे कुछ भी दिखाई नहीं देता। बालक को जब सिला कपडा पहिनाया जाता है तो वह रोने लगता है। वह रोकर मानो कहता है कि मुझे इस बन्धन मे मत डालो। मगर कौन बालको की पुकार सुनता है।

जरा विचार कीजिए कि आप लोग अपने बालको को नाना प्रकार के आभूषण और गोटा–किनारी के कपडे पहिनाये बिना सन्तोष नही मानते, मगर अग्रेजो के कितने लडको को आपने गहने पहिने देखा है?

आप बालक को बचपन से ही ऐसी विकारयुक्त रुचि का बना देते है कि आगे चलकर उनकी रुचि का सुधरना कठिन हो जाता है। बडे होने पर उन्हे कदाचित गहने से मिलें तो वे दु ख का अनुभव करते हैं। उनकी दृष्टि ही विकृत हो जाती है। उनका जीवन दु खमय बन जाता है। माता–पिता को तो चाहिये कि वे बालक को सादगी और स्वच्छता का सबक सिखावे, जिससे उनका अगला जीवन सुख और सन्तोष के साथ व्यतीत हो सके।

बहुत से लोग लडको पर अच्छा भाव रखते है परन्तु लडकिया उन्हे आफत की पुडिया मालूम होती है। लडका उत्पन्न होने पर वे प्रसन्न होते हैं और लडकी के जन्म पर मातम–सा मनाने लगते है, उदास हो जाते हैं। फिर उसके पालन–पोषण मे भी ऐसी लापरवाही की जाती है कि लडकी अपने भाग्य से ही बडी हो पाती है। लडकी बडी हो जाती है तो उसके शिक्षण का वैसा प्रबन्ध नही किया जाता जैसा लडके का। लेकिन उसे लडके के वेष मे रखा जाता है जिससे उसका नम्रता का गुण कम हो जाता है।

जहाँ इस प्रकार का पक्षपात हो, समझना चाहिए कि वहा भगवान् शान्तिनाथ को समझने का प्रयत्न ही नही किया गया है। इसलिए मैं कहता हूँ कि पक्षपात को दूर करो। यह पक्षपात गृहस्थजीवन का घोर अभिशाप है। लडकियो के विरुद्ध किया जाने वाला ऐसा पक्षपात अत्यन्त भयकर परिणाम पैदा करने वाला है। किसी नवयुवती कन्या को बूढे के साथ ब्याह देना क्या कम अत्याचार है? पैसे के लोभ मे आकर अपनी कन्या के साथ ऐसा निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने वाले लोग किस प्रकार भगवान् शातिनाथ की उपासना कर सकते है? अपनी ही सन्तान को जो लोग अशाति की आग में

झोकते नही हिचकते उन्हे किस प्रकार शाति मिल सकती है? अगर आप सच्ची शाति चाहते हैं तो अपने समग्र जीवनक्रम का विचार करे और उसमे अशाति पैदा करने वाले जितने अश हैं उन्हे हटा दे। इससे आप, आपका परिवार, समाज और देश शाति प्राप्त करेगा। ऐसा करने पर ही भगवान् शातिनाथ की आराधना हो सकेगी।

कन्या के बदले पैसे लेने वाले का कभी भला नही होता। मैं अपनी आखो देखी बात कहता हू। एक आदमी के पाच लडकियाँ थी और एक लडका था। लडकियो के उसने मनचाहे रुपये लिए। यही नही वरन् किसी किसी लडकी की सगाई एक जगह करके छोड दी और फिर दूसरी जगह की। इतनी करने पर भी उसकी दरिद्रता दूर नहीं हुई और न उसके लडके का ही विवाह हुआ। उसके वश का नाश हो गया।

मतलब यह है कि प्रकृति के नियमो को तोडकर रुपये के लोभ मे पडकर नवयुवती कन्या को बूढे के हवाले कर देना या अयोग्य धनवान को लडकी देकर योग्य धनहीन को वचित रखना योग्य नही है। भगवान् ने तो दासी बेचने को भी बडा पाप कहा हैं, फिर कन्या को बेच देना कितना बडा पाप न होगा?

महारानी अचला को बाल्यावस्था से ही सुन्दर सस्कार मिले थे। वह अपने पत्नी धर्म को भलीभाति समझती थी। इस कारण वह भोजन किये बिना ही महाराज अश्वसेन के समीप पहुँची। वहाँ जाकर देखा कि महाराजा अश्वसेन गम्भीर मुद्रा धारण करके ध्यान मे लीन हैं। महारानी ने हाथ जोडकर धीमे और मधुर किन्तु गम्भीर स्वर मे महाराज का ध्यान भग करने का प्रयत्न किया। महारानी का गम्भीर स्वर सुनकर महाराज का ध्यान टूटा। उन्होने आख खोलकर देखा तो सामने महारानी हाथ जोडे खडी नजर आई। महाराजा ने इस प्रकार खड़ी रहने ओर ध्यान भग करने का कारण पूछा। महारानी ने कहा– आप आज अभी तक भोजन करने नही पधारे। इसका क्या कारण है?

महाराज सोचने लगे– जिस उपद्रव को मैं दूर नहीं कर सकता, उसे महारानी स्त्री होकर कैसे दूर कर सकती है? फिर अपनी चिन्ता का कारण कहकर इन्हे दु खी करने से क्या लाभ है? इस प्रकार विचार कर वह चुप ही रहे। कुछ न बोले।

पति को मौन देखकर महारानी ने कहा– जान पडता हे आप किसी ऐसी चिन्ता मे डूबे हैं, जिसे सुनने के लिए मैं अयोग्य हूँ। सम्भवत इसी कारण

आप बात छिपा रहे हैं। यदि मेरा अनुमान सत्य है तो आज्ञा दीजिए कि मैं यहा से टल जाऊँ। ऐसा न हो तो कृपया अपनी चिन्ता का कारण बतलाइए। आपकी पत्नी होने के कारण आपके हर्ष–शोक मे समान रूप से भाग लेना मेरा कर्त्तव्य हैं।

महाराज अश्वसेन ने कहा– मेरे पास कोई चीज नही हैं जो तुमसे छिपाने योग्य हो। मैं ऐसा पति नही कि अपनी पत्नी से किसी प्रकार का दुराव रखू। मगर मैं सोचता हूँ कि मेरी चिन्ता का कारण सुन लेने से मेरी चिन्ता तो दूर होगी नही, तुम्हे भी चिन्ता हो जायेगी, इससे क्या लाभ होगा?

महारानी– अगर बात कहने से दु ख नही मिटेगा तो उदास होने से भी नही मिटेगा। इस समय सारा दु ख आप उठा रहे हैं, लेकिन जब आप अपनी इस अर्द्धांगिनी से दु ख का कारण कह देगे तो आपका आधा दु ख कम हो जायेगा।

महाराजा– तुम्हारी इच्छा है तो सुन लो। इस समय सारी प्रजा महामारी की बीमारी से पीडित है मुझसे ही कोई अपराध बन गया हे, जिसके कारण प्रजा को कष्ट भुगतना पड रहा है। ऐसा न होता तो मेरे सामने प्रजा दु खी क्यो होती?

महारानी– जिस पाप के कारण प्रजा दु ख पा रही है, वह आपका ही नही है मेरा भी है।

महारानी की यह बात सुनकर महाराज को आश्चर्य हुआ। फिर उन्होने कुछ सोचकर कहा– ठीक है। आप प्रजा की माता हैं। आपका ऐसा सोचना ठीक ही हैं। मगर विचारणीय बात तो यह हैं कि यह दु ख किस प्रकार दूर किया जाय?

महारानी– पहले आप भोजन कर लीजिये। कोई न कोई उपाय निकलेगा ही।

महाराज– मै प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि जब तक प्रजा का दु ख दूर न होगा मै अन्न–जल ग्रहण नही करूगा।

महारानी– जिस नरेश मे इतनी दृढता है जो प्रजा–हित के लिए आत्मबलिदान करने को उद्यत है उसकी प्रजा कदापि दु खी नही रह सकती। लेकिन जब तक आप भोजन नही कर लेते मैं भी भोजन नही कर सकती।

महाराज– तुम अगर स्वतन्त्र होती और भोजन न करती तब तो कोई बात ही नही थी लेकिन तुम गर्भवती हो। तुम्हारे भूखे रहने से गर्भ को भी भूखा रहना होगा और यह अत्यन्त ही अनुचित होगा।

गर्भ की याद आते ही अचला महारानी ने कहा– नाथ! अब मैं महामारी के मिटाने का उपाय समझ गई। यह महामारी उषा के पूर्व का अन्धकार हैं। मैं इसे मिटाने का उपाय करती हूँ।

महारानी अचला महल के ऊपर चढ गई और अमृत दृष्टि से चारो ओर देखकर कहने लगी– प्रभो! यदि यह महामारी शात न हुई तो पति जीवित नही रहेगे। पति के जीवित न रहने पर मैं भी जीवित नहीं रह सकूगी और इस प्रकार यह गर्भ भी नष्ट हो जायेगा। इसलिए हे महामारी! मेरे पति के लिए, मेरे लिए और इस गर्भ के लिए इस राज्य को शीघ्र छोड दे।

उषा के आगे अन्धकार कैसे ठहर सकता है? महारानी के चारो ओर देखते ही महामारी हट गई। उसके बाद महाराज अश्वसेन को सूचना मिली कि राज्य मे शाति हो गई है। महाराज आश्चर्यचकित रह गए। वे महारानी के महल मे आये। मालूम हुआ कि वे महल के ऊपर हैं। महाराज वही पहुँचे। उन्होने देखा कि अचला महारानी अचल ध्यान मे खडी है। चारो ओर अपनी दिव्य दृष्टि फिराती हैं, किन्तु मन को नहीं फिरने देती।

महाराजा अश्वसेन ने थोडी देर यह दृश्य देखा। उसके बाद स्नेह की गम्भीरता के साथ कहा– 'देवी, शात होओ'।

पति को आया जान महारानी ने उनका सत्कार किया। महाराज ने अतिशय सन्तोष और प्रेम के साथ कहा– समझ मे नहीं आया कि तुम रानी हो या देवी? तुम्हारी जितनी प्रशसा की जाय थोडी है। तुम्हारे होने से ही मेरा बडप्पन है। तुम्हारी मौजूदगी से ही मेरा कल्याण–मगल हुआ। तुमने देश मे शाति का प्रसार करके प्रजा के और मेरे प्राणो की रक्षा की है।

पति के मुख से अपनी अलकारमय प्रशसा सुनकर रानी कुछ लज्जित हुई। फिर रानी ने कहा– नाथ, यह अलकार मुझे शोभा नही देते। ये इतने भारी हैं कि मैं इनका बोझ नहीं उठा सकती। मुझ मे इतनी शक्ति ही कहाँ है, जितनी आप कह रहे हैं? थोडी–सी शक्ति हैं भी तो वह आपकी ही शक्ति है। कॉच की हडी मे दीपक रखने पर जो प्रकाश होता है वह काच की हडी का नही, दीपक का ही है। इसलिए आपने प्रशसा के जो अलकार मुझे प्रदान किये हैं, उन्हे आभार के साथ मैं आपको ही समर्पित करती हूँ। आप ही इनके योग्य हें। आप ही इन्हे धारण कीजिए।

महाराज– रानी, यह भी तुम्हारा एक गुण हे कि तुम्हे अपनी शक्ति की खबर ही नही! वास्तव मे जो अपनी शक्ति का घमण्ड नही करता वही शक्तिमान होता है। जो शक्ति का अभिमान करता हे उसमे शक्ति रहती ही

नही। बडे-बडे ज्ञानी, ध्यानी और वीरो की यही आदत होती है कि वे अपनी शक्ति की खबर भी नही रखते। मैंने तुम्हे जो अलकार दिये हैं उन्हे तुम मेरे लिए लौटा रही हो किन्तु पुरुष होने के कारण मैं उन्हे पहिन नही सकता। साथ ही मुझे ख्याल आता है कि वह शक्ति न तुम्हारी है, न हमारी हैं। हमारी और तुम्हारी भावना पूरी करने वाले त्रिलोकीनाथ का ही यह प्रताप है। वह नाथ जन्म धारण करके सारे ससार को सनाथ करेगा। आज के इस चमत्कार को देखते हुए इन अलकारो को गर्भस्थ प्रभु के लिए सुरक्षित रहने दो। जन्म होने पर इनका शातिनाथ' नाम रखेगे। शातिनाथ नाम एक सिद्धमन्त्र होगा, जिसे सारा ससार जपेगा और शातिलाभ करेगा। देवी, तुम कृतार्थ हो कि ससार को शाति देने वाले शातिनाथ तुम्हारे पुत्र होगे।

रानी- नाथ, आपने यथार्थ कहा। वास्तव मे बात यही है। यह अपनी शक्ति नही उसी की शक्ति है। उसी का प्रताप है जिसे मैंने गर्भ मे धारण किया है।

प्रार्थना मे कहा है-

अश्वसेन नृप अचला पटरानी,
तस सुत कुल सिगार हो सुभागी।
जन्मत शाति थई निज देश मे,
मिरगी मार निवार हो सुभागी।।

इस प्रकार शातिनाथ भगवान् रूपी सूर्य के जन्म धारण करने से पहले होने वाली उषा का चमत्कार आपने देख लिया। अब शातिनाथ-सूर्य के उदय होने का वृत्तात कहना है। मगर समय कम होने के कारण थोडे ही शब्दो मे कहता हूँ।

शातिनाथ भगवान् को गर्भ मे रहने या जन्म धारण करने के कारण आप वन्दना नही करते है। वे इस कारण वन्दनीय हैं कि उन्होने दीक्षा धारण करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और अन्त मे मुक्ति प्राप्त की।

भगवान शातिनाथ ने लम्बेकाल तक ससार मे रहकर अद्वितीय काम कर दिखाया। उन्होने स्वय राज्य करके राज्य करने का आदर्श जनता के समक्ष उपस्थित किया। राज्य करके उन्होने अहकार नही सिखलाया। उनमे ऐसी-ऐसी अलोकिक शक्तिया थी कि जिनकी कल्पना भी हमारे हृदय मे आश्चर्य उत्पन्न करती है। लेकिन उन्होने ऐसी शक्तियो का कभी प्रयोग नही किया। माता अपने बालक को कामधेनु का दूध पिलाकर तृप्त कर सकती हो तो भी उसे अपना दूध पिलाने मे जिस सुख का अनुभव होता है, कामधेनु का

दूध पिलाने मे वह सुख कहा? इसी प्रकार शातिनाथ शक्ति का प्रयोग कर सकते थे परन्तु उन्हे शाति और प्रेम से काम लेने मे ही आनन्द आता था।

शातिनाथ भगवान् ने ससार को क्या–क्या सिखाया और किस प्रकार महारभ से निकाल कर अल्पारभ मे लाये यह कथा लम्बी हे। अतएव इतनी सूचना करके ही सन्तोष करता हू।

प्रभो! आप जन्म, जरा और मरण, इन तीन बातो मे ही उलझे रहते तो आप शातिनाथ न बनते। लेकिन आप तो ससार को शाति पहुँचाने वाले ओर शाति का अनुभव पाठ पढाने वाले हुए, इस कारण हम आपको भक्तिपूर्वक वन्दना करते हैं। आपने कौनसी शाति सिखलाई है इस सम्बन्ध मे कहा है–

चइता भारह वास चक्कवटी महिड्ढिओ।

चक्रवर्ती की विशाल समृद्धि प्राप्त करके भी आपने विचार किया कि ससार को शाति किस प्रकार पहुँचाई जा सकती है? इस प्रकार विचार कर आपने शाति का मार्ग खोजा और ससार को दिखलाया। जैसे माता कामधेनु का नही वरन् अपना ही दूध बालक को पिलाती है उसी प्रकार आपने शाति के लिए यत्र–मत्र–तत्र आदि का उपयोग नही किया किन्तु स्वय शातिस्वरूप बनकर ससार के समक्ष शाति का आदर्श प्रस्तुत किया। आपके आदर्श से ससार ने सीखा कि त्याग के बिना शाति नही प्राप्त की जा सकती। आपने ससार को अपने ही उदाहरण से बतलाया है कि सच्ची शाति भोग मे नही त्याग मे है और मनुष्य सच्चे हृदय से ज्यो–ज्यो त्याग की ओर बढता जायेगा त्यो–त्यो शाति उसके समीप आती जायेगी।

त्याग का अर्थ यदि आप ससार छोडकर साधु बनना समझे तो वह गलत अर्थ नहीं होगा। परन्तु यहाँ इतना समझ लेना आवश्यक हे कि कस्तूरी किसी के घर एक कन हो तो चिन्ता नही पर चाहिए सच्ची कस्तूरी। एक तोला रेडियम धातु का मूल्य साढे चार करोड रुपये सुना जाता हे। उसके एक कण से भी बहुत–सा काम निकल सकता है पर शर्त यही हें कि वह नकली नही, असली हो। इसी प्रकार पूर्ण शाति प्राप्त करने के लिये आप पूर्ण त्याग कर सके तो अच्छा ही हे। अगर पूर्ण त्याग करने की आप म शक्ति नही है तो आशिक त्याग तो करना ही चाहिए। मगर ध्यान रखना कि जो त्याग करो वह सच्चा त्याग होना चाहिए। लोक दिखावे का द्रव्य त्याग आत्मा क उत्थान मे सहायक नही होगा। आत्मा के अन्तर से उद्भूत होने वाली त्याग भावना ही आत्मा को ऊँचा उठाती हे। त्याग भले ही शक्ति के अनुसार थोडा

हो परन्तु असली हो और शुद्ध हो– जो कि भगवान् शातिनाथ को चढ सकता हो।

जिन देवो ने त्याग करके शाति नही पाप्त की उन्होने ससार को शाति नही सिखाई। महापुरुषो ने स्वय त्याग करके फिर त्याग का उपदेश दिया है और सच्ची शाति सिखाई है। महापुरुष त्याग के इस अद्भुत रेडियम को यथाशक्ति ग्रहण करने के लिए उपदेश देते हैं। अतएव आप पापो का भी त्याग करो। जिस समय कोई आप पर क्रोध की ज्वालाए फैंके उस समय आप शाति के सागर बन जाइए। शातिनाथ भगवान् का नाम लीजिये। फिर आप देखेगे कि क्रोध करने वाला किस प्रकार परास्त हो जाता है।

भगवान् शातिनाथ का जाप तो लोग आज भी करते हैं, परन्तु उसका प्रयोजन दूसरा होता है। कोई मुकदमा जीत लेने के लिए शातिनाथ को जपते है तो कोई किसी दूसरी झूठी बात को सच्ची सिद्ध करने के लिए। इस प्रकार अशाति के लिए शातिनाथ को जपने से कोई लाभ नही होगा। कोई भी अशाति उत्पन्न करने वाली चीज भगवान् शातिनाथ को स्वीकृत नही हो सकती।

पश्न किया जा सकता है कि विवाह आदि के अवसर पर भगवान् शातिनाथ का स्मरण नही करना चाहिए? इसका उत्तर यह है कि स्मरण तो करना चाहिए लेकिन यह समझ कर कि विवाह बन्धन की चीज है 'इसलिए हे प्रभो! तू ऐसी शक्ति मुझे प्रदान कर कि मैं इस बन्धन मे ही न रहूँ। गृहस्थावस्था मे विवाह से फलित होने वाले चतुर्थ अणुव्रत का पालन कर सकू और शक्ति आने पर भोग को निस्सार समझ कर पूर्ण ब्रह्मचर्य को धारण कर सकू। इस प्रकार की धर्मभावना के साथ भगवान् का नाम जपने से आपका कल्याण ही होगा।

व्यापार के निमित्त बाहर जाते समय आप मागलिक सुनते हैं और मुनि सुनाते हैं। इसका यह अर्थ नही होना चाहिए कि व्यापार द्वारा खूब धन कमाने के लिए आप सुने और मुनि सुनावे। व्यापार करते समय आप धन के चक्कर मे पडकर धर्म को न भूल जाए। आपको धन ही शरणभूत, मगलमय और उत्तम न दिखाई दे वरन धर्म को उस समय भी आप मगलमय माने। इसी भावना से मुनि आपको मगलपाठ सुनाते हैं ओर आपको भी इसी भावना से उसे सुनना चाहिए।

भोजन करते समय भी आप भगवान् शातिनाथ को स्मरण रखो और विचार करो कि–प्रभो! मुझे भक्ष्य–अभक्ष्य का विचार रहे। मगर आज ऐसा

कौन करता है? लोग बेमान होकर अमक्ष्य मक्षण करते हैं और ठूस–ठूस कर आवश्यकता से अधिक खा लेते हैं। वे सोचते हैं– अजीर्ण होगा तो औषधो की क्या कमी है। मगर ओषध के भरोसे न रह कर भगवान् शातिनाथ को याद करो और सोचो कि मैं शरीर का ढाचा रखने के लिए ही खाऊ और खाने मे बेमान न हो जाऊ।

एक प्रोफेसर का कहना है कि मैं जब उपवास करता हू तो मेरी एकाग्रता बढ जाती हे ओर मैं अवधान कर सकता हूँ। अगर उपवास न करू तो अवधान नही कर सकता।

अगर आप अधिक उपवास न कर सके तो महीने मे चार उपवास तो किया करे। चार उपवास करने से भी औषध लेने की आवश्यकता नही रहेगी। अगर प्रसन्नता और सद्भावना से उपवास करोगे तो धर्म का भी लाम होगा। अगर आपने स्वेच्छा से उपवास न किये तो प्रकृति दूसरी तरह से उपवास करने के लिए आपको बाध्य करेगी। ज्वर आदि होने पर भोजन त्यागना पडेगा।

भगवान् शातिनाथ ने छह खण्ड का राज्य त्याग कर ससार को सिखाया है कि त्याग कैसे किया जाता है और त्याग मे कितनी निराकुलता तथा शान्ति है। मगर तुमसे और कुछ नही बन पडता तो शातिनाथ भगवान के नाम पर क्रोध करने का ही त्याग कर दो। जहाँ क्रोध का अभाव हे वहा ईश्वरीय शाति उपस्थित रहती है। आप शाति चाहते हैं तो उसे पाने का कुछ उपाय भी करो। एक भक्त कहते हैं–

कठिन कर्म लेहि जाहि मोहि जहा
तहा – तहा जन छिन

प्रभो! क्रूर कर्म न जाने कहा–कहा मुझे घसीट कर ले जाते हैं। इसलिए हे देव! मैं आपसे यह याचना करता हूँ कि जब कर्म मुझे परायी स्त्री और पराये धन आदि की ओर ले जावे तब मैं आपको भूल न जाऊ। आपकी दृष्टि मुझ पर उसी प्रकार बनी रहे जिस प्रकार मगर या कछुई की दृष्टि अपने अण्डो पर उन्हे पालने के लिए बनी रहती हे।

गॉधीजी ने अपनी आत्मकथा मे लिखा हे कि मेरी माता जैनधर्मी सन्त की भक्त थी। विलायत जाते समय मेरी माता मुझ उन सन्त के पास ले गई। वहा उसने कहा मेरा यह लड़का दारू मास और परस्त्री का त्याग कर तब तो मैं इसे विलायत जाने दे सकती हूँ, अन्यथा नहीं जाने दूगी। गाधीजी

माता की आज्ञा को पर्वत से भी उच्च मानते थे। इसलिए उन्होने महात्मा के सामने मदिरा, मास और परस्त्री का त्याग किया।

गाधीजी लिखते है कि उस त्याग के प्रभाव से वे कई बार भ्रष्ट होने से बचे। एक बार जब वे जहाज से सफर कर रहे थे अपनी इस प्रतिज्ञा के कारण ही बच सके। गॉधीजी जहाज से उतरे थे कि उन्हे उनके एक मित्र मिल गए। उन मित्र ने दो एक स्त्रियॉ रख छोडी थी, जिन्हे जहाज से उतरने वाले लोगो के पास भेजकर उन्हे भ्रष्ट कराते और इस प्रकार अपनी आजीविका चलाते थे। उन मित्र ने पैसे कमाने के उद्देश्य से तो नही पर मेरा आतिथ्य करने के लिए एक स्त्री को मेरे यहॉ भी भेजा। वह स्त्री मेरे कमरे मे आकर खडी रही। मैं उस समय ऐसा पागल सा हो गया, मानो मुझे बचाने को साक्षात परमात्मा आ गये हो। वह कुछ देर खडी रही और फिर निराश होकर लौट गई उसने मेरे मित्र को उलाहना भी दिया कि तुमने मुझे किस पागल के पास भेज दिया। उस बाई के चले जाने पर जब मेरा पागलपन दूर हुआ तब मै बहुत प्रसन्न हुआ और परमात्मा को धन्यवाद देने लगा कि– प्रभो। तुम धन्य हो तुम्हारी कृपा से मैं बच गया।

भक्त लोग कहते हैं– नाथ, तू इसी प्रकार मुझ पर दृष्टि रखकर मेरी रक्षा कर।

गॉधीजी ने एक घटना लिखी है। वे जिस घर मे रहते थे उस घर की स्त्री का आचरण वेश्या सरीखा था। एक मित्र का उसके साथ अनुचित सम्बन्ध था। उन मित्र के आग्रह से मैं उस स्त्री के साथ ताश खेलने बैठा। खेलते–खेलते नियत बिगडने लगी। पर उन मित्र के मन मे आया कि मैं तो भ्रष्ट हूँ ही इन्हे क्यो भ्रष्ट होने दूँ। इन्होने अपनी माता के सामने जो प्रतिज्ञा की है वह भग हो जायगी। आखिर उन्होने गाधीजी को वहा से उठा लिया। उस समय मुझे बुरा तो अवश्य लगा लेकिन विचार करने पर बाद मे बहुत आनन्द हुआ।

मित्रो। अपने त्याग की दृढता के कारण ही गॉधीजी दुष्कर्मो से बचे रहे और इसी कारण आज सारे ससार मे उनकी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा हैं। उन्होने गुरु से त्याग की बानगी ही ली थी। उसका यह फल निकला तो पूरे त्याग का कितना फल न होगा? आप पूरा त्याग कर सके तो कीजिए। न कर सके तो त्याग की बानगी ही लीजिए। और फिर देखिए कि जीवन कितना पवित्र और आनन्दमय बनता है।

गॉधीजी लिखते हैं कि मुझ पर आये हुए सकट टल जाने से मुझे मालूम हुआ कि परमात्मा की सत्ता अवश्य है। अगर आप लाग भी शातिनाथ भगवान् को याद रखे तो आपको भी परमात्मा के साक्षात् दर्शन होग।

भाइयो ओर बहिनो! कुकर्म जहर से वढकर हे। जब इसकी ओर आपका चित्त खिचने लगे तब आप भगवान् शातिनाथ का स्मरण किया करो। ऐसा करने से आपका चित्त स्वस्थ होगा, विकार हट जाएगा ओर पवित्र भावना उत्पन्न होगी। आप कुकर्म से बच सकेगे और आपका जीवन पवित्र रहेगा। भगवान् शातिनाथ का नाम पापो से बचने का महामन्त्र है।

शातिनाथ भगवान् ने केवलज्ञान प्राप्त करके पच्चीस हजार वर्ष तक सब जीवो को शाति प्रदान की। आप भी अपनी योग्यता के अनुसार दूसरो को शाति पहुचाए। कोई काम ऐसा मत कीजिए जिससे किसी को अशाति पहुँचती है। आपका ज्ञान, ध्यान, पठन–पाठन आदि सब ऐसे होने चाहिए जो शातिनाथ को पसन्द हो। अगर आप शातिनाथ भगवान् को हृदय मे धारण करके प्राणीमात्र को शाति पहुँचाएगे तो आपको भी लोकोत्तर शाति प्राप्त होगी।

2. मंगल–पर्व

पर्युषण पर्व जैनो के लिए महाकल्याण का पवित्र पर्व हे। आत्मा के असली स्वरूप को समझने के लिए, आत्मा मे आई हुई विकृतियो को और उनके कारणो को हटाने के लिए और स्वाभाविक शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिए पर्युषण से बढकर दूसरा अवसर कौन हो सकता है? पर्यूषण के दिनो मे दुष्कर्मो की आहुति दी जाती है और अन्तिम दिन–सवत्सरी का दिन–पूर्णाहुति का दिन है। अपने पापो को ध्यान मे लेकर, ध्यानाग्नि के द्वारा पापो को जलाना ही पर्युषण पर्व का महान् सन्देश है। जैन धर्म की आराधना का यह पवित्र दिन इतनी प्रभावशाली भावनाओ मे व्यतीत होना चाहिए कि उन भावनाओ का असर जीवनव्यापी बन जाय, कम से कम एक वर्ष तक तो उन भावनाओ का प्रभाव आत्मा पर रहना ही चाहिए।

सवत्सरी का दिन आयुबध का सर्वश्रेष्ठ अवसर है। अगर आज नवीन आयु का बध हो जाय तो आत्मा निहाल हो जायेगी। मित्रो। आज प्राणीमात्र के प्रति मित्रभावना कायम करो और हृदय मे किसी भी प्रकार का विकार मत रहने दो। जीवनमात्र के प्रति प्रेम के ऐसे प्रबल सस्कार बाधो कि वे टूट न सके। अगर आपके इस सस्कार मे सच्चाई, स्वाभाविकता और दृढता हुई तो आपके जीवन मे परिवर्तन हुए बिना नहीं रहेगा और आप प्राणीमात्र के मित्र होगे। इस स्थिति को प्राप्त कर लेने पर आप अपूर्व समता, निराकुलता और तृप्ति का अनुभव करने लगेगे।

यह पवित्र दिन पुराने पापो को धोने और नये पाप न करने के दृढ सकल्प का दिन हे। नये पाप न करने के सकल्प का अर्थ यह मत समझिये कि मै सब को साधु बन जाने के लिए कह रहा हूँ। मेरा आशय यह है कि [illegible] के कारण सासारिक कामो मे भी धर्म–सम्बन्धी त्रुटिया रहती हो, उन्हे दूर करने का सकल्प कीजिए और भविष्य मे वह त्रुटिया मत रहने दीजिए।

अपवित्रता को दूर करके आत्मा को पवित्रता के सरोवर मे स्नान कराइए। बहुत–से लोगो की धारणा है कि धर्मोपदेश सुन लेने से ही आत्मा पवित्र हो जाएगी। पर इस भ्रम को आज दूर कर देना चाहिए। धर्मोपदेश के श्रवण का फल यह है कि आपके अन्त करण मे तत्त्व का ज्ञान जागृत हो। उस तत्वज्ञान के प्रकाश से आप हिताहित का निर्णय करे ओर अहित के मार्ग को त्याग कर हित के मार्ग पर चले। बिना क्रिया के श्रवण या ज्ञान पूर्ण लामप्रद नहीं हो सकता। आप धर्म का जो उपदेश सुनते हें सो सिर्फ सुनने के लिए ही न सुने वल्कि उसे यथाशक्ति अमल मे लावे। धर्म मुख्य रूप से आचरण करने की वस्तु है। अतएव आप जो धर्मोपदेश सुनते हैं, उसका आचरण कीजिए।

अन्तगडसूत्र मे जो आदर्श वतलाये हें उनका पालन वीर क्षत्रिय ही कर सकते हैं। आप लोग मी क्षत्रिय ही हें, मगर बनिया बन रहे हें। आपको वनिया नही बनाया गया था, महाजन बनाया गया था। परन्तु आज आपकी वीरता और धीरता कहॉ गई? आज आपको जब बनिया कहा जाता हे तब मी आपका क्षत्रियत्व जोश नहीं खाता? पूर्व कालीन वीरता जागृत करने के लिए आपको अन्तगडसूत्र सुनाया गया है। जिसकी कथा आपने सुनी है ओर मैंने सुनाई हैं, उन्होने प्रबल पुरुषार्थ करके अपनी सम्पूर्ण अशुद्धता हटा दी और अनन्त मगल प्राप्त किया। अमी आपके ओर हमारे कर्मों का नाश होना शेष हें। हमे अपनी तमाम आत्मिक विकृतियो को दूर करना हे। इस महान् उद्देश्य को सफल करने के लिए हमे आदर्श महापुरुष के पथ का अनुसरण करना चाहिए। उस पथ को समझने के लिए ही कथाओ का कथन ओर श्रवण किया जाता है।

अन्तगडसूत्र मे, अन्त मे दस महारानियो की जो कथा हे वह अत्यन्त गम्मीर हैं और जैन धर्म की कथाओ पर शिखर के समान हे। यह दसा महारानिया वैमव और मोगो मे डूबी हुई थीं। ससार के सर्वश्रेष्ठ मोग उन्ह सुलम थे। कमी किसी वस्तु का अमाव उन्होने जाना ही नहीं था। लकिन भगवान् महावीर के प्रताप से उन्होने समस्त मोगो का परित्याग कर दिया। वे साध्विया हो गईं और आध्यात्मिक साधना मे लीन रहने लगी भिक्षा द्वारा अपना शरीर निर्वाह करने लगी। इनमे सभी कृष्ण महारानी क चरित का स्मरण करके तो रोमाच हो आता हें। कहॉ राजसी वेमव और कहा दुष्कर तप। कहा उनकी फूल–सी कोमल काया और कहा पद–पद पर परिषहों का सहन करना। कैसी अनोखी उत्क्राति का सदेश हे।

मैं धर्मशास्त्र सुना रहा हूँ, इतिहास नही सुना रहा हूँ। जिसके हृदय मे भक्ति है वह तो धर्मशास्त्र की कथा को ऊँची समझेगा ही परन्तु लोकदृष्टि से देखने वाला भी इतना अवश्य कहेगा कि राजरानी साध्वी बने– स्वेच्छा से भिक्षुणी के जीवन को अगीकार करे, यह कल्पना ही कितनी उच्च है। जिस मस्तिष्क ने यह कल्पना की है वह क्या असाधारण नही होगा?

जैनधर्म और बौद्धधर्म की कथाओ से विदित है कि भारतवर्ष मे अनेक राजरानिया साध्वी बनी हैं। महाराजा अशोक की बहिन भी भिक्षुणीसघ से प्रविष्ट हुई थी। सुना जाता है कि उसके नाम का पीपल आज भी सीलोन मे विद्यमान है। ऐसी साध्विया जब ससार मे घूम घूमकर जनता को जागृत करती होगी तब भारत मे और भारत के प्रति दूसरे देशो मे किस प्रकार की भावना उत्पन्न होती होगी यह कौन कह सकता है। सचमुच भारतीय इतिहास का वह स्वर्णकाल अनूठा था। एक राजरानी स्वेच्छापूर्वक वैभव को लात मार कर भिक्षुणी बनती और घर–घर फिरती है। जीवन के किसी भी अभाव ने उसे भिक्षुणी बनने को बाध्य नही किया था। किसी अपूर्व अन्त प्रेरणा से प्रेरित होकर उन्होने ऐसा किया था। और ऐसा करके वे क्या दु खी थी? नही। भोगो मे अतृप्ति थी, त्याग मे तृप्ति थी। भोगो मे असतोष, ईर्ष्या ओर कलह के कीटाणु छिपे थे त्याग मे सतोष की शाति थी, निराकुलता का अद्भुत आनन्द था आत्मरमण की स्पृहणीयता थी। इसी सुख का अनुभव करती हुई वह भिक्षुणिया अपने जीवन को दिव्य मानती थी। उनका त्याग महान था।

आप कितने भाग्यशाली हैं कि यह महान् आदर्श आपके सामने उपस्थित है। आप पूर्ण रूप से अगर इस आदर्श पर नही चल सकते तो भी उसी ओर कदम तो बढा सकते हैं। कम से कम विपरीत दिशा मे तो न जाए। मगर आप इस ओर कितना लक्ष्य देते हैं? आपसे तो अभी तक बारीक वस्त्रो का भी मोह नही छूट सकता। इन वस्त्रो के लिए चाहे किसी की चमडी जाती हो पर आप पतले कपडे नही छोड सकते। अगर आप इतना सा भी त्याग नही कर सकते तो राजसी वैभव और राजसी भोगो का त्याग करने वाली रानी और ऐसी कई सतियो का चरित सुनकर क्या लाभ उठाएगे? क्या आपको उन त्यागमूर्ति महासतियो का स्मरण भी आता है?

गरासेन कृष्णा विदुसेन कृष्णा राम कृष्णा शुद्धमेवजी।
नित–नित वदू रे समणी, त्रिकरण–शुद्ध त्रिकालजी,

कवि ने यह वदना किस काली की की है? और आप यह वदना किस काली की कर रहे हैं? भारत की इन महाशक्तियो को भगवान् ने किस भाव से शास्त्र मे स्थान दिया है? आप इन सतियो को किस प्रकार वदना कर सकते हैं? सासारिक भोगो के प्रति हृदय मे जब तक तिरस्कार की भावना उत्पन्न न हो जाय तब तक मनुष्य इन्हे वन्दना करने का सच्चा अधिकारी किस प्रकार हो सकता है? हम किसी के कहने से या भावावेश में आकर उन सतियो के नाम पर चाहे मस्तक झुका लें किन्तु वास्तव में इन्हे वन्दना करने योग्य तभी समझे जाएगे, जब उनके त्याग को पहिचानेगे। उनक त्याग को पहचान कर वदना करने पर आपके पाप जलकर भस्म हो जायेंग।

सेठानिया सेठानियों को तो बहिन बनाती हैं, मगर किसी दिन किसी गरीबनी को भी बहिन बनाया है?

काली और सुकाली के हृदय मे अपना कल्याण करने की भावना उत्पन्न हुई। तब वे कहने लगीं – 'यह राजमहल आत्मा के लिए कारागार हैं और यह बहुमूल्य आभरण हथकडिया–बेडिया हैं। इनके सेवन से आत्मा अशक्त बनता है, गुलाम बनता है। ऊपरी सजावट के फेर मे पडकर हम आन्तरिक सौन्दर्य को भूल जाते हैं। स्वाभाविकता की ओर अर्थात् आत्मा के असली स्वरूप की ओर हमारी दृष्टि ही नही पहुँच पाती। ससार के भोगोपभोग और सुख के साधन असलियत को भुलाने वाले हें। यह इतन सारहीन हैं कि अनादिकाल से अब तक भोगने पर भी आत्मा इनसे तृप्त नही हो पाई। अनन्तकाल तक भोगने पर भी भविष्य मे तृप्त होने की सभावना नही है। अलबत्ता, इन्हे भोगने के दण्ड स्वरूप नरक और तिर्यंच गतिया क घोर कष्ट सहन करने पडते हैं। इन भोगविलासो के चक्कर मे पडन वाला स्वार्थी बन जाता है। वह अपनी ही सुख–सुविधा का विचार करता हे और अपन दीन–दुखी पडौसी की तरफ नजर भी नही डालता।

रानिया कहती हैं– 'जिन गरीबो की बदोलत हम राजरानी कहलाती हैं उन्ही गरीबो को हमने भुला रखा है। यही नही वरन् एक प्रकार स उनके प्रति वैर–विरोध कर रखा हैं। राजमहल मे रह कर हम उन बहिना स नही मिल सकती, जिन्होने हमे महारानी बनाया हैं। इन चकाचोंध करने वाले गहनो और कपडो के कारण वे हमारे पास नही आ सकतीं– नजदीक आत डरती हैं।'

अगर कोई स्त्री फटे–पुराने कपडे पहनकर किसी महारानी से मिलने जाना चाहे तो क्या पहरेदार उसे भीतर घुसने देगे? नही। अगर धक्के

मार कर न भगा देगे तो डाट–फटकार बताये बिना भी नही रहगे। मगर रानी से पूछा जाये कि तुमने जो वस्तु और आभूषण धारण किये हे सो वे आये कहा से हैं? वे गरीबो के पसीने से ही बने है या राजा की तिजोरी मे उगे हैं? रानी इस पश्न का क्या उत्तर देगी?

यह बात सिर्फ रानी–महारानी को ही लागू नही होती। बढ़िया और कीमती गहने–कपडे पहनने वाला फिर वह कोई भी क्यो न हो बढ़िया गहनो–कपडो वालो को ही चाहता है। उसे बिना जेवर का गरीब प्यारा नही लगता। यही विकार हे बढ़िया वस्त्रो मे। और आभूषणो मे अगर विकार न हो तो भगवान महावीर को शायद ही सादा वेश चलाने की आवश्यकता पडती। जिसकी मैत्रीभावना विकसित हो गई है, उसी के हृदय म इस पकार की सद्भावनाए जागृत होती हैं और वही वस्त्र–आभूषण का त्याग करता है।

महारानी काली के हृदय मे मित्रभावना विकसित हुई। अतएव उन्होने विचार किया– मुझे अपनी सब बहिनो से समान रूप से मिलना चाहिये। मेरे और उनके बीच मे जो बडी दीवार खडी है, उसे मे गिरा दूगी। मै सारे भारत को जगाना चाहती हूँ और भेदभाव की काल्पनिक दीवारा को धूल मे मिला देना चाहती हूँ। यह विचार कर महारानी काली ने उत्तम वस्त्र उतार कर सादे वस्त्र धारण किये इन्द्राणी सरीखा मनोहर शृगार हटा दिया और जिस केशराशि को बडे चाव से सजाया करती थी और सुगन्धित तेल फुलेल स नहलाया करती थी उसी केशराशि को नौंच कर फेक दिया। उन्होने स्वदेश की बनी सादी खादी से अपना शरीर सजा लिया। महारानी काली न साध्वी होकर सफेद वस्त्र धारण किये।

आज अगर कोई विधवा बाई भी सफेद वस्त्र धारण कर लेती है तो हल्ला मच जाता है। काली रानी का वह तेज आज बहिनो मे नही रहा। न जाने कब और कैसे गायब हो गया है?

आखिर काली रानी ने ससार त्याग दिया। ससार त्याग कर उन्होने जो अवस्था अपनाई वह वर्णनातीत हे। महाकृष्ण काली नामक सती ने आबिल तपस्या करना आरम्भ किया। चौदह वर्ष तीन मास और बीस दिनो तक आबिल तप करके उन्होने अपनी कोमल और कान्त काया को झुलसा डाला। एक उपवास और उसके बाद आबिल इस प्रकार उनकी तपस्या निरतर जारी रही।

आबिल प्राकृत भाषा का शब्द है। सस्कृत मे इसे आचाम्ल' व्रत कहते है। इस व्रत का अनुष्ठान करने वाला सरस भोजन का त्याग करके

नीरस और नमकहीन रूखा-सूखा भोजन करता है। पके हुए चावलो को पानी से धोकर उन्हे स्वादहीन बना कर दिन भर मे एक बार खा लेना और फिर दूसरे दिन उपवास करना, यह महासती काली का तप था।

मित्रो! आपके यहा ऐसी शक्तिया भरी पडी हैं। फिर भी न मालूम क्यो आप मे बल नही आता! आप मेरी दी हुई मात्रा का सेवन करो। चाहे यह कटुक हो पर इससे रोग का अवश्य ही विनाश होगा इस में सन्देह नहीं।

काली महासती अपने समस्त स्वर्गोपम सुखो को तिलाजलि देकर यह घोर तपस्या किस उद्देश्य से कर रही थी?

'कर्मक्षय करने के लिए।'

यह उत्तर है तो ठीक, परन्तु आप पूरी तरह नही कह सकते। इस कारण इतनी-सी बात कह कर समाप्त कर देते हैं। कर्म का अर्थ दुष्कर्म मे समझना चाहिए। महासती विचारती हैं- मैंने उत्तम से उत्तम भोजन खाया और इसी कारण अनेक गरीबो को दुत्कारा, मुसीबत मे डाला और अधिक गरीब बनाया है। यही मेरा दुष्कर्म है। इसका बदला चुकाने के लिए ही उन्होने बढिया कपडो का और उत्तम भोजन का त्याग करके सादे कपडे पहने और नीरस भोजन किया।

काली महारानी सफल कियो अवतार।
पायो छे भव-जल पार।।काली ।।
कोणिक राजा की छोटी माता,
श्रेणिक नृप नी नार।
वीर जिणन्द की वाणी सुन ने,
लीनो है सयम-भार।।काली ।।
चन्दनबाला सती मिली है गुरानी।
नित-नित नमी चरणार, विनय कभी भणी
अग इग्यारा जारी निर्मल बुद्धि अपार।।काली ।।2।।

महासती काली कहती हैं कि मैंने बढिया भोजन खाकर ओर बढिया कपड़े पहन कर बहुत लोगो के साथ परोक्ष रूप से विरोध किया है। जिन गरीबो की कृपा से उत्तम वस्त्र और भोजन की प्राप्ति होती थी उन गरीबा को मैंने धक्के दिलवाये और निकम्मे, मसखरे लोग पडे-पडे माल खाते रहे। गरीबो के घोर परिश्रम के फलस्वरूप ही हमे दूध घी, शक्कर ओर चावल आदि वस्तुए प्राप्त होती थी मगर जब उन्ही गरीबो मे से कोई मुट्ठी भर आट

उत्तम जन्मा येऊनी रामा। गेलो मी वाया।
दुष्ट पातकी शरण मी आलो,
सत्वर तव पाया।
आर्जविले बहुलवण भजने व्याह्या जेवाया।
खुधित अतिथि कदी नाही घेतला,
उदार कर कधी केला नाही प्रेमे जेवाया पैसा एक धाया।
नाम फुटकचे तेहिन आले स्वामी वदनाया।।उत्तम।।2।।

कवि कहता है– मैंने उत्तम जन्म व्यर्थ गॅवा दिया। मेरा नाम उत्तम है जन्म उत्तम कुल मे हुआ हे परन्तु काम मैंने अधम किये। इस कारण मै पातकी हूँ।

मित्रो। जिसे आत्मा और परमात्मा पर विश्वास होगा वही अपना अपराध स्वीकार करेगा उसके लिए पश्चात्ताप करेगा और उससे बचने की भावना आएगी।

कवि परमात्मा के सामने अपनी आलोचना करता हुआ कहता हे– प्रभो। मै आपकी शरण आया हू। मेरी रक्षा करो। मैंने अपने सगे–सम्बन्धियो का पाहुन बनाकर जिमाने की बडी–बडी तैयारिया की। तरह–तरह के व्यजन और मिष्ठान तेयार करवाए। वे जीमने बैठे। जीमते–जीमते तृप्त हो गये ओर कहने लगे –बस अब मत परोसिये। अब एक कोर भी नही निगल सकता। लेकिन बडप्पन के मद मे छक कर मै नही माना। थोडा ओर खाने का आग्रह किया। न माने तो जबर्दस्ती करके थाल मे भोजन डाल दिया। फिर मुँह मे

पकड कर खिलाया। उसी समय क्षुधा से पीडित व्यक्ति मेरे द्वार पर आया। भूख से उसकी ऑखे निकल रही थी, बिना मॉस के हाडो का पीजरा सरीखा उसका शरीर दिखाई देता था। जिस समय सगे–सम्बन्धी भोजन परोसने के लिए मना कर रहे थे और मैं जबर्दस्ती उन्हे परोसने मे लगा था ठीक उसी समय वह भूखा द्वार पर आया। उसने कहा– मेरे प्राण अन्न के अभाव मे भूख के मारे निकले जा रहे हैं, अगर थोडा भोजन हो तो दे दो परन्तु हाय मेरी कठोरता ! मैंने टुकडा भी देने की भावना नही की ओर सगे–सम्बन्धी के गले ठूसने मे ही व्यस्त रहा।

मित्रो ! कवि ने अपने पाप का प्रदर्शन किया है और ऐसा करके उसने अपने पाप को हल्का कर लिया हैं, ऐसा समझ लेना उपयुक्त नहीं होगा। कवि जनता की भावनाओ का प्रतिनिधि होता है। वह समाज की स्थिति का शाब्दिक चित्रण करता हैं। अतएव उसके कथन को समाज का चित्र समझना चाहिए। इस दृष्टि से मराठी कवि का उपर्युक्त कथन सारे समाज का चित्रण है– सम्पूर्ण समाज के पाप का दिग्दर्शन है आप अपने ऊपर इस कथन को घटाइये। अगर आप पर वह घटित होता हो तो आप भी अपने दुष्कर्मों की आलोचना कीजिये और उनसे बचने का दृढ सकल्प कीजिये।

भूख के कारण जिसके प्राण निकल रहे हैं उसे एक टुकडा मिल जाय तब भी उसके लिए बहुत है। मगर लोगो को उसकी ओर ध्यान देने की फुर्सत ही कहॉ? आजकल के लोगो मे इतनी क्षुद्र सकीर्ण और स्वार्थमय भावना घुसी हुई है, जिस पर भी धर्म के नाम पर इसी प्रकार का उपदेश मिल जाता है। बडे खेद की बात है कि लोगो को यह धर्म सिखलाया जा रहा है–

कोई भेखधारी आवे द्वार जी, शर्मा शर्मी दीजे आहार जी।
पीछे कीजे पश्चाताप जी तो थोडो लागे पाप जी।।

खेद! धर्म के नाम पर कैसा हलाहल विष पिलाया जा रहा है। अगर द्वार पर आये हुए को लोकलाज के कारण भोजन दिया तो घोर पाप लग जायेगा ! अलबत्ता, भोजन देकर अगर पश्चात्ताप कर लिया जाय तो पाप मे कुछ कमी हो जाएगी। स्वार्थपरता की हद हो गई। धर्म के नाम पर यह जो शिक्षा दी गई है और दी जा रही है उससे धर्म को कितना आघात पहुँच रहा हैं यह समझने की चिन्ता किसे है? इससे लोग धर्म के प्रति घृणा करने लगते है और कहते हैं कि धर्म अगर इतनी निर्दयता, कठोरता स्वार्थपरायणता ओर अमानुषिकता की शिक्षा देता हैं, तो धर्म का ध्वस हो जाना ही जगत के लिए

श्रेयस्कर है। भाइयो, जरा उदारतापूर्वक विचार करो। धर्म के मौलिक तत्व को व्यापक दृष्टि से देखो। द्वेष से पेरित होकर हम यह नही कह रहे है, परन्तु धर्म के पति फैलती हुई घृणा का विचार करके और साथ ही लोगो मे आई हुई अनुदारता का ख्याल करके कह रहे हैं। यह धर्म नही है। धर्म के नाम पर अधर्म फैलेगा तो धर्म बदनाम होगा। अधर्म फैलाने वालो का भी हित नही होगा। अतएव निष्पक्ष दृष्टि से धर्म के स्वरूप पर विचार करो। धर्म ही पापो का नाश करने वाला है। अगर धर्म के ही नाम पर पाप किया जाएगा और उसी को धर्म समझ लिया जायेगा तो पापो का नाश किस प्रकार होगा?

आपने अपने सम्बन्धियो को अनेक बार भोजन कराया होगा, पर याद आता है कि किसी दिन किसी गरीब को स्नेही–सम्बन्धियो की तरह जिमाया हो?

'नही।

लेकिन पुण्य किधर होता है? अपनी श्रीमताई दिखाने के लिए सगे को जबर्दस्ती खिलाने से पुण्य का बध होता है या गरीब के प्राण बचाने के लिए उसे खिलाने से?

भूखे को खिलाने से।'

यह जानते और मानते हुए भी अपनी प्रवृत्ति बदलते क्यो नहीं? फिर कहते हो कि हम पुण्य और पाप को जानते हैं?

बात काली महारानी की चल रही है। उनके अन्त करण मे वह भावना उत्पन्न हुई कि मैने उत्तम–उत्तम भोजन किये परन्तु गरीबो को देना तो दूर रहा उलटे उनकी नजर पडने से बचाव किया। अलबत्ता मैंने अपनी सरीखी रानियो को बडे प्रेम से जिमाया है पर उससे क्या हुआ? वह तो मोह था या लोकव्यवहार था दया नही थी। हृदय मे दया होती तो भूखे को खिलाया होता। मैने यह पाप किया है। मैं इस पाप को सहन नही करुगी। अब मै एसा भोजन करुगी जिसे गरीब भी पसन्द नही करते। ऐसा भोजन करके मै ससार को दिखला दूगी कि इस पाप का प्रायश्चित्त ऐसे होता है।

मित्रो। बढिया भोजन की अपेक्षा सादा भोजन करने से दया कितनी अधिक हो सकती है इस बात पर विचार करो। आपके घर बाजरे की घाट बनी होगी और वह बची रहगी तो किसी गरीब को देने की इच्छा हो जाएगी। अगर माल का हलुआ बचा होता तो शायद ही कोई देना चाहेगा। उसे तो किसी [illegible] के घर भेजने की इच्छा होगी। इसलिए तो कहा हैं–

दया धर्म पावे तो कोई पुण्यवत पावे,
जाने दया की बात सुहावेजी।
भारी कर्मा अनन्त ससारी,
जाने दया दान नहि आवे जी।।

विचार करो कि पुण्यवान कौन है? मिष्ठान्न–भोजन करने वाला और अपने भोजन के लिए अनेको को कष्ट मे डालने वाला पुण्यवान हे या सादा भोजन करके दूसरो पर दया करने वाला पुण्यवान् है? सुनते हैं भारतीयो की औसत आमदनी डेढ आना प्रतिदिन हैं। इसे देखते हुए अगर प्रत्येक आदमी डेढ आने मे अपना निर्वाह करे तब तो सब को भोजन मिल सकता है, लेकिन आप कितने आने प्रतिदिन खर्च करते हैं? आपका काम तीन आने छह आने या बारह आने मे भी चल जाता है?

'नहीं।'

अगर कोई चलाना चाहे तो चल क्यो नही सकता? हॉ इतने व्यय मे वह मोज–शौक नही होगी जो अभी आप कर रहे हैं। जब प्रति मनुष्य डेढ आने की दैनिक आय है तो तीन आना खर्च करने वाला एक आदमी को छह आना खर्च करने वाला तीन आदमी को और बारह आना खर्च करने वाला सात आदमियों को भूखा रखता है। इससे स्पष्ट हें कि अमीर लोग ज्यो–ज्यो अधिक मौज करते हैं, त्यो–त्यो गरीब ज्यादा तादाद मे भूखे मरते हैं। एक लम्बी–चौडी दरी को समेट कर उस पर एक ही आदमी बैठ जाय ओर दूसरे को नही बैठने दे तो क्या उसका बडप्पन समझा जाएगा? बडप्पन तो ओरो को बिठलाने मे है?

काली रानी कहती है– 'मेरे गले मे वह अन्न केसे उतरा जिसके लिए अनेक मनुष्यो को कष्ट मे पडना पडा?'

इस राजसत्ता ने कैसे–केसे अनर्थ किये हें। जब मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत हो जाता हे उसे न्याय–अन्याय धर्म–अधर्म कुछ नही सूझता। एक हार और हाथी के लिए एक करोड अस्सी लाख मनुष्यो का घमासान हो गया। लडाई तो अपनी मौज के लिए करे ओर नाम प्रजा की रक्षा का हो।

महासती महासेन कृष्णा एक आबिल एक उपवास इस प्रकार क्रमश आबिल करती–करती सो आबिल तक चढ गई चौदह वर्ष तीन मास और बीस दिन मे उन्होने अपना शरीर सुखा डाला।

काली महासती राजरानी थी। साध्वी के वेश मे जब वे लागा क घर भिक्षा के लिए जाती होगी तब लोगो मे त्याग के प्रति कितनी स्पृहा हाती

होगी ? लोग त्याग के पति कितनी आदरभावना अनुभव करते होगे? एक राजरानी राजसी वैभव को ठुकरा कर भोगोपभोगो से मुह मोडकर, वस्त्रो और आभूषणो को छोडकर जब साध्वी का वेश अगीकार करती है, तो ससार को न मालूम कितना उच्च और महान् आदर्श सिखलाती है।

एक भाई ने मेरे शरीर पर खादी देखकर कहा– 'पूज्यजी के शरीर पर खादी। उसे शायद यह सोचकर आश्चर्य हुआ कि इतने धनिक समाज का आचार्य होकर मैं खादी क्यो पहनूँ? मगर उस भोले भाई को पता नही कि खादी का कितना महत्व हैं? महावीरचरित्र के अन्त मे उसके रचयिता हेमचन्द्राचार्य का जीवनचरित दिया गया है। उसमे लिखा है कि आचार्य हेमचन्द्र एक बार अजमेर से पुष्कर गये थे। वहा एक श्राविका ने अपने हाथ से सूत कात कर खादी बुनी थी। खादी तैयार हुई ही थी कि हेमचन्द्राचार्य गोचरी के लिए वहाँ पहुँचे। श्राविका ने बडी श्रद्धा–भक्ति के साथ आचार्य से खादी लेने की पार्थना की। हेमचन्द्राचार्य गुजरात के प्रसिद्ध राजा कुमारपाल के गुरु थे। आपके विचार से हेमचन्द्राचार्य को खादी लेनी चाहिए थी? पर यह त्याग तो आप लोगो को ही सूझता है उन्हे नही सूझता था।

हेमचन्द्राचार्य ने बडे प्रेम से खादी का वस्त्र स्वीकार किया। उसे पहिन कर विहार करते–करते वे सिद्धपुर पाटन गये, जहाँ राजा कुमारपाल रहता था। राजा अपने साथियो के साथ उनका स्वागत करने आया। वन्दन–नमस्कार आदि करके कुमारपाल ने कहा –'गुरुदेव कुमारपाल के गुरु के शरीर पर यह खादी शोभा नही देती।'

हेमचन्द्राचार्य – मेरे खादी पहनने से तुम्हे लज्जा मालूम होती है?

कुमारपाल – जी हाँ।

हेम – यह खादी मेरे सयम को बढाने वाली है। श्राविका बहिन ने बडे पेम से मुझे भेट की है। ऐसी स्थिति मे तुम्हे लज्जित होने की क्या आवश्यकता हैं? लज्जा तो राजा को तब आनी चाहिए जब प्रजा भूखी मरती हो और राजा भोगविलास मे डूबा रहता हो। उनकी दुरवस्था और अपने आमोद–प्रमाद को देखकर लज्जित होना चाहिए खादी से शर्मिंदा क्यो होता है?

आचार्य हेमचन्द्र के इस कथन का राजा कुमारपाल पर ऐसा प्रभाव पडा कि उसने थोडे ही दिनो मे अपने राज्य मे सुधार कर लिया। राजा के [illegible] को देखकर आचार्य हेमचन्द्र ने उस श्राविका को धन्यवाद देकर

कहा– यह उस बहिन के प्रेम का ही प्रताप है। उसके दिये कपडे के निमित्त से जो सुधार हो पाया वह मेरे उपदेश से भी होना कठिन था।

महारानी काली जब खादी के कपडे पहनकर देश मे घूमी होगी तब लोगो मे कितनी जागृति हुई होगी? जनता के हृदय मे कैसी भावना का उदय हुआ होगा? अगर आप काली के महान् त्याग को हृदय मे स्थान दोगे तो काली भी हृदय मे आ जाएगी और हृदय भी पवित्र बन जाएगा।

महारानी काली को मानने वाली विधवा बहिन अपने शरीर पर गहने नही रखेगी। दीक्षा ले लेना दूसरी बात है। अगर पूर्ण सयम अगीकार करने की शक्ति हो तो अगीकार कर लेना ही उचित है। परन्तु इतनी शक्ति न होने की हालत मे अगर गहने त्याग दिये तो भी दु ख तो नही होगा। कदाचित् कहा जाय कि घर मे नगे हाथ अच्छे नही लगते, तो यही कहना पडेगा कि ऐसा कहने वाले की दृष्टि दूषित है। गहनो मे सुन्दरता देखने वाला आत्मा के सद्गुणो के सौन्दर्य को देखने में अन्धा हो जाता हैं। त्याग सयम और सादगी मे जो सुन्दरता है, पवित्रता है, सात्विकता है, वह भोगो म कहॉ? मैं विधवा बहिनो को सम्मति देता हूँ कि वे घर वालो की ऐसी बातो की परवाह न करके गहनो को त्याग दे– अपने शरीर पर धारण न करे और सादगी के साथ रहे।

बहिनो। तुम भी काली की तरह तपस्या करो। इसे पर्दे ने तुम्हारे जीवन को तुच्छ बना दिया है। इसके बन्धन को दूर करके अपने कर्त्तव्य का विचार करो।

भाइयो से भी मैं कहना चाहता हूँ कि अगर आप भगवान महावीर की भक्ति करना चाहते हैं तो काली महासती की शरण लो। काली ने घोर तप करके सारे ससार को मार्ग दिखला दिया है कि सब के लिए तप का मार्ग खुला है। काली की तरह आप भी आयबिल करे ता आपको गरीबो के भोजन का पता चले।

काली महासती ने मैत्रीभावना की स्थापना के लिए महान् त्याग किया था। मैत्रीभावना की महिमा अगम–अगोचर हे। जिसके अन्त करण म इस भावना का विकास होता हे, उसे अपूर्व शाति प्राप्त होती है। मैत्रीभावना से जो अपने हृदय को आर्द बना लेता हैं उसके लिए सारा ससार नन्दनवन बन जाता है। उस नन्दनवन मे फिर ऐसे–ऐसे मधुर फल लगते हें कि उनका आस्वादन करने वाला ही उनके माधुर्य को समझ सकता है।

मैत्रीभावना के सम्बन्ध मे आपने बहुत कुछ सुना होगा लेकिन उस पावन भावना को जागृत करने का तरीका कम लोगो को ही मालूम है। अतएव यह जान लेना आवश्यक है कि मैत्रीभावना का प्रारम्भ कहाँ से करना चाहिए? चाहे मैत्रीभावना हो या कोई दूसरी शिक्षा हो उसका आरम्भ घर से ही करना उचित है। फिर क्रमश उसे व्यापक बनाने की चेष्टा करनी चाहिए।

घर मे माता का स्थान अनोखा होता है। माता ने पुत्र को जन्म दिया है। माता से ही पुत्र को शरीर मिला है। सतान पर माता और पिता का असली ऋण है। उनके ऋण को चुकाना कठिन है। ठाणागसूत्र मे वर्णन आता है कि गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा– भगवन् अगर पुत्र माता–पिता को नहलावे वस्त्राभूषण पहनावे, भोजन आदि का सब प्रकार का सुख देवे और उन्हे कन्धे पर उठाकर फिरे तो क्या वह अपने माता–पिता के ऋण से उऋण हो सकता है? भगवान् ने उत्तर दिया–

नायमट्टे समट्टे

अर्थात्– ऐसा होना सभव नही है। इतना करके भी पुत्र माता–पिता से उऋण नही हो सकता।

इसका आशय यह है कि वास्तव मे माता–पिता के उपकार का बदला इतने से नही चुक सकता। कल्पना कीजिए, किसी आदमी पर करोडो रुपयो का ऋण है। ऋण मागने वाला ऋणी के घर गया। ऋणी ने उसका आदर–सत्कार किया और हाथ जोडकर कहा– 'मैं आपका ऋणी हूँ और ऋण को अवश्य चुकाऊगा। अब आप कहिए कि आदर–सत्कार करने और हाथ जोडने से ही क्या ऋणी ऋणरहित हो सकता है?

'नही।

एक राजा ने बाग तैयार कराया और किसी माली को सौंप दिया। माली ने बाग मे से दस–बीस फल लाकर राजा को दे दिये, तो क्या वह राजा के ऋण से मुक्त हो गया?

'नही।

मित्रो! इस शरीर रूपी बगीचे को माता–पिता ने बनाया है। उनके बनाये शरीर से ही उनकी सेवा की तो क्या विशेषता हो गई? यह शरीर तो उन्ही का था। फिर शरीर से सेवा करके पुत्र उनके उपकार से मुक्त किस प्रकार हो सकता है?

एक माता ने अपने कलियुगी बेटे से कहा– मैंने तुझे जन्म दिया है। पाल–पोसकर बडा किया है। जरा इस बात पर विचार करो तो बेटा।

बेटा नयी रोशनी का था। उसने कहा– फिजूल बडबड मत कर। तू जन्म देने वाली है कौन? मे नही था तब तू रोती थी और बाझ कहलाती थी। मैंने जन्म लिया तब तेरे यहा बाजे बजे और मेरी बदौलत ससार मे पूछ होने लगी। नहीं तो बाझ समझकर कोई तुम्हारा मुँह भी देखना पसन्द नही करता था। फिर मेरे इस कोमल शरीर को तुमने अपना खिलौना बनाया। इससे अपना मनोरजन किया– लाडप्यार करके आनन्द उठाया। इस पर भी उपकार जतलाती हो।

माता ने कहा– मैंने तुझे पेट मे रखा सो?

बेटा– तूने जान–बूझकर मुझे पेट मे थोडे ही रखा था। तुम अपने सुख के लिए प्रयत्न करती थीं, बीच में ही हम रह गये। इसमे तुम्हारा उपकार ही क्या है? फिर भी अगर उपकार जतलाती हो तो पेट मे रहने देने का किराया ले लो।

यह आज की सभ्यता है। भारतीय सस्कृति आज पश्चिमी सभ्यता का शिकार बनी जा रही है और भारतीय जनता अपनी पूँजी को नष्ट कर रही है।

माता ने कहा– कोठरी की तरह तू मेरे पेट का भाडा देने को तैयार हैं, पर मैंने तुझे अपना दूध भी तो पिलाया है।

बेटा– हम दूध न पीते तो तू मर जाती। तेरे स्तन फटने लगते। अनेक बीमारियॉ हो जाती। मैंने दूध पीकर तुझे जिन्दा रखा हैं।

माता ने सोचा– यह बिगडैल बेटा यो नही मानेगा। तब उसने कहा– अच्छा चल हम लोग गुरुजी से इसका फैसला करा ले। अगर गुरुजी कहेगे कि पुत्र पर माता–पिता का उपकार नही हे तो मे अब से कुछ भी नही कहूँगी। मैं माता हूँ। मेरा उपकार मान या न मान, मैं तेरी सेवा से मुँह नही मोड सकूँगी।

माता की बात सुनकर लडके ने सोचा–शास्त्रवेत्ता तो कहते हे कि मनुष्य कर्म से जन्म लेता है और पुण्य से पलता हे। इसके अतिरिक्त गुरुजी माता–पता की सेवा करने को एकान्त पाप भी कहते हें। फिर चलने मे हर्ज ही क्या हैं?

यह सोच कर लडके ने गुरुजी से फैसला करवाना स्वीकार किया। वह गुरुजी के पास चला गया। परन्तु माता के गुरु दूसरे ही थे। व उन गुरु कहलाने वालो मे नहीं थे जो माता–पिता की सेवा करना एकान्त पाप बतलात

हैं। दोनो माता-पुत्र गुरुजी के पास पहुँचे। वहाँ माता ने पूछा महाराज शास्त्र मे कही माता-पिता के उपकार का भी हिसाब बतलाया है या नही? गुरु ने कहा- जिसमे माता-पिता के उपकार का वर्णन न हो वह शास्त्र ही नही।

मातृदेवो भव पितृदेवो भव।

ठाणागसूत्र मे भी ऐसी ही बात कही गई है।

गुरु की बात सुनकर माँ ने पूछा- माता-पिता का उपकार पुत्र पर है या पुत्र का उपकार माता-पिता पर है?

गुरु ने ठाणागसूत्र निकाल कर बतलाया और कहा- बेटा अपने माता-पिता के ऋण से कभी उऋण नही हो सकता चाहे वह कितनी ही सेवा करे।

गुरु की बात सुनकर पुत्र अपनी माता से कहने लगा- देख तो, शास्त्र मे यही लिखा है न कि सेवा करके पुत्र माता-पिता के उपकार से मुक्त नही होता। फिर सेवा करने से क्या लाभ है।

पुत्र ने जो निष्कर्ष निकाला, उसे सुनकर गुरु बोले- मूर्ख, माता का उपकार अनन्त है और पुत्र की सेवा परिमित है। इस कारण वह उपकार से मुक्त नही हो सकता। पावनेदार जब कर्जदार के घर तकाजा करने जावे तब उसका सत्कार करना तो शिष्टाचार मात्र है। उस सत्कार से ऋण पट नही सकता। इसी प्रकार माता-पिता की सेवा करना शिष्टाचार है। इतना करने मात्र से पुत्र उनके उपकारो से मुक्त नही हो सकता। पर इससे यह मतलब नही निकलता कि माता-पिता की सेवा ही नही करनी चाहिए। अपने धर्म का विचार करके पुत्र को माता-पिता की सेवा करनी ही चाहिए। माता-पिता ने अपने धर्म का विचार कर तेरा पालन-पोषण किया है। नही तो क्या ऐसे माता-पिता नही मिल सकते जो अपनी सतान के प्राण ले लेते हैं?

गुरू की बात सुनकर माता को कुछ जोर बधा। उसने कहा- अब सुन ले कि मेरा तुझ पर उपकार है या नहीं। इसके बाद उसने गुरुजी से कहा- महाराज यह मुझ से कहता है कि तूने पेट में रखा है तो उसका भाडा ले ल। इस विषय मे शास्त्र क्या कहता है?

प्रश्न सुनकर गुरुजी ने शास्त्र निकाल कर बतलाया। उसमे लिखा था कि गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् ने उत्तर दिया कि इस शरीर मे तीन अग माता क तीन अग पिता के और शेष अग दोनों के हैं। मॉस, रक्त और मस्तक माता के है हाड मज्जा और रोम पिता के हैं शेष भाग माता और पिता दोनो के सम्मिलित है।

माता ने कहा– बेटा! तेरे शरीर का रक्त और मॉस मेरा है। हमारी चीजे हमे दे दे और इतने दिन इनसे काम लेने का भाडा साथ ही चुकता कर दे।

यह सब सुनकर बेटे की ऑखे खुलीं। उसे माता और पिता के उपकारो का ख्याल आया तो उनके प्रति प्रबल भक्ति हुई। वह पश्चात्ताप करके कहने लगा– मैं कुचाल चल रहा था। कुसगति के प्रभाव से मेरी बुद्धि मलीन हो गई थी। इसके बाद वह गुरुजी के चरणो में गिर पडा। कहने लगा– माता–पिता का उपकार तो मैं समझ गया पर उस उपकार को समझाने वाले का उपकार समझ सकना कठिन है। आपक अनुग्रह से मैं माता–पिता का उपकार समझ सका हूँ।

शास्त्रो मे आचार्य और सेठ का भी उपकार बतलाया गया है। सेठ का अर्थ है सहायता देने वाला। गिरी हुई अवस्था मे जो सहायता करता है वह सेठ है और मनुष्य को उसका उपकार मानना चाहिए।

धर्माचार्य के उपकार के सम्बन्ध म शास्त्र मे उल्लेख है कि गोतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से यह प्रश्न किया– प्रभो , यदि धर्माचार्य के ऊपर आई हुई आपत्ति दूर कर दी जाय उन्हे वन्दना की जाय उनकी भोजन आदि द्वारा सहायता की जाय तो ऐसा करने वाला धर्माचार्य क ऋण से मुक्त हो जाता है या नही? तब भगवान ने उत्तर दिया– नही ऐसा नही हो सकता।

मित्रो! माता–पिता का सन्तान पर बडा ऋण है। इस ऋण का चुकाने के लिए धर्म के सहायक बनो। उन्होंने धर्म से तुम्हारी रक्षा की थी इसके लिए अपने धर्म का मूल्य समझकर धर्म के सहायक बना।

कहने का आशय यह है कि अपनी मैत्री भावना का विश्वव्यापी प्रसार करने के लिए सर्वप्रथम माता–पिता के प्रति यह भावना लाओ। माता–पिता के बाद भाई के प्रति मैत्रीभाव आता है। भाई स मैत्रीभाव रखन के लिए राम का इतिहास देखो जिन्होंने अपने अधिकार का राजमुकुट अपन भाई को प्रसन्नता पूर्वक सोंप दिया। यही नही उन्हाने भाई क प्रभाव का अक्षुण्ण रखने के लिए वनवास स्वीकार किया और दशरथ का समझाया कि आप दुविधा मे न पड कर भरत को राज्य दे दीजिये आपक लिए राम और भरत भिन्न–भिन्न नही होने चाहिए। जा कुछ क्लेश है वह मर तर के भदभाव मे ही है। मैं माता कैकयी के हृदय मे घुसे हुए भेदभाव को जड स उखाडना चाहता हूँ। जेसे दाहिनी ओर बाई ऑख म भेद नहीं किया जाता इसी प्रकार

मुझ मे और भरत मे भी भेद नही होना चाहिए। भरत का राज्य करना मेरा राज्य करना है। भरत राजा होगे तो मैं राजा होऊगा। और मैं राजा बनूगा तो भरत राजा होगे।

आज भाई–भाई मुकदमाबाजी मे पडकर हजारो–लाखो रुपया नष्ट कर डालते है। सुनते हैं, एक गोदी के मुकदमे मे सत्तरह लाख रुपया पूरे हो गये है। ऐसे लोग मैत्रीभावना की आराधना किस प्रकार कर सकते हैं? जो अपने सगे बन्धु को बैरी समझता है वह विश्वबन्धुता का पाठ कैसे सीख सकता है?

भाई के बाद पुत्र पुत्री आदि परिवार के साथ मैत्रीभावना स्थापित होती है। सारे परिवार पर समान स्नेह रखना पारिवारिक मैत्रीभावना हैं। यह मेरा लडका है, यह मेरे भाई का लडका है, इस तरह का पक्षपात करना जघन्य मनोवृति है। जिसकी भावना इतनी जघन्य और सकीर्ण होगी वह विश्वमैत्री के विशालतर प्रागण मे पैर नही रख सकेगा।

परिवार के प्रति मैत्रीभावना साथ लेने के पश्चात् समानधर्मो के प्रति मित्रभावना स्थापित करना चाहिए। सब समानधर्मियो को अपना भाई समझो ओर उन्हे अपने से अभिन्न मानो और अपने को उनसे अभिन्न समझो। सहधर्मी की सहायता करके उसे अपना–सा बना लेने के बाद ही तुम दूसरो की सहायता कर सकोगे।

इस प्रकार क्रमश अपनी भावना का विकास करते चलने से एक समय आपकी भावना प्राणीमात्र के प्रति आत्मीयता से परिपूर्ण बन जाएगी, आपका अह जो अभी सीमित दायरे मे गाठ की तरह सिमटा हुआ है, बिखर जाएगा और आपका व्यक्तित्व विराट रूप धारण कर लेगा। उस समय जगत् के सुख मे आप अपना सुख समझेगे।

प्रश्न किया जा सकता हे– •अर्जुन माली ने छह युवको को मार डाला था इस कारण वह बुरा माना जाता है और सुदर्शन सेठ की बड़ाई की जाती है। परन्तु अर्जुन माली के सामने जैसी परिस्थिति थी वैसी ही परिस्थिति अगर सुदर्शन सेठ के सामने होती अर्थात् जैसे अर्जुन माली के सामने ही उसकी पत्नी के साथ बलात्कार किया गया था वैसी ही परिस्थिति अगर सुदर्शन सेठ के सामने होती तो उस समय सुदर्शन का क्या कर्त्तव्य होता?

• विशेष परिचय पाने के लिए किरणावली की प्रथम किरण का 8वा व्याख्यान देखे।

क्षमा तीन प्रकार की होती है— तमागुणी रजोगुणी और सतागुणी। तमोगुणी क्षमा वाले वे लोग हैं जो अपनी स्त्री के साथ बलात्कार करत दख हृदय मे क्रोध तो करते हैं, मगर भय के मारे सामन नहीं करत। यह तमोगुणी क्षमा प्रशस्त नही है, यह कायरता हे घृणित हे ओर नपुसकता है। अर्जुन माली का कार्य ससार का नाशक नहीं, अत्याचारी को दण्ड देना हैं और वह दूसरे अत्याचारियो के ऐसे दुस्साहस को राकन के लिए किया गया था। हमारा उपदेश तो ऐसी क्षमा के लिए है। जेसी क्षमा सुदर्शन सठ ने अर्जुन माली के प्रति धारण की थी। वह सतोगुणी क्षमा थी। जिसम क्राध तनिक भी उत्पन्न नहीं होता ओर क्षमाकर दिया जाता है, वही सतोगुणी क्षमा है। धर्म अत्याचार—अनाचार को न रोकने की शिक्षा नहीं देता। धर्म किसी को कायर नहीं बनाता हे। धर्म की ओट मे कोई अत्याचार का प्रतीकार न कर या कायरता को छिपाने के लिए धर्म का बहाना कर यह अलग बात हें मगर जिसने धर्म के तत्त्व को ठीक तरह समझ लिया होगा वह अपन एस कृत्या द्वारा धर्म को बदनाम नहीं करेगा।

बोद्ध ग्रन्थो मे एक कथा आई हे। सोमदेव नामक एक ब्राह्मण की आध्यात्मिक भावना बालकपन से ही बढी चढी थी। अतएव माता—पिता क मरते ही सोमदेव और उसकी पत्नी ने सन्यास ल लिया। स्त्री सुन्दरी थी। दम्पति वन मे रहकर तप किया करते थे। एक बार दानों नगर में आय। नगर के राजा ने स्त्री को देखा तो उसके चित्त मे विकार पेदा हो गया। वह साचन लगा— यह रमणी—रत्न गलियो में क्यो पडा रहना चाहिए? यह ता महल की शोभा बढाने योग्य हे। यह सोचकर उसने सामदेव से कहा— यह स्त्री तर साथ शोभा नही देती।

सोमदत्त ने कहा— हॉ शोभा नही देती।

राजा— ता इसे हम ले जाए?

सोमदत्त— मेरी नहीं हे भले कोई ले जाय।

राजा ने स्त्री से कहा— चला हमार साथ चला।

स्त्री ने सहज भाव से उत्तर दिया— चलिए कहॉ चलना ह?

आगे—आगे राजा चला ओर पीछे—पीछ स्त्री। महल म पहुँच कर स्त्री ध्यान लगाकर बेठ गई। उसने एसा ध्यान लगाया कि कइ अनुकूल—प्रतिकूल सत्ताए हार गई मगर उसका ध्यान न टूटा। राजा का अपना पागलपन मालूम हुआ। उसका ध्यान हट गया। वह उस (सन्यासिनी) के पेरो मे गिर कर क्षमा मॉगने लगा।

स्त्री ने मानो कुछ हुआ ही नही हैं ऐसे, सहज भाव से उत्तर दिया— किसने और क्या अपराध किया है, वह मुझे मालूम ही नही है। मैं क्षमा क्या करूं?

आखिर राजा सन्यासिनी को लेकर सोमदत्त के पास गया। सोमदत्त को उसकी स्त्री सौपकर उसने कहा— मैंने आपकी अवज्ञा की है। मेरा यह अपराध हैं तो गुरुतर, फिर भी मैं आपसे क्षमा याचना करता हूँ।

सोमदेव ने कहा— जब यह मेरी है ही नही, तब इसमे मेरी अवज्ञा क्या हुई?

इसे कहते है क्षमा। ऐसी क्षमा के द्वारा भी अन्याय—अत्याचार का नाश किया जाता है। अन्याय—अत्याचार के समूल नाश का यह सर्वश्रेष्ठ तरीका है। इस तरीके से अन्यायी और अत्याचारी के हृदय का परिवर्तन हो जाता है परन्तु ऐसी सममावना प्राप्त करने के लिए साधना चाहिए।

सुदर्शन सेठ का सामना होते ही अर्जुन माली का यक्ष भाग खड़ा हुआ। अर्जुन माली स्वस्थय हो गया। उसने सुदर्शन सेठ को धन्यवाद दिया और कहा— मैं आपका भक्त हूँ, लेकिन आप किसके भक्त हैं वह महापुरुष कैसे होगे।

मित्रो! भगवान् की परीक्षा कभी—कभी भक्त से होती है। भक्त ऐसा होना चाहिए जैसा सुदर्शन सेठ था। सुदर्शन सेठ उस समय बिल्कुल महादेव की प्रतिमा बन गये थे। जो आत्मा को ही परमात्मा मानकर उसमे तन्मय हो जाती है उसकी शक्ति अद्भुत अपूर्व और आलौकिक हो जाती है।

यक्ष के आवेश से मुक्त होकर अर्जुन माली ने सुदर्शन से कहा— मैं आपके इष्ट देव का दर्शन करना चाहता हूँ।

ग्यारह सो इकतालीस मनुष्यो की निर्मम हत्या करने वाले घोर हत्यारे को प्रेमपूर्वक गले लगाना और भगवान् के पास अपने साथ मे ले जाना क्या उचित था? सुदर्शन सेठ की भावना उस समय कितनी उदार रही होगी। उन्हे अर्जुन माली के पापो को धोना था। उसका सुधार करना अभीष्ट था। सुदर्शन को ज्ञात था कि भयानक से भयानक पापी की अन्तरात्मा मे भी मगलमूर्ति छिपी हुई है। उसकी बाह्य प्रकृति के उपशात होने पर वह मगलमूर्ति प्रकट हो जाती है।

जिसकी भावनाए बिगडी हुई है उनमे उत्तम भावना उत्पन्न कर दो तो धर्म की कितनी सेवा होगी? आज नीच कहलाने वाले लोगो मे धर्म की बडी आवश्यकता है। उनमे धर्म की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न करो।

उनकी सेवा करो। उन्हे सद्‌भावना के बन्धन मे बाधो और अच्छी राह पर लाओ। वे भी ईश्वर की मूर्ति हैं। उनके मैले–कुचैले तन मे ओर मलीन मन के भीतरी भाग मे ईश्वरत्व छिपा हुआ है। उसकी पहिचान उन्हे करा दो।

अर्जुन माली को साथ लेकर सुदर्शन सेठ भगवान के पास पहुँचे। अर्जुन माली पर भगवान् के उपदेश का प्रभाव पडा और उसका अज्ञान दूर हो गया। अर्जुन माली ने मुनिव्रत अगीकार किये। उसने सुदर्शन से कहा– मैं आपका आभारी हूॅ। आपकी कृपा से ही यहॉ तक पहुॅच सका हूॅ। उत्तर मे सेठा 'बोले–' ऐसा मत कहिए। आप बडे हैं। मैं कई बार भगवान् के दर्शन कर चुका हूॅ पर ससार का त्याग नही कर सका और आपने एक बार मे ही ससार त्याग दिया।'

अर्जुन ने कहा– मुझ जैसे क्रूर हिसक पर आपने बडी कृपा की है। मैं तो यही नही सोच पाता कि जब मुझ सरीखे अधम को आपने ही सुधार दिया तो जिसे आप नमन करते हैं वह भगवान् कैसे–कैसे पापियो को न तारते होगे ।

साधु अर्जुन माली ने बेले–बेले का पारणा करके छह महीने मे ही अपने पापो को भस्म कर डाला। उन्होने अनेक कष्ट सहन किये और गहरे समभाव की साधना की। जब वह भिक्षा के लिए नगर मे जाते तो लोग उन्हे तरह–तरह से सताते थे और कहते थे– हमारे अमुक सम्बन्धी को मारने वाला यह हत्यारा अब साधु बनने का ढोग कर रहा है। लोगो के मारने पर भी अर्जुन मुनि मुस्कराते रहते। कभी–कभी कहते– आप लोग सचमुच बडे दयालु हैं। मैंने आपके सम्बन्धी की हत्या की थी पर आप मार पीट कर ही मुझे छोड देते हैं। अर्जुन मुनि का ऐसा अद्‌भुत समभाव देखकर मारने वाले भी कॉप उठे कि मार–पीट से जब इसे दु ख ही नही होता तो मारपीट करने से लाभ ही क्या है? ऐसा करके हम उलटे पाप मे पडते हें। इस प्रकार विचार करके कई लोग प्रभावित हुए।

अर्जुन माली की कथा आपने कई बार सुनी होगी। पर जरा विचार करो कि यह कथा अपनी हे या अर्जुन माली की? हम उस समय नहीं थ जब यह घटना घटी। हम आज हैं और आज हमारे सामने यह कथा है। अगर हमने इस कथा को अपनी ही कथा समझ ली तब तो इसे सुनकर हम अपना कल्याण कर सकते हैं, अन्यथा कथा सुनना और न सुनना बराबर हे। मैं इस कथा को आध्यात्मिक रूप मे घटा कर आपको बताना चाहता हूॅ कि राजगृही

नगरी क्या है, छैल, अर्जुन माली उसकी स्त्री बंधुमती, यक्ष, सुदर्शन सेठ और भगवान् महावीर कौन है? और यह कथा कैसे बनी?

मित्रो! जहाँ जन्म हुआ है वही राजगृही है। किसी पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय से यह शरीर क्षेत्र मिला है। मन बहुत समय से अर्जुन माली है। मनरूपी अर्जुन की मायारूपी भार्या है। यह भार्या अर्जुन की तो बन कर रही मगर निष्ठा अर्जुन पर नही रही। जहाँ स्वार्थ का लालच देकर किसी ने दबाया उसी ओर यह जाने लगी। इस मायारूपी स्त्री ने अपने नखरे दिखा-दिखाकर आत्मा को फसा रखा है। आत्मा ने मिथ्यादेव रूपी यक्ष का इष्ट पकडा था जिससे वह समय पर मेरी सहायता करे। इस शरीर मे काम क्रोध मद मत्सर आदि छह शत्रु हैं। इन छहो को बल-वीर्य रूपी अधिकार मिला है। यह स्वच्छन्द क्रीडा करने लगे तो जो-जो अनर्थ किये उनका वर्णन नही हो सकता। इन छह शत्रुओ की बदौलत आत्मा को कष्ट पाते-पाते अनन्तकाल हो गया है। यह छह शत्रु जब-जब मस्ती पर आये तब-तब माया इनके पास गई फिर भी यह शात नही हुए। मैने छहो शत्रुओ को मारने की तैयारी की। मेने यह तो समझ लिया था कि इन्हे मारना उचित है, पर मिथ्या देव की सगति के कारण यह नही समझ सका कि इन्हे किस प्रकार मारना चाहिए? अतएव मैने कई बार जलसमाधि लेकर कई बार दूसरी तरह से बाल-मरण से मर कर यह दिखाया कि मैं इन्हे मारता हूँ पर वास्तव मे ऐसा करके मै स्वय ही मरा शत्रु नही मरे। जैसे अर्जुन यह समझता था कि मैं इन छह शत्रुओ को मारता हूँ, मगर उसे अपनी स्थिति का भान नही रहा इसी प्रकार मै भी समझता रहा कि मै इन छह विकार- शत्रुओ को मार रहा हूँ, मगर इस तरह मारने का परिणाम क्या होगा यह मुझे मालूम नही था।

आय गया आय गयो आय गयो रे,
मेरे नाथन को नाथ यहाँ आय गयो रे,
वह तो आके मुझे है जगाय गयो रे,
मेरे नाथन को नाथ यहाँ आय गयो रे,
विवेक को पाते ही आत्मा भगवान्
महावीर के समीप आ गया।
जो तू प्रभु प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो
शुघ चैतन्य आनन्द विनयचन्द, परमारथ पद भैंटो।

आत्मा और परमात्मा एक है, दो नहीं। विवेक का हाथ पकड लेने से आत्मा को परमात्मा से भेट होती है ओर फिर आत्मा स्वय परमात्मा के रूप मे प्रकट हो जाता है।

पत्थर की पुतली कपडे की पुतली और शक्कर की पुतली यह तीनो स्नान करने गईं। पत्थर की पुतली पानी मे डूब करके भी वैसी ही बनी रही। कपडे की पुतली पानी मे भीगी तो सही पर धूप लगने पर फिर ज्यो की त्यो हो गई। शक्कर की पुतली पानी मे डूबकर उसी मे रह गई। इन तीन मे से आप कैसे बनना चाहते हैं? अर्जुन माली परमात्मा के दर्शन करने गया तो स्वय परमात्मा बन गया।

आत्मा और परमात्मा के एक होने की पहिचान यह है। अर्जुन माली को भगवान महावीर मे मिल जाने के पश्चात् लोगो की थप्पडे खाने की इच्छा हुई। वह थप्पड मारने वालो के पास विशेष रूप से जाने लगा। यही आत्मा–परमात्मा के एक होने का लक्षण है। जिन्हें आत्मा अब तक तुच्छ समझाता था उन्ही से प्रेम करने लगे तो समझ लेना चाहिए कि आत्मा ओर परमात्मा एक हो गयी।

भगवान महावीर मे मिलकर अर्जुन माली ने अपना सारा हिसाब चुकता कर दिया। वह अपने ऊपर चढे हुए भारी ऋण स मुक्त हा गया। यह कथा सुनकर आप अपना खाता बराबर करगे या नही? जीभ स हॉ कह दना तो सभ्यता मात्र अन्तःकरण क्या कहता हे यह देखना चाहिए।

सवत्सरी के दिन वर्ष भर के पाप की आलाचना की जाती हैं। अन्तःकरण मे जमी हुई गन्दगी का हटा देन का यह पर्व हे। सवत्सरी क पश्चात् हृदय निर्मल करके जीवन का नया पथ निर्मित हाना चाहिए जिस पर चल कर आत्मा अपने अक्षय कल्याण के परम लक्ष्य को प्राप्त करन म सफल हो सके। भावना मे पावनता लान और हृदय को स्वच्छ बनान क लिए

क्षमायाचना की जाती है। यह एक परम पवित्र प्रणाली है। केवल ऊपरी रूप से इसका अनुसरण मत करो वरन् उसकी चेतना को जागृत रखो। उसे सजीव रूप मे पालन करो। ऐसा करने से आपका जीवन ऊँची कक्षा मे पहुँचेगा और धर्म की भी पभावना होगी। क्षमायाचना के लिए महाराज उदायी का दृष्टान्त सामने रखो। महाराज उदायी ने पराजित और बन्धनबद्ध चण्डप्रद्योत का राज्य सवत्सरी सम्बन्धी क्षमायाचना के उपलक्ष्य मे सहर्ष लौटा दिया था। इसे कहते है क्षमायाचना किसी के अधिकार को रखो और फिर उससे क्षमा मागा तो यह क्षमायाचना के महत्त्व को बढाना नही, घटाना है।

मित्रो! न मालूम किस पुण्य के उदय से आपको ऐसा सस्कारपूरित वातावरण मिला है! इस वातावरण की पवित्रता को पहचानो और सासारिक पलोभनो मे इतने अधिक मत फस जाओ कि आत्मा की सुध ही न रहे। प्रत्येक कार्य को प्रारम्भ करते समय उसे धर्म की तराजू पर तौल लो। धर्म इतना अनुदार नही है कि वह आपकी अनिवार्य आवश्यकताओ पर पाबन्दी लगा दे। साथ ही इतना उदार भी नही है कि आपकी प्रवृत्ति की सराहना करे। धर्म का आश्रय लेकर आप कभी दु खी नही होगे। इसलिए मैं कहता हूँ कि अपने जीवन को धर्म के साचे मे ढाल लो। इससे आप कल्याण के पात्र बनेगे।

3 आत्मवत् सर्वभूतेषु

पर्युषण पर्व के दिनो मे अन्तगड (अन्तकृत) सूत्र का व्याख्यान किया जाता है। जिस उद्देश्य से गणधरो ने इसकी रचना की हे उसी उद्देश्य से इसका व्याख्यान किया जाता हे। जिन महापुरुषा ने अपने अनादिकाल कर्मो का अन्त किया है जो समस्त विघ्नो का नाश करके निर्विघ्न हो गय हें उन महापुरूषो के चरित का इस सूत्र मे वर्णन किया गया हे अतएव इस सूत्र को 'अन्तगड कहते हैं। इसमे दस अध्याय हें ओर यह आठवा अग हे इस कारण दशाग कहते हैं। पर्युषण पर्व का समय कल्याणकारी है अतएव पर्युषण के आठ दिनो मे यह समझाया जाता हे। यो तो इसके सम्बन्ध म कई विचार हैं परन्तु इसे आठ दिनो मे पूर्ण कर देने की परम्परा प्रसिद्ध हें ओर व्यवहार मे भी आ रही हे। बडे–बडे महापुरुष इस परम्परा का पालन करत हें और यह परम्परा कल्याणकर हे अत में उनका अनुसरण कर रहा हूँ।

वास्तविक ओर गम्भीर दृष्टि से देखा जाय तो इस सूत्र क वर्णन करने का उद्देश्य बडा मार्मिक है। उसे पूरी तरह कह सकना वाणी की शक्ति से परे हे।

ससार मे पद बहुत हें ओर वे एक–दूसर से ऊच हें। मगर अपनी आत्मा पर चढे हुए आवरणो को हटाकर आत्मा का स्वरूप पूर्ण रूप स शुद्ध बना लेने, विघ्नो को हटाने ओर आत्मा पर पूर्ण विजय प्राप्त करन से वढकर कोई पद नही हे। आत्मा मे अशुद्धता एव विभाव परिणति उत्पन्न करन वाल कर्मो का अन्त करना मानव–जीवन की सर्वोच्च सिद्धि हे। आपका ओर हमारा एकमात्र लक्ष्य यही हे कि आत्मा को किसी प्रकार निर्विघ्न सुख की अवस्था म पहुँचा सके जब हमारा यही लक्ष्य हे तो कर्मनाश क कार्य म मार्गदर्शक ओर कल्याण मे सहायक बनने वाले जो महापुरुष हुए हें उनके पथ का दखन से अपना कार्य सरल हो सकता हे।

लक्ष्य तो सबका यही है कि आत्मा की अशुद्धता मिटाई जाय आत्मा का अपना विशुद्ध स्वरूप प्रकट किया जाय, मगर उपाय लोगो के न्यारे–न्यारे बतलाए है। सासारिक जीवन की विचित्र परिस्थितियो ने और काल की भिन्नता ने भी भिन्न–भिन्न उपायो की उत्पत्ति मे भाग लिया है ओर साथ ही दूसरे–दूसरे कारणो से भी आत्मशुद्धि के उपायो मे अन्तर पड गया है। यहॉ तक कि कई लोग तो कर्मबन्ध के उपायो को ही कर्मनाश का उपाय समझ लेते है। कुछ लोगो का कहना है कि पहले सब शास्त्रो का पारायण करो तभी धर्म की प्राप्ति होगी। मगर ऐसा करना शक्य नही है। ससार के विभिन्न धर्मो के प्रतिपादक विपुल ग्रन्थसग्रह को पढ लेना सरल काम नही है ओर सर्वसाधारण के लिए तो ऐसा करना असम्भव है। कब तो ससार के शास्त्रो के सागर को पार किया जाय और कब आत्मशुद्धि के लिए उद्योग किया जाय? ऐसा करने मे आत्मशोधन का मार्ग रुक जायेगा अशक्य बन जायेगा। कदाचित यह कहा जाये कि ससार के सब मतमतान्तरो का निचोड एक जगह करके पढा जाय तो क्या हानि है? मगर ऐसा होना भी सरल काम नही है।

अब प्रश्न हो सकता है कि अगर यह असभव है तो किस उपाय से कर्मो का नाश करना चाहिए? इसका उत्तर सक्षेप मे यह है–

महाजनो येन गत सपन्था।

अर्थात जिस मार्ग पर महापुरूष चले हैं, जिस मार्ग का अवलम्बन करके उन्होने अपने कर्मो का क्षय किया है और आत्मशुद्धि की हैं वही मार्ग तुम्हारे लिए भी कल्याणकारी हो सकता है।

महापुरुष बिना निर्णय किये किसी मार्ग पर पैर नही धरते। अतएव उनके द्वारा निर्णीत पथ ही मगलकारी होता हैं। किसी महानदी को पार करना कठिन होता है बडे–बडे बलवान तैराक भी पार नही कर पाते। परन्तु पुल बन जाने पर कीडी भी उस महानदी को पार कर जाती है। इसी प्रकार हम चाहे कितने भी अशक्त हो कितने ही कम पढे–लिखे हो, अगर महापुरुष के मार्गरूपी पुल पर आरूढ हो जाएगे तो अवश्य ही अपने लक्ष्य को आत्मशुद्धि को प्राप्त कर सकेगे। महापुरुषो का मार्ग ससार सागर पार करने के लिए पुल के समान है। उनके मार्ग पर चलने से सब सिद्धिया प्राप्त हो जाती हैं।

अब प्रश्न होता है कि महापुरुष किसे माना जाय? इस प्रश्न का उत्तर एक प्रकार से कठिन है फिर भी अगर हम सावधानी से विचार करे और निर्णय करने की शुद्ध बुद्धि हममे हो तो इतना कठिन भी नही है। आपके [illegible] दो प्रकार के पुरुष खडे है। एक ने अपनी ऋद्धि खूब बढा ली है और

बहुत बडा अमीर बन गया है। दूसरा किसी समय ऋद्धिशाली था। उसने ऋद्धि की असारता समझ ली ओर फिर उससे विरक्त हो गया हैं। सारी सम्पदा को त्याग कर भिक्षु बन गया है। अब अपने अनुभव से विचार कीजिये कि आपको कौन महापुरुष जान पडता है?

'त्यागने वाला।'

ससार मे महान् ऋद्धिशाली भी बडा आदमी अर्थात् महान पुरूष कहलाता हैं और त्यागी महापुरुष कहलाता हैं। मगर आप तो कर्मो का नाश करने के लिए महापुरूष को खोज रहे है। ऐसी स्थिति में स्वय ही निर्णय किया जा सकता है कि उक्त दोनो मे महापुरूष कौन है?

हम अपने कर्मो का नाश करना चाहते हैं इसलिए हमे ऐसे ही महापुरुष का आदर्श ग्रहण करना है जो त्यागी हो। जो सच्चा त्यागी होगा वह निश्चय ही सत्य पथ पर चलेगा। वह मिथ्यामार्ग को स्वीकार नही करेगा।

साराश यह है कि त्यागी पुरुषों का मार्ग कर्मनाश करने के लिए पुल के समान है।

एक प्रश्न यह भी किया जा सकता हैं कि किसका त्याग करने वाले को त्यागी समझा जाय? इस प्रश्न का उत्तर शास्त्र यह देते हैं कि जिसने हिसा, असत्य, चोरी मैथुन और लोभ आदि अठारह पापो का त्याग कर दिया है वही त्यागी कहलाता है। जिसमे क्रोध मान माया लोभ मोह मात्सर्य अज्ञान आदि न हो उसी को त्यागी समझना चाहिए। ऐसा त्यागी ही महापुरुष कहलाता हैं। सॉप ऊपर की केंचुली त्याग दे मगर विषका त्याग न करे तो उसकी भयकरता कम नही होती। इसी प्रकार जो ऊपर से त्यागी होने का ढोग करते हैं परन्तु अन्दर से राग–द्वेष आदि विकारो से ग्रस्त हैं वे महापुरुषो की गणना मे नही आ सकते। राग–द्वेष का क्षय हा जान पर केवल–ज्ञान की उपलब्धि होती हे। वीर वीतराग दशा प्राप्त होती हे। जा वीतराग बन गया हे वही वास्तव मे महापुरुष हे।

ऐसे वीतराग महापुरुषो का स्मरण करके जिन्हान अपना कल्याण किया हे उन्ही का परिचय अन्तगडसूत्र मे दिया गया हें। इसके दस अध्याया मे उन महापुरूषो का वर्णन किया गया है ओर वतलाया गया हे कि उन्हान किस प्रकार अपने कर्मो का विनाश करके सिद्ध बुद्ध और मुक्त अवस्था प्राप्त की है।

ऊपर जो विवेचन किया हे, उससे यह स्पष्ट है कि इस अनादिकालीन ससार मे महापुरुष अनन्त हो चुके हैं– उनकी सख्या नही बतलाई जा सकती और न उनके नामो का ही उल्लेख किया जा सकता है। महापुरूष की जो परिभाषा बतलाई जा चुकी है वह जिस किसी में घट सकती है वही महापुरुष है। महापुरुष की महत्ता उसके नाम से नही है, गुणो से है। अतएव जो गुणो से महापुरूष है वही पूजनीय है वही माननीय है। भक्तामर–स्तोत्र मे कहा हे–

बद्धस्त्वमेव विबुधाचितबुद्धिबोधात्
त्व शकरोऽसि भुवनत्रयशकरत्वात्।
धाताऽसि धीर! शिव मार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्त त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि।।

अर्थात् हे प्रभो! देवता तुम्हारे बुद्धि–वैभव की पूजा करते हैं, इसलिए तुम्ही बुद्ध हो तीन लोक का कल्याण करने के कारण तुम्ही शकर हो, मोक्षमार्ग की विधि का विधान करने के कारण तुम्ही विधाता हो, और स्पष्ट है कि तुम्ही पुरुषोत्तम हो।

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा हैं–

यत्र–तत्र समये तथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया,
वीतदोषकलुष सचेद् भगवान्, एक एव भगवन्! तमोऽस्तुते।।

अर्थात– किसी भी परम्परा मे किसी भी रूप मे, किसी भी नाम से आप हो अगर आप वीतराग है तो सभी जगह एक ही हैं। आपको मेरा नमस्कार हो।

इन उद्धरणो से ज्ञात होता है कि महापुरुष या वीतराग पुरुष का नाम पूज्य नही हे। नाम उसका भी रख दिया जाय अगर उसमे वीतरागता है तो वह पूज्य है।

भगवान महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थकर थे। आज उन्हीं का शासन चल रहा है। सुधर्मा स्वामी ने भगवान महावीर से जो कुछ सुना हैं, वही उन्होंने जम्बूस्वामी से कहा। उसी वाणी के द्वारा आप और हम अपना कल्याण कर सकते है।

वीर सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीर बुधा सश्रिता।
वीरेणाभिहत स्वकर्मनिचयो वीराय नित्य नम।।
वीरातीर्थमिद प्रवृत्तमखिल, वीरस्य घोर तप।
वीरे श्रीधृतिकान्तिकीर्तिनिचय हे वीर! मा पालय।।

अर्थात् वीर भगवान सुरेन्द्रो और असुरेन्द्रो द्वारा पूजित हैं। ज्ञानीजन उनके पथ का ही अनुसरण करते हैं। उन्होने अपने समस्त कर्मो का नाश कर डाला है वीर भगवान से ही इस तीर्थ की प्रवृत्ति हुई हे। वीर भगवान का तप घोर था। उनमे अद्‌भुत श्री, अनोखा धीरज और अनुपम क्राति थी। उनकी कीर्ति का वर्णन नही किया जा सकता। ऐसे श्री वीर भगवान हमारी रक्षा करे।

भगवान जिस–जिस अवस्था मे रहे उस–उस अवस्था मे इन्द्र ने उनकी पूजा की। भगवान के गर्भकल्याण के समय इन्द्र ने उत्सव मनाया। जन्मकल्याण के समय मेरु पर्वत पर जाकर उत्सव किया। दीक्षा लेने पर उसने दीक्षा–महोत्सव किया।

भगवान ने घोर तप करके कर्मो का विनाश कर डाला। उनके तप का ही यह प्रभाव हैं कि भगवान का शासन अब तक चल रहा हैं। धर्म के नाम पर ससार मे अनेक सत्ताए हो चुकी हैं जिन्हे राजाओ का भी आश्रय मिला था अर्थात् राजा भी उनकी आज्ञा मे थे। राजाओ का आश्रय पाकर भी आज उन धर्मो का ह्रास हो गया है। जैनधर्म का रक्षक कोई राजा नहीं है फिर भी वह अपने पेरो पर खडा है। इसका कारण भगवान की तपस्या ही है। उन्ही के तप के प्रबल प्रभाव से अनेक भीषण सघर्षों मे जेनधर्म ने विजय प्राप्त की है और आज भी वह विजयशील है। दुनिया जैनधर्म के सिद्धान्तो के अमल मे ही अपनी भलाई देख रही है।

प्राचीनकाल मे राजाओ के साथ उनकी रानियॉ सती होती थी। भारतीय विचारको ने उसका विरोध किया ओर अग्रेजो के शासन म वह प्रथा बन्द कर दी गई। लेकिन जैनधर्म के अनुसार सथारा जेसा पहल होता था वेसे ही आज भी होता है। जैनधर्म का रक्षक कोई राजा नहीं हें फिर भी उसम ऐसी स्वाभाविकता भरी है कि उसके किसी सिद्धान्त का खण्डन नही किया जा सकता। यह सब भगवान के तप का ही प्रभाव है।

नौ चौमा सो तप कियो।
ते प्रणवो वर्धमान।।

भगवान के तप के प्रभाव से ही आज यह शासन अपन पूर्व रूप म विद्यमान है। यद्यपि काल के प्रभाव से इसम नाना सम्प्रदाय उत्पन्न हो गए हैं फिर भी वेसी अन्धाधुन्धी यहॉ नही हे जेसी कि अन्यत्र दिखाई देती ह।

उदाहरणार्थ– एक पुस्तक मे लिखा हे कि ईसा का यह उपदश हात हुए भी कि यदि तुम्हारे एक गाल पर थप्पड मारे तो तुम उसके सामन दूसरा गाल कर दो ईसा के इस उपदेश के पीछे तप का प्रभाव न होन स ईसाइया

ने अपने धर्म मे स्वय ही बडी अन्धाधुन्धी मचा रखी है। बाइबिल का शब्द पढ लेने पर उसका अनुवाद करने पर या उसके उपदेश के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की शका करने पर लोग जिन्दे जला दिये गये है। उस धर्म के ठेकेदारो ने किसी को कूट–कूट कर मारा तो किसी को खण्ड–खण्ड करके मारा। अन्धाधुन्धी धर्म के नाम पर ही की गई थी। इस पकार के धर्म के नाम पर हजारो नही लाखो मनुष्यो की हत्या की गई हैं लेकिन जैनधर्म के किसी अनुयायी ने धर्म के नाम पर आज तक किसी को नही सताया, किसी की हत्या नही की। जैन धर्म के अनुयायियो ने धर्म का प्रचार करने मे अनेक बाधाएँ सहन की है कष्ट सहन किये हैं, मार खाई हैं, यहॉ तक कि बहुतो ने प्राण भी दिए है मगर कभी किसी के प्राण लिए हो, ऐसा नही सुना गया। यह सब भगवान महावीर के तपोबल का प्रभाव है। उनका ऐसा प्रभाव था और वह इतना उत्कृष्ट और निर्मल था कि उनके धर्म के अनुयायियो ने अपना धर्म फैलाने के लिए कभी किसी को नही सताया। आज जैन धर्म के अनुयायी राजा नही हैं तो क्या हुआ। किसी समय सोलह–सोलह देशों पर शासन करने वाले राजा इसके अनुयायी थे। वे प्रचण्ड शक्तिशाली और प्रतापी योद्धा थे। किन्तु धर्म का नाम लेकर उन्होने किसी को नही सताया। किसी को लेशमात्र भी भय नही दिखलाया।

अगर कोई जैन धर्म मानने वाला कुपात्र पुरुष हिसा भी कर डाले तो भी कोई समझदार यह कहने के लिए तैयार नहीं होगा कि जैनधर्म की शिक्षा ऐसी है। मगर मुस्लिम धर्म के अनुयायियो के कामो की तरफ देखिए तो मालूम होगा कि मुस्लिम धर्म के फैलाने के उद्देश्य से उन्होने कैसे–कैसे अत्याचार किये हैं। उनके शास्त्र मे ही काफिरो के लिए पत्थर लिखे हैं।

भगवान महावीर ने ग्यारह वर्ष, छह मास और पच्चीस दिन तप किया और नौ बार चौमासी तप किया। वे दिन–रात मे कभी पानी की एक बूँद भी नही लेते थे, तिस पर भी दिन को सूर्य की आतापना लेते और रात्रि मे वीरासन से खडे रहते थे। भगवान ने अपने अनुयायियो को तपस्या का मार्ग सिखलाने के निमित्त इतना उग्र तप किया था। भगवान इतना तप न करते तो ऐसे कुसमय मे, नाना प्रकार की प्रतिकूल और भीषण परिस्थितियो मे उनका धर्म स्थिर कैसे रहता?

आज न्याय की तराजू पर एक ओर जैनियो की तपस्या रखो और दूसरी ओर सारे ससार की तपस्या रखो। जैनो की सख्या कम होने पर भी देखो कि जैनियो की तपस्या की बराबरी क्या सारे ससार की तपस्या मिल कर भी कर सकती है? भारत बीच में भूल कर अब तप की महिमा और अहिसा की शक्ति को फिर समझ रहा है। वह महावीर भगवान के सिद्धान्तो की ओर झुक रहा है। दूसरे को कष्ट न देकर स्वय कष्ट सह लेना अनशन करना यह भावना महावीर स्वामी के सिद्धान्त की है और भारत ने इस भावना का अनुसरण किया हैं।

गॉधीजी ने जैनधर्मानुयायी कवि रामचन्द्र भाई को अपना धर्मविषयक गुरु माना है। गॉधीजी कभी के ईसाई बन गये होते पर सयोगवश उन्ह रामचन्द्र भाई मिल गये। रामचन्द्र भाई से उन्होने कुछ प्रश्न किये। गॉधीजी को सन्तोषजनक उत्तर मिल गया। इस कारण वे ईसाई होने से बच गय। वे ईसाई हो गये होते तो आज कौन जाने किस रूप मे होते। पर जेन धर्म के प्रताप से ऐसा नही हुआ।

गॉधीजी ने अपने जीवन मे जितनी तपस्या की हे उतनी शायद ही किसी दूसरे देश के नेता ने की होगी। इक्कीस–इक्कीस दिन तक ता उन्हान अनशन ही किया हे और दूसरी तपस्या का अन्दाज लगाना कठिन हे। व तपस्या के प्रभाव को भली–भॉति जानते हैं। गीता मे एक श्लोक हें–

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन ।

इसका सीधा सादा अर्थ तो यह है कि निराहार मनुष्य विषय-हीन हो जाता है। निराहार देह मे विषय नही ठहरते। लेकिन वासना ब्राह्मतप से नहीं जाती। वासना का नाश करने के लिए परमात्मा के ध्यान की आवश्यकता है।

लोकमान्य तिलक ने इस अर्थ को घुमा-फिरा कर यह आशय निकाला है कि उपवास करना ढोग है आत्म हत्या है। तिलकजी के एकसा अर्थ करने का कारण सभवत यही हो सकता है कि उन्हे उपवास का अनुभव नही था। जिसने उपवास ही न किया हो वह उपवास के विषय मे ठीक निष्कर्ष नही निकाल सकता। इसके विरुद्ध गाधीजी को उपवास सम्बन्धी व्यक्तिगत अनुभव है, अत उन्होंने उक्त श्लोक का वही अर्थ किया हे जो मैंने ऊपर बतलाया है। दोनो के अर्थ मे अन्तर पडने का कारण यही है कि एक ने उपवास नही किया और दूसरे ने उपवास करके अनुभव प्राप्त किया हे। अमल किये बिना सिद्धि प्राप्त नही होती इसलिए भगवान महावीर ने जो कुछ कहा है वह सब करके दिखाया भी है।

भगवान महावीर ने प्रभावशाली तप किया, उसी का यह परिणाम है कि आज भी साधु, साध्विया श्रावक श्राविकाए तप करते हैं। आज जैन महात्माओ मे त्याग-वैराग्य की जो शक्ति है, वह सब भगवान महावीर के तप का ही प्रताप है।

भगवान महावीर से अतुल तीर्थ निपजे हैं। उन धीर महाप्रभु की तपस्या रोमाचकारिणी और बडी प्रभावशालिनी थी।

श्री जिनराय का ध्यान लगावे,
ता घर आनन्द-मगल छावे।
सिद्धारथ राय के नन्द अनोपम,
रानी त्रिशला देवी कूख जो आवे।
चैत सुदी तेरस की रजनी,
जन्म भयो प्रभु सब सुख पावे।।श्री ।।

भगवती सूत्र मे कहा हैं-

तहारूवाण समणाण निग्गथाणा।

यही पाठ भगवान के विषय मे भी आया हैं और कहा हे-

इहलोगहियाए परलोगहियाए।

तथारूप के श्रमण निर्ग्रन्थ या अरिहन्त भगवान के नामगोत्र का श्रवण करना भक्ति करना इस लोक और परलोक मे हित और सुख देने वाला है।

मित्रो! अगर आपको सूत्र के वचन पर श्रद्धा हैं तो निश्चय कर लो कि भगवान देवाधिदेव हैं। उनकी शरण छोडकर दूसरे के शरण मे जाना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है?

बहुत से लोग जगन्नाथ प्रभु का शरण छोड़कर भैरो भवानी की शरण लेते हैं। शायद उनका ख्याल है कि भगवान् तो परलोक मे कल्याणकारी हैं। लेकिन गीता मे भी कहा है कि परमात्मा को पूजने वाला परमात्मा को प्राप्त होगा और भूतो–प्रेतों को पूजने वाला भूतो–प्रेतो को प्राप्त होगा।

अब प्रश्न किया जा सकता है कि भगवान् का ध्यान किस प्रकार लगाया जाय? आज पर्युषण का प्रथम दिवस है। आज से लेकर आठ दिनो मे भगवान् महावीर को विशेष रूप से ध्यान मे लाना है और उस ध्यान मे अन्तराय करने वाले विघ्नो को हटाना हैं। ऐसे विघ्न अनेक हैं पर मुख्य रूप से दो विघ्नो की ओर आपको ध्यान देना चाहिए। वे यह हैं शास्त्र की बात को अन्यथा समझ लेना और लौकिक भावनाओं में मन का फसा रहना। आत्मकल्याण का पहला उपाय शास्त्र की बात यथार्थ रूप में समझना है। शास्त्र का आशय कुछ और हो और आप समझ ले कुछ और ही तो बडा अनर्थ होता है। कुछ का कुछ अर्थ समझ लेने का क्या परिणाम होता है इस बात को सरलता और स्पष्टता के साथ समझाने के उद्देश्य से एक दृष्टान्त कहता हू।

एक नामी सेठ था। खूब धनाढ्य था। उसके पाच लडके थे, लड़की एक भी नहीं थी। एक दिन सेठ ने विचार किया 'हम दूसरे के यहा से लडकी लाते तो हैं पर दूसरे को देते नहीं हैं। वह मेरे ऊपर ऋण है।' इस प्रकार विचार करने के बाद सेठ के दिल मे कन्या का पिता बनने की भावना उत्पन्न हुई।

पुण्ययोग से सेठ की भावना पूर्ण हुई। उसके यहा एक लडकी जन्मी। सेठ का घर वैष्णव सम्प्रदाय का था। घर के सभी लोग विष्णु की भक्ति मे तल्लीन रहते थे। वे अपने धनवैभव आदि को ठाकुरजी का प्रताप समझते थे। इसके अनुसार उन्होने उस लडकी को भी ठाकुरजी का ही प्रताप समझा।

पाच लडको के बाद गहरी भावना होने पर लडकी का जन्म हुआ था। इसलिए बड़े ही लाड–प्यार के साथ लडकी का पालन–पोषण किया गया। लडकी का नाम फूलाबाई रखा गया। इस बात का बहुत ध्यान रखा जाता था कि लडकी को किसी भी प्रकार का कष्ट न होने पाये। लडकी जब कुछ सयानी हो गई तब भी सेठजी उसे उसी प्रकार रखते थे। लडकी कभी

कुछ अपराध या भूल करती तो भी सेठजी एक शब्द न कहते और न दूसरो को कहने देते। इसी प्रकार व्यवहार चलता रहा और लडकी बडी हो चली।

जैसा होने वाला होता है वैसे ही निमित्त भी मिल जाते हैं। तदनुसार सेठ के यहा एक दिन कोई पडित आये और उन्होने गीता का निम्नलिखित श्लोक पढा–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण ब्रज।
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ।।66।।

फूलाबाई इसका अर्थ समझी– सब धर्मो को छोडकर मेरी शरण मे आ जाओ। तुमने कितने ही पाप क्यो न किये हो, मैं उन सब से मुक्त कर दूगा। अब उसने निश्चय कर लिया– नारायण पापो से मुक्त कर ही देते हैं, फिर किसी भी पाप से डरने की आवश्यकता ही क्या है? पाप से डरने का अर्थ नारायण की शक्ति पर अविश्वास करना होगा। बस, केवल ईश्वर से डरना चाहिए पापो से नहीं।

ठाकुरजी से डरने का अर्थ उसने यह समझा कि उन्हे विधिपूर्वक नैवेद्य आदि चढाकर पूजना चाहिए– किसी प्रकार की अविधि नही होनी चाहिए। इससे ठाकुरजी प्रसन्न होगे।

फूलप्रबाई के हृदय मे यह सस्कार ऐसी दृढता के साथ जम गया कि समय–समय पर वह कार्यो मे भी व्यक्त होने लगा। हृदय का प्रबल सस्कार कार्य मे उतर ही आता है। फूलाबाई का व्यवहार अपने नौकरो–चाकरो और पडौसियो के प्रति ऐसा ही बन गया। वह सब से लडती झगडती और निरकुश व्यवहार करती। इस प्रकार फूलाबाई शूलाबाई बन गई।

पहले कहा जा चुका है कि उस घर के सभी लोग सभी बातो के लिए ठाकुरजी का ही प्रताप समझते थे। घर मे जो भावना फैली होती है उसी को बालक ग्रहण करते है और वैसी ही भावना बन जाती है। फूलाबाई की भावना भी ऐसी ही हो चली। वह भी हर चीज को ठाकुरजी का प्रताप समझने लगी। सेठजी के यहा यह भजन गाया जाता था।

जो रूठे उसको रूठन दे, तू मत रूठे मन बेटा।
एक नारायण नहि रूठे तो, सबके काट लू चोटी पटा।।

फूलाबाई ने इस भजन का यह आशय समझ लिया कि सब लोग रूठते हैं तो परवाह नही। उन्हे रूठ जाने दो। अगर ठाकुरजी अकेले न रूठे तो सबके सिर के बाल उतरवा सकती हू।

फूलाबाई ने सोचा– दुनिया मे बहुत लोग हैं। किन–किन की अलग–अलग खुशामद करती फिरूगी। अतएव अच्छा यही है कि अकेले नारायण को राजी कर लिया जाय। फिर चाहे जिससे चाहे जैसा व्यवहार किया जा सकता है।

फूलाबाई के ऐसे व्यवहार को घर के लोग हसी में टालते रहे मगर फूलाबाई समझने लगी कि यह सब नारायण भगवान् का ही प्रताप है। नारायण मददगार हो तो कोई क्या कर सकता है? इस प्रकार फूलाबाई सबके साथ शूल का सा व्यवहार करने लगी।

फूलाबाई की सगाई एक करोडपति सेठ के घर की गई। यह देखकर तो फूलाबाई के अभिमान का कोई पार ही न रहा। यह सोचने लगी मुझ पर ठाकुरजी की बडी कृपा है। यही कारण है कि इस घर मे मैंने सभी पर अकुश रखा है, फिर भी मैं करोडपति के घर ब्याही जा रही हू। जैसी धाक मैंने यहा जमा रखी है, वैसी ही ससुराल मे जमा सकू तो ठाकुरजी की पूरी कृपा समझू।

विवाह हो गया। फूलाबाई ससुराल पहुची। ससुराल पहुचकर ससुर सासू के पैर छूना आदि विनीत व्यवहार तो दूर रहा उसने अपनी दासी को सासू के पास भेजकर कहला दिया– 'अभी से यह बात साफ कर देना ठीक जचता है कि मैं इस घर मे गुलाम या दासी बनकर नही आई हू। मैं मालकिन बनकर आई हू और मालकिन बनकर ही रहूगी। अपने साथ मे धन लेकर आई हू, कोरी नही आई हू। सब काम–काज मेरे कहने के अनुसार होता रहा तो ठीक, अन्यथा इस घर मे तीन दिन भी मेरा निर्वाह नही होगा।

फूलाबाई सोचती थी– ठाकुरजी प्रसन्न हैं तो फिर डर किसका? आरम्भ मे प्रभाव जम गया तो जम गया, नही तो जमना कठिन है। इसलिए पहले ही आतक जमा लेना चाहिए। डर–भय की तो परवाह ही नही है।

नवागत पुत्रवधू का यह अनोखा सदेश सुनकर सासू को अचरज भी हुआ और दु:ख भी हुआ। वह सोचने लगी– यह कैसी विचित्र बहू आई है। इसे इतना अहकार क्या है? है तो यह बडे घर की बेटी पर इतने घमण्ड का क्या कारण हो सकता है? घमण्ड किसी को हो सकता है लेकिन इस प्रकार ब्याह कर आते ही तो कोई बहू ऐसा नही कहला सकती। देखने मे सुन्दर है बडे घर की है, फिर भी इसकी बोली और प्रकृति ऐसी क्या है? जान पडता है इसके शरीर में कुछ–न–कुछ अवश्य है। फिर भी इसे अभी तो प्रसन्न ही

रखना चाहिए। कुछ दिनो मे ठिकाने आ जाएगी। ऐसा सोचकर [illegible] ने कहला भेजा– अच्छा जैसा वह कहेगी वैसा ही होगा।

फूलाबाई के अहकार को और ईधन मिल गया। वह सोचने लगी– धन्य हैं ठाकुरजी उन्होने यहा भी मेरा बेडा पार लगा दिया। बडी प्रसन्नता और उत्साह के साथ उसने ठाकुरजी की मूर्ति पधराई और कहने लगी– ठाकुरजी का प्रभाव मैंने प्रत्यक्ष देखा।'

थोडे ही दिनो मे फूलाबाई के व्यवहार से घर के सब लोग काप उठे। उसने सब जगह अपना एकछत्र राज्य जमाना शुरू किया। वह न किसी से प्रेम करती न किसी का लिहाज रखती। सासू वगैरह समझ गई कि बहू का स्वभाव दुष्ट है। मगर घर की बात बाहर जाने से इज्जत चली जाएगी। इस विचार से घर के लोग कडवे घूट के समान फूलाबाई के व्यवहार को सहन करते गये और उसे क्षमा करते रहे। उनकी क्षमा को फूलाबाई ने ठाकुरजी का अपने ऊपर विशेष अनुग्रह समझा। उसका व्यवहार दिन–प्रतिदिन बुरा होता चला गया।

फूला की ससुराल के किसी सबधी के घर विवाह था। इस विवाह मे सपरिवार सम्मिलित होना आवश्यक था। बहू को भी साथ लेना जरूरी था। मगर चिन्ता यह थी कि अगर पराये घर जाकर भी इसने ऐसा व्यवहार रखा तो इतनी बडी इज्जत कौडी की हो जायेगी। अन्त मे बहू को घर पर ही छोड जाने का निश्चय किया गया। मगर फूलाबाई को छोड जाना भी सरल नही था। इसलिए उसकी सास ने एक उपाय सोच लिया।

मूर्ख लोग अपनी मिथ्या प्रशसा से प्रसन्न होते हैं। उन्हे प्रसन्न करके फिर जो चाहे वही काम करा सकते हो। वे खुशी–खुशी कर देगे। सासू ने फूलाबाई की खूब प्रशसा की। अपनी प्रशसा सुनकर वह फूल गई। उसके बाद सासू ने कहा– इस विवाह मे जाना तो सभी को चाहिए, पर घर सूना नही छोडा जा सकता। बडा घर है। इसे समालने के लिए होशियार आदमी चाहिए। तुम बहुत होशियार हो। अगर घर रह कर इसे समाले रहो तो सब ठीक हो जाएगा।

फूलाबाई फूलकर कुप्पा हो चुकी थी। उसने कहा– तुम्हारे बिना कौन-सा काम अटका है? तुम सब पधारो। घर सभालने के लिए मैं अकेली ही काफी हू।

घर के लोग यही चाहते थे। फूलाबाई को घर छोड़कर सब विवाह मे सम्मिलित होने के लिए रवाना हो गये।

उधर सब लोग विवाह के लिए गये और सयोगवश इधर सेठ की समानता रखने वाले एक सगे मेहमान सेठजी के यहा आ गये। मेहमान भी ईश्वर मे निष्ठा रखने वाला भक्त था। फूलाबाई को मेहमान के आने का समाचार मिला। उसने भोजन की तैयारी करके उसे जीमने के लिए बुलाया। मेहमान जीमने बैठा और भोजन का थाल उसके सामने आया। उसने जैसे ही भोजन करना प्रारभ किया कि उसी समय फूला ने कड़क कर कहा— कभी पहले भी ऐसे टुकडे मिले हैं या नही? एकदम भुखमरो की तरह भोजन पर टूट पड़े! कुछ विचार भी नहीं किया ओर पेट भरने लगे। कै दिन के भूखे आये हो?

ऐसे समय मे क्रोध आना स्वाभाविक था। भोजन करने के अवसर पर यह शब्द कह कर फूलाबाई ने भोजन को जहर बना दिया है उसको मैं अमृत न बना सका तो फिर मैं भक्त ही कैसा? इसमे और मुझ मे अन्तर ही क्या रहेगा? मैं तो आज आया हू। और आज ही चला भी जाऊगा मगर इसके घर के लोग कितने दयाशील ओर सहिष्णु होगे जो रोज—रोज इसके ऐसे बर्ताव को सहन करते होगे! मेरा इसके साथ परिचय नहीं है फिर भी इसने पत्थर—सा मारा है। यह घरवालों के साथ कैसा सलूक करती होगी? सचमुच वे लोग धन्य हैं जो इसके इस दुष्टतापूर्ण व्यवहार को शाति के साथ सहन करते हैं! अगर मैं इसके स्वभाव को और भडका दू तो इसमे मेरी विशेषता क्या है? मैं इसका मेहमान बना हू किसी उपाय से अगर इसका सुधार कर सकू तो मेरा आना सार्थक हो सकता है।

मन ही मन इस प्रकार विचार कर उसने फूलाबाई से कहा आपने क्या अच्छी बात कही है! यह भोजन की तैयारी और उस पर आपका यह बोलना मैंने आज ही देखा है। आप ऐसी हें तभी तो यह तैयारी कर सकी हें।

फूलाबाई मन ही मन कहती है— ठाकुरजी का प्रताप धन्य हे कि उन्होने इसे भी मेरे सामने गाय बना दिया है।

प्रकट मे वह बोली— अच्छी बात है अब आप जीम लीजिए। दो—चार दिन ठहरोगे न? ऐसा भोजन दूसरी जगह मिलना कठिन हे।

मेहमान— आप ठीक कहती हैं। ऐसा भोजन दूसरी जगह कदापि नही मिल सकता। मैं अवश्य दो—चार दिन रहूगा। आपकी कृपा है तो क्या नही रहूगा?

उसने सोचा— इस भोजन को अमृत बना लेना ही काफी नही है। इस बाई को भी मैं अमृत बना लू तो मेरा कर्त्तव्य पूरा होगा।

वास्तव मे सुधार का काम बडा टेढा होता है। तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है। सुधारक को बडी विकट परिस्थितियो का सामना करना पडता है। इन कठिनाइयो मे जो भी दृढ रहता हे और अपने उद्देश्य की प्रशस्तता का ख्याल रख कर विकट से विकट सकटो को खुशी के साथ सहन कर लेता है वह अपने उद्देश्य मे सफल होता है।

मेहमान जीम कर चला गया। पूछताछ करके उसने पता चलाया कि फूलाबाई का स्वभाव ही ऐसा है। यह केवल ठाकुरजी की भक्ति करती है और सबकी कम्बख्ती करती है। मेहमान ने सोचा– चलो, यह ठीक है कि यह ठाकुरजी की भक्ति करती है। नास्तिक को समझाना कठिन है जिसमे थोडी बहुत भी श्रद्धा है उसे समझाना इतना कठिन नहीं है।

मेहमान ने एक–दो दिन रहकर फूलाबाई के वाग्बाणो को खूब सहन किया और उसकी प्रकृति का भलीभाति अध्ययन कर लिया। उसने समझ लिया कि यह ठाकुरजी के सामने सबको तुच्छ समझती हे और इसने धर्म का स्वरूप उलटा समझ लिया है। उधर फूलाबाई सोचने लगी– केसा बेशर्म है यह आदमी जो हसता हुआ मेरी सभी बातो को सहन करता जाता है। जो लोग मेरे आश्रित हैं वे भी मेरे व्यवहार को देखकर अगर मुह से कुछ नही कहते तो भी आखे लाल तो कर ही लेते हैं। मगर इसके नेत्रो मे जरा भी विकार नही दिखाई देता। चेहरा ज्यो का त्यो प्रसन्न बना रहता है। इसे मेरी परवाह नही है फिर भी इतना शात रहता है। यह मनुष्य कुछ निराला है।

दो–तीन दिन बाद आधी रात के समय, मेहमान फूलाबाई के कमरे के पास गया और उसे आवाज दी। फूलाबाई ने पूछा कौन है? उसने अपना नाम बता दिया। आधी रात के समय आने के लिए फूलाबाई उसे धिक्कारने लगी। तब उसने कहा– मै किवाड खोलने के लिए नहीं कहता। आपके हिताहित से सबध रखने वाली बात सुनाने आया हू। न सुनना चाहो तो मैं जाता हू। सुनना हो तो किवाड की आड में से सुन लो।

हिताहित की बात सुनने के लिए फूलाबाई किवाड के पास खडी हो गई है। उसने कहा–क्या कहना है कह डालो। मेहमान कहू या न कहू, इसी दुविधा मे पडा हू। कुछ निर्णय नही कर पाया हू।

फूलाबाई– जो कहना चाहते हो कह डालो। विचारने की बात ही क्या है? डरो मत।

मेहमान– आपका भी आग्रह है तो कह देता हू। अभी मैं सो रहा था। स्वप्न मे ठाकुरजी ने दर्शन दिये थे। फूला– ठाकुरजी! तुम्हारे भाग्य बडे है जो ठाकुरजी ने दर्शन दिये। उन्होने तुमसे क्या कहा है?

मेहमान– उन्होंने कहा कि भगत! चल। अब मैं इस घर में नहीं रहूगा तेरे साथ चलूगा। मैंने ठाकुरजी से कहा– मैंने इस घर का नमक खाया है। आप मेरे साथ चलेगे तो मेरी बदनामी होगी।

फूला– ठाकुरजी मेरे घर से रूठे क्यो हैं? किस कारण जाना चाहते हैं?

मेहमान– मैंने यह भी पूछा था कि आप इस घर से क्यो रूठ गये हैं? उन्होने उत्तर दिया कि मैं इस घर से ऊब गया हू। अब इस घर की सत्ता मुझसे नही सही जाती। मैं धीरज रख रहा था कि अब सुधरे अब सुधरे मगर अभी तक कोई सुधार नही हुआ। उन्होने यह भी कह दिया कि मैं तेरे हृदय मे बसूगा। तू भक्त है। मैंने ठाकुरजी से पूछा– क्या कपडो की या (नैवेद्य) की कमी रही?

फूलाबाई ने चट किवाड खोल दिये और कहने लगी– मैंने ठाकुरजी के लिए किसी चीज की कमी नहीं होने दी। फिर वे नाराज क्यो हो गये?

मेहमान– मैंने भी तो उनसे यही प्रश्न किया था। उन्होने उत्तर दिया तू भी मूर्ख मालूम होता है। मैं क्या उसके कपडे लत्ते के लिए नगा–भूखा बैठा हूं? मैं अपनी सत्ता से ससार का ईश्वर हुआ हू। वह क्या चीज है जो मुझे कपड़े लत्ते और नैवेद्य देगी? मुझे उसकी परवाह ही कब है?

फूला– मैं जानती थी कि ठाकुरजी इन्ही चीजो से प्रसन्न होते हैं। फिर मुझसे क्या अपराध हुआ है जो ठाकुरजी जाने की सोच रहे हैं?

मेहमान–ठाकुरजी ने मुझे एक बात कही है और उसका उत्तर तुमसे मागने की आज्ञा दी है। उन्होने पूछवाया है– इस बाई के एक सुकुमार लडका हो। कोई मनुष्य उस लडके को मारे या अपमान करे। फिर उन्ही हाथो से एक थाल मे पकवान भर कर वह आदमी फूलाबाई को देने आवे तो बाई लेगी या नही?

फूला– जो मेरे बेटे को दु ख देगा, उसके पकवान लेना तो दूर रहा मैं उसका मुह भी नही देखना चाहूगी।

मेहमान– तुम्हारी तरफ से यही उत्तर मैंने ठाकुरजी को दिया था। परन्तु ठाकुरजी कहने लगे– उस बाई के तो एक ही बेटा होगा किन्तु मेरे तो ससार के सब जीव बेटे हैं। अपने मुह के विष से जो मेरे बेटो को दु ख देती

पूरी करके उन्हे रखना चाहती है या नहीं?

फूला– बलिहारी हे आपकी। मैं अब आपकी शरण मे हू। आप. । तो ठाकुरजी स्वप्न मे ही मिले और स्वप्न मे ही आपने उनसे वातचीत की परन्तु मुझे तो आप साक्षात ठाकुरजी मिले हैं। आपने मेरी आखे खोल दी। वास्तव मे मेरी क्रूरता के कारण सब त्राहि–त्राहि कर रहे हैं। मै भक्त नही नागिन हू। मैंने सदा ही– अपने मुह से विष उगला है। आप पर भी मेने जहर बरसाया पर आपकी आखो से अमृत ही निकला। आपने मुझे सच्ची शिक्षा दी है। सब से पहले आप ही मेरा अपराध क्षमा कीजिए। अपराध रहने से ठाकुरजी न रहेगे तो मैं अपराध रहने नही दूगी। फिर ठाकुरजी कैसे जा सकेगे?

मेहमान– आपने मुझसे जो कुछ कहा है, उससे मुझे दु ख नही हुआ। परन्तु जो अशक्त हैं और धर्म को नही जानते है उनसे क्षमा मागो। इसी मे आपका कल्याण है। मे तो आपके क्षमा मागने से पहले ही क्षमा कर चुका हू।

प्रात काल होते ही फूलाबाई ने सबसे क्षमा मागी। पडौसियो, नौकरो–चाकरो से बडे प्रेम के साथ वह मिली और अपने अपराधो के लिए

पश्चात्ताप करने लगी। उसने कहा– आप सब लोग अब तक मुझसे दु खी हुए हैं। आपने मेरे कठोर व्यवहार को शाति के साथ सहन किया है। एक बार और क्षमा कर दीजिए।

अगर फूलाबाई का मेहमान उसकी बाते सुनकर क्रोधित हो जाता तो फूलाबाई का सुधार हो सकता था? नही। वास्तव मे क्षमा बडा गुण है। क्षमा के द्वारा सबका सुधार किया जा सकता हे।

विवाह कार्य से निवृत्त होकर फूला के घर के लोग जब लौटे तो फूला आखो से जल बरसाती हुई सबके पेरो मे पडी और अपने अनेक अपराधो के लिए क्षमा मागने लगी। वह कहने लगी– आप मुझे क्षमा कर देगे तभी ठाकुरजी रहेगे, नहीं तो चले जायेगे।

सब लोग फूलाबाई के इस आकस्मिक परिवर्तन को देख चकित रह गए। किसी ने कहा– अब तुमने अपना नाम सार्थक किया। पर यह तो कहो कि इस परिवर्तन का कारण क्या है?

फूला– अपने घर एक भक्त आये हैं। यह परिवर्तन उन्ही के प्रताप से हुआ है।

सारा वृत्तान्त जानकर सब परिवार के लोगो ने उन मेहमान की प्रशसा की। उनका बडा उपकार माना और देवता की तरह सत्कार किया। सेठ ने कहा– सच्चे भक्त से ही ऐसा काम हो सकता है। आपने हमारा घर पावन कर दिया। जिस घर में सदा आग लगी रहती थी। उसमे आपने अमृत का स्रोत प्रवाहित कर दिया।

फूला ने भक्त मेहमान से कहा– भगतजी! अच्छा इस पद का अर्थ बतलाइए –

जो रूठे उसको रूठन दे, तू मत रूठे मन बेटा।
एक नारायण नहि रूठे तो, सबके काट लू चोटी पटा।।

भगत ने कहा– पहले तुमने जो अर्थ समझा हे वह बतलाओ। फिर में कहूगा।

फूला– मैंने यह अर्थ समझा था कि एक ईश्वर का खुश रखना ओर सबके चोटी–पट्टे लेना।

भगत– यही तो भूल है। इसी भूल ने तुम्हे चक्कर म डाल दिया था। इस पद का सही अर्थ यह है कि दूसरा रूठता है तो रूठन द। ह मन! तू मत रूठ। अर्थात् दूसरा अगर मारता ओर गाली देता हे तो तू क्राध मत कर।

एक नारायण नहि रूठे तो काट लू सब के चोटी पटा' इसका अर्थ स्पष्ट है। अगर मै तुम्हारी बातों पर क्रोध करता तो क्या तुम मेरे पैरो में पडती? मैंने अपने मन को नहीं रूठने दिया तो तुम मेरे पैरो मे गिरी यही तो चोटी–पट्टा काटना कहलाता है।

फूला– बहुत ठीक, अब मैं समझ गई। पर एक श्लोक का अर्थ और समझा दीजिए।

भगत कौन–सा श्लोक?

फूला–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज।
अहत्वाम् सर्वपापेम्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ।।18।।

भगत्– इसका अर्थ यह है कि तुझ में काम, क्रोध, आदि जितने पाप है मेरी शरण मे आ जाने से सब छूट जाएगे। तात्पर्य यह है कि जहा पाप हैं वहा ईश्वर की शरण नही है और जहा ईश्वर की शरण है वहा पाप नही है।

फूला– मैं आपकी कृतज्ञ हू। आपने मेरा भ्रम दूर कर दिया। आज मेरे नेत्र खुल गये। मैं कुछ का कुछ समझ बैठी थी।

इस कथा से स्पष्ट है कि शास्त्र के अभिप्राय को विपरीत समझ लेने से बडी गड–बडी हो जाती है। अतएव अन्यथा समझ लेना ध्यान का विघ्न है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि सच्चे धार्मिक या परमात्मा के आराधक को अन्य प्राणियो के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। अगर आपको भगवान के वचन पर श्रद्धा है तो जगत् के सब जीवो को अपना ही मानो। ऐसा करोगे तो भगवान् आपके हैं, अन्यथा भगवान् रूठ जाएगे।

आत्मवत् सर्वभूतेषु' और ' सव्वभूअप्पभूअस्स' अर्थात् समस्त प्राणियो को अपना समझो। अपनी आत्मीयता की सीमा क्षुद्र मत रहने दो। तत्त्वदृष्टि से देखोगे तो पता चलेगा कि अन्य जीवो मे और आपके अपने माने हुए लोगो मे कोई अन्तर नही है।

इस प्रकार परिपूर्ण मैत्री भावना को हृदय में स्थापित करके अगर प्रभु का ध्यान करेगे तो आपका परम कल्याण होगा।

बीकानेर,
21–8–30

4. आत्मोद्धार

गभीरता पूर्वक सत्य का विचार न करने वाले लोगो का कहना है कि साधु बनना एक प्रकार की अकर्मण्यता धारण करना है कितु कोई समझदार और विवेकशील पुरुष ऐसी बात नहीं कह सकता। गृहस्थ मुख्य रूप से अपने सासारिक कर्त्तव्यो का पालन करता है और गौणरूपसे धार्मिक कर्त्तव्यों का। उसे दुनिया की झझटे ऐसी फसाए रहती हैं कि वह आध्यात्मिक कर्त्तव्य को प्रधानरूप नहीं दे पाता। गृहस्थ का सासारिक कार्य इस जन्म मे लाभदायक हो सकता है, आगामी जन्मो मे नहीं। भविष्य अनन्त है। उस अनन्त भविष्य को मगलमय बनाने के लिए गृहस्थी की झझटो से दूर हट जाना आवश्यक होता हे। यद्यपि गृहस्थ भी अपनी मर्यादा के अनुसार धर्म और अध्यात्म की आराधना कर सकता हे फिर भी निवृत्ति जीवन मे जैसी आराधना की जा सकती है, वेसी गृहस्थ जीवन मे नही। इस कारण निवृत्तिमय जीवन का अर्थ यह नही है कि कोई साधु बनकर निठल्ला बेठा रहे और किसी कर्त्तव्य का पालन ही न करे। साधु अवस्था की निवृत्ति का अर्थ यह हे कि वह गृहस्थी के कामो म नही पडता। धन कमाना मकान बनवाना, बाल बच्चो का विवाह करना आदि कार्यो से साधु मुक्त हो जाता है।

इन कार्यो से निवृत्त होकर साधु अपनी प्रवृत्तियो का क्षेत्र नया बनाता है। वह अपनी आत्मा के शाश्वत श्रेय को लक्ष्य बनाकर महान कर्त्तव्या को स्वीकार करता हे। साधु की प्रवृत्ति आध्यात्मिक साधना के उद्देश्य स होती है। अतएव वह ऊचे दर्जे की प्रवृत्ति करता है और जगत् के हित का ही कारण बनता है।

साधु होना आत्मा को स्वतन्त्र बनाना है। अतएव साधु अपनी आत्मा को उच्च बनाना उचित समझता हे। इसक विपरीत जो लोग साधु हाकर भी

आत्मा को नीचे गिराते हैं, वे अपना ऐसा अहित करते हैं जैसा सिर काटने वाला बैरी भी नही कर सकता। ऐसे दुरात्मा को कठ छेदने वाले वैरी से अधिक वैरी समझो।

कहा जा सकता है कि सिर काटने वाला बैरी तो प्रत्यक्ष मे शरीर का विनाश करता है किन्तु दुरात्मा ऐसा कुछ नहीं करता फिर दुरात्मा को कठ छेदने वाले वैरी से अधिक क्यो कहा गया है?

जिन नास्तिको ने शरीर के साथ ही आत्मा का नाश मान रखा है, उन नास्तिको के लिए यह उपदेश नही है। यह उपदेश आस्तिको के लिए है। आस्तिक तो इस शरीर को वस्त्र के समान समझते हैं। वस्त्र के बदल जाने से जैसे पुरुष को नही बदला जाता, उसी प्रकार शरीर के बदलने पर आत्मा नही बदलती। सिर काटने वाला वैरी अनित्य शरीर का ही नाश करता है नित्य आत्मा का नही। सिर काटने वाले वैरी से अगर द्वेष न किया जाय तो वह कुछ भी हानि नही पहुचा सकता। यही नही बल्कि यह आत्मा की मुक्ति मे उसी प्रकार सहायक बन जाता है जैसे गजसुकुमार मुनि के लिए सोमल ब्राह्मण सहायक बना था। अतएव तात्विक दृष्टि से (निश्चयनय से) विचार किया जाय तो दूसरा कोई हमारा सिर नहीं काट सकता। हमारा सिर हम स्वय ही काट सकते है। हमने बुरे कर्म किये होंगे तो इसी कारण कोई हमारा सिर काट सकता है। बुरे कर्म न किये हो तो लाख प्रयत्न करने पर भी कोई हमारा कुछ भी नही बिगाड सकता।

ज्ञान स्वरूप आत्मा सिह के समान पूर्ण अधिकारी है और ज्ञानविकल आत्मा कुत्ते के समान है। कुत्ते को कोई ईट या पत्थर मारता है तो कुत्ता उस पत्थर या ईट को काटने के लिए झपटता है। वह समझता है कि यह पत्थर या ईट ही मुझे मारने वाला है। किन्तु सिह ऐसा नही करता। सिह को गोली या तीर लगता है तो वह मारने वाले की तरफ दौडता है। वह समझता है कि तीर या गोली का दोष नही वरन मारने वाला का दोष है।

जिसे यह ज्ञान हो जाएगा वह किसी दूसरे से लडाई नही करेगा, वह तो अपनी आत्मा के साथ जूझेगा। वह कहेगा– हे आत्मन्! तू अब विज्ञानधन हो जा। तू अपने विज्ञानधन स्वभाव को न समझने कारण दु खी हो रहा है।

अपना सिर काटने वाले को तो छोडिए, कई पीढी के पूर्वज का सिर काटने वाले से भी लोग बोलना पसद नही करते। आप लोग जब एक पूर्वज का सिर काटने वाले से भी मेल नहीं रखना चाहते और दुश्मनी रखते हैं तो ज्ञानीजन कहते हैं कि अपने दुरात्मा से वैर क्यो नहीं रखते? इस दुरात्मा ने विषय, कषाय दुराचरण और भोग के वश होकर एक–एक योनि में अनन्त–अनन्त बार चक्कर लगाये हैं। इसने अपने को दुस्सह दु खो का पात्र बनाया है। फिर इससे ज्यादा हानि करने वाला दूसरा कौन है?

हमारी आत्मा एक तरह से हमारी मित्र भी है और दूसरी तरह से शत्रु भी है। ऐसी स्थिति मे हमारा कर्त्तव्य है कि हम मित्र आत्मा के साथ भेट करे और शत्रु आत्मा से वेर करे। शत्रु आत्मा हमे अनादि काल से ऐसे घोर कष्टो मे डाले हुए है कि जिसका वर्णन कर सकना भी असभव है। इस दुरात्मा ने हमारा जितना अहित किया है उतना अहित किसी भी दूसरे वैरी ने नही किया। इस दुरात्मा ने ही दूसरे वैरी पैदा किये हैं। अगर मैंने इसे दूर कर न दिया तो फिर कोई वैरी ही नही रह जाएगा।

यह शिक्षा सभी मतो शास्त्रो मे मौजूद है। गीता भी कहती है –

उद्धरेदात्मनाऽऽमान नात्मानमवसादयेत्

अपनी आत्मा से आत्मा का उद्धार करो। आत्मा से ही आत्मा का उद्धार होगा। जब तक तुम स्वय तेयार न होओगे, कोई भी तुम्हे नही तार सकता। क्योकि डरपोक या कायरो को न तो किसी की सहायता मिली हे और न मिलेगी ही। श्रीआचारागसूत्र मे भी कहा हे –

पुरिसा। तुममेव तुम मित्त कि वहिया मित्तमिच्छासि।

अर्थात् अरे नर। तेरा असली मित्र तू स्वय हे। बाहरी मित्र की इच्छा क्यो करता है? भारतीयो ने आध्यात्मिक उन्नति खूब उठाई। वहुतो न समझ लिया– धर्म के लिए हमे मेहनत भी न करनी पडे ओर ईश्वर हम सीधा मोक्ष भी भेज दे। यह गलत समझ हानि का कारण वनी। मेहनत से बचने वाला ने धर्म और ईश्वर को समझा ही नही है। अगर ईश्वर विना परिश्रम किय ही तारता होता तो वह दयालु होने के कारण किसी के कहन की राह ही न देखता। अगर वह स्वय ही सबका उद्धार करता हे ता किसी जीव को दु खी

क्यो रहने देता है? क्या वह भी आलसी है? वास्तव मे ईश्वर तारनहार तो है पर जब तुम तरने के लिए तैयार होओगे तभी वह सहायता करेगा। इस बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं –

त्व तारको जिन। कथ भाविना ए तव,
त्वामुद्वहन्ति दृदेयेन यदुतरन्ता
यद्वा हतिस्तरति यजलमेश नून –
मन्तर्ग्रतस्य मरूता स किलानुभाव

– कल्याणमन्दिर

तू जगत का उद्धार करने वाला नही है। अगर तू उद्धार करने वाला होता तो ससार दु खी ही न रहता और न मुझे ससार के दु ख भोगने पडते। अतएव सिवाय इसके कि तू तारक नही है, और क्या कहूं? मगर एक हिसाब से तू तारक भी है। जब कोई तुझे हृदय मे धारण करता है तो तू उसे तार देता है। इस प्रकार तू तारक है भी और नहीं भी है।

मशक मे हवा भर कर उसका मुह बाध दिया जाय और इसका आश्रय लेकर तेरा जाय तो वह तार देती है। लेकिन अगर उसमे हवा न भरी जाय या हवा के बदले पत्थर भरे जाए तो वह नही तिरा सकती। वैसे वायु ता सभी जगह है लेकिन उसे जो अपना कर लेता है उसी को वह तिराती है।

आचार्य कहते हैं– हे प्रभु। तू वायु के समान है और मैं मशक के समान। अगर मै तुझे हृदय मे धारण कर लू तो तू बिना तारे नहीं रहेगा। अगर तुझ हृदय मे धारण न करू और तेरे बदले विषय–कषाय आदि पत्थर भर लू तो कैस तारेगा? फिर तेरा क्या दोष है?

वायु मशक को तिराने वाली हे लेकिन वह कहती है कि मुझे अपने भीतर भरी तो मै तुझे तारुगी। अन्यथा मेरे भरोसे मत रहना। इसी तरह परमात्मा कहता है मुझे हृदय मे धारण कर लो तो मैं ससार–सागर के जल मे डूबने नही दूगा। अगर ऐसा न किया तो मै क्या कर सकता हू।

मै अभी कह चुका हू कि आत्मा से आत्मा का उद्धार करो। आत्मा से आत्मा का उद्धार किस प्रकार करना चाहिए यही बात मैं थोडे मे कहता हू। अगर आपको अपना उद्धार करना है तो ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो।

अपना उद्धार करना शुरू कर दो। मे जो मार्ग बतला रहा हू उस पर बडे से बडा विद्वान भी चल सकता है और बालक भी चल सकता

है। पण्डित और बालक दोनो के लिए यह मार्ग सुगम है। इस मार्ग का अवलम्बन लोगे तो आपका काम सिद्ध हो जायेगा। वह मार्ग यह हे –

तो सुमरण विन अणि कलियुग मे,
अवर ने कोई अधारो।
मैं वारी जाउ तो सुमरण पर,
दिन–दिन प्रीति वधारो।
पदमप्रभु पावन नाम तिहारो,
पतित उधारन हारो ।। पदम ।।
परम धरम को मरम महारस,
सो तुम नाम उचारो ।।
या सम मन्त्र नही कोउ दूजो,
त्रिभुवन मोहनगारो ।। पदम ।।

इस प्रकार का प्रयास करो और इस आत्मा को समझा लो कि हे आत्मा! तू इस सर्वव्यापक परमात्मा को छोडकर दुरात्मा मत बन। तू उस परमात्मा का ध्यान उठते–बेठते कर और आठो पहर उसका जाप चलने दे। उसके जप में आठो पहर रहने से तेरे पास पाप फटकेगा ही नही।

मैं तो सतो, सतियो श्रावको ओर श्राविकाओ से कहा हू कि जो काम परमात्मा की आज्ञा मे है उनके लिए तो कुछ कहना ही नही हे लकिन आज्ञा–बाहर के काम जैसे ही तुम्हारे सामने आवे वैसे ही तुम परमात्मा की शरण जाओ। वैरी के सामने आते ही शस्त्र छोड देना कायरता हे। काम क्रोध आदि ही तुम्हारे असली वैरी हें। यह जब तुम्हारे पास आव तब तुम परमात्मा से प्रार्थना करो– प्रभो। इनसे हमे बचा। ऐसा करने से वे वेरी तुम्हारा कुछ भी नही बिगाड सकेगे। मगर कठिनाई यह है कि ऐस विकट प्रसग पर लोग परमात्मा को भूल जाते हैं ओर इसी कारण परमात्मा उनकी रक्षा नही कर सकता।

शत्रु का हमला कभी न कभी होता ही हे। हमला न हा ता परीक्षा कैसे हो? मगर हमला होने पर जो परमात्मा की शरण जाता ह उसे क्षण–क्षण मे सहायता मिले विना नही रहती। जो मन ओर वाणी के भी अगाचर हे जिनकी शक्ति के सामने तलवार आग, जहर ओर दवताआ की शक्ति भी तुच्छ है, उस महाशक्ति के सामने सारा ससार तुच्छ हे।

जो रूठे उसको रूठन दे पर तू मत रूठे मन वेटा।
एक नारायण नहीं रूठे तो सब के काट लू चोटी–पटा।।

इस उक्ति का अर्थ पलट दिया जाय तो बात दूसरी है। नहीं तो यह समझ लो कि जो रूठता है उसे रूठने दो तू मत रूठ। जिस मशक ने वायु को अपने भीतर भलीभाती भर लिया है, उस मशक को कोई भी तूफान नही डुबो सकता। इसी प्रकार हे आत्मा! काम, क्रोध आदि का कैसा ही तूफान आवे तू ईश्वर की शरण मत छोड।

मित्रो! आत्मा को अमृतमयी बनाओ। यह मत समझो कि माला हाथ मे ले लेने से ईश्वर का भजन हो जायेगा। ईश्वर को अपने हृदय मे विराजमान करो। जब तक शरीर मे पाण है तब तक जैसे निरन्तर श्वास चलता रहता है उसी प्रकार परमात्मा का ध्यान भी चलता रहना चाहिए। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए अपथ्य और तामसिक भोजन खोटी सगति को त्यागकर शुद्ध अन्त करण से उनका भजन करोगे तो उसे प्राप्त करने की सिद्धि भी अवश्य मिलेगी।

भाइयो! यह समय अपूर्व है। जो अवसर मिला है वह बार–बार नही मिलेगा और प्रतिक्षण चला जा रहा है। इसे परमात्मा के ध्यान मे लगाओ। परमात्मा के ध्यान से तुम्हे सम्मति प्राप्त होगी। तुम्हारे कुकर्म छूट जाएगे और तुम्हारे लौकिक व्यवहार मे कोई बाधा नही आवेगी।

कुछ लोग कहा करते है कि परमात्मा का भजन करने पर भी हमारा अमुक काम सिद्ध नही हुआ। मगर वे यह नही सोचते कि उन्होने ऐसा भजन किया है जो परमात्मा को पसन्द नही है। यो तो रावण भी भक्त था। लेकिन मदोदरी ने उससे कहा –

सुनहु नाथ। सीता बिन दीन्हे।
हित न तुम्हार शभु अज कीन्हे।।

तुलसीदास जी ने शभु और ब्रह्मा की बात कही है और हम लोग कह सकते है कि सीता को दिये बिना अर्हन्त भी हित न करेगे। रावण अगर सीता को लौटा देता उसे भजन से आनन्द मिलता। लेकिन उसने इस बात पर ध्यान नही दिया। इस प्रकार आपने जो भक्ति की होगी उसमे कोई कारण ऐसा होगा जो परमात्मा को पसन्द नही होगा। इसलिए शुद्ध अन्त करण से पर के हिताहित का ध्यान रखते हुए परमात्मा का ध्यान करो। ऐसा करने से अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा।

5. लक्ष्य भ्रष्ट न होओ

भगवान् अनाथी मुनि ने राजा श्रेणिक से कहा–

राजन्। कई लोग नाथ होने के लिए उद्यत होकर भी इन्द्रिया के या कषाय के वश मे होकर सासारिक पदार्थो म गद्ध हो जाते हैं और परिणाम यह होता है कि वे फिर अनाथ हो जाते हैं। उनकी साधु बनने की रुचि निरर्थक हो जाती है क्योकि उसका मुख्य प्रयोजन नष्ट हो जाता हे। जो साधु के आचार–विचार से विरुद्ध चलता है फिर भी साधु का वेशधारण किये रहता है, वह प्राणी पामर है। ऐसा मनुष्य इस लोक के सुखो से भी वचित रहता है और परलोक के सुखो से भी कोरा रह जाता है।

वह इस लोक के सुखो से वचित यो रह जाता है कि लोकलज्जा के मारे उसे केशलोच करना पडता हे नगे पेर पेदल चलता पडता है ओर भिक्षाटन आदि बाह्य क्रियाए साधुओ की तरह ही करनी पडती हे मतलब यह है कि साधु जिन कष्टो को सहन करते हैं उन्हे उसे भी सहन करना पडता हे। फिर भी उसका कष्ट सहना उत्तम अर्थ मे नही लगता। वह जा कुछ करता हे, जो कष्ट सहता हे सो सिर्फ इसलिए कि लोग उस साधु समझ। वह आडम्बर करता हे और असलियत की उपेक्षा करता हे। इस प्रकार वह ऐहलौकिक सुखो से भी वचित रहता हे ओर पारलोकिक सुखा स ता वचित है ही। वह न इधर का रहता हे न उधर का रहता हे। इता भ्रष्टस्तता भष्ट की कहावत उस पर पूरी तरह घटती हे। ऐसे व्यक्ति का इस लाक म भी कोइ आदर नही करता और परलोक मे तो उस पूछेगा ही कौन? वह जा कप्ट सहन करता ह सो समभाव से नही करता। एसा मनुष्य कष्ट उठाकर भी अनाथ का अनाथ ही बना रहता है।

कोई भी मनुष्य हो वह जिस उद्दश्य के लिए घर स निकलता ह उसके विपय मे सावधानी न रख तो सासारिक कामा के लिए जस गृहस्थ

उलाहना देते हैं उसी तरह पारलौकिक कार्य के लिए शास्त्र उलाहना देते हैं। अपने ध्येय को भूलजाने वाले ऐसे मनुष्य की क्या दशा होती है, यह सब लोग समझ सकते हैं। इस सम्बन्ध मे मैं अपने स्वानुभव की बात कहता हू।

गृहस्थ लोग सवत्सरी के दूसरे दिन जमाई को बुलाकर कोई भेट देते है और उससे खमत खामणा करते हैं। जब मैं बालक था तो मेरे ससारी मामाजी ने रिश्ते के एक जमाई को बुला लाने के लिए मुझ से कहा। मैं घर से चला। रास्ते मे कुछ बालक कौडियो और पैसो का खेल खेल रहे थे। मैं वहा खडा हो गया और खेल देखने लगा। मैं किसलिए घर से निकला था। खाने–पीने की चिन्ता नही थी। खेल मे मेरा मन इतना उलझा कि मध्याह्न हो गया और धीरे–धीरे करीब दो बजे का समय हो गया। खेल खत्म हुआ तब मामाजी की बात याद आई। मामाजी स्वभाव के बडे क्रोधी थे। अतएव मुझे बहुत भय हुआ कि न जाने कैसी बीतेगी।

साराश यह है कि जो जिस काम के लिए उठा है, उसे अगर पूरी तरह नही करता है तो स्थिति विषम हो जाती है। वह लक्ष्य भ्रष्ट होकर कष्ट ही पाता है इसलिए ए साधुओ तुम सावधान होओ, तुमने जिस महान् ध्येय को प्राप्त करने के लिए ससार के सुखो का परित्याग किया है, जिस सिद्धि के लिए तुम अनगार अकिचन और भिक्षु हुए हो, उस ध्येय को क्षण भर भी मत भूलो। उसकी पूर्ति के लिए निरन्तर उद्योगशील रहो। तुम्हारा प्रत्येक कार्य उसी लक्ष्य की सिद्धि मे सहायक होना चाहिए।

जो मनुष्य अपने लक्ष्य को भूल जाता है उसका कष्ट सहन निरर्थक हो जाता है और उसका कहना भी असत्य हो जाता है कि मैं अमुक कार्य के लिए उठा हू। कोई आदमी धन कमाने के लिए उठा और अपनी लापरवाही के कारण गाठ की पूजी गवा बैठा तो यही कहा जायेगा कि उसने अपने लक्ष्य से विपरीत काम किया। इस धन कमाने के लिए उठने वाले को और धन न कमाने वाले को कष्ट तो वही हुए जो कमाने वाले को होते हैं। स्त्री माता, पिता आदि छूटे परदेश जाना पडा सफर की दिक्कते भोगनी पडी, घर मे जो स्वतन्त्रता थी वह बाहर नही रही। यह सब कष्ट सहने पर भी काम उलटा किया। जिस उद्देश्य को लेकर घर से निकला था वह उद्देश्य पूरा नही हुआ। इस प्रकार वह न इधर का रहा न उधर का रहा। पूजी गवाकर घर लौटने वाले को सकोच और लज्जा का भी अनुभव होता है। कदाचित् लौट भी आता है। घर के लोग उससे घृणा करते हे उसे फटकारते हे और खुद भी दुखी होता है। यह लौकिक बात है। पारलौकिक बात भी इसी तरह समझना

चाहिए। साधु बनने के लिए उठने वाले को घरवार छोडना ही पडा। साधु अवस्था के कष्ट भी व्याहारिक लज्जा के कारण सहने पडे ओर नतीजा कुछ न निकला। यही नही वरन् उलटी हानि हुई। केशलोच भिक्षा विहार आदि जो साधु को करने पडते हैं, वह सब तो लोकलज्जा के कारण करने ही पडे परन्तु उनमे श्रद्धा न होने से वे फलदायक नहीं हुए, क्योकि वे सिर्फ लोक दिखावे के लिए ही किये गये। जब तक कोई देखता रहता है तब तक वह नियमो का पालन करता है और जब कोई नहीं देखता तब उन्हे भग कर देता है। साधुपन ऊपर से पालने की वस्तु नही हे। वह अन्तरात्मा से पाला जाता है। अतएव जब तक आत्मा शान्त नही हुआ है और उसे शान्त करने का प्रयत्न भी नही किया जाता है तब तक साधुपन का दिखाना व्यर्थ है। ऐसा मनुष्य दोनो लोको मे भ्रष्ट हुआ है। ऐसे साधुवेशी की सयम की रुचि विपरीत हो गई है। इसलिए वह इस लोक के भी सुख से वचित है ओर परलोक के सुखो से भी वचित है। यह कथन सभी के लिए लागू होता हे। चाहे कोई साधु हो या श्रावक हो ऊपर से साधु या श्रावक होने का दिखावा करना और भीतर पोल चलाना उचित नही है। आत्मा के वैरी मत बनो। आत्मा को मत ठगो। तुम्हारा आत्मा ही मित्र है और आत्मा ही शत्रु है। अपनी आत्मा से पूछो कि तू जो कर रहा है सो किस विचार से कर रहा हे? जो आदमी जिस काम को अन्तरात्मा से करेगा उसे उस काम मे कष्ट अनुभव नही होगा। यही नहीं उसके मनोयोग की शक्ति, जो कार्य को सम्पन्न करने मे महत्वपूर्ण भाग लेती हे और कार्य को साध्य बनाती हे, उसके साथ होगी। कार्य करते समय और कार्य करने के पश्चात भी आह्लाद का अनुभव होगा। इसके विपरीत जो मुनष्य किसी काम को बोझ समझेगा ओर ऊपरी मन से करेगा वह उस कष्ट रूप समझेगा। उसे अपने कार्य से सतोष ओर सुख नही मिलगा ओर अच्छ से अच्छे कार्य का भी उत्तम फल वह प्राप्त नही कर सकगा। इसी प्रकार जो व्यक्ति साधुपन पर श्रद्धा नहीं रखता है लेकिन ऊपर साधु बना हुआ हे उसक लिए वह सयम भी दु खदायी हो जाता हे। जो व्यक्ति श्रद्धा ओर उत्साह क साथ सयम का पालन करता है, उसे सयम के कष्ट का अनुभव ही नही होता। वह कष्टो को भी आनन्द के रूप मे पलट लेता हे। यह इतनी सरल और सीधी बात है कि प्रत्येक आदमी अपने ही अनुभव स इसे समझ सकता है। ससार–व्यवहार की बातो को ही लीजिए। आपको कही हजार रुपय मिलने की आशा होगी तो आप उसी समय दोड जाएगे। उस समय आपका

इतनी स्फूर्ति और इतना उत्साह मालूम होगा कि सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास आदि का कष्ट मालूम ही नही पडेगा।

यो किसी का मुह काला कर दिया जाय या धूल फैंकी जाय तो वह आग बबूला हो जायेगा। लेकिन फाल्गुन के महीने मे ऐसा उन्माद छा जाता है कि काला मुह करने पर और धूल फैंकने पर आनन्द माना जाता है। जब फाल्गुन के महिने मे मिथ्या उन्माद के कारण ऐसा करने पर भी दु ख नहीं होता तो जिसे ज्ञान का उन्माद हो गया है उसे क्यो दुख होगा?

पुत्र और पुत्री के विवाह मे माता रात–दिन एक कर देती है, फिर भी उसका मन आनन्द ही पाता है, क्योकि उसके हृदय मे उत्साह होता है। जब उत्साह के कारण ससार के कठिन कार्यो मे दु ख का अनुभव नही होता तब जन्म–जन्मान्तर के कष्ट मिटाने वाले सयम को पालने मे क्यों कष्ट मालूम होगा? लेकिन जिन्होने कपटपूर्ण सयम लिया है, उन्हे बोलने, चलने खाने, पीने आदि मे पद–पद पर खेद मालूम होता है। भगवान् ने कहा है कि जिस साधु के सकल्प–विकल्प न मिटे उसे साधुपन मे पद–पद पर कष्ट होते हैं। इसलिए साधु मे सकल्प–विकल्प रहना अनाथता के लक्षण हैं।

साराश यह है कि अन्तरात्मा मे पूरी सद्भावना स्थापित करके साधुपन पालने वाला ही सनाथ बनता है। ऊपर–ऊपर के भाव से काम करने वाला सनाथ नही अनाथ ही है।

दुकान मे मुनीम भी काम करता है और सेठ का लडका भी काम करता है। मुनीम तनख्वाह लेता और सेठ का लडका कुछ भी नही लेता। लेकिन पैसे के लिए काम करने वाले मे और घर का काम समझ कर करने वाले मे कितना अन्तर होता है?

बहुत।

जो अपना कार्य समझ कर कार्य करता है वह मालिक बनकर करता है गुलाम बन कर नही। मालिक और गुलाम मे जो अन्तर है वही आन्तरिक उत्साह और सद्भावना के साथ सयम पालने वाले और बिना मन लोक–दिखावे के लिए सयम पालने वाले साधु मे है। जो भावना के साथ सयम पालता है वह मालिक के समान है और जो दिखावे के लिए सयम का पालन करता है वह गुलाम के समान है।

आप लोग श्रावक है। आप केवल मुनिपन की दृष्टि से अनाथ हैं [illegible] की दृष्टि से सनाथ है। इस दृष्टि से आप इन्द्र से भी बडे हैं। इन्द्र [illegible] की दृष्टि से भी अनाथ है। अतएव आप अपने गौरव को समझे।

अपने पद की उच्चता को समझ कर उसका पूरी तरह निर्वाह करे। अतीत काल मे भगवान् के शासन मे अनेक श्रावक हो चुके हैं। आपका पद उन्हीं की कोटि का है। आप उनके उत्तराधिकारी हैं। ऐसा कोई काम न करे जिससे आपकी और आपके द्वारा उनकी भी कीर्ति मे धब्बा लगने की समावना हो। इसके अतिरिक्त आप जो कुछ भी करे, दीनता और पराधीनता त्याग कर करे। आपको यह समझना उचित है कि मैं जो कुछ भी कर रहा हू वह अपना काम कर रहा हू। मैं गुलामी का काम नहीं कर रहा हू।

कल्पना कीजिए, दो गुमाश्ता हैं। उनमे से एक श्रावक है और दूसरा अश्रावक है। इन दोनो के कार्य मे कुछ अन्तर तो होना ही चाहिए। अगर कुछ भी अन्तर नही है तो दोनो के धर्म का अन्तर सर्वसाधारण की समझ मे कैसे आएगा। साधारण जनता तो धर्म के अनुयायी व्यक्तियो के आचरण से ही उनके धर्म की परीक्षा करती है। वह तात्विक विवेचना की गमीरता मे नही उतरती।

सच्चा श्रावक कमी नहीं सोचेगा कि मैं गुलामी का कार्य करता हू। वह तो यही समझेगा कि मैं जो कुछ करता हू, अपने धर्म की साक्षी से करता हू। कही ऐसा न हो कि मेरे किसी कार्य से मेरे व्रत दोष लग जाय और मेरे व्यवहार से मेरे धर्म की प्रतिष्ठा मे कमी हो जाय। मैं नोकर हू, लकिन सत्य का। शास्त्र की कथाओ मे उल्लेख है कि ऐसा समझने वालो को अनक प्रलोभन दिये गये, यहा तक कि प्राण जाने का भी अवसर आ पहुचा फिर भी वे अपने सत्यधर्म से विचलित नही हुए।

मतलब यह हे कि चाहे काई मुनीमी करे या मजदूरी कर अगर वह सच्चा श्रावक हे तो यही विचारेगा कि मैं पेसे के लिए नोकरी नही करता हू। मुझे अपने धर्म का भी पालन करना है। जो ऐसा विचार करक प्रामाणिकता के साथ व्यवहार करेगा वही सच्चा श्रावक होगा। जो पैसे का ही गुलाम हे वह धर्म का पालन नही कर सकता। सच्चा श्रावक अपन मालिक क वताये हुए अन्यायपूर्ण काम को करना स्वीकार नही करेगा।

पूज्य श्रीलालजी महाराज एक वात कहा करत थे। वह इस प्रकार है –

किसी सेठ के यहा एक प्रामाणिक मुनीम था। अपन सठ का काम धर्मनिष्ठा के साथ किया करता था। एक बार सेठ न मुनीम की सलाह नही मानी और इस कारण उसका काम कच्चा रह गया। सठ न कुछ दिना तक अपना आडम्बर कायम रखा मगर पूजी के विना कोरा आडम्बर कब तक चल

सकता था? जब न चल सकता तो एक दिन सेठ ने बडे दुख के साथ मुनीम से अपने लिए दूसरी आजीविका खोज लेने को कह दिया। उसने लाचारी दिखलाते हुए अपनी स्थिति का भी हाल बतला दिया, यद्यपि मुनीम से कोई बात छिपी हुई नहीं थी।

मुनीम ने कहा– अपना ससार–व्यवहार चलाने के लिए मुझे कोई धन्धा तो करना ही पडेगा लेकिन आप यह न समझे कि मैं पराया हू। जब कभी मेरे योग्य काम आ पडे आप निस्सकोच होकर मुझे आज्ञा दे। अधिक तो क्या मैं प्राण देने के लिए भी तैयार हू।

इस प्रकार बडे दुख के साथ सेठ ने मुनीम को विदा किया और मुनीम भी बडे दुख के साथ विदा हुआ।

मुनीमजी घर बैठे रहे। नगर में बात फैल गई कि अमुक मुनीमजी आजकल खाली हैं। उसी नगर मे एक वृद्ध सेठ रहता था। वह खूब धनवान् था। उसके बच्चे छोटे थे। वह चाहता था कि मैं व्यापार और बालको का भार किसी विश्वस्त आदमी को सौंपकर कुछ धर्म–कर्म करने मे लगू। मगर उसे अपने नौकरो मे ऐसा कोई नही दिखता था जो उसका काम–काज सभालकर ईमानदारी से काम कर सके।

आज के लोग तो अपनी आयु ससार कार्य मे ही पूरी कर देते हैं, परन्तु पहले के लोग चौथी अवस्था मे या तो साधु हो जाते थे या साधु न होने की अवस्था मे धर्मध्यान मे लग जाते थे। इससे आगे वालो के सामने एक अच्छा आदर्श खडा हो जाता था और वह अपना कल्याण कर लेता था।

सेठजी को उन मुनीमजी के खाली होने की खबर लगी। वह मुनीम को जानते थे। अपना काम–काज सभालने के लिए सेठजी ने उन्हे उपयुक्त समझा और एक दिन बुलाकर कहा– मैं आपकी चतुराई से परिचित हू। आप हमारी दुकान काम–काज सभाल ले। मुनीम आजीविका की तलाश मे था ही। उसने सेठजी की दुकान पर रहना स्वीकार कर लिया। सेठजी ने उसे सब नौकरो का अध्यक्ष बनाकर सब काम उसके सुपुर्द कर दिया।

थोडे दिन बाद सेठ ने मुनीम से कहा– अमुक बही के अमुक पाने का खाता निकालिए। मुनीम ने खाता निकाला खाता उसी सेठ का था, जिसके यहा मुनीम पहले नौकर था और जिसकी आर्थिक स्थिति खराब हो गई थी। खाते मे कुछ रुपया बकाया था। सेठ ने कहा– यह रकम वसूल कर ले।

मुनीम बही लेकर सेठ के यहा पहुचे। सेठ ने प्रेम के साथ आदर-सत्कार करके बिठाया। मुनीम सकोच के कारण मुह से तकाजा न कर सका। उसने खाता खोलकर सेठ के सामने रख दिया। सेठ समझ गया। उसने आसू भरकर कहा–मुनीमजी, रुपया तो देना है, लेकिन इस घर की दशा आपसे छिपी नहीं है। मैं क्या कहूँ?

मुनीम ने कहा– आप दुखी न हो। मैं स्थिति से परिचित हू। अगर मैंने अपने नये सेठ को वहीं उत्तर दे दिया होता तो ठीक न रहता। इसी विचार से मैं यहा तक आया हू।

बही-खाता लेकर मुनीमजी लौट आये। सेठ के पूछने पर उन्होने कहा–खाते मे रकम ज्यादा बकाया है। अभी चुकाया कर देने की उनकी शक्ति नहीं है। कभी उनके दिन पलटेंगे तो चुका देगे। वे हजम करने वाले आसामी नही हैं।

सेठ बोला–पहले के सेठ होने कारण आप उनकी खुशामद करते हैं। हमारे नौकर होकर उनका रुख रखना उचित नहीं है। इतना बडा घर था। बिगड जाने पर भी गहने–बर्तन आदि तो होगे ही। अगर सीधी तरह नहीं देना चाहते तो दावा करके वसूल करो।

मुनीम–मैं जानता हू कि उनकी आमदनी ऐसी नहीं है। किसी प्रकार अपना निर्वाह कर रहे हैं और इज्जत लेकर बैठे हैं। उनकी आबरू बिगाडना मेरा काम नही है। मैं तो आपकी और उनकी इज्जत बराबर समझता हू।

कुछ कठोर पडकर सेठ ने कहा–जिसे रोटी की गरज होगी उसे किसी की आबरू भी बिगाड़नी पडेगी।

मुनीम ने यह बात सुनी तो चाबियो का गुच्छा सेठजी के सामने रख दिया और कहा–सेठ साहब, मुझे विदाई दीजिए।

सेठ–अच्छी तरह सोच विचार लीजिए। मैंने आपको रोजगार से लगाया है। सब कर्मचारियों का प्रधान बनाया हे और आप मेरे साथ ऐसा सलूक करते हैं।

मुनीम–जो अपनी इज्जत के महत्त्व को नहीं समझता वही दूसरे की इज्जत बिगाडता है। एक दिन वे भी मेरे मालिक थे। आज उनकी स्थिति ऐसी नहीं है, तो क्या मैं उनकी इज्जत बिगाडने लगूँ? मैंने उनका नमक खाया है और वह मेरे सारे शरीर मे व्यापा हुआ है। मे उनकी प्रतिष्ठा नष्ट नही करूगा। फिर भी अगर आप रकम वसूल करना ही चाहेगे तो मैं अपनी जायदाद स चुकाऊगा। मैं सिर्फ पेसे का गुलाम नही हू। मैं धर्म से काम करने वाला हू।

मुनीम की बात सुनकर सेठ को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने धन्यवाद देते हुए कहा–मुनीमजी मैं आपकी कसौटी करना चाहता था। मेरी आज तक की चिन्ता दूर हो गई। यह चाबिया समालिये। अब आप जाने और दुकान जाने। अब यह घर और बाल–बच्चे मेरे नही, आपके हैं। मेरे सिर का भार आपके ऊपर है।

मित्रो! यदि मुनीम पैसे के प्रलोभन मे पडकर, आजीविका रखने की चिन्ता से धर्म को भूल जाता तो क्या परिणाम निकलता?

आज के लोग श्रावक कहलाते हुए भी स्वतन्त्र रहने मे कठिनाई का अनुभव करते है।

भगवान अनाथी मुनि ने यही कहा था कि नाथ बनकर किसी काम को करना एक बात है और गुलाम बनकर करना दूसरी बात है। नाथ बनकर साधुधर्म का पालना करना और बात है और गुलाम बनकर सिर्फ दिखाने के लिए पालन करने का ढोग करना और बात है।

सेठ और मुनीम का जो उदाहरण दिया गया है वह भाई–भाई और पिता–पुत्र आदि के लिए भी लागू होता है। धर्मात्मा पुरुष किसी के साथ दगा नही करता। वह प्राण देने को तैयार हो जाता है पर अपना धर्म नही छोडता। धर्म को वह प्राणो से ज्यादा प्यारा समझता है। धर्म उसके लिए परम कल्याण होता है। वह समझता है कि मैं नास्तिक नहीं आस्तिक हू। आत्मा अमर है। मै अनन्तकाल तक रहने वाला हू। इसलिए थोडे समय तक रहने वाली तुच्छ चीज के लोभ मे पडकर मै धर्म का परित्याग नहीं कर सकता। इस प्रकार विचार करने वाला मनुष्य सुखी रहता है।

राम और लक्ष्मण भाई–भाई थे तो क्या राम अकेले बन चले जाते और लक्ष्मण घर बैठे मौज करते रहते? सीता राम की पत्नी होकर भी क्या राजमहल के सुख भोगती रहती? धर्म की कसौटी सकट के समय ही होती है। बल्कि सकट को ही धर्म की कसौटी समझना चाहिए।

यह बात पहले मुनियो और सतियो को सोचनी चाहिए। उन्होने माता–पिता का त्याग कर दिया है लेकिन क्या ससार के जीव अनन्त–अनन्त बार मा–बाप न हो चुके होंगे? वह मुनीम अपने पुराने सेठ की आबरू बिगाडना चाहता। तो क्या अपने पुराने मा–बाप की आबरू बिगाडना उचित है? लेकिन जब आत्मा का पता होता है तो छह काय की दया उठ जाती है। ... मनुष्य यह विचार करता है कि विश्व के समस्त प्राणी मेरे पुराने

मित्र है, सबधी हैं, सेठ हैं, वह प्राणीमात्र पर दया और प्रेम की भावना रखता है। वह त्रिकाल मे कभी अनाथ नहीं होगा।

एक बार गृहस्थी का त्याग करके, साधु होकर फिर अनाथ अर्थात इन्द्रियो का गुलाम बन जाता है, वह निरर्थक कष्ट मोल लेता हे। इतना ही नहीं, वह अपनी आत्मा को नीचे गिराता हे अपन सघ की उज्ज्वल कीर्ति को कलकित करता हे और अपने धर्म को वदनाम करता हे।

सुना हे, बन्दर को पकडने वाले लोग उसे पकडने के लिए जगल मे किसी लोहे के या लकडी के पात्र मे, जिनका मुह सकडा होता हे चने भर देते हैं। बन्दर उस पात्र मे चने लेने के लिए हाथ डालता और चन से मुटठी भर लेता है। पात्र का मुह इतना सकडा होता हे कि उसमे खाली हाथ तो आ–जा सकता है मगर मुटठी बध हाथ न घुस सकता है और न निकल सकता है। हाथ निकलता नही। अगर बन्दर चनो का प्रलोभन त्याग दे तो हाथ छुडा सकता हे अन्यथा नही। इस प्रकार बदर चनो के लोभ म पडकर अपने लिए बधन का निर्माण कर लेता हे। वह चना छोडना नहीं चाहता ओर इसी कारण बधन से मुक्त भी नही हो सकता। वह तडफडाता रहता हे ओर पकडने वाले उसे पकड लेते हैं।

इसी प्रकार ससारी जीव स्वय ही सासारिक सुख साधना के प्रलोभपन में पडकर अपने लिए बधन तेयार करते हैं। इसी तरह साधुवेशधारी असाधुओ मे भोगविलास की लालसा विद्यमान रहती हे। जेसे बदर चना का त्याग नही कर सकता उसी प्रकार साधुवेशधारी असाधु भोगलालसा का त्याग नही कर सकते। मगर जेसे बन्दर पात्र से छुटकारा चाहता हे उसी प्रकार वे भी आत्मा का कल्याण चाहते हैं। लेकिन जेसे बन्दर चना का लाभ छोडे बिना छुटकारा नहीं पा सकता उसी प्रकार साधु हो जान पर भी ससार की भोगलालसा का त्याग किये बिना मुक्ति नही मिल सकती।

बडे–बडे ग्रथकार कह गये हैं कि इस विषमकाल मे महापुरूषा क पन्थ पर चलना ही कल्याणकारी हे ।।

तर्कोऽप्रतिष्ठ श्रुतयो विभिन्ना –
नैको मुनिर्यस्य वच प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्व निहित गुहाया,
महाजनो येन गत स पन्था ।।

अर्थात् तर्क अस्थिर है। गद की तरह वादी–प्रतिवादी के वचना की ठोकर खाकर वह इधर–उधर लुढकता फिरता हे। श्रुति–स्मृति आदि क निर्माताओ की मति भिन्न–भिन्न होने से श्रुति–स्मृति का कथन भी भिन्न–भिन्न हे। इस भिन्न–भिन्न कथन की गडवड म लाग पड गये हैं और इस कारण

धर्म का तत्त्व इतना दूर चला गया है मानो गुफा मे छिप गया है लोग विचार करते हैं कि इस हाल मे हम क्या करें? सब मतो का अध्ययन करके अगर उनका निचोड निकालना चाहे तो यह सभव नही। ससार मे इतने अधिक मत और पन्थ हैं और इतने अधिक पन्थ एव शास्त्र हैं कि सारी उम्र व्यतीत हो जाने पर भी उनके अध्ययन का अन्त नहीं आ सकता। ऐसी विकट परिस्थिति मे आत्मा का कल्याण किस प्रकार किया जाये?

दुविधा की इस स्थिति मे ग्रथकार कहते हैं–घबराओ मत। जिस मार्ग पर महापुरूष चले हैं उसी मार्ग पर चलो और चलते ही रहो। उसी मार्ग पर चलने मे कल्याण है। उस पर चलने से अकल्याण नही हो सकता।

तब प्रश्न खडा होता है कि महापुरुष कौन? प्रत्येक मत और पन्थ वाले अपने–अपने मत और पन्थी पन्थ को महापुरुष का मत और पन्थ कहते है और वे परस्पर विरोधी है। ऐसी स्थिति मे महापुरुष का मार्ग कौन–सा समझा जाये? किस पर चलें?

जैन सिद्धान्त इस प्रश्न का जो उत्तर देता है, वह इतना व्यापक है कि उसे अस्वीकार नही कर सकता। जैन सिद्धान्त कहता है कि महापुरूष वह है जिसमे राग और द्वेश न हो। अर्थात् जिसने राग आदि आत्मिक दोषो को पूर्णरूप से जीत लिया हो और दोषो को जीतने के फलस्वरूप जिसमे पूर्णज्ञान उत्पन्न हो गया हो वही महापुरुष है।

प्रश्न का अन्त फिर भी नही होता अब यह आशका उठ सकती है कि निर्दोष और पूर्णज्ञानी कौन है? लेकिन आत्मा मे ऐसी शक्ति विद्यमान है कि वह महापुरुष को फौरन पहचान सकती है। आप लोग महापुरुष की खोज इसलिए करना चाहते है कि आपके दोष महापुरुष का उपदेश मिलने से नष्ट हो जाए। तो इन दोषो के सहारे ही महापुरुष का पता लगाया जा सकता है। आप मे काम क्रोध लोभ मोह आदि दोष हैं। इन दोषो का नाश करने के लिए आप महापुरुष की खोज करते है तो समझा जा सकता है कि जिसमे यह दोष न हो वही महापुरुष है। जिसमे राग द्वेष होगे उसके वचन सदोष होगे और जो राग–द्वेष से मुक्त हे उसके वचन भी निर्दोष हैं। उन वचनो को ग्रहण करने से हमारा कल्याण होगा।

कहा जा सकता है कि क्या सभी साधु वीतराग है? अगर साधु ऐसा [illegible] कहे तो समझना चाहिए कि वे दभ और अहकार से घिरे हें। उन्हे

विचारना चाहिए कि हम महापुरूष के पन्थ पर जा रहे हें ओर दूसरों से भी वे यही कहे कि हम महापुरुष के पन्थ पर चल रहे हें। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी इसी पन्थ पर आ जाओ। यह पन्थ हमारा नहीं हे महापुरुषो का हे। महापुरुष इसी पन्थ पर चले हैं ओर जगत् के जीवो को इसी पर चलने की प्रेरणा कर गये हैं। साधु अगर ऐसा समझे और प्रकट करें तो समझना चाहिए कि वे सच्चे साधक हैं।

6. ज्ञान और चारित्र

ससार की समस्त शिक्षाओ का सार–ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति करना है। चारित्र को आचरण भी कहते हैं मगर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर दोनो मे थोडा–सा अन्तर भी दृष्टिगोचर होता है। चारित्ररूप गुणो की आराधना करने की जो विधि बतलाई गई है उस विधि के अनुसार चारित्र का पालन करना आचरण कहलाता है। विधिपूर्वक चारित्र का पालन न करने से काम नही चलता। विधिपूर्वक चारित्र के पालन करने का अर्थ यह है कि चारित्र का पालन ज्ञानपूर्वक ही होना चाहिए। ज्ञान के साथ पाला जाने वाला आचार ही उत्तम आचार है। वही आचार सफल होता है। ज्ञानहीन आचरण और आचरणहीन ज्ञान से उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। कल्याण को अगर रथ मान लिया जाय तो ज्ञान और चारित्र उसके दो पहिये हैं। दोनो की किस प्रकार आवश्यकता है यह बात एक दृष्टान्त द्वारा समझना ठीक होगा। किसी वृक्ष के नीचे एक अन्धा और एक पगु मनुष्य बैठा है। वृक्ष मे फल दिखाई नही देते और पगु फलो को देखता हुआ भी वृक्ष पर चढने की शक्ति से रहित है। यह दोनो जब तक अलग–अलग विचार कर रहे हैं तब तक फलो की अभिलाषा रखते हुए फलो से वचित ही रहते है। लेकिन पगु ने अन्धे से कहा–भाई, तेरे पैरो मे शक्ति है। अगर तू मुझे अपने कधे पर बिठला ले तो मैं ऊचा हो जाऊगा और फल तोड लूगा। ऐसा करने से मेरी ओर तेरी दोनों की तृप्ति हो जायेगी।

इन दोनो का सयोग ही इनके लिए कल्याणकारी हो सकता है। अगर अन्धा पगु को ऊचा उठाने से इन्कार करे दे और पगु, अन्धे को फल देना अस्वीकार कर दे तो दोनो को भूखे मरना पडेगा।

प्रकार ज्ञान के सयोग के बिना फल की प्राप्ति नही होती उसी प्रकार ज्ञान के सयोग के बिना की जाने वाली क्रिया से भी फल की प्राप्ति नहीं होती। निरे चारित्र का मार्ग अन्धा है। ज्ञान के अभाव मे उसे मुक्तिरूपी फल नही सूझता। दशवैकालिक सूत्र मे कहा है—

अन्नाणी कि काही कि वा नाईहि छेदपावक।

अर्थात्— बेचारा अज्ञानी जीव क्या कर सकता है? वह अपने कल्याण और अकल्याण को कैसे समझ सकता है? इसलिए उक्त सूत्र मे कहा गया है—

पढम नाण तओ दया एव चिठठइ सव्वसजए।

अर्थात्— पहले ज्ञान की आराधना करनी चाहिए और उसके बाद चारित्र की आराधना हो सकती है। सभी सयमवान् महापुरुष ऐसा ही करते हैं। वे बिना ज्ञान के चारित्र की आराधना करना समव नहीं मानते। इस प्रकार चारित्र की आराधना करने से पहले ज्ञान की आराधना करना आवश्यक बतलाया गया है। वास्तव मे ज्ञान के बिना सम्यक्चारित्र की आराधना हो ही नही सकती।

इसी प्रकार चारित्र से रहित अकेला ज्ञान पगु है। चारित्र की सहायता के बिना उससे मोक्ष की प्राप्ति नही हो सकती है।।

ऐसी स्थिति मे स्पष्ट है कि अगर कोई सिर्फ क्रिया को ले बैठे और ज्ञानगुण की अवहेलना कर दे तो वह अधे की तरह भटका—भटका फिरेगा और उसे उस फल की प्राप्ति नही हो सकती जिसे वह प्राप्त करना चाहता है। इसी तरह अगर किसी ने ज्ञान पाकर चारित्र की अवहेलना कर दी तो वह भी सिद्धि से वचित रहेगा। शास्त्र मे कहा हे—

भणता, अकरिता य बधमोक्खपइण्णिणो।
वायावीरियमितेण समासासेन्ति अप्पय।।

अर्थात्—ज्ञान से बन्ध और मोक्ष मानने वाले लोग कहते हें तो पर करते नही है। वे अपनी वाणी की वीरता मात्र से अपनी आत्मा को आश्वासन देते हैं। तात्पर्य यह हे कि जिन्होने ज्ञान तो प्राप्त कर लिया है किन्तु जा ज्ञान के अनुसार आचरण नही करते और जो ज्ञान से ही बन्ध—मोक्ष मानकर तसल्ली कर लेते हैं वे अपनी आत्मा को धोखा देते हैं और दूसरो को भी धोखा देते हैं। इसीलिए शास्त्रकार आगे चलकर कहते हें—

न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणसासण

अर्थात्– अपनी पण्डिताई का अभियान करने वाले चारित्रहीन व्यक्ति नाना प्रकार की भाषाए भले ही जानते हो मगर वे भाशाए दुख से उनकी रक्षा नही कर सकती। इसी पकार विधाए और व्याकरण आदि भी उनकी रक्षा कैसे कर सकते हैं?

इस पकार न तो ज्ञानविकल पुरुष सिद्धि पाता है और न क्रिया विकल पुरुष सिद्धि पाता है। जब ज्ञान और क्रिया का सयोग होता है तभी मुक्ति मिलती है। जो लोग ज्ञानहीन हैं और थोथी क्रिया को ही लिए बेठे हें उन्हे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ज्ञान के अभाव मे वे भ्रष्ट हुए बिना नही बच सकते। और जो लोग अकेले ज्ञान को ही लेकर बैठे हैं और क्रिया को निरर्थक मानते है उन्हे क्रिया का ही आश्रय लेना चाहिए। क्रिया के बिना वे भी भ्रष्ट हुए बिना नही रहेगे। यहा तक जो कुछ कहा गया है वह आत्मिक कल्याण की दृष्टि से ही कहा गया है। मगर आत्मिक कल्याण के लिए ससार पर भी दृष्टि देना आवश्यक है। ससार पर दृष्टि दिये बिना आत्मिक कल्याण नजर नही आता। आज ससार मे एक मनोभावना सर्वत्र दिखाई देती है और वह यह है कि लोग फल तो चाहते हैं लेकिन क्रिया करना नही चाहते। पगु को दया से प्रेरित होकर अगर कोई फल दे भी दे तो भी रहेगा वह पगु ही। अधे का सहारा लेकर फल तोड लेने मे पगु को जो आनन्द मिल सकता है वह आनन्द दूसरे के फल देने से नहीं मिल सकता। जिस दिन उसे दूसरा फल नही देगा उसी दिन वह दुख फिर पगु के सामने आ खडा होगा।

आप लोग पगडी बाधते हैं और धोती पहनते हैं। इस क्रिया का फल आप यही समझते है कि आप ससार–व्यवहार मे अच्छे दिखलाई दे। ठीक दीखने के लिए आप जो धोती और पगडी पहनते हैं, उसे अगर अपने हाथ से पहन सके तब तो ठीक हे कदाचित दूसरे के हाथ से पहना करे तो क्या ठीक होगा? आज आपको सभी प्रकार की सुविधा प्राप्त है तो दूसरे के हाथ से आप पोशाक पहन सकते हें। कल अगर ऐसी सुविधा न हुई तो क्या होगा? आप विषाद मे नही डूब जाएगे?

देगी। परन्तु विदेश मे जहा पत्नी न हो, क्या करेगे? अथवा कल्पना करो कि घर मे पति–पत्नी न हो, क्या करेगे? अथवा कल्पना करो कि घर मे पति–पत्नी दो ही हैं और पत्नी बीमार हो गई तब क्या होगा? ऐसे समय मे भोजन बनाकर कौन देगा? मगर लोग तो इस भ्रम के शिकार हो रहे हैं कि हाथ से काम नही करेगे तो पाप से बच जाएगे। मगर क्या यह पाप से छूटने का रास्ता है? इस प्रकार की परतन्त्रता से किसी बात मे सिद्धि नही मिलती। सिद्धि प्राप्त करने का या पाप से छुटकारा पाने का मार्ग निराला है।

भोजन के विषय मे आपकी जैसी स्थिति है वैसी ही अन्न वस्त्र आदि के विषय मे भी है। आप चाहते सभी कुछ हैं मगर स्वाधीन किसी भी चीज के लिए नही है। जैसे पगु पडे–पडे भीख मागा करते हैं उसी प्रकार आप इन सब वस्तुओ पर। कभी–कभी कोई दे भी देता है मगर उस देने से क्या उनमें स्वाधीनता आ जाती है?

नही।

इसी प्रकार दूसरो की सहायता से आपको भोजन वस्त्र अन्न आदि मिल जाय तो भी आप स्वतन्त्र नहीं हो सकते। बल्कि इस परतन्त्रता के कारण आपको इन चीजो की क्रिया से घृणा हो गई है। आप भोजन और वस्त्र बनाने वाले को नीची निगाह से देखते हैं और उनका उपयोग करने वालो का आदर करते हैं। आपके खयाल से कपडा बनाना नीच का काम है और पहनना ऊच का काम है। मित्रो! क्या यही समदृष्टि का लक्षण है? आप जिस वस्तु का उपयोग करते हैं, उस वस्तु को बनाने आदि की क्रिया न जानने से अर्थात् स्वतन्त्रता को भूल जाने से आज धर्म मे भी गुलामी हो रही है। आपमे से बहुतो को धर्म भी वही रुचिकर होगा जिसके सुनने पर क्रिया न करनी पडे। मगर विचार करना चाहिए कि क्या यह उचित हे?

मित्रो। आपको स्वाधीनता का महत्त्व समझना चाहिए। कोरी बात बनाकर ससार पर अपना आधिपत्य जमाने का प्रयत्न करना सच्चे ज्ञान का फल नही। ज्ञानी वह है जो प्रत्येक बात पर गहराई स तात्विक दृष्टि स विचार करता है। जैनशास्त्र मे ऐसा एक भी बडे आदमी का उदाहरण नही मिलेगा जिसने दूसरो पर हुक्म चलाया हो ओर आप निरुधोगी होकर बेठे रह हो। राजकुमार मेघ के उदाहरण को लीजिए। उसने जीवनापयोगी बहत्तर कलाओ का अध्ययन किया था। चन्द्रमा की बडाई कला से ही हे। अमावस्या के दिन चन्द्रमा कही दूसरे लोक मे नही चला जाता। सिर्फ उसम कला नही

रहती। इसलिए आपको सोचना चाहिए कि जिसमे कला न होगी वह अमावस्या के चन्द्रमा के समान होगा अथवा पूर्णिमा के समान होगा?

मेघकुमार ने बहत्तर कलाए सीखकर स्वतन्त्र जीवन का बोध प्राप्त कर लिया था। उन्हे भोजन बनाना वस्त्र, बनाना, घर बनाना, आभूषण बनाना आदि पत्येक जीवनोपयोगी कला का भलीभाति ज्ञान था।

मेघकुमार घर बनाना आदि समस्त कलाओ मे पारगत थे तो बने रहते। शास्त्र मे इन बातो का उल्लेख करने की क्या आवश्यकता थी ? इसका उत्तर यही है कि शास्त्र मे यह चरित्र देकर बतलाया गया है कि इस पकार का जीवन कभी स्वतन्त्र नही हो सकता। मगर आप मे से अधिकाश लोग ऐसे निकलेगे जो ऐसी एक भी क्रिया शायद जानते होगे जो जीवन की स्वतन्त्रता के लिए उपयोगी हो। अलबत्ता कपट क्रिया करके पैसा कमाना लोग जानते हे। लेकिन ऐसी क्रिया से पैसा इकठ्ठा करने वाले के पास जब किसी कारण से पैसा आना बन्द हो जाता है तब उसे हाय–हाय करने के सिवाय और क्या चारा रह जाता है? आज जो हाय–हाय मची हुई है उसका प्रधान कारण यही है कि आज के लोगो का व्यापार भी स्वतन्त्र नही हे। जो परतन्त्र जीवन मे ही जीवन का आनन्द मानते हैं, उन्हे क्रिया का महत्व केसे मालूम हो सकता है? लेकिन बिना क्रिया के स्वतन्त्रता नही है और स्वतन्त्रता न होने के कारण हाय–हाय मची है। अगर आप पराधीनता और परावलम्बन का त्याग नही कर सकते तो कम से कम पराधीनता का गर्व करना तो त्याग सकते हे। आप उत्तम स्वादिष्ट भोजन करके गर्व करते हैं लेकिन समझ नही आता कि आपके गर्व का आधार क्या है? आपने दूसरे का दिया खाया है, फिर गर्व क्यो? गर्व हो तो भोजन बनाने वाली बाई को हो सकता है। वह सोच सकती हे कि मेने बढिया भोजन बनाकर दूसरो का पेट भरा हे। आप किस बात पर अहकार कर सकते है? और असल मे उस बाई को भी गर्व करने का अधिकार नही है क्योकि उसने अन्न पैदा नही किया हे। अन्न किसान पदा करता है। कदाचित किसान का गर्व भी समझ मे आ सकता है। आप अपनी असमर्थता पर पराधीनता पर और परावलम्बन पर गर्व करे तो आपकी मर्जी।

आज मे आपका आत्मसाक्षी बनकर आपकी ओर से आपकी निन्दा करता हूँ। मै पूछता हू कि आप जिन आलीशान हवेलियो का गर्व करते हे उन्हे आपने बनाया है? अगर उनका एक भी पत्थर खिसक जाय तो उसे भी आप नहीं जमा सकते। फिर गर्व का आधार क्या है? इस तरह दूसरो के बनाये मकान मे रहना परतन्त्रता है–गुलामी हे। इसमे स्वतन्त्रता कहा है?

बहिने बगडियाँ पहिन कर हाथ कडा रखती होगी, लेकिन मै पूछता हू कि बगडी मे से एक भी मोगरा निकल जाय तो क्या वे उस बना कर जड सकती हैं? अगर नही जड सकती तो गर्व किस विरत्ते। यो तो गोरैया (गौरगौरी) पुतली को भी गहने पहनाये जाते हैं, लेकिन वह क्या गर्व कर सकती है? वह गर्व कैसे करे? उसे तो दूसरो ने गहने पहनाये हैं। इसी प्रकार जो बहिने दूसरो के दिये कपडे पहिनती है वे भी कैसे गर्व कर सकती हैं। बहिन! आप अपनी आत्मा को ऐसी शिक्षा दीजिए कि वह पुकार उठे– हे आत्मा। तुझे धिक्कार है, जो तू दूसरो की दी हुई वस्तुओ पर गर्व करती है।

कपडा बनाने वाला दूसरा सिलाई करने वाला दूसरा और धोने वाला दूसरा है। ऐसी दशा मे पहनने वाला गर्व क्यो करता है? अगर तुम्हार लिए काम करने वाले लोग अपना–अपना काम बन्द कर दे तो कैसी बीतगी? जब तुम उनकी कला नही जानते तो उनके काम बन्द कर देने पर रोना स्वाभाविक है। बहिने जो कपडा पहनती हे उनमे क्या एक भी ऐसा है जो उनके खुद का बनाया हो?

'नहीं।

पहले की रानिया चौसठ कलाओं मे निपुण होती थी। व शस्त्र बाधकर लडने लग जाती थी लेकिन किसी ऐसी चीज का उपयोग भी नही करती थी जिसे बनाना उन्हे न आता हो। वे नये–नये कला–कोशल निकाल कर अपने वस्त्राभूषण सजाया करती थी। आज की स्त्रिया यह सब कहा करती है? दर्जी मशीन से बेलबूटे निकाल देता हे ओर ये पहनकर अभिमान करती है कि ऐसी चीज उसके पास नही हे मेर पास है। लेकिन बहिनो! जरा विचार करो कि तुम्हारा क्या है जिस पर गर्व करती हो ।

भाइयो। आप मुझे अपना धर्मगुरु मानते हें। इसलिए मे कहता हू आप अभिमान का त्याग करे। मे आपको निरभिमानी देखना चाहता हू। चक्रवर्ती भी जो स्वय कपडा बनाने की कला मे कुशल हाते थे कपडा का अभिमान नही करते थे तो आप जो कपडा बनाना ही नही जानत केस अभिमान कर सकते हैं? प्रत्येक वस्तु का उपयाग करते समय यह विचार कर

लो कि यह वस्तु मेने बनाई हे या नही। और साथ ही यह सोच लो कि जब मेने नही बनाई है तो फिर अभिमान कैसा?

अगर आप खाने का अभिमान करते तो कीडे–मकोडे क्या आपसे अधिक अभिमान नही कर सकते? मिष्ठान्न मे पडने वाले कीडे आपको बुरे क्यो लगते हे? इसलिए कि मिष्ठान्न उन्होने बनाया नही और आ कैसे गये? लेकिन यही बात आप अपने विषय मे भी सोचिये। आप स्वय कीडो के समान बन रहे है या नही?

भाइयो और बहिनो। आज की मेरी इस बात को याद रखो कि ज्ञानयुक्त किया के बिना और क्रियायुक्त ज्ञान के बिना धर्म और ससार को नही जान सकते। अतएव जो भी क्रिया सामने आवे उस पर विचार करो कि यह क्रिया मैने की है या नही? अगर नही की है तो उस पर मैं अभिमान कैसे कर सकता हू? इस पकार विचार कर उस क्रिया का बदला देने की भी चिन्ता रखो। अगर आपने ऐसा नही किया तो सिर पर ऋण चढा रहेगा। जिस प्रकार होटल मे भोजन करने पर कीमत चुकानी पडती है उसी प्रकार क्रिया का बदला देना भी उचित है। आज आप सीधा खाते हैं तो यह मत समझिए कि यह आपको यो मिल गया है। आप को जो प्राप्त होता है वह आपकी किसी क्रिया का फल है। इसे खाकर अगर आपने ससार और धर्म की सेवा न की तो समझ लीजिए कि आपने अपनी सचित पूजी गवा दी है। कोई भी विचारवान व्यक्ति दीवालिया बनना पसद नही करता। लेकिन पुण्य के विषय मे यह बात क्यो भुला दी जाती है? पुण्यरूपी पूजी को भोगने वाले उसे घटने नही देने का विचार क्या नही रखते?

आप पाखान मे शौच जाते हैं या नही?

जी हा।

कभी पाखाने को साफ भी करते है?

नही।

कदाचित् आपका यह खयाल हो कि आप पुण्यवान हैं और भगी पुण्यहीन है। तो आप जब बालक थे तब आपकी माता ने क्या आपकी अशुचि न उठाई होगी? क्या इस कारण आपकी माता पुण्यहीन हो गई? और आप पुण्यवान हुए? मित्रो। आपकी स्वतन्त्रता लुट गई है फिर भी आप निरभिमानी बने तो किसी न किसी रूप मे दुनिया की सेवा मे आ सकते हैं।

ससार मे सबसे बडा काम भगी का है। भगी चाहे तो एक ही दिन मे आपकी हवेली नरक की याद दिलाने लगे नगर नरक बन जाय और आप घबरा उठे। जो लोग स्वतन्त्र हैं और जगल मे टट्टी जाते हैं तो वे तो कदाचित न भी घबरावे मगर बडे कहलाने वाले लोग सबसे पहले घबरा जाएगे। तात्पर्य यह है कि समाज के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य को करके शाति कायम करने वालो के प्रति आपको कृतज्ञ होना चाहिए। अगर आपमे कृतज्ञता नही है तो कम से कम उन्हे घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से तो मत देखिए।

लोग अन्धेरे मे पडे हुए हैं इसलिए उन्हे उजाले मे लाने के लिए मै कहता हू कि जिस तरह मैं सब सन्तो से प्रेम करता हू, उसी तरह आम भी ऊच–नीच का भेद छोड कर सब से प्रेम करो और उन्हे अपना सहायक समझो। आप हमेशा पढते हैं–

मित्ती मे सव्वभूएसु, वेर मज्झ न केणाई।

अर्थात्–समस्त प्राणियो पर मेरा मैत्रीभाव है। मेरा किसी के प्रति वैरभाव नही है। इस पाठ के अनुसार नरक मे पडे हुए जीव क्या आपके मित्र नही हैं? मगर ऐसा भी नही होना चाहिए कि पास के जीवो को भूल जाओ और जो नरक मे पडे है सिर्फ उन्ही को मित्र मानने लगो। अगर रोटी बना कर देने वाले पास के मनुष्य को आप नीच मानेगे तो नरक के जीवो को किस प्रकार मित्र समझ सकेगे?

मित्रो। समय को देखो। युगधर्म को पहचानो। अपनी बुद्धि को विवेक के मार्ग पर चलाओ। ज्ञान के द्वारा निर्धारित किये हुए काम को करने वाले ही विजयी हो सकते हैं। ज्ञान से निर्णय किये बिना ही काम करने वाले विजय नही प्राप्त कर सकते। अतएव ज्ञान की बडी महिमा है। ज्ञान के बाद ही सम्यक् क्रिया आती है। शास्त्रकारो ने ज्ञान को पहला स्थान दिया है और उसके बाद क्रिया को। आप लोग आज ज्ञान को भूल रहे है ज्ञान की आवश्यकता नही समझते और कद्र भी नही करते लेकिन ज्ञान से उत्तम कोई वस्तु नही है। गीता मे भी कहा है–

न हि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते।

इस ससार मे ज्ञान के समान और कोई पवित्र वस्तु नही है। ज्ञान सर्वोत्कृष्ट वस्तु है और अखिल कर्म की समाप्ति शुद्ध ज्ञान मे हो जाती है।

जैन सिद्धान्त के अनुसार विचार किया जाय तो इस बात मे और ही तत्त्व निकलता है। स्याद्वाद सिद्धान्त का उपयोग किये बिना किसी भी बात का मर्म पूरी तरह समझ मे नही आ सकता। जैन–सिद्धान्त के अनुसार तेरहवे गुणास्थान को छोडकर चौदहवे गुणस्थान मे जाने पर क्रिया का नाश हो जाता है। उस समय क्रिया नही रहती। साथ जाने वाली चीज ज्ञान के सिवाय और नही है। भगवती सूत्र मे एक प्रश्नोत्तर आता है। गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया– 'भगवन्! ज्ञान इसी भव मे साथ रहता है या परभव मे भी? भगवान् ने उत्तर दिया– 'इस भव मे भी साथ रहता है और परभव मे भी साथ रहता है।

मतलब यह है कि क्रिया की समाप्ति ज्ञान मे हो जाती है। अतएव ज्ञान के समान अन्य कोई भी वस्तु नही है।

मगर यह मत भूल जाना कि ज्ञान की पवित्रता को जान लेने मात्र से ही ज्ञान नही होता। ज्ञानी पुरुषो का चरित्र तो उनके अन्तिम शरीर के साथ समाप्त हो गया है परन्तु उस चारित्र का ज्ञान अभी तक मौजूद है। आप ज्ञान से ही भगवान महावीर को पहिचानते हैं। लेकिन आज हसी–मजाक मे ज्ञान का नाश हो रहा है। आज बालको और युवको के दिमाग मे जहर भरने वाले, कुवासनाओ को उत्तेजित करने वाले उपन्यासो के ढेर लग रहे हैं। इन्हे ज्ञान या ज्ञान का साधन समझ लेना विष को पीयूष समझ लेना है। यह पुस्तके भुलावे मे डालने वाली है। इनसे भारतवर्ष की पवित्र सस्कृति का सत्यानाश हो रहा है। जिसके प्रताप से कार्य की सिद्धि हो जाने पर कर्म मात्र का परित्याग हो जाय वही सच्चा ज्ञान है।

गीता का एक श्लोक है –

यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर ।

अर्थात– योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन जिस ओर हैं, उसी ओर नीति आदि है।

निकलकर गडबडाध्याय मे पड गये हैं। आज हमारे लिए पुस्तके पढकर समझना कठिन हो गया है कि वास्तविक ज्ञान क्या है?

इस जमाने मे भी बहुत लोग हें जो कहते हैं कि पढे-लिखे आदमी ज्यादा खराब होत हैं इसलिए पढाना बुरा है। स्त्रियो को तो मूर्ख रहना ही अच्छा है। उन्हे ज्ञान सिखाने से हानि होती है।

मैं पूछता हू कि वह अक्षर विद्या पुरुषो से तो निकली नहीं है स्त्रिया से ही निकली है फिर अक्षरज्ञान को पैदा करने वाली स्त्रिया ही अक्षरज्ञान न पढे, इस विधान का कारण क्या हे? भगवान् ऋषभदेव की दो कन्याए थी। एक का नाम ब्राह्मी और दूसरी का नाम सुन्दरी था। भगवान ने सर्वप्रथम दोना पुत्रियो को अक्षरज्ञान सिखलाया था। इन दोनो के नाम से ब्राह्मीलिपि ओर सुन्दरी गणित नाम प्रचलित हुआ। आप लोग आज स्त्रियो को पढाना हानिकारक समझते हैं तो क्या आप लोगो मे भगवान् ऋषभदेव से अधिक बुद्धि है? ब्राह्मीलिपि के बावन अक्षरो का ही प्रताप है कि आप हजारो लाखो वर्ष पूर्व की बात जान रहे हैं। एक अगरेज विद्वान ने ब्राह्मीलिपि के बावन अक्षरो की तुलना जहाज के साथ करते हुए लिखा था कि ये बावन अक्षर जहाज हैं। जैसे जहाज एक द्वीप का माल दूसरे द्वीप मे पहुचाता हे उसी प्रकार यह बावन अक्षर पूर्वकालीन पुरुषो की बात हमारे पास पहुचाते हैं। इन बावन अक्षरो की ही महिमा है कि हम अपने पूर्वजो के चारित्र ओर ज्ञान-विज्ञान को आज जान सकते हैं।

मित्रो! जिसे शास्त्ररूपी चक्षु प्राप्त नही हे। वह अन्धा हे। हजारा वर्ष पहले की बाते शास्त्र द्वारा ही जानी जा सकती है। दूर से दूर की बात भी शास्त्र ही बतलाता है। भगवान् ऋषभदेव आदि का चरित अपन केरा जाना? सिद्धशिला, नरक और स्वर्ग का वृत्तान्त आपको कैसे विदित हुआ? इन राव वस्तुओ को इस भव मे आखो द्वारा नही दखा हे। शास्त्रो से ही इनका ज्ञान हुआ हे। अगर बावन अक्षरो का शास्त्र हमारे-आपके सामन न हाता तो क्या दशा होती? हम लोग न जाने किस बीहड अधकार मे भटक रहे हाते? मगर ब्राह्मीलिपि का ही प्रताप है कि हमे उस अन्धकार मे नही भटकना पड रहा है और हमे ज्ञान का आलोक प्राप्त हे। ब्राह्मी कन्या थी पुरुष नही थी। फिर आज की कन्याए पढने लिखने से किस प्रकार बिगड जाएगी? आपका जा बात सूझ रही है वह क्या भगवान् ऋषभदव को नही सूझी थी? अगर भगवान आपसे अधिक ज्ञानी नही थे तो उन्होने ब्राह्मी को लिपिज्ञान क्या दिया?



आवश्यक है। ऐसी दशा मे कन्याओ की शिक्षा का विरोध करना उनक विकास मे बाधा डालना ओर उनकी शक्ति का नाश करना हे।

लोग कहते हैं कि लडकी को क्या हुडिया लिखनी हैं जा वह पढाई करे। परन्तु ब्राह्मी को क्या हुडिया लिखनी थीं जो वह पढी? ब्राह्मी तो ब्रह्मचारिणी ही रही थी। भगवान को चिन्ता हुई कि मैं ऐसी दिव्य कन्या का दूसरे को सोपूगा और वह इसका नाथ बनेगा? ब्राह्मी अपन पिता की चिन्ता को समझ गई। उसने कहा– पिताजी आप चिन्ता क्यो करते हें? हमार रोम–रोम मे शील बसा हुआ हे। हम ससुराल का नाम लेन मे ही लज्जा मालूम होती है।

ब्राह्मी अगर विद्या न पढी होती तो क्या ऐसा कह सकती थी?

'नहीं'।

बहुत से लोगो की धारणा है कि लिखने–पढने से लडको–लडकियो का बिगाड होता है। लेकिन बिना पढे लिखे लोग क्या बिगडत नही हैं? नुकसान क्या पढे–लिखे ही करते हें ओर बिना पढ–लिख नही करत? ग्रन्थकारो का कथन है कि ज्ञानी के द्वारा कोई भूल हा जाय ता वह जल्दी समझ जाता है। मगर मूर्ख तो नुकसान करके भी प्राय नही समझता।

भगवान ने कहा है कि अगीतार्थ साधु चाह सौ वर्ष का हा फिर भी उसे गीतार्थ साधुकी नेश्राय मे ही रहना चाहिए। पच्चीस साधुआ म एक भी साधु अगर आचाराग और निशीथसूत्र का जानकार हो ओर वह शरीर त्याग दे तो भादो का महीना ही क्यो न हो शेष चोबीस को बाहर करक आचाराग और निशीथसूत्र के ज्ञाता मुनि की देखरेख मे चले जाना चाहिए। अगर उनम दूसरा कोई साधु आचाराग निशीथ का ज्ञाता हो तो उसे अपना मुखिया स्थापित करना चाहिए।

मतलब यह है कि शिक्षा के साथ उच्च क्रिया लान का प्रयत्न ता करना ही चाहिए मगर मूर्ख रहना किसी के लिए भी उचित नही हे।

विद्वान ओर मूर्ख के बुरे ओर अच्छे कामा म भी कैसा अन्तर हाता हे इस विषय मे गन्थकारो ने एक दृष्टान्त इस प्रकार दिया हे–

एक विद्वान को जुआ खेलने का व्यसन लग गया था। जुए क फद मे फसकर उसने गाठ की सारी पूजी गवा दी ओर अपनी पत्नी क आभूषण भी बेच डाले। उसकी दशा बिगडती ही गयी। लोग उसकी बात पर विश्वास नही करते थे ओर घर के लाग भी उसे दुत्कारत थ।

धन सबधी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए उस विद्वान को चोरी करने के सिवाय और कोई मार्ग दिखाई न दिया। अन्त मे लाचार होकर उसने यही करने का निश्चय कर लिया। वह सोचने लगा—चोरी किसके घर करनी चाहिए? अगर किसी सेठ के घर चोरी करूगा तो वह चोरी मे गये धन को भी हिसाब मे लिखेगा। सेठ लोग पाई—पाई का हिसाब रखते हे। और जब—जब वह हिसाब देखेगा तब तक गालिया देगा। अगर किसी साधारण आदमी के घर चोरी करूगा तो वह रोएगा। उस बेचारे के पास पूजी ही कितनी होती है?

इस पकार विद्वान ने सब का विचार कर देखा। अन्त मे उसने निश्चय किया कि औरो के घर चोरी करना तो उचित नही है राजा के यहा चोरी करनी चाहिए। इस पकार निश्चय करके वह राजा के यहा चोरी करने गया।

राजा ने एक बन्दर पाल रक्खा था। बन्दर राजा को बडा प्रिय था। वह उसे अपने साथ ही खिलाता और साथ ही रखता था। रात के समय जब राजा सोता तो बन्दर नगी तलवार लेकर पहरा दिया करता था। राजा बन्दर को अपना बडा प्रिय मित्र समझता था।

राजा सो रहा था। बन्दर नगी तलवार लिये पहरा दे रहा था। इसी समय विद्वान चोरी करने के लिए पहुचा।

बन्दर राजा का मित्र है लेकिन वह विद्वान चोरी करने आया है इस कारण शत्रु हे। फिर भी देखना चाहिए कि विद्वान शत्रु मे और मूर्ख मित्र मे कितना अन्तर है? ओर दोनो मे कोन अधिक हितकर या अहितकर है?

राजा गाढी निद्रा मे लीन था। उसी समय मकान की छत पर एक साप आया। साप की छाया राजा पर पडी। बन्दर ने साप की छाया को साप ही समझ लिया और विचार किया कि यह साप राजा को काट खायेगा। वह चपल और मूर्ख तो था ही आगे—पीछे की क्यो सोचने लगा। उसे विचार ही नही आया कि छाया पर तलवार चलाने से साप तो मरेगा नही राजा ही मर जाएगा। वह तलवार सभालकर छायारूपी साप को मारने के लिए तैयार हुआ।

गे नही होन दूगा। यह सोचकर विद्वान एकदम झपट पडा ओर उसने बन्दर की तलवार पकड ली। बन्दर ओर विद्वान मे झगडा होने लगा। इतन म राजा की नीद खुल गई। वह हडबडा कर उठा ओर बन्दर तथा विद्वान की खीचतान देखकर ओर भी विस्मित हुआ। राजा के पूछने पर विद्वान ने कहा– यह बन्दर आपके प्राण ले रहा था पर मुझ स यह नही देखा गया। इसी कारण झपट कर मैने तलवार पकड ली है।

राजा– तू कौन है?

विद्वान– मे? मैं चोर हू।

राजा– बन्दर मुझे कैसे मार रहा था?

विद्वान– आप सा रहे थे और मे चोरी करने की ताक मे आया था। छत पर साप आया। उसकी छाया आपके शरीर पर पडी। छाया का साप समझ कर यह बन्दर तलवार चलाने को उद्यत हुआ। मुझस यह नही दखा गया। मैंने झपटकर तलवार पकड ली।

विद्वान की बात सुनकर राजा सोचने लगा – प्रजा को अशिक्षित रखकर बन्दर के समान मूर्ख बनाए रखने से क्या हानि होती है यह बात आज मेरी समझ मे आई। मगर राजा ने पण्डित से पूछा तुम पण्डित होकर चारी करने आये हो?

पण्डित – मे जुआ खेलने के व्यसन मे पड गया था। एक दुर्व्यसन भी मनुष्य के जीवन को किस प्रकार पतित कर देता है किस प्रकार विवक को विनष्ट कर देता है इसके लिए में उदाहरण हू। जुए के दुर्व्यसन न मरी पण्डिताई पर पानी फेर दिया हे। मेरी विद्वत्ता जुए से कलकित हा रही हे। मैं आपके सामने उपस्थित हू। जो चाहे करे।

मतलब यह है कि नादान दोस्त की अपेक्षा ज्ञानवान शत्रु भी अधिक हितकारी होता हे। ज्ञानवान अपने कल्याण–अकल्याण को शीघ्र समझ जाता हे। ज्ञान का प्रकाश मनुष्य को शीघ्र ही सन्मार्ग पर ले जाता हे। पथभ्रष्ट मनुष्य भी अगर उसके हृदय मे ज्ञान विद्यमान हे तो एक दिन सत्पथ पर आये बिना नही रहेगा। अतएव प्रत्येक दशा मे ज्ञान जीवन का उन्नत बनान मे सहायक होता है।

अगर आप लोग ज्ञान का सच्चा महत्व समझते हे तो अर्हन्त भगवान के ज्ञान का प्रचार कीजिये। आप स्वय ऐसे काम कीजिए जिससे ज्ञान का प्रचार हो। अर्हन्त के ज्ञान का प्रचार अक्षर ज्ञान के बिना नही हा सकता। यह विचार कर ही भगवान ऋषभदेव ने ब्राह्मी को लिपिज्ञान दिया था। भगवान के आशय को आप समझिए ओर अपनी सतति का मूर्ख मत रख

दीजिये। ज्ञान का प्रचार करने का उद्योग कीजिए। ज्ञान की वृद्धि उन्नति का मूल मत्र है। आपके पास जो भी शक्ति हो, ज्ञान के प्रचार मे लगाइए। इतना भी न कर सके तो कम से कम ज्ञान और ज्ञान–प्रचार का विराध तो मत कीजिए। ज्ञान की शिक्षा की निन्दा करना उसमे रोडे अटकाना और जो लोग ज्ञान का पचार कर रहे है उनका विरोध करना बुरी बात है। ज्ञान का प्रचार शासन की प्रभावना का प्रधान अग हे। सच्चे ज्ञान का प्रचार होने पर ही चारित्र के विकास की सभावना की जा सकती है। आप लोग ज्ञान ओर चारित्र की आराधना करके आत्म कल्याण मे लगे यही मेरी आतरिक कामना हे।

7. आत्माः—दुधारी तलवार

जिन्होने वस्तुतत्त्व का यथार्थ बोध प्राप्त नहीं किया है ओर जो बहिर्दृष्टि बने हुए हें, वे अपने सुख—दु ख का कारण सही रूप मे नही समझ पाते। वे निमित्त कारण को ही देखते हें ओर उपादान कारण का विचार ही नही करते। मिर्च के तीखेपन को ओर मिश्री की मिठास का वे जानते हैं मगर उन्हे यह मालूम नही होता कि उस तीखेपन का या मिठास का अनुभव होता किसे है? अगर नाम मे ही कटुकता हे ओर हमारी सवदना कोई काम नही करती तो ऊट को मीठा लगने वाला नीम हमे कटुक क्या प्रतीत होता है? क्या नीम ऊट के लिए ओर मनुष्य के लिए अपना स्वाद वदल लता हे? नही। नीम अपना स्वभाव नहीं बदलता। लेकिन जीवन की सवदना शक्ति ही नाना रूप धारण करके वस्तु को नाना रूप म ग्रहण करती है। वही किसी का रुचिकर ओर किसी को अरुचिकर क्यो प्रतीत हाती हे? आत्मा की सवदना शक्ति का ही यह सब खिलवाड हे। यही बात सुख ओर दु ख क विषय म समझी जा सकती हे। एक आदमी जिसे दु ख मानता हे दूसर क लिए वह दु ख नही हे। यही नही वल्कि उसके लिए वह सुखचा हे। ओर दूसर का माना हुआ सुख एक के लिए दु ख प्रतीत होता हे। यह बात हम लाग व्यवहार मे सदा देखते रहते हें। पर इसका कारण क्या है?

मिर्च तीखी प्रतीत होती हे मगर वह अपन तीखेपन का नही जानती। मिश्री की मिठास मिश्री को मालूम नही हे। मिर्च का तीखापन ओर मिश्री की मिठास आत्मा ही जानती हे। मगर लोग आत्मा का भूल जात हें ओर स्थूल पदार्थो को पकड बेठते हे ओर मानते हें कि मिठास मिश्री म ही है ओर तीखापन मिर्च मे ही हे। एक लकडी या पत्थर की पुतली क मुह म मिश्री या मिर्च डाली जाय तो क्या उसे मिठास या तीखपन का अनुभव हागा ?

नहीं।

तो फिर मानना चाहिए कि मिठास और तीखास का अनुभव करने वाला आत्मा ही है। आत्मा ही कर्त्ता है और आत्मा ही विधायक है। इसी प्रकार ससार की समस्त वस्तुओ पर विचार किया जाय तो सर्वत्र यही चमत्कार दिखाई देगा।

ज्ञान पाप्त करने के लिए बहुत से पोथो की आवश्यकता नही होती। ज्ञान तो एक छोटी–सी घटना और थोडी–सी बात से भी हो सकता है। और ज्ञान होने पर अज्ञान उसी प्रकार नष्ट हो जाता है। जैसे पकाश होने पर अन्धकार।

ऋषि मुनि कहते आये हैं कि हे मानव! तू बाहरी वैभव मे क्यो उलझा है? स्थूल और निर्जीव पदार्थो के फेर मे क्यो पडा है? उन्हे सुख–दु ख का विधाता क्यो समझ रहा हे? सुख–दु ख के मूल स्रोत की खोज कर। देख कि यह कहा से और कैसे उत्पन्न होता है? अपने मन को स्थिर करके अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाकर विचार करेगा तो स्पष्ट दिखाई देगा कि तेरी आत्मा ही तेरे सुख ओर दु ख आदि की विधाता है। उसी ने इनकी सृष्टि की है ओर वही इनका विनाश करता है। इस तथ्य को समझ जाने पर तेरी बुद्धि शुद्ध और स्थिर हो जायगी और तू बाह्य पदार्थो पर राग–द्वेष करना छोड देगा। उस अवस्था मे तुझे समता का ऐसा अमृत प्राप्त होगा जो तेरे समस्त दु खो का समस्त व्यथाओ का ओर समस्त अभावो का अन्त कर देगा।

तू अपने बधन का निर्माता आप ही है और मुक्ति का विधाता भी आप ही है। तू स्वय दु ख का निर्माण करता है और फिर हाय–हाय करता है लेकिन निर्माण करना नही छोडता। मिथ्याज्ञान के कारण जीव दु खो का विनाश करने के लिए जो प्रयत्न करता है उसी प्रयत्न मे से अनेक दु ख फूट पडते है। इस पकार दु खो की दीर्घ परम्परा चल रही है। इस परम्परा को समाप्त करने का उपाय सम्यग्ज्ञान ही है। सम्यग्ज्ञान के अपूर्व प्रकाश मे दु खो का अन्त आता है। दु खो का आद्य स्रोत आत्मा का विकारमय भाव है। इस प्रकार आत्मा ही दुखो का कर्त्ता और सहर्त्ता है।

तोता पकडने वालो के विषय मे सुना जाता है कि वे जगल मे एक गिर्री लगाते है। तोता आकर उस पर बैठ जाता है। तोते के बैठने पर गिर्री [illegible]। तोता यह समझकर कि यदि मै गिर्री को छोड [illegible]

दे तो वह उड जाय ओर गिर्री का घूमना भी बन्द हो जाय। मगर वह अपने पखो का बल भूल जाता हे ओर गिर्री पर बेठा हाय–हाय करता रहता हे। परिणाम यह होता है कि उसे बन्धन मे पडना होता हे।

गिर्री की तरह ही यह ससार घूम रहा है। इस घूमते हुए ससार को पकड कर इसके साथ ही आत्मा भी चक्कर खा रहा है। आत्मा ससार को दोष देता है मगर यह क्यो नही सोचता कि ससार को पकड किसने रक्खा है? आत्मा ने ही ससार को पकड रक्खा है, इसी कारण वह ससार के साथ घूम रहा है। जिस दिन वह ससार का आसरा छोड देगा उसी दिन उसे आनन्द का लाभ होगा ओर विग्रह शात हो जायगा। मगर ज्यो–ज्यो ससार घूमता है, त्यो–त्यो आत्मा इसे ज्यादा मजबूती से पकडता है और समझता है कि अगर मैंने ससार को छोड दिया तो गिर जाऊगा। तोते की तरह आत्मा इस भ्रान्ति मे पडा है। अगर आत्मा समझ ले कि मेरे घूमने से ही ससार घूमता है तो उसके सब चक्कर मिट जाए।

मित्रो! अगर आप वास्तविक कल्याण चाहते हें तो इस भूल पर विचार करो। इस प्रकार सुख और दु ख का कर्त्ता आत्मा ही है। शास्त्र भी यही कहते हैं –

अप्पा मित्तममित्त च।

अर्थात–आत्मा स्वय ही अपना मित्र हे और स्वय ही अपना शत्रु हे। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि मित्र किसे कहते हैं? मिठाई ओर चूरमा खाने वाले मित्र तो बहुत मिलेगे मगर सकट के समय साथ देने वाले मित्र बिरले ही होते हैं। सम्पति के समय मिठाई–चूरमा खाने वाले और मीठी–मीठी बात बनाने वाले किन्तु सकट के समय किनारा काट जाने वाले लोग मित्र नही छिपे शत्रु हैं। सच्चा मित्र वह हे जो घोर से घोर सकट आने पर भी अपने मित्र का साथ देता हे ओर अपने मित्र को सकट से बचाने के लिए अपने प्राणो को भी सकट मे डाल सकता हे। सच्चे मित्र की कसोटी एसे अवसर पर ही होती हे।

श्री जम्बू स्वामी ने अपनी पत्नियो के सामने मित्रता का एक दृष्टान्त देकर कहा तुम प्रेम दिखलाती हो मगर सच्ची मित्रता यह नही हे। ऊपरी सासारिक व्यवहार को देखकर ही यह नही समझा जा सकता कि सच्चा मित्र कौन हे? इस विषय मे एक दृष्टान्त सुनो।

एक राजा का प्रधान था। राजा उसका खूब आदर सत्कार करता था। प्रधान विवेकवान था। उसने विचार किया।

राजा योगी अगनि जल, इनकी उलटी रीति।
बचते रहियो परसराम थोडी पाले प्रीति।

अतएव सिर्फ राजा के पेम पर निर्भर न रहकर किसी दूसरे को भी अपना मित्र बनाये रखना उचित है। मित्र होगा तो समय पर काम आयेगा।

इस पकार विचार कर पधान ने एक नित्य मित्र बनाया। पधान अपन इस मित्र के साथ ही खाता पीता और रहता था। वह समझता था कि नित्य मित्र भी मेरा आत्मा है। इस प्रकार प्रधान अपने मित्र को बडे प्रेम स रखन लगा।

एक मित्र पर्याप्त नही है यह विचार कर प्रधान ने दूसरा मित्र भी बनाया। यह मित्र पर्व मित्र था। किसी पर्व या त्यौहार के दिन प्रधान उसे बुलाता खिलाता–पिलाता और गपशप करता था। प्रधान ने एक तीसरा मित्र ओर बनाया जो सैन–जुहारी मित्र था। जब कभी अचानक मिल गया। तो जुहार उससे कर लिया करता था। इस प्रकार प्रधान ने तीन मित्र बनाये।

समय ने पलटा खाया। राजा प्रधान पर कुपित हो गया। कुछ चुगलखोरो ने राजा के कान भर दिये कि पधान ने अपना घर भर लिया है राज्य को अमुक हानि पहुचाई हे यह किया है वह किया है आदि आदि। राजा कान के कच्चे होते है। उसने एक दिन पुलिस को हुक्म दिया कि प्रधान के घर पहरा लगा दो ओर पात काल होते ही उसे दरबार मे हाजिर करो।

पारम्भ मे राज्य–व्यवस्था प्रजा की रक्षा के उद्देश्य से की गई थी। लोगो न अपनी रक्षा के लोभ से राजा की शरण ली थी। मगर धीरे–धीरे राजा लोग स्वार्थी बन गये। पहले राजा और प्रजा के स्वार्थो मे विरोध नही था। राजाओ का हित प्रजा का ओर प्रजा का हित राजा का हित था मगर राजाओ म विलासिता ओर स्वार्थ भावना न प्रवेश किया। तब राजा के हित का घात करके भी राजा अपने स्वार्थ सिद्ध करने लगे। तभी से राजा ओर प्रजा के बीच संघर्ष का सूत्रपात हुआ। आज वह सघर्ष अपनी चरम सीमा को पहुच गया ... शासन–सूत्र हट रहा है। राजतन्त्र मरणासन्न हो

प्रधान अपनी आबरू बचाने के उद्देश्य से घर से बाहर तो निकल पडा मगर सोच–विचार मे पड गया कि अब कहा जाऊ? ओर किसकी शरण लू? अन्त मे उसने सोचा– मेरे तीन मित्र हैं। तीन मे से कोई तो शरण दगा ही। मगर मेरा पहला अधिकार नित्य मित्र पर है। पहले उसके पास जाना योग्य है।

प्रधान आधी और अन्धेरी रात मे नित्य मित्र के घर पहुचा। किवाड खटखटाए। मित्र ने पूछा– कौन है?

प्रधान ने दबी आवाज मे कहा– धीरे बोलो धीरे। मैं तुम्हारा मित्र हू।

मित्र– में कौन?

प्रधान– तुम तो मुझे स्वर से ही पहचान लेते थे। क्या इतना जल्दी भूल गये? मैं तुम्हारा मित्र हू।

मित्र– नाम बताओ।

प्रधान– अरे। नाम भी भूल गये। मैं प्रधान हू।

मित्र ने किवाड खोलकर आधीरात के समय आने का कारण पूछा। प्रधान ने राजा के कोप की कथा कहकर कहा– यद्यपि मैं निरपराध हू, मगर इस समय मेरी कौन सुनेगा? इसलिए मैं तुम्हारी शरण मे आया हू। आगे जो होगा देखा जायेगा।

मित्र– राजा के अपराधी को मेरे घर मे शरण। नही मै बाल–बच्चे वाला आदमी हू। आपको मेरे हानि–लाभ का विचार करना चाहिए। राजा का पता चल गया तो मेरी मिटटी पलीद होगी। अगर आप मरे मित्र हें तो मर घर से आपको अभी–अभी चला जाना चाहिए।

प्रधान– मित्र क्या मित्रता ऐसे ही वक्त के लिए नही होती? इतन दिन साथ रहे साथ खाया–पिया ओर मौज की। आज सकट के समय धाखा दोगे? क्या आज इसी उत्तर के लिए मित्रता बाधी थी?

मित्र– आप मेरे मित्र है इसी कारण तो राजा को खबर नही द रहा हू। अन्यथा फोरन गिरफ्तार न करवा देता? लकिन अगर आप जल्दी रवाना नही होते तो फिर लाचार होकर यही करना पडेगा।

प्रधान– निर्लज्ज। मैंने तुझे अपनी आत्मा की तरह स्नह किया ओर तू इतना स्वार्थी निकला। विपदा का समय चला जायगा मगर तेरी करतूत सदा याद रहेगी।

बाहर रात्रि का घोर अन्धकार था ओर प्रधान के हृदय म उरास भी घनतर निराशा का अन्धकार छाया था। उसे अपन पर्व मित्र की याद आई।

मगर दूसरे ही क्षण ख्याल आया– जब नित्यमित्र ने यह उत्तर दिया है तो पर्व मित्र से क्या आशा की जा सकती है? मगर चलकर देखना तो चाहिए। इस प्रकार विचार कर पर्व मित्र के घर पहुचा। सारी घटना सुनने के बाद मित्र ने हाथ जोडकर कहा– मेरी इतनी शक्ति नही कि राजा के विरोधी को शरण दे सकू! आप भूखे हो तो भोजन कर लीजिए। वस्त्र या धन की आवश्यकता हो तो मै दे सकता हू। मगर आपको स्थान देने मे असमर्थ हू।

प्रधान– मै नगा या भिखारी नहीं हू। मेरे घर धन की कमी नही है। मै तो इस सकट के समय शरण चाहता हू। जो सकट के समय सहायता न करे वह मित्र कैसा?

जे न मित्र–दुख होहि दुखारी। तिनहि विलोकत पातक भारी।।

जो अपने मित्र के दु ख से दुखित नही होते, उन्हे देखने मे भी पाप लगता है।

मित्र मैं यह नीति जानता हू, मगर राजविरोधी को अपने यहा आश्रय देने की शक्ति मुझ मे नही है।

प्रधान ने सोचा– हठ करना वृथा है। नित्य मित्र जहा गिरपतार कराने को तैयार था वहा यह नम्रता पूर्वक तो उत्तर दे रहा है। यह विपत्ति मित्रो की कसौटी है।

निराश होकर प्रधान सेन जुहारी मित्र की ओर रवाना हुआ। उसने सोचा– इस मित्र पर अपना कोई अधिकार तो है नही मगर कसौटी करने मे क्या हर्ज है? यह सोचकर वह अपने तीसरे मित्र के घर पहुचा। राजा के कोप की कहानी सुना कर आश्रय देने की प्रार्थना की। मित्र ने दृढता के साथ कहा– खैर यह तो राजा का ही कोप है, अगर इन्द्र का कोप होता और मैं सहायता न देता तो आपका मित्र कैसा? आप ऊपर चलिए और निश्चिन्त होकर रहिये। यह घर आपका ही है।

प्रधान की प्रसन्नता का पार न रहा। मन ही मन कहा– इसे कहते है मित्रता। समय पर ही मित्रता की पहिचान होती है।

प्रधान अपने मित्र के साथ भीतर गया। मित्र ने उसका सत्कार करके कहा– अगर आपकी कोई आवश्यकता हो तो बिना सकोच कह दीजिए। प्रधान के मना करने पर उसने कहा मनुष्य मात्र भूल का पात्र है। अगर कोई भूल हो गई हो तो आप मुझसे छिपाइए नही। सचसच कह दीजिए। रोग का ठीक तरह से पता लगने पर ही सही इलाज हो सकता है।

प्रधान सोचने लगा– अपनी बात ऐसे मित्र से नहीं कहूगा तो किसस कहूगा? और प्रधान ने उसके सामने अपना दिल खोलकर रख दिया। मित्र ने उसे आश्वासन दिया।

प्रात काल प्रधान के घर की तलाशी ली गई। तभी पता चला कि प्रधान घर मे नहीं है। चुगलखोरो की बन आई कहा– प्रधान अपराधी न होता तो भागता ही क्यो? भागना ही उसके अपराधी होने का सबसे बडा सबूत है। राजा के दिल मे बात बैठ गई। उसने कहा– ठीक है। पर भागकर जायेगा कहा? जहा भी होगा पकडवा कर मगवा लिया जायेगा।

प्रधान का आश्रयदाता मित्र प्रात काल ही राजा के दरबार मे जा पहुचा था। वह चुपचाप सारी बाते सुनता रहा। सारे शहर मे हलचल मची थी।

सब बाते सुन चुकने के बाद मोका देखकर प्रधान के मित्र ने मुजरा किया। राजा ने कहा– सेठ, तुम कभी आते नही। आज आने का क्या कारण है?

सेठ– पृथ्वीनाथ कुछ अर्ज करना चाहता हू।

राजा– कहो।

सेठ– एकान्त मे निवेदन करूगा।

राजा और सेठ एकान्त मे चले गये। वहा राजा के पूछने पर सठ ने कहा– महाराज, प्रधानजी ने क्या अपराध किया है? क्या मैं यह जान सकता हूँ?

राजा ने कई एक अपराध गिना दिये जिनके विषय मे काई प्रमाण नहीं था।

सेठ– आपके कथन को मिथ्या केसे कहा जा सकता हे ? मगर प्रधान के बिना तो काम चलेगा नहीं। आपन इस विषय म क्या सोचा हे ?

राजा– दूसरा प्रधान बुलाएगे।

सेठ– कदाचित् वह ऐसा ही निकला तो क्या होगा?

राजा – उसकी परीक्षा कर लेगे।

सेठ – नये प्रधान को जिस प्रकार जाच करगे उसी प्रकार अगर पुराने प्रधान की जाच की जाय तो क्या ठीक न होगा? वह नया आयगा ता पहले अपना घर बनायेगा उपद्रव मचा देगा। शायद आपका फिर पश्चात्ताप करना पडे। पुराने प्रधान से अभियोगो के विषय म आप स्वय पूछत ओर सतोषजनक उत्तर न मिलने पर यही केद कर लेते तो क्या हानि थी? मगर

आपने उस खानदानी प्रधान के पीछे पुलिस लगा दी। यह कहा तक उचित है आप सोचे।

सेठ की बात राजा को ठीक मालूम हुई। उसने कहा— सेठ, तुम राज्य के हितचिन्तक हो। इसी कारण तुम्हे राजा और प्रजा के बीच का पुरुष नियत किया है और सेठ की उपाधि दी गई है। मगर प्रधान न मालूम कहा चला गया है। वह होता तो उससे सब बात पूछता।

सेठ— प्रधानजी मेरे आत्मीय मित्र हैं। मुझे उनकी सब बातो का पता है। उनके अभियोगो के विषय मे मुझ से पूछे तो समव है मैं समाधान कर सकू?

राजा— प्रधान तुम्हारे मित्र हैं?

सेठ— मैने तो न कभी छदाम दी है, न ली है। आपके प्रधान होने के नाते और मनुष्यता के नाते उनसे मेरी मित्रता है। मित्रता भी ऐसी है कि उन्होने मुझसे कोई बात नही छिपाई।

राजा— अच्छा देखो, प्रधान ने इतना हजम कर लिया है।

सेठ— ऐसा कहने वालो ने गलती की है। भला बही मगवा कर देखिए तो समाधान हो जायगा।

बही मगवा कर देखी गई। राजा ने पाया कि वास्तव मे अभियोग निराधार है। इसी प्रकार और दो—चार बातो की जाच की गई। सब ठीक पाया गया। सेठजी बीच—बीच मे कह देते थे— हा, इतनी भूल प्रधानजी से अवश्य हुई है और वे इसके लिए मेरे सामने पश्चात्ताप भी करते थे। आपसे भी कहना चाहते थे मगर लिहाज के कारण नही कह सके।

राजा— प्रधान ने पश्चात्ताप भी किया था? मगर इतने बडे काम मे भूल हो जाना सभव है। वास्तव मे मैंने प्रधान के साथ अनुचित व्यवहार किया है। किन्तु अब तो उसका मिलना कठिन है। कौन जाने कहा चला गया होगा?

सेठ— अगर आप उनके सम्मान का वचन दे तो मैं ला सकता हू।

राजा— क्या प्रधान तुम्हारी जानकारी मे है?

सेठ— जी हा। मगर बिना अपराध सिर कटाने के लिए मैं उन्हे नही ला सकता। आप न्याय करने का वचन दे तो हाजिर कर सकता हू।

राजा— मै वचन देता हू कि प्रधान के गौरव की रक्षा की जायेगी। [illegible]ही नही वरन चुगलखोरो का मुह काला किया जायेगा।

सेठ— महाराजा अपराध क्षमा करे। प्रधानजी मेरे घर पर हैं।

राजा– सारे नगर मे उनकी बदनामी हो गई है। उसका परिमार्जन करने के लिए उनका सत्कार करना चाहिए। मैं स्वय उनको लिवाने चलूगा और आदर के साथ हाथी पर बैठाकर ले आऊगा। जिसने अपमान किया है वही मान करे तो अपमान मिट जाता है।

हाथी सजाकर राजा सेठ के घर की तरफ रवाना हुआ। सेठ ने जाकर प्रधान से कहा– प्रधानजी आपको दरबार मे पधारना होगा।

प्रधान– क्या गिरफ्तार कराओगे?

सेठ– क्या मैं पापी हू? महाराज द्वार पर आ पहुचे हैं और आदर के साथ आपको ले जाएगे।

सेठ के साथ बाहर आकर प्रधान ने राजा को मुजरा किया। राजा ने हाथी पर बैठने का हुक्म दिया। प्रधान शर्मिन्दा हुआ। तब राजा ने कहा जो होना था, हो चुका, शर्माने की बात नही है। मूर्खो की बातो मे आकर मैंने तुम्हारा अपमान किया है। मगर अब किसी प्रकार की शका मत रक्खो।

दरबार मे पहुचकर प्रधान ने निवेदन किया– मेरे विरुद्ध जो भी आरोप हैं, उनकी कृपाकर जाच कर लीजिए। इससे मेरी निर्दोषिता सिद्ध होगी और चुगलखोरो का मुह आप ही काला हो जायेगा।

जम्बूकुमार अपनी पत्नियो से कह रहे हैं– कहो मित्र कैसा होना चाहिए? उनकी पत्नियो ने कहा–पहला मित्र तो मुह देखने योग्य भी नही है। दूसरे ने हृदय को नही पहचाना और अनावश्यक वस्तुए पेश की। तीसरे मित्र ने हृदय को पहचाना और उसी के अनुसार उपाय किया। इसलिए मित्र हो तो तीसरे मित्र के समान ही होना चाहिए।

जम्बूकुमार कहने लगे– प्रधान के समान मेरे भी तीन मित्र हैं। नित्य मित्र यह शरीर है। इसे प्रतिदिन नहलाता–धुलाता हू, खिलाता–पिलाता हू और सजाता हू। परन्तु कष्ट का प्रसग आने पर, जरा या रोग आने पर सब से पहले शरीर ही धोखा देता है। इसका सत्कार–सम्मान करने पर भी यह शरीर आत्मा के बधन नहीं तोड सका। अतएव आत्मा से शरीर को भिन्न ओर अन्त मे साथ न देने वाला समझकर उस पर ममता रखना उचित नही हे।

माता, पिता, पत्नी आदि कुटुम्बजीवन पर्वमित्र के समान हें। पत्नी पति पर प्रीति रखती है किन्तु जब कर्मरूपी राजा का प्रकोप होता हे तब वह अपने पति को छुड़ा नही सकती।

जा दिन चेतन से कर्म शत्रुता करे
ता दिन कुटम्ब से कोउ गर्ज न सरे

जिस दिन कर्म चेतना के साथ शत्रुता का व्यवहार करता है, उस दिन कुटुम्बीजन क्या कर सकते हैं? वह व्याकुल भले ही हो जाए और सहानुभूति भले प्रकट करे किन्तु कष्ट से छुडाने मे समर्थ नही होते।

जम्बूकुमार अपनी पत्नी से कहते हैं– मेरे तीसरे मित्र सुधर्मा स्वामी हैं। उन्होने आत्मा और कर्म की भिन्न–भिन्न व्याख्या करके उसी प्रकार समझाया है जैसे सेठ ने राजा को समझाया था। इसी तीसरे मित्र की बदौलत ही आत्मा दु ख से मुक्त होता है और अपने परम पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुक्खाण य सुहाण य।

हे आत्मा! अगर तू चाहे तो दु ख क्षण भर भी नही ठहर सकता। मगर तू धन की कुजी भी अपने हाथ मे रखना चाहता है। यह दोनो बाते एक साथ नही हो सकती।

वस्तुत सच्चा मित्र वही है जो उपकार करता है, सकट से बचाता है और जो सन्मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न करता है। मित्र का यह स्वरूप आध्यात्मिक दृष्टि से ही समझने योग्य नही है किन्तु व्यावहारिक और नैतिक दृष्टि से भी समझने योग्य है। आचारागसूत्र मे कहा है–

पुरिसा! तुममेव तुम मित्त कि बहिया मित्त मिच्छसि।

अर्थात् हे पुरुष! तू अपना मित्र आप ही है। दूसरे मित्र की अभिलाषा क्यो करता है?

इसलिए मै कहता हू– मित्रो! शास्त्र के इस वचन को याद रक्खो। ससार–सागर मे अगर नौका का आश्रय लेना है तो शास्त्र की इन सूक्तियो को मत भूलो। अगर आपने इस तथ्य को कि हम स्वय ही अपने सुख के विधाता है समझ लिया तो दु ख आपके पास फटक ही नहीं सकेगा। बल्कि इससे आत्मा को अपूर्व लाभ होगा।

वास्तव मे दु ख और सुख का कर्त्ता–हर्त्ता आत्मा ही है। लेकिन हम सुख और दु ख दोनो के आने पर गफलत मे पड जाते हैं। सुख के समय आत्मा अहकार मे डूब जाता है और जब दु ख होता है तो बिलबिलाने लगता है। आत्मा जब सुख को पुत्र पत्नी परिवार आदि का दिया हुआ मानता है तो अहकार के साथ उसमे एक जहरीली भावना उत्पन्न होती है। मैं श्रेष्ठ हू और दूसरे मुझसे हीन है यह भावना विषैली भावना है। सुख को दूसरे का दिया हुआ मानकर इस विषमय भावना को स्थान देने से आत्मा अमृत को विष और दूध को शराब बना लेता है। इसके विपरीत जब दु ख आ पडता

है तो दु ख के निमित्त कारण पर निरन्तर मलीन विचार करता रहता है। फिर अपने ही पैदा किये हुए दु ख से दु खी होकर अपने को अनाथ मान बैठता है और अपनी रक्षा की इच्छा से दूसरों को नाथ बनाता फिरता है। वह सोचता है कि भैरो, भवानी, भोपा, आदि की शरण लेने से मेरे दु ख का अन्त आ जायेगा और मैं सुखी हो जाऊगा। इस प्रकार तत्व का बोध न होने के कारण आत्मा सुख मे अहकार करता है और दु ख मे दीन बन जाता है। इस प्रकार सारा ससार अपनी मिथ्या धारणा के कारण परेशान हो रहा है। सोभाग्य से जब कभी कोई ज्ञानधन मिलता है और उसके मिलने पर आत्मा अपने सम्बन्ध मे विचार करता है, तब उसके नेत्र खुल जाते हैं। उस समय उसकी समझ मे आता है–

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुक्खखाण य सुहाण य।

अरे मानव! तू भ्रम मे क्यो पडा है? अपने अन्तरतम की ओर देख। वही तो वह बडा कारखाना चल रहा है जहा सुख और दु ख तेरी भावनाओ के साचे मे ढल रहे हैं! और तू बाहर की ओर देखता है? कस्तूरी–मृग कस्तूरी की खोज के लिए इधर–उधर भागता फिरता है। उसे नही मालूम कि कस्तूरी बाहर नहीं, उसी के भीतर है। यही दशा तेरी है। तू महात्माओ की वाणी सुन। वीतराग के कथन पर श्रद्धा कर और समझ ले कि अपने सुख–दु ख का दाता तू आप ही है। तुझे सुख या दु ख देने का सामर्थ्य दूसरे मे नही है। अगर सोने–चादी मे सुख होता तो सबसे पहले सोने–चादी वालो की ही गर्दन क्या काटी जाती है? स्त्री से सुख होता तो जहर क्यो दिया जाता है? इन सब बाह्य वस्तुओ से सुख होने का भ्रम दूर कर दे। निश्चय समझ ले कि सुख तेरी शान्ति, समता, सतोष और स्वस्थता मे समाया है। तेरी भावनाए ही सुख को उत्पन्न करती हैं। स्त्री, पुत्र और धन–वैभव का अहकार छोड दे।

दु ख के विषय मे भी यही बात हे। समस्त ससार की शक्तिया सगठित होकर भी तुझे दुखी नही बना सकती। अपने दु ख का निर्माण ता तू स्वय करता है।

सिर पर अगारे जल रहे हैं ओर कोल्हू मे पिल रहे हें तव भी तत्वज्ञानी क्या कभी अनाथ भावना उत्पन्न होने देते हे? नही। ऐसे समय मे वे जरा भी दु ख का विचार करते तो नाथ न रहते। मगर उन्हाने ऐसा विचार ही नही किया। वे इस विचार पर दृढ थे कि हम अपनी ही आत्मा की शरण लेगे, स्वय सनाथ बनेगे। दूसरे को नाथ नही बनाएगे। जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है वह हमारे ही प्रयत्नो का फल हे। हमारे ही प्रयत्न स उसका

अन्त होगा। दीन बनकर दूसरे का आश्रय लेने से कुछ हासिल होने वाला नही है। यही नही ऐसा करने से दुख बढ सकता है घट नही सकता। दीनता स्वय एक व्याधि है। उसका आश्रय लेने से व्याधि कैसे मिट सकता है? मतलब यह है कि सुख दुख कामधेनु, वैतरणी अल्पवृक्ष और कूट शाल्मलि आदि सब वस्तुए आत्मा से ही उत्पन्न होती है। अब यह भी देखना चाहिए कि आत्मा इन सब को किस प्रकार बनाता है?

हे आत्मा। तू अन्तर्मुख होकर विचार कर। स्वरूप की ओर देख। तू किस प्रकार सुख बनाता है और किस प्रकार दुख का निर्माण करता है इस बात को भली-भाति समझ। कब समझा जाय कि तू अपने लिए वैतरणी बना रहा है और कब समझा जाय कि तूने नन्दन वन और कामधेनु का निर्माण किया है? इस बात पर विचार कर। मान लो कि आपके पास एक वस्तु ऐसी है जो दाहिने हाथ मे लेने पर रत्न बन जाती है और बाये हाथ मे लेने पर कोयला हो जाती है। आप उस वस्तु को किस हाथ मे लेना पसन्द करेगे?

दाहिने हाथ मे।

एक वस्तु दाहिने हाथ मे लेने पर फूल की छडी हो जाती है और बाये हाथ मे लेने पर काली नागिन बन जाती है। आप उसे किस हाथ मे लेगे?

दाहिने मे।

प्रत्येक आत्मा मे ऐसी शक्ति विधमान है कि वह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वस्तु को कनिष्ठ बना सकती है और कनिष्ठ से कनिष्ठ वस्तु को श्रेष्ठ बना सकती है।

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कायदुहा धेणू, अप्पा मे वदर्ण वण।।
अप्पा कत्ता विकत्ताय दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ।।

अर्थात मेरी आत्मा वैतरणी नदी है आत्मा ही कूटशाल्मलि वृक्ष है, आत्मा ही नन्दन वन है। सुखो और दुखो का कर्त्ता है। सन्मार्गगामी आत्मा ही मित्र है और कुमार्गगामी

मित्रों। जब एक ही वस्तु फूल ही छडी बन सकती है और नागिन भी बन सकती है और उसका बनाना भी तुम्हारे ही अधीन है तो उसे नागिन क्यो बनाते हो? फूल की छडी क्यो नही बनाते?

आत्मा कब फूल की छडी बनती ओर कब नागिन बनती है इसके लिए कहा गया है–

दुप्पट्ठिय सुपट्ठिऐ।

आत्मा जब कुकर्म मे लगती है तो आप ही अपना शत्रु बन जाती है। दुष्कर्म मे सलग्न आत्मा अपने आप का बैरी है। इसी प्रकार सत्कर्म में लगी हुई आत्मा अपना मित्र है। दुष्कर्म में लगने का फल दु ख के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

आत्मा दुष्कर्म मे किस प्रकार प्रवृत्त होती है और सत्कर्म मे किस प्रकार लगती है इस बात को जरा स्पष्ट रूप से समझ लीजिए। पहले कानो को ही लीजिए। इन कानो से धर्मोपदेश सुना या वीतराग भगवान् की वाणी सुनी तो आत्मा ने अपने आपको मित्र बनाया। इसका फल क्या हुआ?

त महप्फलल खलु एगस्स वि आयरिस्स,
धम्मियस्स सुवयणास्स सवणायाए।

अर्थात्– तथा रूप के श्रवण निर्ग्रन्थ के प्रवचन का एक भी वाक्य सुन ले तो उसके फल का पार नही रहता। इसके विपरीत कानो को अगर वेश्या का गाना सुनने मे लगाया या विकथा सुनने मे लगा दिया तो आत्मा दुप्रतिष्ठित हो गया। अतएव मनुष्य को विचार करना चाहिए कि– इन कानो की बडी महिमा है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो की अवस्था मे अनन्तकाल तक आत्मा रहा है और उस अवस्था मे उसे कानो की प्राप्ति नहीं हो सकी। किसी प्रकार अनन्त पुण्य का उदय होने पर पचेन्द्रिय दशा प्राप्त हुई ओर तब कानो की प्राप्ति हुई है। प्रबल पुण्य का व्यय करक आत्मा ने कानइन्द्रिय प्राप्त की है सो क्या इसलिए कि उसे पाप के उपार्जन मे लगा दिया जाय? नही। इनसे परमात्मा की वाणी सुननी चाहिए। यही कानो का सदुपयोग है।

कहा जा सकता है कि दिन भर तो धर्मोपदेश होता नहीं हे फिर दिन भर इनका क्या उपयोग किया जाय? इसका उत्तर यह है कि जब धर्मोपदेश सुनने का अवसर न हो तो आत्मा का नाद सुनो। भगवान के स्मरण का नाद आत्मा मे चलने दो और इसी अन्तर्नाद की ओर कान लगाये रहो। इतना भी

न कर सको तो परमात्मा का भजन सुनो। अगर आपने इस तरफ सावधानी रक्खी तो थोडे ही दिनो मे आप देखेगे कि आपका कितना विकास होता है।

राते रोज विचारो आण कमाया शु अही रे।
सता मन मही रे।। राते0।।
खावा पीवा प्रभए दीधु, ते माठ ते शु शु कीधु
ए खातो सरभर कोधी छे के नही रे।। राते0।।
पाप रूपी सो करज थयो छे, ते साटे शु पुण्य कर्यो छे।
वध घट के सुधार्यो शु तो मही रे।। राते0।।

गुजराती कवि कहता है– आप प्रतिदिन रोजनामचा लिखते हैं। जमा–खर्च पोते बाकी लेना–देना और जमा–पूजी आदि देखते हैं। ससार मे कहावत है कि जिसका हिसाब बराबर हो, उसे कभी हानि नही उठानी पडती। जो आय–व्यय का हिसाब नही रखता उसे आय कम ओर व्यय ज्यादा हो तो उसकी दुकान कितने दिन चलेगी ?

मित्रो। आप व्यापारी हैं और आय–व्यय के हिसाब के महत्व को भली भाति समझते है। आप रूपये पैसो का हिसाब रखते हैं मगर ससार से आगे की भी बात कभी सोचते हैं? उनका हिसाब रखते हैं? अनन्त पुण्य की पूजी लगाकर आपने यह मानव भव पाया है और दूसरी सामग्री पाई है। अब इस सामग्री से आप क्या कमाई कर रहे हैं? सोने के समय रुपयो के आय–व्यय का हिसाब कर लेते हो लेकिन कभी यह भी देखते हो कि मैने अनन्त पुण्य के बदले मे नवीन कमाई क्या की है? कही ऐसा तो नही है कि मूल पूजी ही आप समाप्त कर रहे हो?

खान–पान की सामग्री शुभ कर्म के उदय से मिलती है और शुभ कर्म क्रिया से उपार्जित किये जाते हैं। श्रवण के नाम ओर गोत्र के श्रवण से भी पुण्य की प्राप्ति होती है। इसका अर्थ यह निकला कि–'प्रभो। मैं तुम्हारा ही दिया खाता हू। इस प्रकार की भावना से अहकार का त्याग होता है।

अब यह विचार करना उचित है कि मैं भगवान् के घर का खाता हू परन्तु बदला क्या चुकाता हू? मैने कल उपवास किया था आज दूध पीने लगा तो वह दूध स्वादिष्ट लगा। उस समय मैं विचारने लगा कि इस एक–एक घूट दूध की कीमत क्या है? यह कैसे पैदा हुआ? साधु होने के कारण हम इसे माग लाये अन्यथा हमे इसके मागने का क्या अधिकार है? गृहस्थो ने गाय पाल रक्खी है। वे उसे खिलाते–पिलाते हैं और बदले मे दूध लेते हैं। परन्तु हमने क्या गाय पाल रक्खी है? मगर तप और सयम के लिए इस शरीर

की रक्षा करना है, इसलिए माग लाये। तप–सयम मे लगा, तब तो उचित है अन्यथा एक घूट का बदला चुकाना भी कठिन हो जायेगा। लोगो ने यह दूध हमे तप–सयम पालने के लिए दिया है, विकारों का पोषण करने के लिए नही दिया है। धन्ना मुनि वेले–वेले का तप करते हुए पारणे मे ऐसा आहार लेते थे जिसे भिखारी भी पसन्द न करे। ऐसा आहार करते हुए भी वे तप करते थे। हे आत्मन्। विचार कर कि वे तो नीरस और रूखा–सूखा आहार करते भी तप करते थे और तू कैसा आहार करता है और उसके बदले मे क्या करता है?

इस प्रकार विचार करने वाला अपनी जीभ पर अकुश रख सकेगा और उसकी धारणा बन जायेगी कि भोजन जीभ को सतुष्ट करने के लिए नही है वरन् तप और सयम की वृद्धि के लिये है। भोजन करके जो तप और सयम का पालन करता है उसका भोजन करना सार्थक है। जो ऐसा नही करता वह अपने माथे पर कर्ज चढा रहा है।

दिन और रात्रि सम्बन्धी प्रतिक्रमण का अर्थ क्या है? इनकी नियमितता पर शास्त्र मे जो जोर दिया गया है, उसका रहस्य क्या है? जो गृहस्थ या साधु प्रतिक्रमण के असली रहस्य और उद्देश्य को समझकर भावपूर्वक प्रतिक्रमण करेगा, उसके जीवन मे उत्क्रान्ति हुए बिना नही रह सकती।

जो ज्यादा बढिया खाना खाता है और बढिया कपडा पहनता है उसे समझना चाहिए कि मुझे इसका ज्यादा बदला देना पडेगा। होटल मे जाकर एक आदमी चने चाबता है और दूसरा पिश्ते की बर्फी खाता है। इन दोनो मे से किसे अधिक दाम देने होगे?

पिश्ते की चक्की वाले को।'

इसी प्रकार खाना मात्र पराया है। अतएव खाना खाकर अपने कर्तव्य को भूल न जाओ। माथे पर जो ऋण ले रहे हो उसे चुकाने की भी चिन्ता रक्खो और यथा–शक्ति चुकाते चलो। अगर तुम साधु हो तो वास्तविक साधुता प्राप्त करो और अगर श्रावक हो तो सच्चे श्रावक के गुण प्राप्त करो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भोजन करने की भावना रक्खो और अडबड खाना छोडो। श्रावक मास और मदिरा का सेवन नही करता। क्यों? इसलिए कि इन वस्तुओ के खान–पान से प्रकृति सात्विक नही रहेगी और खाना इतना भारी हो जायेगा कि उसका चुकता करना कठिन हो जायेगा।

साधु तो दूसरो के घर से आहार लाते हैं पर श्रावक अपने घर का खाते हैं। वह सोच सकते हैं कि हम अपनी कमाई खाते है। पराई कमाई नही खाते। मगर उन्हे यह भी सोचना चाहिए कि उनकी कमाई क्या है? जरा अपनी कमाई का विचार तो करो। तुम ऐसी कोन–सी चीज अपन हाथ स

उत्पन्न करते हो जिससे तुम्हारी या दूसरो की जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओ की प्रत्यक्ष पूर्ति होती हो? किसान को ऐसा कहने का अधिकार हो सकता है क्योकि वह मिट्टी मे से अनाज निकालता है। आप किस बिते पर ऐसा अभिमान कर सकते हो? पैसा कमा लेना अपनी कमाई का खाना नही कहलाता।

मित्रो। मेरे कहने पर विचार करो। मै प्रतिदिन कहता हू इस कारण इस कथन के प्रति उपेक्षा मत करो। आपके जीवन का उत्कर्ष ऐसी बातो पर गहराई के साथ एकान्त मे विचार करने से और अपने उन विचारो को अमल मे लाने से ही होगा। नि सन्देह आप पुण्यशाली है। इसी कारण आपको बुद्धि मिली है। पुण्य से मिली बुद्धि को दूसरो को अपने फदे मे फसाने के काम म न फसाया जाय। फसाने वाला ही बुद्धिमान समझा जाय तो मच्छीमार को सबसे बडा बुद्धिमान कहना पडेगा। दूसरे लोग कभी–कभी किसी को फसाते है किन्तु मच्छीमार का प्रधान धन्धा ही मछलियो को फसाना है। मच्छीमार ऐसी चतुराई से जाल बनाता है कि मछलिया उसमे फस तो जाती हें मगर निकल नही सकती। फिर भी ज्ञानपूर्वक विचार करने से प्रतीत होगा कि फसाना कोई बुद्धिमत्ता नही हे। फसे हुए को निकालने मे ही बुद्धिमत्ता हे। इस तथ्य पर विचार करने से आप अपनी बुद्धि का सदुपयोग करना सीखेगे।

आप जो खाते–पीते है उसका कुछ तो बदला दीजिये। आप हल तो नही हाक सकते परन्तु समभाव रखकर ससार को शाति दे सकते है। प्रत्येक श्वासोच्छ्वास मे पाप लगता है। इसका बदला आप किस प्रकार चुकाते है? मतलब यह है कि आपको जो इन्द्रिया प्राप्त हैं उनका आप जैसा चाहे वैसा उपयोग कर सकते है। प्रत्येक इद्रिय का बुरा उपयोग भी हो सकता है और अच्छा उपयोग भी हो सकता है। आप अपने कानो से उत्तम पुरुषो के वचन भी सुन सकते है अपना अन्तर्नाद भी सुन सकते है। इससे आपकी आत्मा सुप्रतिष्ठित होगी। यदि ऐसा न करके दूसरो की निन्दा ओर विकथा सुनने मे कानो का उपयोग किया तो आपकी आत्मा दु प्रतिष्ठित हो जायगी। जिसके कान सामायिक के समय भी ठिकाने नही रहते समझना चाहिए कि उन्होने आध्यात्मिक स्थिति नही पाई है। इस प्रकार जब आप फूल की छडी बना सकते हे तो नागिन क्यो बनाते हे? आपकी आत्मा मे जो शक्ति है वह अनन्त पुण्य का निर्माण कर सकती हे फिर उसे आप घोर पाप के निर्माण मे क्यो लगा रहे हे?

इन्ही आखा से सत–महात्माओ को देख सकते हो और इन्ही से

है? और किसके देखने से आत्मा का पतन होता है? मित्रो। आत्मा को वैतरणी मत बनाओ कामधेनु बनाओ। हॉ, अगर वेश्या को देखकर हृदय में यह विचार आता हो कि यह भी मेरी माता है तो बात दूसरी है। ऐसी स्थिति मे उसके देखने से आत्मा का पतन नही होगा।

महाभारत मे एक कथा है अर्जुन तप कर रहे थे। उन्हे डिगाने के लिए एक अप्सरा आई। उसने विकार–जनक हाव–भाव दिखाने मे जरा भी कसर नही रक्खी। लेकिन अर्जुन ने उसके रूपरग की प्रशसा करते हुए कहा–अगर मैं इस पेट से जन्मा होता तो मेरा रूप भी ऐसा ही होता। इस विचार के कारण अर्जुन को जो सिद्धि बहुत दिनो मे प्राप्त होने वाली थी वह उसी क्षण प्राप्त हो गई।

बुरे काम से बचने के लिए कइयो ने अपनी आखे ही फोड ली हैं। सूरदास के विषय मे यह बात प्रसिद्ध है। भक्त तुकाराम कहते हैं–

पापाची वासना नको दाउ डोला।
त्यातुन आधला बराच मीं।।

वह कहते हैं– प्रभो। मुझ पर अगर तेरी कृपा है तो तू इतना कर कि मेरी आखो मे पाप की भावना न आने पावे। अगर तू इतना नही कर सकता तो मुझे अधा तो बना दे। मैं अन्धा होना अच्छा समझता हू मगर विकारयुक्त आखो से पराई स्त्री को देखना पसन्द नही करता।

इस प्रकार एक एक इद्रिय के सम्बन्ध मे विचार करो ओर चोकसी करते रहो कि वह कहा–कहा जाती हे ओर क्या–क्या करती है? ऐसा करक अगर आपने इद्रियो को अच्छे काम मे लगा दिया तो आत्मा कल्पवृक्ष बन जायेगा। इस प्रकार तुम्हारे दोनो हाथो मे से एक मे नरक की ओर दूसर मे स्वर्ग की चाबी है। जिसका द्वार खोलना चाहो खोल सकते हो। अपनी एक आख से कूटशाल्मलि वृक्ष बना सकते हो ओर दूसरी से नन्दनवन बना सकत हो। दोनो का बनाना तुम्हारे आधीन है। जो चाहो बना लो। आपकी शक्ति स्वर्ग और अपवर्ग की ओर भी ले जा सकती है। और नरक एव निगोद म भी घसीट सकती है जिस ओर जाना चाहो जा सकते हो। अगर अपनी शक्ति का उपयोग करोगे तो कल्याण के भागी होओगे और अपने मानव–भव को सफल बना सकोगे।

8. चार भावनाएं

भारतवर्ष के विभिन्न सम्प्रदायो एव पन्थो मे तत्व–ज्ञान की बडी महिमा गाई गई। किसी पन्थ के शास्त्र को उठाकर देखिये, उसमे तत्वज्ञान का महत्व अवश्य बतलाया गया होगा। कई–एक दर्शनशास्त्र तो यहा तक आगे बढ गये हैं कि उन्होने सिर्फ तत्वज्ञान की प्राप्ति से मुक्ति होने का विधान किया है। यह ठीक है कि चारित्र की परिपूर्णता के अभाव मे निर्वाण की प्राप्ति नही हो सकती, मगर चारित्र का प्रादुर्भाव तत्वज्ञान से ही होता है। जब तक दृष्टि मिथ्या है और मनुष्य मिथ्याज्ञान से घिरा हुआ है, तब तक उसमे जागृति नही आती। कर्म के बधन जब कभी ढीले पडते हैं और तत्वज्ञान का प्रादुर्भाव हो जाता है तो मनुष्य के नेत्र खुल जाते हैं। वह जिन वस्तुओ को पहले जानता था उन्ही को बाद मे भी जानता है, लेकिन उसके जानने मे आकाश–पाताल का अन्तर हो जाता है। अक्षरज्ञान से शून्य बालक भी पुस्तक के अक्षर देखता है और अक्षरज्ञान वाला भी देखता है। पर दोनो के देखने मे कितना अन्तर है? यही अन्तर मिथ्याज्ञानी और तत्वज्ञानी के जानने मे होता है।

तत्व का निर्णय करना बुद्वि का काम है। तत्व क्या है और अतत्व क्या है इस बात को जाने बिना आत्मा जड के समान है। तत्व–अतत्व का निर्णय किये बिना बुद्धि का पाना और न पाना समान है और पुरुष पशु से बढकर नही कहा जा सकता।

प्रश्न हो सकता है कि तत्वज्ञान कहा से निकलता है और उसके प्राप्त होने पर आत्मा को क्या लाभ होता है? तत्वज्ञान का प्रादुर्भाव होने पर आत्मा मे क्या विशिष्ट परिवर्तन हो जाता है? क्या कोई ऐसी शक्ति प्राप्त

इस प्रश्न के उत्तर मे शास्त्र कहता है कि आत्मत्व के जान लेने पर इससे भी बडी बात होती है। मगर मुह से कह देने मात्र से कुछ नही होता। असलियत का पता तो अनुभव करने से चलता है। ज्ञान को जब क्रिया के रूप मे परिणत किया जाता है तभी सिद्धि मिलती है। अगर क्रिया हुई और ज्ञान नही हुआ तो अन्धाधुन्धी चलेगी। अतएव यह आवश्यक है कि ज्ञान और क्रिया का समन्वय करके सिद्धि प्राप्त की जाय। अनन्त बार नरक की दुस्सह वेदना भोगने पर भी दु खो का अन्त नही आता। अब कब तक दु ख भुगते रहने की ठानी है? कहा तक ससार मे और नरक मे चक्कर खाया करोगे? मित्रो? आत्मा को ससार रूपी गडहे मे मत डाले रहो।

किस प्रकार आत्मा गडहे मे से निकल सकता है यह बात अन्यत्र कही जा चुकी है। अप्पा मित्तमित्त च। अर्थात् आत्मा स्वय अपना मित्र और स्वय अपना शत्रु है। अब तक तुमने बहुतो पर दोषारोपण किया है मगर अब इस निश्चय पर आ जाओ कि यह आत्मा ही दु खो का सृष्टा है। जब आत्मा ही अपने दु खो और कष्टो का कर्त्ता है तो वही उन्हें मिटा भी सकता है। कर्म तुम्हारे किये हुए हैं तो तुम्ही उन्हे मिटा भी सकते हो। हथकडिया और बेडिया तुमने अपने हाथ से अपने हाथो–पैरो मे डाल रक्खी हैं उन्हे तुम्हीं तोड सकते हो। मगर यह सब होगा तभी जब आत्मज्ञान का तेज अपने मे आने दोगे।

जो कर्म किये जा चुके हैं, उन्हे किस प्रकार नष्ट किया जा सकता है? इस प्रश्न का समाधान आत्मा की शक्ति को पहचान लेने पर अनायास ही हो जाता है।

एक वेश्या शृगार करके पुरुषो को मोह मे डालने के लिए चल रही हे। उसे देखकर अगर किसी के चित मे विकार पैदा होता है तो वह आप ही कर्म का बधन बाधता है या नही?

बाधता है'।

तो जिसमे कर्म बाधने की शक्ति हे, वह ज्ञान प्राप्त करके देखे ओर अपने मन को पलट कर उस वेश्या को बुरी दृष्टि से देखने के बदले मातृभाव से देखे या कल्याणभाव से देखे तो वह क्या अपने कर्म का आप ही नाश नही कर सकता?

अवश्य कर सकता हे।

वेश्या निमित्त रूप से कर्म का बध करा सकती है ओर कर्म का नाश भी करा सकती है। वह सुप्रतिष्ठित भी करा सकती है और दुष्प्रतिष्ठित भी करा सकती है। आपके ज्ञानधन बनना चाहिए। ससार तो यही समझता रहगा

कि वेश्या नरक का द्वार है। खराब प्रवृत्ति मे डालने वाली है, घोर मोह मे डुबाने वाली है लेकिन ज्ञानधन वेश्या को भी अपने कर्मनाश का कारण बना लेगा। इसलिए शास्त्रकारो ने कहा–

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ्याभाव विपरीतवृत्तौ।
सदा ममात्मा विदधातु देव।

हे देव! अगर तू मुझ पर प्रसन्न है तो मै और कुछ नही चाहता केवल यही चाहता हू कि प्राणीमात्र के प्रति मेरे अन्त करण मे मित्रता का भाव बना रहे।

आप कह सकते है कि वेश्या से मैत्री किस प्रकार की जाय? किन्तु वेश्या क्या प्राणी नही है? क्या वेश्या मे आत्मा नही है? उसमे आत्मा ही नही होती तो उसकी सगति कौन करता? आत्मा होने से ही वह बुरी या भली है। इस प्रकार जब उसमे आत्मा है तो उससे मित्रता करना ही उचित है। धूल को बाजीगर यदि धूल ही बतलाए तो उसकी विशेषता क्या है? उसकी विशेषता तो इस बात मे है कि वह धूल को रुपये के रूप मे दिखला दे। ऐसा करने पर ही आप उसे कुशल बाजीगर समझेगे। इसी प्रकार तत्वज्ञान की कुशलता इस बात मे है कि वह वेश्या को ज्ञान–प्राप्ति का साधन बना ले। वेश्या को देखकर विचार करना चाहिए कि इसने कैसा सुन्दर शरीर पाया है, फिर भी खेद की बात है कि यह पैसे के लोभ मे फसकर अपना शरीर नीच से नीच पुरुष को भी समर्पित कर देती है। हाय! पैसे का लोभ कितना बुरा है! मनुष्य को कितने घोर पतन की ओर ले जाता है! ससार के अधिकाश पाप पैसे के लिए या पैसे की बदौलत ही होते है। पैसे के सग्रह की लालसा ही ससार को विपत्ति मे डाल रही है। पैसे के लिए वेश्या कोढी रोगी और नीच पुरुष का सत्कार करती है। पैसे के पास मे फसकर ही वह अपनी आत्मा की हत्या कर रही है! जिसके पास खडा होने को भी मन नही चाहता, उसे भी वह आदर देती है। यह बुराई इस बात की नही पैसे की है।

हे आत्मन्! यह वेश्या तुझे उपदेश दे रही है कि 'मै तो पैसे के लोभ पडकर बिगडी सो बिगडी पर तू मत बिगडना। मै पैसे के लिए नीच काम

इस प्रकार विचार करने से वेश्या भी मित्र बन सकती हे या नहीं? जिसे सत्सग का लाभ प्राप्त है और जिसमे ज्ञान है, उसी के लिए वह मित्र है, अन्यथा शत्रु तो है ही। जो पैसे के लोभ मे पडकर नीच काम करता है वह वेश्या के ही समान है।

झूठ बोलना बाप–बेटे मे झगडा होना, भाई–भाई मे लडाई ठनना यह सब किस कारण से होता है? इन सब अनर्थो का प्रधान कारण पैसा ही है। पैसा घोर से घोर अनर्थ करा डालता है। वेश्या तो पैसे के लोभ मे पडकर नीचे की सगति ही करती है मगर क्या आपने नही सुना कि पैसे के लोभ ने बाप के द्वारा अपने बेटे की हत्या तक करवाई है? इसी लोभ के चगुल मे पडकर पत्नी ने क्या पति को नही मार डाला?

जिसके हृदय मे वेश्या को देखकर इस प्रकार की विचारधारा बहने लगती है, समझना चाहिए कि वही ज्ञानी है। जब वेश्या रूप निमित्त को पाकर ज्ञान उत्पन्न होता है तो वेश्या भी मित्र हितकारिणी हुई।

ज्ञानी पुरुष को जैसी शिक्षा सती सीता के उज्ज्वल चरित्र से मिल सकती है वैसी ही शिक्षा मलीन आचरण वाली वेश्या के चरित्र से भी मिलती है। ज्ञानी पुरुष विचार करता है– आत्मा तो इस वेश्या का भी वैसा ही है परन्तु दुर्गुण के कारण उसमे मलीनता आ गई है। दुर्गुण आत्मा को पतित कर देते हैं, इस सच्चाई का प्रत्यक्ष उदाहरण वेश्या है। अतएव हे आत्मन्! तू दुर्गुणो से दूर रहना! वेश्या के दुर्गुणो को और पतन को देखकर तू सावधान हो जा ।

सीता सत्कर्म मे प्रवृत्त करने के कारण हितकारिणी है वेश्या ,ज्ञानी के लिए दुष्कर्म से बचाने का निमित्त होने से हितकारिणी है।

ज्ञानियो ने नरक के जीवो का हाल बताया है या नहीं?

'बताया है।'

मृगापुत्र ने कहा –

सातो नरका हू गयी ने अनन्त अनन्ती बार,
छेदन भेदन मैं सह्याजी सही अनन्ती बार।

रे जननी! अनुमति दो म्हारी माय ।।

मृगापुत्र अपनी माता से आज्ञा माग रहे हैं। आप भी कभी ऐसी आज्ञा मागते हैं?

हिम्मत नही ।

हिम्मत तो हम देते हैं मगर आपकी इच्छा कहा हे?

आपके अन्तर मे भी एक मा है। उससे आज्ञा मागकर कहो कि मैं नरक के जीवो का मित्र बनता हू। अगर नरक के जीवो की घोर यातना जानकर आप नरक से बचने का प्रयत्न करते हैं तो नरक के जीव आपके मित्र हुए या नही?

लोग सुखी को मित्र मानते हैं, दु खी को मित्र नही बनाना चाहते। लेकिन भगवान् गौतम महाप्रभु महावीर से आज्ञा प्राप्त करके प्रत्यक्ष नरक देखने गये थे। मृगालोढा का दु ख देखकर गौतम स्वामी के हृदय मे अपूर्व विचार उत्पन्न हुआ। उन्होने मृगालोढा को अपना मित्र बनाया। क्या आप भी किसी ऐसे को अपना मित्र बनाते हैं? लेकिन मन्दिरो, स्थानो और गिर्जाघरो मे जाते हैं। मगर कितने ऐसे हैं जो कत्लखाना देखने जाते हैं? गौतम स्वामी को वहा जाने मे घृणा नही हुई जहा मृगालोढा प्रत्यक्ष नरक भोग रहा था, फिर आपको कत्लखाने जाने मात्र से घृणा होती है? मृगालोढा राजकुमार होते हुए भी नरक भोग रहा था। गौतम स्वामी कहते हैं कि मैंने नरक का वर्णन सुना था, नरक देखा नही था। परतु अब साक्षात् देख रहा हू। मृगालोढा को देखकर गौतम स्वामी ने प्रश्न किया– 'प्रभो। मृगालोढा नरक क्यो भुगत रहा है? इस चर्चा का नाम भी शास्त्र रक्खा गया है। जब उसका शास्त्र बना है तो उससे कुछ लाभ तो लेना चाहिए। कुछ लाभ न होता तो शास्त्र मे इस चर्चा को स्थान ही क्यो मिलता?

सोक्रेटीज सुकरात एक बडा आत्मवादी विद्वान् हो गया है। उसके जीवनचरित मे लिखा है– सुकरात के हृदय में कत्लखाने से जैसी जागृति हुई वैसी किसी दूसरी चीज से नही हुई। कत्लखाने मे जाता और वहा कत्ल के लिए लाई हुई गाय भैंस आदि को देखता। वह दृश्य कितना करुण होता होगा। उसे देखकर हृदय हिल जाता होगा। आप लोग मौज–मजे मे पडकर ऐसी बातो को नही देखते, परन्तु प्रत्येक वस्तु के दो पहलू होते हैं। अगर ज्ञानपूर्वक देखा जाय तो विदित होगा कि कसाई खाने मे मारे जाने वाले पशु भी हमारे मित्र है।

कसाईखाने मे जाकर पशु किस प्रकार काटे जाते हैं, कटते समय पशुओ की चेष्टा कैसी होती है इत्यादि बातो को सुकरात देखा करता था। वह मन ही मन सोचता दूर खडे होकर मैं इस दृश्य को देखता हू, फिर भी मेरे रोए खडे हो जाते हैं मगर इन मारने वालो के चित्त पर कुछ भी असर नही होता। इसका कारण क्या है। इनका दिल क्या फौलाद का बना है? मगर मनुष्य मात्र की मूल स्थिति तो एक ही सरीखी है। जान पडता है इस

निर्दयता का कारण लोभ है। लोभ के कारण इन्हे मारने पर भी दया नही आती और मुझे देखने मात्र से दया आती है।

मतलब यह है कि दया वही उत्पन्न होगी जहा स्वार्थ न होगा। सुकरात ने विचार किया प्रभो! तेरी अनन्त दया है कि जिस तृष्णा के वश होकर यह लोग पशुओ को मार रहे हैं और उन्हे दया नहीं आती मैं उस तृष्णा से बचा हुआ हू।

आप तो किसी पर छुरी नहीं फेरते?

'नहीं।'

आपमे धर्म और जाति सम्बन्धी कुछ ऐसे सस्कार परम्परा से चले आये हुए मौजूद हैं कि आप ऐसे प्रत्यक्ष पाप से बचे हैं। मगर विचार करो कि रूपान्तर से तो छुरी नहीं फेरते? कसाई तो कसाई ही कहलाता है। उसे छुरी फेरते समय दया नही आती, लेकिन कलम फिरा कर आप तो किसी की गर्दन नहीं काटते? अगर कलम चलाते समय आपका अन्त करण दयाहीन हो जाता है तो उनका प्रधान कारण लोभ ही है। प्राणीमात्र को अपना मित्र मानकर विचार करो कि—अरे आत्मा! तेरे मे इतनी तृष्णा क्यो है? तू दूसरे के पाप देखता है पर अपने पाप क्यो नही देखता? जब तक तृष्णा से हृदय परिपूर्ण है तब तक कसाई को दया कैसे आ सकती है! तृष्णा के होने पर दया उड़ जाती है और केवल स्वार्थ साधने की ही बुद्धि रहती है।

सम्पूर्ण तृष्णा तो उच्च अवस्था प्राप्त होने पर ही जीती जा सकती है, मगर अनुचित तृष्णा पर तो इस अवस्था मे भी विजय प्राप्त की जानी चाहिए। पैसे की आवश्यकता होने से कसाई पशु को मारता है, लेकिन वह चाहे तो खेती करके भी अपनी आवश्यकता पूरी कर सकता हे। मगर वह विवेकहीन और मर्यादाहीन तृष्णा मे पड गया है।

सुना है कि देहली मे एक मेम तागे मे बैठकर शराब की दुकान पर शराब लेने गई। पिकैटिग करने वालों ने विनम्रतापूर्वक शराब न खरीदने का अनुरोध किया। मेम नही मानी। पिकैटिग करने वाला स्वयसेवक तागे के आगे सो गया। उसने कहा– मेरे ऊपर से तागा हाक ले जाओ। स्वयसेवक अपने विचार मे जैसा पक्का था, मेम भी अपने विचार मे वेसी ही पक्की थी! मेम ने अपना तागा स्वय सेवक पर चलवा दिया और तागे का पहिया उसकी गर्दन पर फिर गया। इतने पर भी स्वयसेवक ने परवाह न की और वह यही कहता रहा कि शराब मत खरीदो।

एक आदमी शराब पीने वालो को रोकने के लिए जान देने का तत्पर होता है और दूसरा शराब पीने के लिए दूसरे की जान लेने को तत्पर होता है। अब देखना यह है कि इस अन्तर का कारण क्या है? मूल की तरफ देखे तो पतीत होगा कि एक को ज्ञान है और दूसरे को अज्ञान है। एक तृष्णा के कारण आत्मविस्मृत है और दूसरा अपने प्राण देकर भी उसकी तृष्णा को रोकना उचित समझता है। इस प्राण देने वाले को कौन बुरा कह सकता है?

'मूर्ख।

बहुत–से ऐसे लोग मिलेगे जो प्राण देने वाले को ही मूर्ख कहेंगे। गीता मे कहा है –

या निशा सर्वभूताना तस्यां जागर्ति सयमी।
यस्या जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने ।।

ज्ञानी लोग जिसे मूर्ख कहते हैं उसे अज्ञानी बुद्धिमान कहते हैं और ज्ञानी जिसे बुद्धिमान् कहते हैं उसे अज्ञानी मूर्ख कहते हैं।

जिसे हृदय मे प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभावना उत्पन्न हो जाती है वह स्वय कष्ट सहन करके भी दूसरो की भलाई करता है। मैत्री भावना वाला पुरुष अपने स्वार्थ मे फसकर दूसरो के हित का घात नहीं करता। अतएव मैत्रीभावना धारण करो और जगत के हित मे अपना हित मानो ऐसा मानने से निश्चय ही आपका हित होगा।

अब प्रमोद भावना का विचार करे। जिस वेश्या के प्रति मैत्रीभावना रखना है उस पर प्रमोदभाव भी रक्खा जा सकता है। वेश्या को देखने पर गुणीजनो की याद आएगी। प्रमोद भावना वाला पुरुष विचार करेगा– एक तो यह सुन्दर शरीर वाली है और दूसरी सती भी सुन्दर शरीर वाली है। लेकिन यह अपने सौन्दर्य से लोगो को नरक की ओर ले जाती है और सती नरक से निकालती है। सती के शरीर के टुकडे–टुकडे कर दिये जाए तो भी वह अनाचार मे प्रवृत्त नही हो सकती।

तात्पर्य यह है कि अन्धकार देखने पर ही प्रकाश की याद आती है। ईश्वर को भी लोग तभी याद करते हैं जब दुःख होता है इस प्रकार वेश्या के प्रति भी प्रमोदभावना धारण की जा सकती है।

कष्ट मे पडे हुए विपदा के सताये हुए जीव पर दया आती है। लेकिन ज्ञानीजन वेश्या जैसे पतित समझे जाने वाले जीव पर दया का भाव

अब मध्यस्थभावना की बात आती है। ससार मे काला तिलक कोई नही निकालना चाहता। जो दुराचारी है, वह भी दुराचारी नहीं कहलाना चाहता। ऐसा होते हुए भी वेश्या अपने को वेश्या क्यो कहती है? इस प्रकार का विचार करके मध्यस्थभावना धारण करो। मध्यस्थभावना धारण करने से आत्मा की उन्नति बड़े वेग के साथ होती है। रागद्वेष नहीं होता तो आत्मा मे समता की सुधा प्रवाहित होने लगती है। उस सुधा मे ऐसी मधुरता होती है कि उसका आस्वादन करके मनुष्य निहाल हो जाता है। आत्मा को सुखी और शात बनाने के लिए यह भावना अत्यन्त उपयोगी है।

यह चार भावनाए अगर आपने प्राप्त कर ली तो आपको सर्वत्र शाति मिलेगी। इनसे आपका परम कल्याण होगा और जीवन धन्य बन जायेगा।

9. भक्तामर – व्याख्यान

भक्तामरप्रणमतमौलिमणिप्रमाणम्
उद्योतक दलितपापतमोवितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुग युगादा–
वालम्बन भवजले पतता जनानाम् ।।1।।

अर्थ– भक्तियुक्त देवो के झुके हुए मुकुटो मे लगी हुई मणियो की प्रभा को चमकने वाले पापरूप अन्धकार के पटल का नाश करने वाले और इस कर्मयुग की आदि मे भव–जल में डूबने वाले मनुष्यो को सहारा देने वाले जिनेन्द्र भगवान के चरण–युगल को प्रणाम करके–

य सस्तुत सकलवाड् मयतत्त्वबोधात्
उद्भूतबुद्धिपटुभि सुरलोकनाथै ।।
स्तोत्रे जगत्त्वितयचित्तहरैरुदारै ।
स्तोष्ये किलाहमपि त प्रथम जिनेन्द्रम् ।।2।।

अर्थ–समस्त आगम से तत्त्व–ज्ञान से उत्पन्न हुई बुद्धि से कुशल इन्द्रो द्वारा तीन लोक के चित्त को हरने वाले स्तोत्रो द्वारा जिनकी स्तुति की गई है उन जिनेन्द्र भगवान की मैं भी स्तुति करूगा।

बुद्धया विनाऽप विबुधाचितपादपीठ।
स्तोतु समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।।
बाल विहाय जलसस्थिमिन्दुबिम्ब–
मन्य क इच्छतिजन सहसा गृहीतुम् ।।

अर्थ– प्रभो। आपका सिहासन देवो द्वारा पूजा गया है। मैं बुद्धिहीन निर्लज्ज होकर आपकी स्तुति करने को तैयार हुआ हू। जल मे प्रतिबिबित होने वाले चन्द्रमा को बालक के सिवाय और कौन पकडने की इच्छा करता है?

(1)

भगवान आदिनाथ की स्तुति करते हुए आचार्य मानतुडग कहते हैं जिनकी स्तुति इन्द्र ने ऐसे मनोहर स्तोत्र द्वारा की है कि जिस पर तीनो लोक के जीव मुग्ध हो जावे, उन भगवान की स्तुति मैं भी करूगा। उन भगवान के चरणो पर इन्द्र ने अपना मुकुट नमाया है और उस मुकुट की मणिया भगवान् के चरणो के प्रकाश से प्रकाशित हो उठी हैं।

प्रश्न हो सकता है–इन जड वस्तुओ को तो सूर्य भी प्रकाशित कर सकता है। सूर्य के चरणो की प्रभा से अगर मणि प्रकाशित हो उठी तो इसमे कौन–सी बडी बात हो गई।

स्तुति मे इस प्रश्न का समाधान कर दिया गया है। आचार्य कहते हैं भगवान के चरण 'दलितपापतमोवितानम्' हैं। अर्थात भय एव अज्ञान आदि रूपी मोह–अन्धकार भी भगवान् के चरणो के प्रकाश से नष्ट हो जाता हे। जो भव्य पुरुष भाव पूर्वक भगवान् के चरणो मे प्रणाम करता है उसके अन्तःकरण मे मोह का अन्धकार नही ठहर सकता।

चारित्र, आचरण, सयम और सदाचार – इन चारो को चरण कहते हैं। भगवान् का चारित्र, आचरण, सयम और सदाचार इतना वीतरागपूर्ण हे कि उनके चरणो मे झुकते ही ससार के जीवो को अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है और उनके भीतर छाया हुआ मोह का अन्धकर तत्काल नष्ट हो जाता हे। यह भगवान के चरणो की विशेषता है।

इसके अतिरिक्त भगवान् के चरण 'आलम्बन भवजले पतताम् जनानाम' हैं। अर्थात् भवरूपी समुद्र मे गिरते हुए मनुष्यो के लिए आलम्बन हें। जिस प्रकार ऊपर चढता हुआ मनुष्य अगर नीचे गिरने लगे और उसे रस्सी का सहारा मिल जाय तो वह गिरने से बच जाता है, उसी प्रकार इस भव–समुद्र मे गिरते हुए जीवो को बचाने के लिए भगवान् के चरण अवलम्बन हें। इतना

ही नही, बल्कि जैसे कोई पुरुष कुए मे गिर पडा हो और वह रस्सी का सहारा लेकर बाहर आ जाता है, उसी प्रकार इस भव समुद्र मे पडे हुए को बाहर निकालने के लिए भगवान् के चरण अवलम्बन हैं। कुए मे पडा हुआ मनुष्य भी बिना सहारा पाये नही निकल सकता। अर्थात् उसका उद्धार नही हो सकता। आचार्य कहते हैं भगवान् ऋषभदेव के चरण इस भव रूप कूप से निकालने के लिए अवलम्बन हैं। यह भगवान् के चरण की विशिष्टता है। इन विशेषताओ के कारण भगवान के चरण सूर्य से भी विशिष्ट हैं। सूर्य द्रव्य पकाश तो देता है मगर भाव प्रकाश नहीं दे सकता। भगवान के चरण भाव प्रकाश देते है और उस प्रकाश की लोकोत्तर आभा मे आन्तरिक तम–मोह विलीन हो जाता है। प्रभु के पदयुगल ससार–सागर से पार उतारने वाली नौका है।

यहा एक प्रश्न और हो सकता है। भगवान् के चरण भवकूप से निकलने के लिए आलम्बन हैं। भगवान त्रिलोकीनाथ है वीतराग हैं और रागी भगवान् को मानते हैं। वीतराग होने के कारण उन्हे किसी प्रार्थना अनुनय या आजीजी कराने की भी आवश्यकता नही है। उनका सर्वत्र समभाव है। फिर भी भगवान की चरण–नौका सब जीवो का उद्धार क्यो नही करती? ससार के जीवो को दु ख मे पडा देखकर तो यही जान पडता है कि इन दुखिया प्राणियो को तारने वाला कोई नही है अगर कोई तारने वाला होता तो यह बेचारे नाना प्रकार के कष्टो से क्यो पीडित होते?

इस प्रश्न का उतर यह है। मान लीजिए, एक मनुष्य कूप मे गिर पडा है। उसमे रस्सी लटकी हुई है। उसे आवाज दी जा रही है कि–इस रस्सी को पकड ले तो हम तुझे बाहर खीच लेगे। इतना होते हुए भी अगर गिरा हुआ मनुष्य लटकती हुई रस्सी को न पकडे तो किसका दोष समझा जाय?

गिरे हुए का ही।

मधु–बिन्दु के लोभ का उदाहरण प्रसिद्ध है। मधु के बूदो के लोभ मे फसे हुए एक मनुष्य को विमान मे बैठने के लिए बुलाया जाय। उससे कहा जाय–'भाई, आ जा। तेरा जीवन चारो ओर से खतरे मे है। तू शीघ्र ही नीचे गिरने वाला है और नीचे गिरते ही भयानक विषधर तुझे डस लेगा। इसलिए तू इस विमान मे बैठ जा। विमान मे बैठकर तू सकुशल अपने स्थान पर पहुच जायेगा।' मगर वह मधु का लोभी मधु के बूदो पर इतना अधिक मोहित हो गया है कि अपने भविष्य की चिन्ता नही करता। बूदो का लोभ नही छोड सकता। ऐसी दशा

मे तारक क्या करे? विमान का अवलम्बन देने के लिए जो तैयार है उसका क्या अपराध है? तर जाता है और जो सहारा लेगा वह तर जायगा। मगर मोह की प्रबलता के कारण जो मनुष्य सहारा ही नही लेता, बल्कि लेना ही नहीं चाहता, वह कैसे तरेगा? ऐसी हालत मे अगर वह तर नहीं सकता और दु खो का पात्र बना ही रहता है तो अपराध उन चरणो का नहीं है। भगवान् के चरणो का आश्रय लेकर तो असख्य मनुष्य तरे हैं। बडे-बडे पापियो को भी भगवान् की चरण-नौका ने तार दिया है।

यही बात भगवान् के विषय मे है। भगवान वीतराग है? सबके तारनहार हैं। सब पर समभाव होने से किसी की प्रार्थना की भी अपेक्षा नही रखते। परन्तु जब तिरने वाले की इच्छा ही न हो तो वे तारे कैसे? वीतराग होने के कारण भगवान् का न किसी पर राग है, न द्वेष है। उनके चरण-कमल सबके लिए समान हैं। बिना किसी भेदभाव के प्राणीमात्र प्रभु के चरणो का सहारा ले सकते हैं। जो सिहारा लेता है वह तर जाता है और जो सहारा लेगा वह तर जाएगा। मगर मोह की प्रबलता के कारण जो मनुष्य सहारा ही नहीं लेता, बल्कि लेना ही नही चाहता वह कैसे तरेगा? ऐसी हालत मे अगर वह तर नही सकता और दु खो का पात्र बना ही रहता है तो अपराध उन चरणो का नहीं है। भगवान् के चरणो का आश्रय लेकर तो असख्य मनुष्य तरे हैं। बडे-बडे पापियो को भी भगवान् की चरण-नौका ने तार दिया हे।

प्रश्न हो सकता है-जिस समय भगवान सशरीर विद्यमान थे उस समय उनके चरणो का दर्शन हो सकता था ओर चरण पकडे भी जा सकते थे। मगर आज क्या किया जाय? आज भगवान् मौजूद नहीं हें। ओर उनके चरण पकडे बिना ससार-सागर से तर नहीं सकते। तो क्या अब अनन्त भवसागर मे ही गोते लगाते रहना पडेगा? इस प्रश्न के सम्बन्ध म पहले ही कहा जा चुका है कि सम्यग्ज्ञान के साथ पालन किया जाने वाला सम्यक चारित्र ही असल मे चरण है। दयारूप मोक्षमार्ग ही भगवान् का चरण है। और उस मोक्षमार्ग को ग्रहण करना ही भगवान् के चरण ग्रहण करना हे। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को ग्रहण न किया जाय ता भगवान् के साक्षात् मिल जाने पर भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। प्रयोजन की सिद्धि तो इस, रत्नत्रय की प्राप्ति से ही हो सकती है। जो मनुष्य ससार-सागर से तिरने की इच्छा रक्खेगा वह कभी नहीं कहेगा कि भगवान नही हैं या उनके चरण नही हे। जब भगवान् के बतलाये सम्यग्ज्ञान चारित्र मौजूद हैं तो समझना चाहिए भगवान् के चरण ही मोजूद हैं।

जो जीव भगवान् के चरणो का आश्रय लेना चाहते हैं, उन्हे चाहिए कि वे आरम्भ और परिग्रह की लहरो से बचकर भगवान् के चरणो का आश्रय ले। जिन्होने प्रभु के परम पावन पद–पकज का आश्रय लिया है, ससार की कोई भी शक्ति उन्हे दु खी नही कर सकी।

हा एक बात ध्यान मे रखनी होगी– एक साथ दो घोडो पर सवार होने की चेष्टा करने से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। ऐसा करने वाला सफलता नही पा सकता। इसी प्रकार धन का भी अवलम्बन चाहने से और भगवान् का भी अवलम्बन चाहने से काम नही चलेगा। जो भगवान् के चरणो का आधार चाहता है उसे धन का आधार त्यागना पडेगा। जो धन के आधार पर निर्भर है उसे भगवान् के चरणो का आधार नहीं मिलेगा। ठाणागसूत्र मे कहा है–

दुवे ठाणे आया केवलीपण्णत्त धम्म नो लभेज्जा सविणियाए।

अर्थात् दो बातो को बुरी सेमझे बिना और उनके प्रति राग का त्याग किये बिना सर्वज्ञ भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म का श्रवण प्राप्त नही होता। वे दोनो बाते है आरम्भ और परिग्रह। जब तक इन दोनो की ओर से आत्मा विमुख न हो जाय तब तक अरिहन्त भगवान् के शरण मे नही पहुचता।

प्रश्न किया जा सकता है– क्या धर्म और ईश्वर का दायरा इतना सकीर्ण है? केवली द्वारा प्ररूपित धर्म को अगर आरम्भ और परिग्रह का त्याग किये बिना कोई सुन भी नहीं सकता तो उसका आचरण कैसे कर सकेगा? ऐसी दशा मे केवली का धर्म सिर्फ साधुओ के लिए ही है, गृहस्थो के लिए नही? इस प्रश्न का उतर यह है कि केवली कथित धर्म उसी को प्यारा लगेगा जिससे आरम्भ परिग्रह का त्याग होगा, यह कथन सत्य ही है। मगर यह आवश्यक नही कि सभी लोग एकदम ही सम्पूर्ण आरम्भ परिग्रह त्याग दे। जैसे किसी ऊचे महल पर चढने के लिए सीढिया होती हैं और सर्वसाधारण क्रमश सीढियो पर चढते है उसी प्रकार आरम्भ–परिग्रह त्यागता चलता है वही केवली–कथित धर्म की ओर उतना ही अग्रसर होता जाता है और उतने ही अशो मे भगवान के चरणो पर निर्भर बनता जाता है।

महाराज उदायी सोलह देशो पर राज्य करते थे, फिर भी वह श्रावक थे। श्रावक भी वह सिर्फ धर्म का श्रवण करने वाले नही वरन् आराधना करने वाले थे। उदायी के सिवाय और भी अनेक राजा–महाराजा हुए हैं जिन्होने परमात्मा की शरण ली है। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि पूर्णत आरम्भ परिग्रह का त्याग किये बिना परमात्मा नही मिल सकता?

आनन्द श्रावक के पास बारह करोड स्वर्ण-मुद्राए थीं। चार करोड पृथ्वी मे गडी थीं, चार करोड की ऊपरी सम्पत्ति थी और चार करोड व्यापार मे लगी थी। यह सम्पत्ति आनन्द श्रावक के पास, भगवान महावीर से समझ व्रत धारण करने से पहले से ही थी। व्रत धारण कर लेने पर उसने सम्पत्ति बढाने का त्याग कर दिया था। अब आपको केवली-कथित धर्म का श्रवण करने पर धर सम्बन्धी ममता घटना चाहिए या बढाना चाहिए?

आनन्द श्रावक चार करोड स्वर्ण मोहरो की पूजी से व्यापार करता था, मगर सम्पत्ति बढाने का उसने त्याग कर दिया था। इतना विशाल व्यापार करते हुए भी वह सम्पत्ति नही बढने देता था। अब आप विचार कीजिए कि आनन्द ने किस उद्देश्य से और किसी प्रकार व्यापार किया होगा? गहराई से विचार करो तो आपको विदित होगा कि आनन्द का व्यापार कैसा था और आज का व्यापार कैसा चल रहा है। आज व्यापार के नाम पर गरीबा का किस प्रकार गला घोटा जा रहा है, यह बात उसकी समझ मे आ सकती है जिसके दिल मे दया का वास हो। आज के व्यापारियो ने व्यापार को व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि का साधन समझ रक्खा है जबकि वह सामाजिक लाभ का द्वार होना चाहिए। व्यापार भी वही आदर्श समझा जा सकता है जिसकी छाप दुनिया पर उत्तम पडे और जिससे न्याय-नीति का प्रकाश हो। आज लोभ मे पडी दुनिया व्यापार करती हे परन्तु दूसरे का गला घाटने के लिए ही। कदाचित् कही ऐसी दुकान हो जहा नफा न लिया जाता हा और जो गरीबो का विश्रान्तिस्थल हो तो कितनी अच्छी बात हो।

कहा जा सकता हे कि व्यापार मे नफा लेकर धर्म कर देने-दान दे देने मे क्या हानि है? इसका उत्तर यह है कि पहले कीचड से हाथ भरे जाए ओर फिर धोए जाए ऐसा करने से क्या लाभ हे? पहले ही नफा न लेकर वस्तु दी जाए तो कितना सुन्दर आदर्श। नीति-कार भी कहते हें -

प्रक्षालनाद्धि पकस्य दूरादस्पर्शन वरम्।

अर्थात्- पहले कीचड लगाकर फिर धोने की अपेक्षा ता कीचड से दूर रहना ही भला हे।

आज मुनाफा न लेने वाली या मर्यादित मुनाफा लने वाली दुकान कही हो तो उससे जनता को बडी जर्बदस्त शिक्षा मिल सकती हे।

कहा जा सकता है कि आज इस प्रकार का व्यापार करन रा दिवाला निकल जाने मे क्या देर लगेगी? आज इतनी तेजी-मदी चलती हे कि न पूछिए बात।

यह ठीक है मगर आज का व्यापार व्यापार नही, कानून द्वारा सम्मत लूट है। अमेरिका की किसी राजनैतिक घटना का प्रभाव भारत के व्यापार पर पडे और वह भी अचानक बिजली की तरह पडे भला यह भी कोई व्यापार है? इसके अतिरिक्त आज सट्टे के व्यापार की ही सर्वत्र प्रधानता देखी जाती है। सट्टा देश का दिवाला निकालने का साधन है।

प्रतापगढ मे पन्नालालजी मोगरा नामक एक सज्जन थे। वह श्रीराजमलजी महाराज के बडे भक्त थे। एक दिन उन्होने मुनिजी से कहा– महाराज आजकल व्यापार नही चलता, इसलिए धर्म कार्य करने मे भी मन नही लगाता। मुनिजी ने उत्तर दिया तुम श्रावक होकर दु ख मानते हो, यह आश्चर्य की बात है। लोभ मे पडकर दुगने–डयोढे करना चाहते हो, इसी कारण तुम्हे लगता है कि व्यापार नही चलता। पन्नालाला जी के मन मे मुनिजी की बात बैठ गई। उसी समय उन्होने एक आना प्रति रुपया से अधिक नफा न लेने की मर्यादा कर ली। वह कपडे की दुकान करते थे। उन्होने सब कपडो पर अक चढाकर कीमत निश्चित कर दी। आरम्भ मे तो उन्हे कुछ असुविधाओ का सामना करना पडा परन्तु कुछ दिनो बाद ऐसा विश्वास जमा कि लोग उन्ही की दुकान से खरीद करने लगे। भील भी उन्ही के ग्राहक बन गये। पन्नालालजी की ऐसी प्रतिष्ठा जमी कि लाखो रुपया खर्च करने पर भी वैसी न जमती। इस प्रकार उनका व्यापार भी खूब चमक उठा और प्रतिष्ठा भी चमक उठी। लोगो मे यह बात फैल गई कि पन्नालालजी झूठ नहीं बोलते।

आनन्द श्रावक की सम्पत्ति मर्यादित थी। व्रत ग्रहण करने के पश्चात् उसने अपना धन नही बढाया। इसके अतिरिक्त आनन्द का धन उसी के भोग–विलास के लिए नही था वरन दूसरे को आपत्ति के समय सहायता पहुचाने के लिए था। एक व्यक्ति वह है जो अपने दीपक से दूसरो के दीपक को प्रज्ज्वलित करता है और दूसरा वह है जो दूसरो के दीपक का तेल अपने दीपक मे उडेलन लेता है। इन दोनो व्यक्तियो मे जो अन्तर है वही प्राय आनन्द के और आधुनिक व्यापारियो के व्यापार मे अन्तर है।

कहने का आशय यह है कि आरम्भ और परिग्रह का त्याग किये बिना केवली द्वारा प्ररूपित धर्म नही सुहाता। वह पीली और सफेद मिटटी [illegible] र चादी ही धर्म का आचरण करने मे बाधक नही है वरन् लोगों [illegible] भी बाधक है। ज्ञानीजन कहते है कि सर्वज्ञ भगवान के [illegible] करने से यह लालसा शात हो जाती है। जिसने धर्म

को सुनकर उस पर मनन किया होगा वह अपनी सम्पत्ति को अपने भोग–विलास के लिए नही समझेगा किन्तु ससार के लाभ के लिए समझेगा। और ऐसा समझने वाला ही भगवान् का सच्चा भक्त हो सकता है। इसलिए मैंने कहा है कि एक साथ धन की और भगवान की सहायता नहीं मिल सकती।

सेवा करने वाला सेवक कहलाता है। जो भगवान् की सेवा करना चाहता है वह जड पदार्थो की सेवा नहीं कर सकता। एक प्रश्न आप अपने अन्त करण से पूछिए तू धन का सेवक है या स्वामी है? अगर आप धन के सेवक नही है तो भगवान की सेवा कर सकते हैं और यदि धन के सेवक हैं तो फिर भगवान् के सेवक नहीं बन सकते। जो धन का गुलाम है उसे अन्याय और न्याय नहीं सूझता, उसे पैसा ही पैसा सूझता है और जिसे पैसा ही पैसा सूझता है, भगवान् उसे कैसे सूझेगा? वह भगवान् की सेवा नही कर सकता। उसके लिए पैसा ही परमेश्वर बन जाता है।

काम कराने के लिए नौकर रक्खा जाता है। अगर नौकर की ही सेवा करनी पडे या उसकी सेवा का उत्तरदायित्व आपके ऊपर आ पडे तो आप यही कहेगे कि वह नौकर क्या रक्खा हम स्वय इसके नौकर बन गये। आप ऐसे नौकर को रखना पसद नही करेगे और अलहदा कर देगे। यही बात धन के सम्बन्ध मे है। धन के द्वारा आपने अपनी आत्मा की कुछ भलाई कर ली तब तो आप उसके स्वामी हैं। अगर धन की बदौलत नरक मे पहुचाने वाले काम हुए–धन ने आपको नरक का पात्र बना दिया तो आप धन के स्वामी कैसे कहलाए? चार आने के लिए झूठ बोलना कम तोलना, कम नापना अच्छी चीज में बुरी मिलाकर बेचना और झूठे दस्तावेज बनाना धन की गुलामी करना नही हे तो क्या हे? ऐसा धन धनी को भोगता है धनी उसको नही भोगता। धन के आगे प्यारा न लगना धन की गुलामी का अर्थ हे। धर्म की परवाह न करके जो अनीति और छलकपट से धन एकत्रित करने म लगा रहता है, वह वीतराग का मार्ग नही पा सकता। जिसे वीतराग का मार्ग पाना है उसे धन के लिए अन्याय–अनाचार करने का परित्याग करना चाहिए। जो पुरुष ऐसा करने के लिए सकल्प करके तेयार हो जायेगा और तात्कालिक कठिनाइयो की परवाह न करके अपने सकल्प पर दृढ रहेगा वही भगवान के चरणो का आश्रय पा सकेगा।

भगवान के चरण भव–कूप मे डूबते को अवलम्बन हैं। आचार्य न कहा है कि मैं भी उन चरणो की स्तुति करूगा। प्रश्न हो सकता हे–तीन ज्ञान

के धनी देवराज इन्द्र ने भगवान की प्रभावशाली स्तोत्रो द्वारा स्तुति की है। क्या आप उससे भी अधिक प्रभावशाली स्तुति कर सकते हैं? अगर नही कर सकते तो फिर क्यो व्यर्थ चेष्टा करते हैं? इसके उत्तर मे आचार्य कहते हैं–

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ।
स्तोतु समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम्।।
बाल विहाय जलसस्थितमिन्दुबिम्बम्–
अन्य क इच्छति जन सहसा गृहीतुम्।।3।।

आचार्य कहते हैं–प्रभो। मैं बुद्धिहीन हू। इन्द्र से मैं बुद्धि मे ऊचा नही हू कि उससे भी बढकर स्तुति कर सकूगा। फिर भी मेरी बाल–लीला नही रुकती। हे इन्द्र द्वारा पूजित सिहासन वाले। जहा आपके चरण पडते हैं उस पाट को भी इन्द्र नमस्कार करता है। मुझमे ऐसी बुद्धि नहीं है कि आपके गुणो का कीर्तन कर सकू। फिर भी आपके गुण कीर्तन की अभिलाषा ऐसी प्रबल हो उठी है कि वह रोके नही रुकती। विद्वत्ता मुझमे से निकल गई है और मैं बालभाव मे आ गया हू। अतएव मुझे यह शर्म नही रही कि मुझसे स्तुति बनेगी या नही बनेगी। बालक नही सोचता कि मुझसे वह काम हो सकेगा या नही, फिर वह काम मे जुट जाता है। ऐसी ही अवस्था मेरी है। मेरी यह स्तुति नहीं, बाल चेष्टा है। जैसे बालक जल मे पडे हुए चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकडने की चेष्टा करता है–सफलता और असफलता का विचार नही करता उसी प्रकार मै भी स्तुति–चन्द्र को पकडना चाहता हू। वह स्तुति–चन्द्र भले ही पकड मे न आवे, परन्तु इस चेष्टा से मेरा मन अवश्य ही प्रसन्न होगा। स्तुति के इस कथन का अभिप्राय हमे समझना चाहिए। इसमे गहरा मतलब भरा है। वे कहते हैं– मुझे पडित बनना नहीं आता तो क्या हुआ, बालक बनना तो आता ही है। भगवान्‌की स्तुति करने के लिए स्तोता को बालक बन जाना चाहिए।

लोग बालक को बुद्धिहीन और मूर्ख समझ कर उसकी उपेक्षा करते है। परन्तु बालक जैसे निरहकार होते हैं वैसे अगर आप बन जाए तो आपका बेडा पार हो जाए। बुद्धिमत्ता का ढोग छोड़कर अगर आप अपने अन्त करण मे बालसुलभ सरलता उत्पन्न कर ले तो कल्याण आपके सामने उपस्थित हो जाय। बालक हृदय कितना सरल होता है यह बात एक दृष्टान्त से समझिए।

एक मुहल्ले मे आमने–सामने दो घर थे। उन दोनो घरो मे देवकी और यशोदा नाम की दो लडकिया थी। देवकी और यशोदा नही जानती थीं

कि हम देवकी और यशोदा हैं पर उनके माता–पिता ने उन्हे यही नाम दे दिये थे। फाल्गुन का महीना था। दोनों बालिकाओं के मा–बापों ने उन्हें अच्छे–अच्छे कपडे पहनाये थे। बच्चो को स्वभावत घर प्यारा नहीं लगता। वे बाहर घूमना–फिरना ओर खेलना बहुत पसन्द करते हैं। शायद अपने शरीर का निर्माण करने के लिए उन्हे प्रकृति से यह अव्यक्त प्रेरणा मिलती है। अगर बालको की तरह आप भी घर से उतना प्रेम न रक्खे तो आपको पता चलेगा कि इसका परिणाम कितना अच्छा होता है।

देवकी और यशोदा कपडे पहन कर अपने–अपने घर से बाहर निकली। वर्षा होकर बन्द हो चुकी थी किन्तु पानी गलियों में अब भी बह रहा था। देवकी और यशोदा उसी बहते पानी मे खेलने लगीं। दोनो ने पानी मे अपने–अपने पैर छपछपाये। पैरो के छपछपाने से कीचड भरा पानी उछला और कपडो पर धब्बे पड गये। दोनो के कपडो पर धब्बे पड गए हैं यह देखकर दोनो एक दूसरी को आपस मे उलाहना देने लगीं। उलाहना देती हुई वह अपने–अपने घर लौटीं। कीचड़ से भरे कपडे देखकर और बालिकाओं का आपस मे उलाहना देना सुनकर दोनो घर वाले झगडने लगे।

यद्यपि झगडे का कोई ठोस आधार नही था ओर अगर दाष समझा जाय तो दोनो बालिकाओ का दोष घर ही था परन्तु दोनो के मा–बापो के दिल मे पहले की कोई ऐसी बात थी कि उन्हे लडने का वहाना मिल गया। दोनो ओर से वाग्युद्ध हो रहा था कि इतने मे एक वृद्धा वहा आ पहुची। उसन दोनो घर वालो से हाथ जोडकर कहा–आज होली का त्यौहार है। आनन्द मनाने का दिन है। प्रसन्न होने का अवसर हे। फिर आप लोग आपस म एक–दूसरे की होली क्यो कर रहे हैं? आप दोनो पडोसी हैं। एक के बिना दूसरे का काम नहीं चल सकता। दोनो लडकिया खेल रही थीं। एक के कूदन से दूसरी के कपडे गदे हो गये तो कोन बडी बात हो गई? इन नादान बच्चा के पीछे आप बडे–बडे क्यो झगडते हें? इससे आपकी ही हसी हाती हे।

वृद्धा के बहुत समझाने पर भी वे न माने। लडाई का जाश इतना तीव्र था कि बुढिया की बात सुनने की किसी ने परवाह न की। खूब तपे हुए तवे पर पानी के कुछ बूद कोई असर नही करते। इस प्रकार तीव्र क्रोध स उत्पन्न होने पर शाति की बात व्यर्थ हो जाती है।

इधर दोनो घर वाले झगड रहे थे, उधर मौका दखकर दाना लडकिया फिर घर से बाहर निकल पडीं। वे वहा पहुची जहा पानी वह रहा

था। बहते पानी को रोकने के लिए दोनो ने मिलाकर रेत का बाध बनाया, पानी रुक गया। रुके पानी मे दोनो लडकियो ने घास का तिनका या लकडी का टुकडा डाला। उसे पानी मे गिरते देखकर दोनो उछलने लगी। एक ने कहा– देख देख मेरी नाव तैर रही है। दूसरी ने कहा– और मेरी भी तैर रही है। देख ले न।

सयोगवश वह वृद्धा उधर से ही निकल पडी। उसने देखा–इन लडकियो को लेकर उधर झगडा मच रहा है, सिर फुटौवल की नौबत आ पहुची है और इधर ये मस्त होकर खेल रही हैं। उसने झगडने वालो के पास जाकर कहा अरे झगडना बन्द करके तमाशा देख लो। पडौसी हो, चाहोगे तभी झगड लोगे मगर वह तमाशा चाहे जब नही देख पाओगे। आओ, मेरे साथ चलो। तमाशे की बात प्यारी लगती ही है। फिर बुढिया के कहने का ढग भी कुछ आकर्षक था। अत झगडने वाले बुढिया के पीछे हो लिए और वहा पहुचे जहा दोनो बालिकाए अपनी–अपनी नाव तिरा रही थीं। दोनो घर वालो को दिखाते हुए बुढिया ने कहा– यह तमाशा देखो, पानी मे लकडियो के टुकडे तैर रहे हैं। दरअसल यह नाव है।

एक झगडने वाले ने कहा– यह कौन–सा तमाशा हुआ। तैराई होगी किसी ने। वृद्धा– और किसी ने नही यशोदा और देवकी ने तैराई हैं। इतना कहकर उसने उन लडकियो से पूछा इनमे कौन किस की नाव है, बेटियो जरा बताओ तो सही।

दोनो ने साथ–साथ उतर दिया–यह मेरी है, यह मेरी है। तब मुस्कराती हुई वृद्धा न कहा देखो दोनो लडकिया इकठठी हो गई हैं और जिनको लेकर तुम लड रहे हो वह लडकिया भी मिल गई हैं। अब तुम मिलोगे? हा तो नादान बालक होकर भी मिल गई और तुम समझदार होकर भी लडते रहोगे? वृद्धा की समयोचित शिक्षा से दोनो घर वाले शर्मिन्दा हो गए। उनकी लडाई समाप्त हो गई और मेल–मिलाप से रहने लगे।

मित्रो। बालक लड–झगड कर एक हो जाते हैं, इसी प्रकार अगर आप लोग भी आपस मे एकतापूर्वक रहे तो कैसा आनन्द हो? एकता आपको ऐसी शक्ति प्रदान करेगी कि आप अपने को अपूर्व शक्तिशाली समझने

उचित है? ऐसे करने वाले अच्छे या ऐसा न करने वाले नादान बालक अच्छे? बालक वास्तव मे ही सरल हृदय होते हैं।

इसी कारण आचार्य कहते हैं– जब मै बालक हुआ तभी मुझसे स्तुति बनी। बडा बना बैठा रहता तो स्तुति बनती ही नही। इस प्रकार अपनी बुद्धिमत्ता का ढोग छोड कर जो बालक के समान सरल बन जाता है उसके क्लेशो का अन्त आ जाता है। जब आप सच्चे अन्त करण से अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करेगे और उदारता के साथ अपने अपराधी को क्षमादान देगे तो आपके हृदय का शल्य निकल जायेगा और आप ऐसी शाति पाएगे जो अनुभव करने की चीज है। आपस मे वैर–भाव रखना और अदालत की शरण लेना धर्म प्रिय लोगो के लिए उचित नही है। अदालत की शरण लेने से अदालत का अन्त नही होता ऐसा करने मे लाखो–हजारो रुपयो का पानी हो जाता है और अन्त मे अदालत कई गुनी बढ जाती है। अगर दूसरा धर्म छोडता है तो उसका अनुकरण मत करो। तुम अपना धर्म मत छोडो। बालक माता के पेट मे से कुचाले सीखकर नही आते यहा मा–बाप से ही सीखते हैं। इसलिए उनके सामने शाति और प्रेम का आदर्श उपस्थित करो।

धर्म और सदाचरण ही प्रभु के चरण हैं। उनकी शरण गहो और उन्हे अपने हृदय मे स्थापित करो। बालस्वभाव धारण करके सरलता, शान्ति ओर स्नेह की भावनाए बढाओ। वैर–विरोध को पास मत फटकने दो। इससे आपका अन्त करण हल्का होगा और अन्त करण हल्का होगा तो आत्मा मे गुरुता आएगी।

बीकानेर
11–7–30

(2)

वक्तु गुणान् गुणसमुद्र! शशाककान्तान्,
कस्ते क्षम सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया।।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रम,
को वा तरोतुमलमम्बुनिर्धि र्भुजाभ्याम्।।

अर्थ– हे गुणो के सागर! तेरे चन्द्रमा के समान निर्मल गुणो का बखान करने मे बुद्वि से वृहस्पति के समान होकर भी कौन समर्थ हो सकता है? प्रलयकाल के पवन से मगरमच्छ जिसमे उछल रहे हो, उस समुद्र को अपनी भुजाओ से कौन पार कर सकता है?

स्तुति करने वाले के अन्त करण मे यह विचार होना आवश्यक है कि वह किसकी स्तुति करता हे और स्तुति करने का उसका ध्येय क्या है? इन बातो पर समुचित विचार करने के बाद की गई स्तुति कल्याणकारक होती है। देखा–देखी की जाने वाली स्तुति से भी कल्याण तो होता है, मगर मोक्ष नही प्राप्त होता।

आचार्य मानतुग कहते हैं– प्रभो! बुद्धि मे साक्षात् देवगुरु वृहस्पति के समान होने पर भी तुम्हारे गुणो का कथन करने मे कोई समर्थ नही हो सकता। आपके गुण चन्द्रमा की काति के समान निर्मल अवश्य हैं, मगर आप गुणो के सागर हैं और उनका जो बखान करना चाहेगा वह वृहस्पति के समान बुद्धिशाली होने पर भी परिमित बुद्धि वाला ही होगा! ऐसी अवस्था मे समस्त गुणो का वर्णन कर सकना किसी के लिए केसे सभव है? आपके गुणो का वर्णन करना इसी प्रकार असभव है जैसे–

कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्र
कौ वा तरीतुमलगम्बुनिधि भुजाभ्या ।

समुद्र में जब प्रलयकाल का तूफान चलता है तब उसमें के जीवजतुओं मे उथल–पुथल मच जाती है। जब ऐसा तूफान आया हो तब किसकी शक्ति है कि वह अपनी भुजाओ के बल से समुद्र का पार कर जाय? ऐसा करना असभव है। इसी प्रकार आपके गुणसमुद्र को कथन द्वारा पार करना मानव की शक्ति से परे है।

प्रश्न किया जा सकता हे जब भगवान की स्तुति करना इतना असभव कार्य हे तो फिर उसे आरभ ही क्यो करते हैं? इस प्रश्न के उत्तर म आचार्य कहते हैं– स्तुति के इस असमव कार्य को क्यो आरभ किया हे यह बात मेरा ही दिल जानता है। दूसरा कोई इसका मर्म नही समझ सकता। अगर कोई मनुष्य प्रलयकाल के तूफान से क्षुब्ध समुद्र मे पड गया हो ता उस उसी मे पडे–पडे मर जाना चाहिए या किनारे लगने का प्रयत्न करना चाहिए? समुद्र को पार करने का प्रयत्न करने वाला अपन कर्त्तव्य का पालन करता हैं। जो कर्त्तव्य का पालन न करक समुद्र मे ही पडा–पडा मर जाता हे निकलने की चेष्टा ही नही करता वह मूर्ख गिना जाता हे।

यह ससार–समुद्र भी प्रलयकाल के तूफान से क्षुब्ध समुद्र के समान है। ससारसमुद्र मे कर्मरूपी प्रलयकालीन पवन से तूफान उठ रहा हे ओर कुटुम्ब–परिवार रूपी मच्छ–कच्छ जीव हें। इस ससार–समुद्र का भी अपनी भुजाओ से पार करना कठिन है, फिर भी कोशिश करना मरा कर्त्तव्य हे।

मित्रो! इस प्रकार हिम्मत करने वाले की कठिन–कठिन कार्यों म भी सफलता पाते हें। जो कायर पुरूष पहले से ही हिम्मत हारकर बेठा रहता हे ओर कहता हे कि भई यह काम तो मुझसे नही हो सकेगा वह साध्य कार्य मे भी सफलता नही पा सकता।

एक बोद्ध सम्प्रदाय क ग्रन्थ म महाजातक की कथा पढी थी। उसका सार यह हे–

किसी सेठ का एक लडका जहाज की मुसाफिरी क लिए तयार हुआ। उसके पिता ने उसे बहुत समझाया। कहा–बटा! अपने घर म बहुत धन है। जहाज मे मुसाफिरी करना खतरनाक ह। तू क्या व्यर्थ कष्ट सहन करता है? मगर लडका बडा उद्योगशील था। उसने पिता को उत्तर दिया– पिताजी आपका कथन सत्य हे, किन्तु इस धन का उपार्जन करन म आपन भी ता कष्ट सहन किये होगे? फिर क्या मेरे लिए यह उचित हागा कि मे स्वय

परिश्रम किये बिना ही इसका भोग करूं? अगर मैं इस धन को, बिना परिश्रम किये ही खाने लगा और गुलछर्रे उडाने लगा तो किसी दिन आप ही मुझे कपूत कहने लगेगे। कदाचित् पितृप्रेम के कारण आप न कहेगे तो भी दुनिया का मुह कौन बन्द करेगा? फिर इस धन का उपार्जन करके आपने जो ख्याति पाप्त की है, वह ख्याति मैं कभी नही पा सकूगा। बिना कमाये खाने से मैं मिट्टी के पुतले के समान बन जाऊगा। जब मैं उद्योग कर सकता हू तो फिर बिना कमाये खाना-पहनना मुझे उचित नही मालूम होता। अत आप कृपा करके आज्ञा दीजिए और आशीर्वाद दीजिए।

अपने पुत्र की कार्यनिष्ठा और साहस देखकर पिता को सतोष हुआ। उसने कहा-ठीक है। सुपुत्र का यही कर्त्तव्य है कि वह अपने पिता के यश और वैभव मे वृद्धि करे। उद्योगशील होना मनुष्य का कर्त्तव्य है। तुम्हारी प्रबल इच्छा है तो मै रोकना नही चाहता।

साहूकार के लडके ने जहाज तैयार करवाया। समुद्र मे जहाज किस पकार तूफान से घिर जाता है और उस समय किन-किन वस्तुओ की आवश्यकता होती है इस विचार को करके उसने सब आवश्यक वस्तुए जहाज मे रख ली और यात्रा के लिए प्रस्थान कर दिया। चलते-चलते जहाज बीच समुद्र मे पहुचा तो अचानक तूफान घिर आया। जहाज के डूब जाने की स्थिति आ पहुची। मल्लाहो ने तनतोड परिश्रम किया मगर जहाज की रक्षा करने मे सफल नही हो सके। अन्त मे वे भी हार गये। उन्होने कह दिया- अब हमारा वश नही चलता। जहाज थोडी देर मे डूब जायगा। जिसे बचने का जो उपाय करना हो करे।

ऐसे विकट प्रसग पर कायर पुरुष को रोने के सिवाय और कुछ नहीं सूझता। कायर नही सोचता कि रोना व्यर्थ है। रोने से कोई लाभ न होगा। अगर बचाव का कोई रास्ता निकल सकता है तो सिर्फ उद्योग करने से ही।

मल्लाहो का उत्तर सुनकर साहूकार का लडका पहले शौचादि से निवृत्त हुआ। उसने अपना पेट साफ किया। फिर उसने ऐसे पदार्थ खाये जो

लेकर समुद्र मे कूद पडा। उस तख्ते के सहारे वह किनारे लगने के उद्देश्य से तैरने लगा।

साहूकार के लडके ने सोचा—ऐसे समय में जहाज बडा नहीं, आत्मा बडी है। इसलिए जहाज को छोड देना ही ठीक है। जहाज छोड देने पर भी मृत्यु का भय तो है ही, लेकिन उद्योग करना आवश्यक हे।

मनुष्य के जीवन मे कई बार ऐसे विकट सकटमय अवसर आ जाते हैं, जब उसकी बुद्धि थक जाती है। किसी प्रकार का निर्णय करना कठिन हो जाता है। एक ओर कुआ दूसरी और खाई दिखाई देती है। ऐसे प्रसग पर अपनी बुद्धि को ठिकाने रखना ही बुद्धिमत्ता है। 'परिच्छेदो हि पाडित्यमश' अर्थात् जो दो मार्गो मे से एक मार्ग अपने लिए चुन लेता है, क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य है, यह निर्णय कर लेता है वही वास्तव मे पण्डित पुरूष है। जो विपत्ति के समय अपनी बुद्धि खो बैठेगा ओर कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का निर्णय न कर सकेगा, वह विपत्ति को और अधिक बढा लेगा और बुरी तरह चक्कर मे पड जायेगा।

यह बात केवल लोकव्यवहार के लिए ही नही है वरन् धर्म अर्थ काम और मोक्ष—सभी पुरुषार्थों के विषय मे लागू होती है। 'सशयात्मा विनश्यति।' सदेह मे पडे रहना ओर निर्णय न करना अपना नाश करना हे। निर्णय किये बिना सिद्धि प्राप्त नही होती।

साहूकार के लडके के सामने इस समय दो बाते उपस्थित थी। एक तो जहाज को बचाने की ओर दूसरी अपने आपको बचाने की। जब जहाज का बचना सभव न रहा तो उसने बिना किसी दुविधा के आत्मरक्षा करन का निर्णय कर लिया। उसने विचार किया—जब जहाज मे रहने पर भी में मर जाऊगा तो कायरो की तरह क्यो मरू? मरना ही होगा तो मर्दानगी के साथ मरूगा। यद्यपि इस विशाल समुद्र से तैर कर पार होना अशक्य हे लकिन प्राण छूटने तक हाथ–पैर हिलाते हुए मरूगा। कायर की मोत मरना उचित नहीं। सफलता मिले या न मिले, में अपना उद्योग नही छोडूगा।

कार्य मे जो सफलता की आशा रखता हे, बल्कि सफलता की खातिरी करके ही जो कार्य करना चाहता है वह कार्य नही कर सकता। भूल—चूक से कार्य को आरम कर देता है और जब सफलता नहीं पाता ता उसके पश्चात्ताप का पार नहीं रहता। वह निराशा क गहरे कूप म गिर पडता है। इसीलिए कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

अर्थात्—तुझे कार्य करने का अधिकार है, फल की लालसा करने का अधिकार नही है। तू निष्कामभाव से अपना कर्त्तव्य पाल। फल तुझे खोजता फिरेगा। तू फल की आशा की भारी गठरी सिर लाद कर चलेगा तो चार कदम भी नही चल सकेगा।

साहूकार का लडका पटिया के सहारे हाथ—पैर—मारता हुआ समुद्र मे बह रहा था। उस समय समुद्र का देव उसके उद्योग को देखकर सोचने लगा—इससे पूछना तो चाहिए कि जब मौत सामने मुह फाडे खडी है, तब यह समुद्र को पार करने की निष्फल चेष्टा क्यों कर रहा है? देव ने आकर पूछा—ओ पुरुष! निरर्थक श्रम करने वाला मूर्ख होता है। समुद्र को तैर कर पार करना समव नही है और फिर तूफान के समय की तो बात ही क्या है। मृत्यु के समय अनावश्यक परिश्रम क्यों कर रहा है? अब हाथ—पैर हिलाना छोड दे और इच्छा हो तो भगवान् का नाम जप।

महाजातक हाथ—पैर हिला रहा था। देव की सलाह सुनकर भी वह निराश नही हुआ। उसने देव से पूछा—आप कौन हैं? देव ने कहा— मैं समुद्र का देव हू।

महाजातक— आप देव होकर भी क्या हम मनुष्यो से गये बीते हैं? आपका काम तो उद्योग करने के लिए उपदेश देने का है, लेकिन आप तो उद्योग छोडकर डूब मरने का उपदेश देते हैं। आप अपना काम करिये और किसी का भला हो सकता हो तो वह कीजिये। मुझे भुलावे मे मत डालिये। मै अपने उद्योग मे लगा हू। रही भगवान् का नाम जपने की बात। सो मौत से बचने के लिए भगवान् का नाम जपना मैं कायरता समझता हूं? यो अपने कल्याण के लिए और मृत्यु से दु ख न पहुचने देने के लिए मैं परमात्मा का स्मरण अवश्य करूगा।

महाजातक ने देव से दूसरो का भला करने के लिए तो कहा, मगर अपने लिए सहायता न मागी।

महाजातक का उत्तर प्रभावित करने वाला था। उसने सोचा—यह मनुष्य ऐसे विकट समय मे भी उद्योगशील और मृत्यु की ओर से निर्भय है। इसके विचार कितने उच्च है।

हू। दूसरा फल आपका मिलना है। अगर मैं जहाज के साथ ही डूब मरता तो आपके दर्शन कैसे होते? मैंने साहस किया, उद्योग किया तो आप मिले। ऐसी दशा मे मेरा श्रम क्या वृथा हे?

महाजातक का उत्तर सुनकर देव बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा–तुमने मुझसे बचा लेने की प्रार्थना क्यो नही की?

महाजातक– मैं जानता हू कि देवता कमी प्रार्थना करवाने की गरज नहीं रखते। उद्योग मे लगे रहने से मेरा मन प्रसन्न है और यही देवता की प्रार्थना है। जिसका मन प्रसन्न और निर्विकार होगा उस पर देवता स्वय प्रसन्न होगे। इसके अतिरिक्त मेरे प्रार्थना करने पर अगर आप मुझे बचाएगे तो आपके कर्त्तव्य का गौरव कम हो जायगा। बिना प्रार्थना के आप मेरा उपकार करेगे तो उस उपकार का मूल्य बढ जाएगा। मैं आपके कर्त्तव्य की महत्ता को कम नहीं करना चाहता और न यही चाहता हू कि आपके उपकार का मूल्य कम हो जाय।

लोग कहते हैं– देवता को फूल चढाओ तो वह प्रसन्न होग। लकिन फूल का दूसरा नाम 'सुमन है। 'सुमन' का अर्थ है– अच्छा सम–प्रशस्त विचार। तात्पर्य यह है कि मन को पवित्र रखने से देव प्रसन्न होते है।

महाजातक की बात से देव अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने जहाज क साथ उसे किनारे लगा दिया। फिर महाजातक पर पुष्पवर्षा करके दव न कहा तुम्हारा सरीखा धीर और गमीर दूसरा पुरुष तो क्या देव भी कही नही दखा। वास्तव मे हम देवताओ की अपेक्षा मनुष्यो की शक्ति बड़ी हे। देव मनुष्य की उद्योग शक्ति का दास हे।

श्री मानतुगाचार्य कहते हे परमात्मा का गुणगान करना भुजाआ स समुद्र को पार करने के समान कठिन हे। फिर कोई पूछे कि इस कठिन कार्य मे उन्होने क्यो हाथ डाला, तो मैं यही कहूगा कि इस प्रश्न का उत्तर महाजातक से पूछो। स्तुतिकार कहते हें जेसे सेठ के लडके महाजातक न उत्तर दिया था कि चाहे पार होऊ, या न होऊ उद्योग करना मेरा काम हे। उद्योग से उपरत हो जाना कायरो को शोभा देता हे। इसी प्रकार मे राचता हू कि शब्द चाहे जैसे हो लगाना चाहिए उन्हे परमात्मा की स्तुति म ही परमात्मा के गुण–सागर के पार पहुचना चाहे असभव हो, फिर भी पहुचन का उद्योग करना तो असभव नही है। अतएव जिस प्रकार महाजातक पटिया लेकर कूद पडा था उसी प्रकार मैं भी कूद पडा हू। पार हाना या न हाना दूसरी बात है, लेकिन मेरा कर्तव्य यही हे। मुझे यही उद्योग करना चाहिए।

लोग ससार–समुद्र मे पडे चक्कर लगा रहे है। कायरतापूर्वक रोते रहने से इस चक्कर से छुटकारा नही होगा। चक्कर से बाहर निकलने का उपाय उद्योग करना ही है और वह उद्योग योग्य दिशा मे विधिपूर्वक करना चाहिए। जैसे तूफान के समय समुद्र को पार करने के लिए अधिक हाथ–पैर हिलाये जाते है, उसी प्रकार सकट के समय पुरुषार्थ न खोकर परमात्मा मे चित्त को अधिक लगा देने से सकट से पार हो सकते हो। पुरुषार्थ करने से तो कुछ न कुछ फल निकल सकता है, मगर रोना तो अपने आपको डुबाना ही है।

अधिकाश लोग परमात्मा का नाम इसलिए लेते हैं कि उन्हे उद्योग किये बिना ही धन मिल जाय। आलस्य मे पडे रहने पर भी धन मिल जाय तो वे समझते है कि भगवान बडे दयालु हैं। लेकिन जब उद्योग करना पडता है तो भगवान को भूल जाते है। मगर याद रक्खो भगवान् कायरो का साथ नही देते। उद्योगी ही उनकी सहायता से सिद्धि प्राप्त करते हैं शास्त्र मे कहा है कि श्रावक लोग देवताओ की सहायता नही लेते और कहते हैं–हम क्या देवो से कम हैं? जिनका जहाज समुद्र मे डूबा जा रहा था, वे भी नही घबराये तो आपको घबराने की क्या आवश्यकता है?

बहुतेरे ईर्षालु लोग है, जो दूसरो की ऋद्धि देखकर जलते हैं और सोचते है कि ऐसी ऋद्धि मेरे यहा क्यो नहीं है? क्या ऋद्धिमान् के प्रति ईर्ष्या करने से आप ऋद्धिशाली हो जाएगे? अथवा वह ऋद्धिशाली ऋद्धिहीन हो जायगा? अगर आपकी ईर्ष्या इन दोनो मे से कोई भी परिवर्तन नही कर सकती तो फिर उससे लाभ कहा है? ईर्ष्या करने से लाभ तो कुछ भी नही होता उलटी हानि होती है। ईर्षालु पुरूष अपने आपको व्यर्थ जलाता है और अपने विवेक का विनाश करता है। वास्तव मे ऋद्धि का बोल पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ करने वाले ही ऋद्धि के पात्र बनते है।

लोग कहते है कि स्वर्ग के देवो को कुछ भी पुरुषार्थ नही करना र फिर भी उन्हे सब प्रकार के सुख प्राप्त होते है। क्या देवलोक मे । का समूह इकट्ठा हुआ है? नही। उन्होने पहले ही बहुत उद्योग और उद्योग की बदौलत वे सुख भोग रहे है ठीक उसी प्रकार जैसे कमाई करने के बाद कोई वृद्धावस्था मे उसका फल भोगता है–

है–

देवलोक मे अप्सरा रे प्रत्यक्ष जोडे हाथ।
क्या करणी किस काम से रे हुआ हमारा नाथ?

तू मान कह्यो रे, मत कर मगरूरी झूठी जिदगी।।
आचारज की महर से रे, हुआ तुम्हारा नाथ।
प्रथम वन्दे हम जाय के रे, तुम चलो हमारे साथ।
तू मान कह्यो रे मत कर मगरूरी झूठी जिन्दगी।।

तात्पर्य यह है कि देव जब देवलोक मे उत्पन्न होता है,उसी समय देवागनाए हाथ जोडकर उससे प्रश्न करती हैं– महानुभाव! आपने कौन–सा पुरुषार्थ किया था, जिससे आप हमारे नाथ हुए हैं? इस प्रश्न से यही नतीजा निकलता है कि देवत्व की प्राप्ति पुरुषार्थ का ही फल है।

सच्चा पुरुषार्थी कभी हार नही मानता। वह अगर असफल भी होता है तो उसकी असफलता ही उसे सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा करती है। इसी प्रकार पुरुषार्थी मनुष्य न तो अपनी असमर्थता का रोना रोता है और न कार्य की असभावनीयता का ही विचार करता है। वह अपनी थोडी–सी शक्ति को भी समग्रता के साथ प्रयुक्त करता है और कार्य की सिद्धि कर लेता है। यह ठीक है कि भगवान् के गुण अनन्त हैं और उनकी पूरी तरह स्तुति नही की जा सकती। परन्तु इसी कारण अपनी शक्ति के अनुसार स्तुति न करना उचित नहीं कहा जा सकता। सम्पूर्ण आकाश को लाघना किसी के लिए सभव नही है, फिर भी लोग आवश्यकता पर यथाशक्ति लाघते ही हैं मुक्ति का मार्ग लम्बा है ओर कठिन भी है, यह सोचकर उस ओर पेर ही न बढाना एक प्रकार की कायरता है। मार्ग कितना ही लम्बा क्यो न हो अगर धीरे–धीरे भी उसी दिशा मे चला जायगा तो एक दिन वह तय हो ही जायगा क्याकि काल भी अनन्त है और आत्मा की शक्ति भी अनन्त हे। इस दृढ श्रद्धा के साथ जो भगवान् के मार्ग पर चलेगा और निराश न होकर चलता ही जायगा उस अवश्य ही अक्षय कल्याण की प्राप्ति होगी।

बीकानेर
7 8 30

(3)

सोऽह तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश।
कर्तुस्तव विगतशक्त्यपि प्रवृत्त ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी, (गो) मृगेन्द्रम्,
नाभ्येति कि निजशिशो , परिपालनार्थम् ।।5।।

अर्थ– हे मुनियो मे श्रेष्ठ। मैं आपकी भक्ति के वश होकर अशक्त होने पर भी आपकी स्तुति करने मे प्रवृत्त हुआ हू। क्या मृगी, (मृग) अपनी शक्ति का विचार न करके अपने बच्चे की रक्षा करने के निमित्त सिंह का सामना नही करती?

जिस प्रकार समुद्र को तैर कर पार करना और जल मे पकडे हुए चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकडना अशक्य है, इसी प्रकार प्रभो। तेरे गुणो का वर्णन करना मेरे लिए अशक्य कार्य है। मैं अपनी इस कमजोरी को जानता हू। फिर भी तेरा गुणगान करने के लिए मे तैयार हुआ हू। इसका कारण यह है कि तेरी भक्ति मुझे विवश कर रही है। भक्तिभाव की तीव्रता के कारण मुझमे यह विचार ही नही रह गया है कि मैं अपनी योग्यता–अयोग्यता अथवा शक्ति–अशक्ति का ख्याल करू। बस इसी हेतु मैं आपका स्तोत्र करने मे प्रवृत्त हो गया हू और अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट कर रहा हू।

प्रश्न हो सकता है–क्या भक्ति के वश होने पर मनुष्य को अपनी शक्ति–अशक्ति का भी विचार नही रहता? क्या वह अपनी अयोग्यता को भी भूल जाता है? इसका उत्तर यह है कि परमात्मा की भक्ति का तो कहना ही क्या है सन्तान प्रेम से भी मनुष्य ऐसा विवश हो जाता है कि जिस काम की करने की उसमे शक्ति नही होती उस काम को भी करने मे प्रवृत्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के हृदय मे जब तक किसी भावना की प्रबलता नही होती तब तक तो उसमे सकल्प–विकल्प बना रहता है मगर जब एक

भावना उत्कृष्ट रूप धारण कर लेती है और न केवल मनुष्यो मे ही वरन पशु–पक्षीयो भी सतानप्रेम की उत्कटता के वश मे होकर अपनी शक्ति–अशक्ति का ओर कार्य की शक्यता–अशक्यता का ख्याल भूल जाते हैं और जिस कार्य के लिए वे समर्थ नही हैं, उसी मे जुट पडते हैं। जिस समय सिह हिरन के बच्चे पर हमला करने के लिए उद्यत होता है उस समय उसके माता–पिता मे यह शक्ति नही होती कि वे सिह का सामना करके अपने बच्चे की रक्षा कर सकें फिर भी सतान–प्रेम की प्रबलता हिरण–हिरणी को अपनी असमर्थता का विचार करके चुपचाप नही बैठने देती। वे अपनी शक्ति का विचार न करके सिह का सामना करते हैं और अपने बच्चे की रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं।

आचार्य कहते हैं– पशु भी सतानप्रेम मे मतवाला होकर अपने बल–अबल का ध्यानभूल जाता है, तो परमात्मा की भक्ति का लोकोत्तर प्रेम मुझे बल–अबल का ध्यान कैसे रहने देगा? अतएव परमात्मा के गुण समुद्र को पार करने की शक्ति न होने पर भी मैं उसकी स्तुति करने को उसी प्रकार ललचाया हू, जिस प्रकार मृग अपने बालक की सिह से रक्षा करने के लिए ललचाता है। वास्तव मे मैं स्तुति करने मे असमर्थ हू किन्तु केवल भक्ति से विवश होकर प्रवृत्त हुआ हू।

आचार्य का यह कथन धर्म से भरा हुआ है। इसके मर्म को समझने का हमे प्रयत्न करना चाहिये। आचार्य विद्वान थे। वे स्तुति–कार्य को करन की बहुत कुछ शक्ति रखते थे। फिर भी अपने आपको अशक्त बताकर उन्हाने कहा कि मैं गुणगान के कार्य मे प्रवृत्त होता हू। आचार्य का यह कथन उनक लिये है या हमारे ओर आपके लिए? उनके इस कथन से स्पष्ट है कि जिसमे भक्ति है उसमे शक्ति आये बिना नही रहेगी। जिसम वास्तविक भक्ति हागी वह कार्य मे लगेगा ही। जो कार्य मे नही लगता समझना चाहिए कि उसम भक्ति ही नही है। मृगी अगर अपने बच्चे को बचाने के लिए सिह का सामना न करे तो यही समझा जायगा कि उसमे पुत्र प्रेम ही नही हे। चिडिया अपने ·च्चे की रक्षा करने के लिए बाज का सामना करती हे गतलव यह हे कि शक्ति अल्प होने पर भी सतानप्रेम से प्रेरित होकर पशु–पक्षी भी उस कार्य मे जुट जाते है जिसे करने मे वे असमर्थ होते हैं। ऐसी दशा मे अगर हमार हृदय मे भक्ति है तो क्या हम परमात्मा का गुणगान किय बिना रहेग? अतएव स्वय अपने हृदय को टटोल कि मुझमे भक्ति हे या नही? मे यह नही कहना चाहता कि आपमे भक्ति है ही नही। ऐसा होता तो आप मर पास आत ही क्यो और भक्ति सम्बन्धी उपदेश सुनते ही क्यो? मगर अपनी त्रुटि को दखा।

सोचो हमारी भक्ति–भावना मे कहा कमी है और क्या त्रुटि है। मैं इस सम्बन्ध मे विचार करता हू और आप भी विचार कीजिए। एक हो कर तल्लीन हो जाएगे तो अपूर्व रहस्य निकलेगा।

मैं अपने विषय मे सोचता हू तो भीतर से उठने वाली सुन पडती है और वह मेरी अनेक त्रुटिया मुझे बतलाती है। मैं का वर्णन कहा तक करू? मै मन ही मन सोचता हू– हे आत्मन ग्रहण किया है। गृहस्थ तो कदाचित् छुटकारा पा सकते हैं लेकिन कहकर अपना बचाव कर सकता है? तिसपर भी तेरे ऊपर आचार्य उत्तरदायित्व है। अगर तू भक्ति मे लग जाय और उसी मे तल्लीन रह भी त्रुटि शेष न रहे। जब तुझे किसी पर क्रोध न आवे जब तू दूसर हुए कटुक वचनो को अमृत मानने लगे, ऐसी अद्भुत जागृति तेरी अन्तरात्मा मे आ जाय तभी समझना चाहिए कि तुझ पर भक्ति का रस चढा है। जहा प्रभुभक्ति है वहा क्रोध नही हो सकता। भक्त पर अगर कोई जुल्म करता है तो भक्त कही फरियाद करने नही जाता। परमात्मा ही भक्त का न्यायाधीश है और परमात्मा का दरबार ही उसका न्यायालय है। भक्त अगर किसी दूसरे क पास फरियाद करने जाता है तो समझना चाहिए कि उसने अभी तक परमात्मा को पहिचाना ही नही है जैसे सामर झील मे पडी हुई सब वस्तुए नमक बन जाती है उसी प्रकार भक्त के कानों मे पडा हुआ प्रत्येक शब्द अमृत बन जाता है चाहे दूसरे को वह बाण सरीखा तीखा या विष के समान कटुक भले प्रतीत हो। भक्त गाली सुनकर सोचता हे कि गाली देने वाला मेरी सहनशीलता की परीक्षा कर रहा है। मुझे इस परीक्षा मे उत्तीर्ण होना चाहिए।

शास्त्र मे क्षमा को मुनि का प्रधान लक्षण बतलाया गया है। भक्ति जितनी गाढी होगी क्षमाभावना उतनी ही प्रबल होगी। भक्त को क्रोध नही आ सकता और बिना क्षमा के भक्ति नही होती।

मे से ककर निकाल दिये जाते हैं, उस प्रकार आत्मा के दोष को, त्रुटियो को भूलो को निकाल दिया जाय तो आत्मा की शुद्धि हो सकती है।

जिन लोगो पर तुम्हारा वश नही चलता, उन पर क्रोध न करना तुम्हारी क्षमाशीलता की कसौटी नहीं है। जो तुम्हारे अधीन हैं, तुम्हारे मुखापेक्षी हैं, जिनको तुम बना–बिगाड सकते हो, उन पर क्रोध न आने दो। उनके कटुक वचन को भी अमृत समझ लो। यह तुम्हारी क्षमाशीलता की कसौटी है। जो इस कसौटी पर खरे उतरते हैं वे धन्य हैं।

बिच्छू का विष दूसरो पर चढता है, लेकिन मत्रवादी कहता है कि मुझ पर नही चढता। अब अगर मत्रवादी को भी जहर चढ गया तो वह मत्रवादी ही क्या रहा है? साप–विद्व का जहर उतर जाना उतना कठिन नहीं है, जितना क्रोध भरे कटुक शब्दरूपी बाणो का जहर उतरना कठिन होता है।

अब तो मेरो राम नाम दूसरो न कोई।
मात छोडे तात छोडे छोडे सगे साई।।
सतन सघ बैठ–बैठ लोक लाज खोई।
अन्त मे से तन्त काढ पीछे रही सोई।।
राणा मेल्या विषना प्याला।
पीके मस्त होई। अब तो ।।

मीरा कहती है– 'इस ससार मे परमात्मा के सिवाय कोई नही है। इसे कहते हैं भक्ति। जब मृगी अपने बच्चे की रक्षा के लिए सिह के सामने जाती है तब उसे ससार मे बच्चे के सिवाय कुछ नहीं दीखता। उस समय वह अपने प्राणो को भी तुच्छ समझती है। इसी प्रकार हृदय मे अगर परमात्मा की सच्ची भक्ति हो तो दूसरी बात याद ही नही आनी चाहिए। अगर दूसरी बात याद आई तो समझ लो कि भक्ति मे कमी है।

मीरा कहती हे– ससार मे परमात्मा के सिवाय ओर कोई नही हे। ससार, शरीर और शरीर से सम्बन्ध रखने वाली सब वस्तुए अनित्य हें, केवल आत्मा नित्य है। इस ससाररूपी छाछ मे से मेंने अविनाशीरूपी मक्खन निकाल लिया है। अब मुझे इस छाछ की चिन्ता नहीं रही। अनित्य मे से नित्य को पाकर मैं निश्चिन्त हो गई।

राणा ने मीरा के पास विष का प्याला भेजा। कहला भेजा–तुम साधुओ और भिखारियो के पास बेठ–बेठ कर मुझे लज्जित करती हो। तुम्हारी भक्ति मुझे पसद नही है। इसलिए ससार मे रहना है तो राजकुल की मर्यादा के अनुसार नियमपूर्वक राजघराने मे रहो अन्यथा विष का प्याला पीकर

ससार से विदा लो। राणा ने स्पष्ट कहला दिया था कि यह विष का प्याला है। फिर भी मीरा ने कहा– मेरे लिए यह विष नही अमृत है। पहले तो इसे मेरे उन प्राणनाथ ने भेजा है जिन्हे भक्ति मे होती हुई भी मैं नही भूली हू। इसके अतिरिक्त उनसे भी बडे पति–परमात्मा की भक्ति के लिए यह जहर पीना पड रहा है। अगर चोरी या अन्याय के अपराध के दड मे जहर पीना पडता तो दु ख की बात थी मगर भक्ति के लिए और वह भी परमात्मा की भक्ति के पुरस्कार मे विष का पान करना क्या बुरा है? कहा हे–

जिसका पर्दा दुई का दूर हुआ।
फिर उसमे खुदा मे फरक ही नही।।
न तो आवे हवा न आतिश वा।
कोई मेरे सिवा तो वशर ही नही।।

आप भी कहते हैं–

तू सो प्रभु प्रभु सो तू है।
द्वैत – कल्पना मेटो।

जहा यह भेद मिटा और पुद्गल का भाव गया, वहा चिदानन्द और परमात्मा मे कोई अन्तर नही रह जाता। फिर जहा देखो परमात्मा ही परमात्मा है।

कभी ऐसा प्रसग उपस्थित हो जाय कि आपको मक्खन और छाछ मे से एक चीज को छोडना आवश्यक हो जाय और आप यह जानते हैं कि मक्खन सारभूत पदार्थ है छाछ निस्सार है तो आप किसे लेना पसन्द करेगे और किसे छोडना चाहेगे? छाछ छोडना चाहेगे।'

लेकिन समय आन पर आप छाछ के लालच मे पडकर मक्खन को छोड देते हैं। अर्थात पुद्गल के लोभ मे फसकर आत्मा की उपेक्षा कर देते हैं। इसका अर्थ यह है कि आप भक्ति की बात कहते–सुनते तो हैं मगर अभी उससे दूर है। जिस समय आप भक्ति के निकट पहुच जाएगे, उस दिन ऐसी भूल कदापि नही करेगे।

रूपी प्याले मे कटुक शब्द रूपी विष पडे, तब आप उसे अमृत समझ कर पी जाए। अगर आपमे इतनी शक्ति आ जाय तो समझ लीजिए कि आपके हृदय मे भक्ति आ गई है। धीर, वीर ओर गभीर पुरुष ही इस विष का पान कर सकते हैं और फिर सब ऋद्धिया उनकी दासी बन जाती हैं।

तात्पर्य यह हे कि भक्ति की आन्तरिक प्रेरणा शक्ति से परे का भी कार्य करने को विवश कर देती हे। जब एक मृग जैसा पशु भी अपनी सतति के प्रेम के वश होकर अपने प्राणो की ममता छोडकर अपनी शक्ति का विचार न करके सिह के मुख से अपने बालक को छुडाने के लिए तेयार हो जाता है तो जिसे मनुष्य मे परमात्मा के प्रति प्रकृष्ट प्रेम है, जिसके चित्त मे भगवान की भक्ति की लहरे उठती हैं वह क्यो विवश न होगा?

सुबुकुतगीन बादशाह का वृत्तान्त इतिहास मे आया है। अफगानिस्तान का बादशाह था। वह एक गुलाम खान--दान मे पेदा हुआ था और सिपाही था। एक बार ईरान से अफगानिस्तान की ओर घोडे पर सवार होकर आ रहा था। मार्ग की थकावट से या किसी अन्य कारण से उसका घोडा मर गया। जो सामान उससे उठ सका वह तो उसने उठा लिया और शेष वही छोड दिया। मगर उसे भूख इतनी तेज लगी कि व्याकुल होने लगा। इसी समय सामने की ओर से हिरनो का एक झुण्ड आ निकला। उसने झपट कर उस झुण्ड मे से एक बच्चे की टाग पकड ली। झुण्ड के ओर हिरन तो भाग गये मगर उस बच्चे की मा वही ठिठक गई और बच्चे को दूसरे के हाथ मे पडा देख कर आसू बहाने लगी। अपने बालक के लिए उसका दिल फटने लगा।

बच्चे को लेकर सुबुकुतगीन एक पेड के नीचे पहुचा और उसे भून कर खाने का विचार करने लगा। उसने रूमाल से बच्चे की टाग बाध दी ताकि वह भाग न जाय। इसके बाद वह कुछ दूर एक पत्थर के पास जाकर अपनी छुरी पैनी करने लगा। इतने मे मृगी अपने बच्चे के पास आ पहुची ओर वात्साल्य के वश होकर बच्चे को चाटने लगी रोने लगी और स्तन उसके मुह की ओर करने लगी। बच्चा बेचारा बधा हुआ तडप रहा था। वह अपनी माता से मिलने और उसका दूध पीने के लिए कितना उत्सुक था यह कोन जान सकता है? मगर विवश था। टागे बधी होने के कारण वह खडा भी नही हा सकता था। अपने बच्चे की यह दशा देखकर मृगी की क्या हालत हुई हागी यह कल्पना करना भी कठिन है। माता का भावुक हृदय ही मृगी का अवस्था का अनुमान कर सकता हे। मगर वह भी लाचार थी। वह आसू बहा रही थी

और इधर–उधर देखती जाती थी कि कोई किसी ओर से आकर मेरे बालक को बचा ले।

इसी समय छुरी पैनी करके सुबुकुतगीन लौट आया। बच्चे की मा हिरनी यहा भी उसके पास आ पहुची है यह देखकर उसको आश्चर्य हुआ। हर्ष और विषाद की अनुभूति हृदय मे होती मगर चेहरे पर उस अनुभूति का असर पडे बिना नही रहता। उसने हिरनी के चेहरे पर गहरे विषाद की परछाई देखी और नेत्रो मे आसू देखे। यह देखकर उसका हृदय भी भर आया। वह सोचने लगा– मै इन मृगो को नाचीज समझता था, बेजान मानता था ओर सोचता था कि यह मनुष्य के खाने के लिए ही खुदा ने बनाये हे। मगर आज मालूम हुआ कि मै भारी भ्रम मे था। कौन कह सकता है कि इस हिरनी मे जान नही है? जो इसे बेजान कहते हैं समझना चाहिए कि वह खुद ही बेजान हे अगर हिरनी मे जान नही है तो इन्सान मे भी जान नही है। अगर इन्सान मे जान है तो फिर हिरनी मे भी जान है। अगर हिरनी को मनुष्य की भाषा प्राप्त होती और मै इससे पूछता तो यह तीन लोक के राज्य से भी अपने बच्चे को बडा बतलाती। मेरे लिए यह बच्चा दाल–रोटी के बराबर हे मगर जिसके हृदय मे इसके प्रति गहरा प्रेम है उसका हृदय इस समय कितना तडपता होगा? अपना खाना–पीना छोडकर और प्राणो की परवाह न करके हिरनी यहा तक भागी आई है। इस बच्चे के प्रति इसके हृदय मे कितना प्रेम होगा? धिक्कार है मेरे खाने को। जिससे दूसरे को घोर व्यथा पहुचती हो, वह भलेमानुस का खाना नही हो सकता। अगर मै अपना पेट भरने के लिए इस बच्चे की जान ले लूगा तो इसकी इस स्नेहमयी माता को कितनी व्यथा होगी। अब चाहे मै भूख का मारा मर जाऊ मगर अपनी माता के दुलारे को नही खाऊगा।

अफगानिस्तान का बादशाह होगा।' उसके पैगम्बर की भविष्यवाणी सच्ची हुई। कुछ दिनो बाद वह सचमुच ही अफगानिस्तान का बादशाह बन गया।

अब आप विचार कीजिये कि बच्चे से उत्कट प्रेम होने के कारण हिरनी ने प्राण की परवाह नही की तो परमात्मा से प्रेम होने पर मनुष्य को कैसा होना चाहिए? जिसके हृदय मे परमात्मा के प्रति सच्ची भक्ति होगी वह धन–दौलत को बडी चीज नहीं समझेगा। उसकी बुद्धि झूठ–कपट आदि बुरे कामो की ओर कभी नही जाएगी। भक्तहृदय भलीभाति समझता है कि यह सब कुत्सित काम भक्ति का विनाश करने वाले हैं। जो ऐसी भक्ति तक पहुच जाता है, उसका कल्याण ही कल्याण होता है।

पात्र के भेद से भक्ति अनेक प्रकार की है। मगर इतना विवेचन करने का समय नही है। साहित्यशास्त्र मे अनेक रसो मे से भक्तिरस भी अलग माना गया है। भक्तिरस मे अपूर्व मिठास है। भक्तिरस की मधुरता हृदय मे अद्भुत आह्लाद उत्पन्न करती है। जिसके अन्त करण मे भगवद्भक्ति का अखण्ड स्रोत बहता है वह पुरुष बडा भाग्यशाली है। उसके लिए तीन लोक की सम्पदा–निखिल विश्व का राज्य भी तुच्छ है। प्रह्लाद ने ध्रुव ने और कामदेव ने भक्तिरस के महत्त्व को समझा था और इसीलिए उन्होने बडे–से बडे सकट को तुच्छ माना था। दूसरे रस क्षणिक आनन्द देने वाले हैं मगर भक्तिरस शाश्वत सुख उत्पन्न करता है। जैसे मामूली वस्तु भी नदी के प्रवाह मे बहती हुई समुद्र मे मिल जाती है, उसी प्रकार भक्ति के प्रवाह मे बहने वाला मनुष्य ईश्वर में मिल जाता है अर्थात् स्वय परमात्मा बन जाता है। भक्ति वह अलौकिक रसायन है जिसके द्वारा नर नारायण हो जाता है। भक्ति से हृदय मे अपूर्व शाति और असाधारण सुख प्राप्त होता है। भक्ति का मार्ग सरल और सुगम है। सभी मुमुक्षु इसका अवलम्बन ले सकते हैं। जो भक्तिमार्ग का अवलबन ले कर अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहते हैं, वे अनायास ही ऐसा कर सकते हैं। मेरी कामना है कि आप विवेक के साथ भक्तिरस का पान करे और अपना कल्याण–साधन करे। तथाऽस्तु।

बीकानेर
10–8–30

अल्पश्रुत श्रुतवता परिहासधाम ।
त्वम्दक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिल किल मधौ मधुर विरौति
तच्चारुचूतकलिकानिरकरैकहेतु ।।6।।

अर्थ– मै अल्पज्ञ हू। शास्त्रवेत्ताओ के उपहास का पात्र हू, लेकिन आपकी भक्ति ही मुझे स्तुति करने के लिए जबर्दस्ती प्रेरणा करती है। बसन्त ऋतु मे कोयल जो मधुर शब्द करती है सो उसका कारण सुन्दर आप की मजरियो का समूह ही है।

प्राचीनकाल के आचार्य अपनी लघुता प्रकट करने में गुरुता समझते थे लेकिन आज के अधिकाश लोग अपनी लघुता बताने मे लघुता समझते है। इन दोनो भावनाओ मे बडा अन्तर है। जो परमात्मा नही बन गया है वह अपूर्ण है और जो अपूर्ण है उसमे लघुता अवश्य रहती है जो अपनी लघुता को समझता है और उसे बिना सकोच प्रकट कर देता है, समझना चाहिए कि वह अपनी लघुता को त्यागना चाहता है और पूर्णता प्राप्त करने का अभिलाषी है। उसके परिणामो मे इतनी सरलता होती है कि वह जैसा है वैसा ही अपने को प्रकट करता है वह ढोग नही करना चाहता। इस कारण वह निरन्तर अपनी लघुता को कम करता रहता है, गुरुता प्राप्त करता रहता है और एक दिन सपूर्णता भी प्राप्त कर लेगा।

बात नहीं है। वह तो मनुष्य मात्र मे होती हे। लेकिन जो मनुष्य अपनी अपूर्णता को सरल हृदय से स्वीकार करता है ओर उसे दूर करने की निरन्तर चेष्टा करता रहता है, वह अवश्य ही उसे दूर कर देता है।

आचार्य मानतुग ने भक्तामरस्रोत की रचना करते हुए जो अपनी लघुता प्रकट की है उससे क्या उनके गौरव को क्षति पहुची है? नहीं। इससे उनका गोरव घटा नहीं, बढा ही है। उनके लघुता प्रकाशन से उनकी सरलता निरभिमानता और महत्ता ही प्रकट होती हे और ऐसे महानुभाव जनता के आदर के पात्र बन जाते हें।

आदिनाथ ऋषभदेव की स्तुति करते हुए आचार्य कहते हैं– में बहुत कम जानता हू। इतना कम जानता हू कि विद्वान् पडित मेरे शब्दों का उपहास करेगे। अर्थात् विद्वानो के सामने मैं हसी का पात्र बनूगा। वे कहेगे कि मानतुग कुछ न जानता हुआ भी स्तुति करने को तैयार हो गया। लेकिन उन विद्वान पडितो की हसी से मेरी कुछ भी हानि नहीं है बल्कि लाम होगा। हसने वालो को भी लाभ होगा। वे मुझे हसी का पात्र बनाकर अगर प्रसन्न हो लेगे ता क्या हानि हैं? अगर मैं किसी को रिझाने के लिए स्तुति करने का उद्यम करता होता तो कदाचित् मेरे लिए लज्जा की बात होती। मगर मेरी यह स्तुति न किसी को रिझाने के लिए है और न किसी को बताने के लिए है। मेरे हृदय मे परमात्मा के प्रति जो प्रबल प्रेरणा का उदय हुआ हे उसी का फल है कि मैं स्तुति कर रहा हू।

आचार्य कहते हैं– प्रभो! मेरी यह स्तुति किसी वासना या तृष्णा की पूर्ति के लिए नहीं है। आपकी भक्ति की प्रेरणा मेरा मुह बन्द नहीं रहन दती। उस प्रेरणा ने मुझे वाचाल बना दिया हे। अब मुझ से बिना बोले नही रहा जाता। इस पर अगर कोई हसता हे तो हस ले। लेकिन भक्ति तो हा ही जायेगी।

ससार मे सर्वत्र स्वार्थ का साम्राज्य हे। जो बोलता हे सो या ता किसी के दबाव मे आकर या किसी आशा से ही बोलता हे। क्या काई एसा उदाहरण मिल सकता है कि कोई बिना खुशामद की भावना के सिर्फ निष्काम भक्ति से ही बोलता हो?

मित्रो! जब ऋतुराज बसन्त का आगमन होता हे तब आम्र क बगीच फूल उठते हैं। आमों मे मजरिया आ जाती हैं। प्रकृति अनाखे सोन्दर्य स सज जाती है उसकी सरचना ही कुछ अलबेली हो जाती हे। उस समय प्रकृति क

सौन्दर्य के उपासक आम्रवृक्षो पर आकर किलोल करते हैं। उनमे कोयल नामक एक पक्षी भी होता है। जब आम की मजरियो का सौरभ वायुमडल को सुवासित करता है तब वह कोयल अपने सुमधुर कठ से पचम स्वर मे अलापती है।

शास्त्र मे पचम स्वर का बडा महात्म्य बतलाया गया है और भगवान् के शब्दो की उपमा पचमस्वर से दी गई है।

कोयल के इस मधुर अलाप मे क्या रस है और कितनी मिठास है, यह तो कोई अनुभवी ही जान सकता है या कोई वैज्ञानिक समझ सकता है। दूसरो को उसका पता चलना कठिन है। वैज्ञानिक कहते हैं कि कोयल के स्वर का मुकाबला अन्य स्वर नहीं कर सकते। मगर देखना यह है कि कोयल उस समय जो राग आलापती है सो क्या किसी की खुशामद के लिए? कोई उसके राग को सुने या न सुने चाहे कोई धनिक सुने या गरीब सुने, कोई निन्दा करे या प्रशसा करे, कोई गाने को कहे या बन्द करने को कहे, कोयल अपनी इच्छा के अनुसार गाती है और अपनी इच्छा के अनुसार ही गाना बन्द करती है यह किसी के कहने–सुनने की या निन्दा–प्रशसा की परवाह नही करती। उसके राग आलापने का और कोई हेतु नही है। आम्रवृक्ष के फूलने पर उसके हृदय मे अनुराग उत्पन्न होता है और अनुराग मे मस्त होकर वह गाने लगती है। अनुराग की वह मस्ती रोके नही रुकती।

कोयल जब गाती है तो कौवे उसे मारने दौडते हैं। विचारने की बात यह है कि कोयल ने कौवो का क्या बिगाडा है जो वे उसे मारने दौडते हैं? सम्भव है अपनी राग कर्कशता के विचार से उन्हे कोयल के प्रति ईर्ष्या होती हो। लेकिन उन्हे यह भी सोचना चाहिए कि कहा तो गन्दगी खाने वाले वे और कहा आम की मजरियो का रस चूसने वाली कोयल। ऐसी अवस्था मे अगर कौवे और कोयल के स्वर मे अन्तर हो तो आश्चर्य ही क्या है?

आचार्य कहते हैं कि यह स्तुति किसी की प्रेरणा से नहीं की जा रही है और न किसी की खुशामद के लिए ही की जा रही है। प्रभु–भक्ति की प्रेरणा मेरे अन्त करण को स्तुति करने के लिए विवश कर रही हे।

मित्रो! एक भक्ति करने वाले महात्मा ने भगवान् की स्तुति का जो प्रयोजन प्रकट किया है, वह सभी के लिए मार्ग दर्शक होना चाहिए। उन्होने बतला दिया है कि भक्ति, चाहे उसे सेवा कहो, आराधना कहो, उपासना कहो, कैसी भी हो होनी चाहिए।

भक्तामर स्तोत्र की स्तुति भक्तिमार्ग को दिखलाने का साधन है। जैसे रत्न की परीक्षा जौहरी ही कर सकता है उसी प्रकार इस स्तुति का तत्त्व ठण्डे दिमाग से विचार करने वाले को ही मालूम हो सकता है। इसके तत्त्व का वर्णन करना मेरे लिए शक्य नहीं है। फिर भी यथाशक्ति अपने भावो को प्रकट करता हू।

आचार्य भी भक्ति कर रहे हैं और आप लोग भी भक्ति करने के लिए उत्सुक है, मगर भक्ति किस प्रकार होती है? किसी का यह विचार हो कि विद्वान लोग ही भक्ति कर सकते हैं, तो आचार्य ने यह कह कर कि मे अल्पज्ञ हू– मैं कुछ नहीं जानता यह स्पष्ट कर दिया है भक्ति के लिए पडिताई की अनिवार्य आवश्यकता नहीं। विद्वान् और अज्ञ सभी समान रूप से भक्तिरस के अमृत का पान कर सकते हैं। जब अविद्वान भी भक्ति कर सकता हे ता विद्वान का तो कहना ही क्या है? बिना दात वाला भी जिस वस्तु का खा सकता है, उसे खाने मे दात वाले को क्या कठिनाई हो सकती हे? अतएव सर्वसाधारण को यह भ्रम दूर कर देना चाहिए कि विद्वान होने के ही कारण भक्ति हो सकती है।

दूसरा भ्रम भक्ति के उद्देश्य के सम्बन्ध मे दूर होने की आवश्यकता है। यद्यपि इस बात पर पहले प्रकाश डाल दिया गया है फिर भी स्पष्ट कर देना अनुचित नही है कि तुम जो भक्ति करो, अपनी अन्त प्रेरणा से करो। दूसर के दबाव से या दूसरे को खुश करने के उद्देश्य से भक्ति मत करो। ऐसा करन मे परमात्मा की भक्ति से वचित रह जाना पडता हे।

बहुत से लोग चक्रवर्ती की महिमा, प्रतिष्ठा और विभूति दखकर उस प्राप्त करने की आशा से अभव्य होते हुए भी साधु बन जाते हैं। वे मास–खमण आदि तपस्या भी खूब करते हैं। वे ऐसी अच्छी क्रिया करत हैं कि वही क्रिया अगर शुद्ध मन से की जाय तो मोक्ष पहुचा दे। मगर उनकी क्रिया उन्हे मोक्ष नहीं पहुचाती। इसका कारण यही है उस क्रिया का व

स्वतन्त्र भाव से निरीह–वृत्ति से नही करते हैं, महिमा–प्रतिष्ठा आदि के लोभ से करते हैं। इस प्रकार की अशुद्ध भावना से की हुई क्रिया मनुष्य को स्वर्ग मे भले ही पहुचा दे, मगर उससे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।

यह आवश्यक नही कि भक्ति या स्तुति के शब्द उच्च श्रेणी के हो, भाषा की दृष्टि से सुन्दर हो। ऐसा हो तो कोई हानि नही है। शब्द भले ही टूटे–फूटे हो लेकिन निन्दा–प्रशसा की परवाह न करके स्वाधीन और निस्पृह भाव से भक्ति की जानी चाहिए।

भक्ति करना ही भक्त का एक मात्र उद्देश्य होना चाहिए। भक्ति के लौकिक फल की ओर अगर उसकी सभावना दौड गई तो समझ लीजिये कि भक्ति अशुद्ध हो गई। इहलोक के सुख, परलोक के चक्रवर्ती–इन्द्र आदि के सुख कामभोग, आजीवन–मरण इत्यादि मे किसी भी बात की इच्छा न रहे, पूर्ण निष्काम भाव से भक्ति की जाय तो महान् फल की प्राप्ति होती है। जैसे कोयल अपने गान के बदले मे कुछ नही चाहती, उसी प्रकार आप भी भक्ति के बदले मे कुछ न चाहे।

लोग कहते है– कलकत्ता की गौहरजान नामक एक वेश्या का राग बहुत ऊचा है। उसके गाने की फीस भी बहुत है। उसका गाना सुनने के लिए लोगो की भीड टूट पडती है। कई एक रईस तो उसके पीछे अपना घर बर्बाद कर चुके हैं।

मित्रो! यह कितना अज्ञान है! कैसी भ्रष्टता है! पैसे की लोभिनी हो और विषयो की कीडी हो फिर वह कोई भी क्यो न हो, उसका राग अच्छा कैसे हो सकता है? उसके राग मे कल्याण का मधुर रस और निर्मलता की मिठास किस प्रकार सभव हो सकती है? मैं कहता हू– उसके राग में हजारो विषय विकार के विषैले कीडे भरे हैं। राग तो कोयल का है जो अपने गाने के बदले कुछ भी नही चाहती! न मान–प्रतिष्ठा चाहती है, न धन दौलत चाहती है किसी को न रिझाना चाहती है न लूटना चाहती है, न किसी के द्वारा निन्दा करने पर दुख मानती है।

मतलब यह है कि आत्मा को निस्पृह, निष्काम निरीह बनाये बिना सच्ची भक्ति नही होती। साधु का वेष धारण कर लेना सरल है, लेकिन हृदय के विकारो पर विजय प्राप्त कर लेना सरल नही है। भक्त कहता है–

माधव! मोह पाश किम टूटे
बाहर कोटि उपाय करत हौं ।
अभ्यन्तर गाठ न छूटे ।। माधव ।।

इस भजन को सुनकर आप शायद सोचते होगे कि मैं ऋषभदेव की स्तुति करना छोडकर अन्यत्र चला गया। मगर ऐसी बात नहीं है। मैं भगवान ऋषभ की ही स्तुति कर रहा हू। सस्कृत भाषा मे 'मा' शब्द का अर्थ लक्ष्मी होता है और धव' पति को कहते हैं। इस प्रकार माधव का अर्थ–लक्ष्मीपति। आप यह कह सकते हैं कि हम लक्ष्मीपति को मानते ही कब हैं? लेकिन आप यह देखे कि इस प्रार्थना मे क्या बात कही गई है? इसमे माधव से मोहपाश तोडने के लिए कहा गया है। इसलिए जिसने अनन्तदर्शन अनन्तज्ञान अनन्तचरित्र और अनन्तसुख पा लिए है वही वास्तव मे माधव है। जो स्वय स्त्री का स्वामी होगा वही मोहपाश का नाश कैसे कर सकता है? जिसने अपने मोह के समस्त पाशो को छिन्न भिन्न करके हटा दिया है जो पूर्वोक्त अनन्त चतुष्टय रूपी अलौकिक लक्ष्मी का स्वामी बन गया है वह सच्चा माधव है।

इस भजन मे कहा गया है कि बाहर के करोडो उपाय करने पर भी मोह की गाठ नही खुली है। यथा–प्रवृत्तिकरण उस गाठ के पास अनन्त बार जा आया, फिर भी गाठ न खुली। और उस गाठ के खुले बिना मोक्ष मिलना तो दूर रहा, मिथ्यात्व भी नही हटता।

कोई साधु हो गया है इसका यह अर्थ है नही कि उसने मोह की ग्रन्थि तोड़ डाली है। मोहग्रन्थि के टूट जाने की पहिचान है– अपनी प्रशसा सुनकर प्रसन्न न होना और निन्दा सुनकर दु खी न होना। इस कसोटी पर सभी जिज्ञासु अपनी–अपनी अन्तरात्मा को कस सकते हैं। आत्मा जब कोयल की भाति निरपेक्ष बन जाय, बिना किसी आशा–अभिलाषा के परमात्मा क स्वरूप मे तल्लीन रहने लगे और मान–सम्मान की कामना न करे तभी समझना चाहिए कि मोह की गाठ खुल गई हे। अगर आप समाज मे प्रतिष्ठा पाने के उद्देश्य से सामायिक करते हैं। कीर्ति के लिए उपवास करते हें ओर सम्मान पाने के लिए भक्ति करते हैं तो समझ लीजिए कि अभी मोह की ग्रथि नही खुली है। अगर आप निष्काम भक्ति करेगे तो आपके शल्य नष्ट हा जाएगे और देवता भी आपकी पूजा करेगे। इसलिए मित्रो! मैं बार–बार दोहराता हू कि कामना का परित्याग कर दो और निष्काम भाव से भक्ति करो। कामना करने से ही क्रिया का फल तो मिल नही सकता ओर क्रिया का फल कामना न करने पर भी मिलता है। फिर कामना करके फल का क्या तुच्छ बनाते हैं? हृदय में शल्य क्यो पैदा करते हैं?

मान लीजिए, एक आदमी इष्टदेव की पूजा के लिए मजी हुई थाली मे पूजा की सामग्री सजाकर स्नान आदि करके पूजा करने चला। बीच मे उसे एक भगी मिला। वह कहने लगा– पूजा की यह सामग्री मेरे टोकरे मे भी डाल दीजिए। तो क्या कोई पुजारी डाल देगा?

'नही।

कदाचित् दूसरे को उठाने के लिए तो दे भी सकता है, मगर भगी के टोकरे मे क्यो नही डालता? इसीलिए कि टोकरे मे मलीन चीज भरी है और देवता को चढने वाली पवित्र चीज का स्पर्श उससे कैसे होने दिया जाय?

मित्रो! ओर लोग तो अपने देव को फूल–पत्ती, इत्र आदि से प्रसन्न करते है मगर आपके भगवान् तो वीतराग हैं। वे इन चीजो से भी प्रसन्न नही हो सकते। उन्हे प्रसन्न करने के लिए शुद्ध अन्त करण मे दान, शील, तप और भावना की सामग्री भरी हो मगर हो वह पवित्र ही। इन्हे अपवित्र कर देने पर परमात्मा से भेट नही हो सकती। कल्पना कीजिए कि आपने दान किया। लेकिन दान के साथ अगर अभिमान आ गया तो समझ लीजिए कि आपकी पवित्र वस्तु को चाण्डाल का स्पर्श हो गया। फिर वह अपवित्र वस्तु भगवान को चढाने योग्य नही रही। इसी प्रकार अगर स्तुति के बदले कल्दार की कामना की वह भी अपवित्र हो गई। वह भगवान् को अर्पण करने योग्य नही रही।

लोग मनुष्य के शरीर को अछूत मानकर उससे परहेज करते हैं। मगर हृदय की अपवित्र वासनाओ से उतना परहेज नही करते हैं। वास्तव मे अपवित्र वासनाए ही मनुष्य को गिराती है और उसकी छूत से अत्यधिक बचने की आवश्यकता है।

(5)

स्वब्त्तवेन भवस्नततिसन्निवद्धम्।
पाप क्षणत् क्षयमपति शरीरभजाम् ।।
आक्रान्तलोकमलिनिलमशेषमाशु
सूर्याशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ।।7।।

भवभवान्तर मे बधे हुए प्राणियो के पाप आपकी स्तुति से इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार ससार में फैला हुआ भौंरे के समान काला-काला अन्धकार सूर्य की किरणो से तत्काल नष्ट हो जाता है।

स्तुतिकार आचार्य मानतुग कहते हैं– हे नाथ। मैं भव-भव से उत्पन्न किये हुए पापों के समूह को अपने आत्मा के साथ बाधे हुए हू। एक भव के पापो का ही पार नही होता तो भव-भव के पापो का पार कैसे हो सकता हे? वह अपार पाप मेरी आत्मा को सता रहा है। मगर जैसे चिरकाल के रोगी का महान् कुशल वैद्य के मिल जाने पर आनन्द होता है और वह मान लेता हे कि अब मेरा रोग नष्ट हो जायगा, उसी प्रकार भव-भव मे कष्ट सहने के बाद अब आपका सयोग मिला है। मैं अपने पापो की गुरुता को देखकर निराश हो जाता था और विपुलता को देखकर डरता था कि इनसे किस प्रकार छुटकारा पा सकूगा। मगर आपकी और आपके स्तोत्र की भक्ति को देखकर मुझे बहुत आश्वासन मिला है। अब पापों से छुटाकार पाने की आशा बध गई है। इसलिए मैं बहुत प्रसन्न हू। मैंने सुना है कि आपके गुणो में तन्मय हो जाने वाले देहधारी के अनेक भावो के पाप क्षणभर मे नष्ट हो जाते हैं। अव मुझे उन पापो से डर नहीं लगता।

कहा जा सकता है कि परमात्मा के गुणो मे तन्मय हा जाने वाले क पाप एक क्षण मे किस प्रकार नष्ट हो जाते हैं? इस प्रश्न का उत्तर दते हुए आचार्य कहते हैं–

ससार भर को जिसने व्याप्त कर दिया है, वह रात भर इकटठा हुआ अन्धकार और उपायो से अगर नष्ट हुआ भी तो थोडे से भाग का नष्ट होता है सारे ससार का अन्धकार नष्ट नहीं होता। एक भक्ति को छोडकर और कोई शक्ति नही है जो ससार भर के अन्धकार का नाश कर सकती हो। हा, एक भक्ति ऐसी है जो देखते–देखते इस अन्धकार को समाप्त कर देती है। सूर्य की किरणो के फैलते ही अन्धकार कहा विलीन हो जाता है, पता नही चलता। पकृति की यह घटना प्रत्यक्ष देखकर मुझे विश्वास हो गया है जब एक सूर्य ससार भर के अन्धकार को नष्ट कर डालता है तो जिसके सामने अनन्त सूर्य भी तुच्छ है ऐसे परमात्मा की स्तुति मे जब मैं तल्लीन हो जाऊगा, परमात्मा के साथ आत्मा को मिला दूगा, तब पाप–भीतर किस प्रकार ठहर सकेगा?

आचार्य ने यह बात किस भावना से कही है, यह तो कोई पूर्ण पुरुष ही जान सकता है। लेकिन जब पख मिले हैं तो उडने का अधिकार भी मिला है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति इस विषय पर विचार कर सकता है। यहा विचारणीय यह है कि सूर्य से अन्धकार के नाश होने की बात अनुभव से सिद्ध है हम नित्य ऐसा देखते हैं। मगर परमात्मा की स्तुति की है लेकिन पापों का नाश अब तक नही हुआ है अगर भगवान् अनन्त प्रकाश के अनुपम पुज हैं और उनके लोकोत्तर प्रकाश के समाने पाप नही ठहर सकते तो फिर ससार का सब पाप नष्ट क्यो नही हो गया? इस प्रकार भगवान की स्तुति से ही पापो का नाश हो जाता है तो साधु बनना श्रावक व्रत धारण करना, तपस्या करके शरीर को सुखाना ध्यान–मौन आदि का आचरण करना वृथा है। काम, क्रोध, मोह आदि को जीतने के लिए कठोर साधना करने की आवश्यकता ही क्या है? बस भगवान की स्तुति की और पाप समाप्त हो जाने चाहिए। अगर पापो का नाश नही होता तो फिर स्तुति के विषय मे यह कहना कैसे ठीक होगा?

इस प्रकार सदेह करने वालो मे कुछ लोग वे हैं जिन्हे परमात्मा पर भरोसा नही है। बहुतो को परमात्मा सम्बन्धी और आत्मा सम्बन्धी आस्था ही नही है। वे नास्तिक है। कुछ आस्तिक लोग भी हे जो ऐसा सन्देह करते हैं। जिन्हे परमात्मा पर ही आस्था नही है उन्हे परमात्मा की महिमा समझाना कठिन है। अलबत्ता जो जिज्ञासु भाव से शका प्रकट करते है वे समझ सकते है।

की किरणे जहा प्रवेश नही पा सकती, जहा सूर्य की किरणो का विरोध किया जाता है, वहा का अन्धकार अगर नष्ट नही होता तो किसका दोष समझा जाय?

दूसरी बात भी हे। कई जीव सूर्य के विरुद्ध प्रकृति वाले भी हैं। सूर्य सबको प्रकाश देता है लेकिन उल्लू चमगादड आदि कई ऐसे जीव हैं जो अन्धकारमयी रात्रि को ही प्रकाश मानते हैं ओर सूर्य के निकलने पर उनके लिए अन्धकार हो जाता है। अब अगर वे कहने लगें कि सूर्य किस प्रकार प्रकाश देता है, यह हमे दिखलाओ तो कैसे दिखलाया जाय? जब तक उनकी आखो की रोशनी न बदले तब तक उन्हे सूर्य या उसका प्रकाश केसे दीख सकता है?

तीसरे, सूर्य का प्रकाश फेला होने पर भी जिसने आखे मूद रक्खी है, उसे आखे खोले बिना प्रकाश दिखाई दे सकता है?

जिसे सूर्य के प्रकाश को देखना है, समझना है और उसके महत्त्व को जानना है उसे अपने द्वार खुले रखने होगे अपने नेत्र खुले रखने होगे और अपनी विरोधी प्रकृति का परित्याग करना होगा। इस विषय मे शास्त्रकारो का कथन है कि अगर किसी को परमात्मा का प्रकाश लेना है तो उसे अपना मन तैयार करना चाहिए। मन का डावाडोल होना प्रकृति का उलटा कर लेना अथवा आख या द्वार बद कर लेने के समान है। जैसे आखे और किवाड बद कर लेने पर या प्रकृति विपरीत होने पर सूर्य नही आता, इसी प्रकार जब तक तुम्हारा मन अस्थिर है तब तक तुम्हे परमात्मा का प्रकाश नही मिल सकता। मतलब यह है कि तुमने अपने अपने ज्ञान चक्षुओ पर पर्दा डाल रक्खा है ओर चर्म चक्षुओ से जिनसे सिर्फ स्थूल भोतिक पदार्थ ही दीख सकते हैं परमात्मा को देखना चाहते हो। यह कैसे हो सकता है? जिन आखो से जो वस्तु देखी जा सकती है, उससे वही वस्तु देखने का प्रयत्न करना चाहिए। आध्यात्मिक वस्तु ज्ञान–चक्षु से ही दिख सकती है चर्मचक्षु से नही। उस ज्ञानचक्षु पर तुमने पर्दा डाल रक्खा है। तब परमात्मा का प्रकाश तुम्हे केसे मिल सकता हे? शब्द की उपलब्धि आख से नही हो सकती रस का ज्ञान नाक से नही हो सकता स्पर्श का ज्ञान कान से नही होता। यद्यपि इन सब इन्द्रियो मे एक आत्मा की शक्ति ही काम करती है फिर भी इन्द्रिया अपने योग्य विषय को ही जानती हैं। परमात्मा, रूप, रस गध और स्पर्श से रहित हे इसलिए वह किसी भी इन्द्रिय का विषय नही है। उसे जानने–पहचानने के लिए ज्ञान चक्षु चाहिए। उस पर जब तक पर्दा डाल रक्खा है तब तक परमात्मा का ज्ञान नही हागा।

पश्न हो सकता है–ज्ञानचक्षु पर पर्दा कैसे डाल रक्खा है? इस प्रश्न का समाधान विचार करने पर आप ही आप हो सकता है। क्या पर्दा पडा है यह बात तो स्पष्ट है परन्तु लोगो ने अपनी उलटी समझ के कारण उसे उलटा समझ रक्खा है। स्वाभाविक जीवन जीना स्वाभाविक बात है। भगवान ऋषभदेव ने स्वाभाविक जीवन का पता लगाकर प्रजा को समझाया है और बतलाया है कि मेरे पजा को किस प्रकार रहना चाहिए?

भोगभूमि कहो या अकर्मण्यभूमि कहो या अकर्मभूमि कहो उसका अर्थ यह है कि खाना–पीना और मौज तो करना मगर खाने–पीने ओर मोज करने के लिए पैदा कुछ भी न करना। युगलियो को सब वस्तुओ की आवश्यकता होती है लेकिन वह सब कल्पवृक्षो से उन्हे मिल जाती है। उनके लिए उन्हे उद्यम नही करना पडता। ऐसी स्थिति मे युगलियो को उद्योगी केसे कहा जा सकता है? वे अकर्मण्य ही कहलाते हैं। वे कल्पवृक्षो से भीख माग–माग कर ही अपनी जिन्दगी व्यतीत करते हैं।

इस अकर्मण्य दशा मे उन्हे मोक्ष प्राप्त हो सकता है? नही। हा प्रकृतिजन्य क्रम के विकार उनमे नही हैं, क्योकि उन्हे किसी चीज की कमी नही पडती। कल्पवृक्षो से सब की सब आवश्यकताए अनायास ही पूरी हो जाती है। इस कारण वे चोरी आदि कुकर्मो से बचे रहते हैं और इसी कारण वे नरक एव तिर्यच गति से भी बचे रहते हैं। फिर भी उन्हे मोक्ष नही मिलता। अनन्त बार युगलियो के भोग–भोग लेने पर भी आत्मा का प्रयोजन सिद्ध नही हुआ।

युगलियो की इस अवस्था मे भगवान् ऋषभदेव का जन्म हुआ। उनके जन्म लेते ही ससार पलट गया। कल्पवृक्षो ने फल देना बन्द कर दिया जिस पहले मागने से सब कुछ मिल जाता था अब मिलना बन्द हो गया।

कोई कह सकता है कि भगवान के जन्म से पहले आनन्द था, शाति थी और भगवान के जन्म लेते ही हाय–हाय मच गई। ऐसी हालत मे भगवान अशान्तिकारक हो गया। लेकिन गीता मे कहा है –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मान सृजाम्यह ।।

कहा जा सकता है कि भगवान् ऋषभदेव से पहले धर्म को कौन–सी ग्लानि हुई थी कि उनका जन्म हुआ? बिना आरम–समारम किये सीधी तरह खाने–पीने को मिल जाता था, सब लोग मजे मे रहते थे और मौज करते थे। धर्म की इसमे क्या ग्लानि हुई? तीर्थकर जैसे परमोत्कृष्ट पुण्यशाली पुरुष का जन्म होने पर कल्पवृक्षो की शक्ति अधिक बढनी चाहिए थी मगर उन्होंने तो जो पहले देते थे, वही देना बन्द कर दिया। इसका क्या कारण है?

मित्रों! लोग ऐसे ही चक्कर मे पडे हैं। आत्मा जिस सुख के लिए ललचा रहा है, जिस सुख को भोगने की इसे टेव पड गई है, उसमें कमी होते ही यह चिल्लाने लगता है, हाय–हाय करने लगता हैं। पहले कल्पवृक्ष वस्तुए देते थे और फिर उन्होने बन्द कर दिया। ऐसी दशा में हाय–हाय होना स्वाभाविक है। और उस हाय–हाय को मिटाने के लिए महापुरुष का जन्म होना स्वाभाविक है।

तीर्थकर अनेक लब्धिया लेकर जन्मते हैं। उनमे आश्चर्यजनक शक्तिया मौजूद रहती हैं। फिर भी उन्होने ससार की हाय–हाय मिटाने का उपाय कृत्रिम बतलाया है। महापुरुष का जन्म और कर्म कितना दिव्य होता है यह बात पूरी तरह तो दिव्य दृष्टि प्राप्त होने पर ही जानी जा सकती है। शास्त्रो मे वह दिव्यता प्रकट की गई है लेकिन सर्वसाधारण की समझ निराली होती है। भगवान् ऋषभदेव दिव्यज्ञानी थे। वे ऐसे पोले उपाय नहीं बतला सकते थे कि अमुक मन्त्र जप लो और तुम्हारी मनचाही चीज तुम्हे मिल जायगी। भगवान् का जन्म अकर्मण्यभूमि मिटाकर कर्मभूमि बनाने के लिए हुआ था। यह बात प्राचीन है और समझ की कमी के कारण उसे समझना कठिन हो रहा है। स्तुति मे कहते हैं–

श्री आदीश्वर स्वामी हो,
प्रणमू सिर नामी तुम भणी ।
आदि धरमप्रभु अन्तर्यामी आप कीधी हो,
भरत खेतर सर्पिणि काल मे ।।
काई जुगल्याधर्म निवार
पेला नरवर मुनिवर हो ।।
तीर्थकर जिन हुआ केवली,
प्रभु थाप्या तीरथ चार ।। श्री ।।

कुछ लोग कहेगे कि भगवान् ने जुगल्याधर्म मिटाकर कोन–सा अच्छा काम किया? मजे मे बिना हाथ–पैर हिलाये सीधा खाना–पीना मिलता

था। फिर कर्मभूमि चलाने से क्या लाभ हुआ? कुछ लोग तो यहा तक कहते हैं कि भगवान् ऋषभदेव ने आरभ–समारभ करना ही सिखलाया है। घर बनाना खेती करना, बर्त्तन और कपडे बनाना आदि काम बतलाकर निरारभी जीवन मे बाधा डाल दी है।

वास्तव मे सकीर्ण विचार वाले लोग धर्म के तत्त्व को नही समझ सकते। पहले कहा जा चुका है कि नैतिक जीवन के अभाव मे धार्मिक या आध्यात्मिक जीवन नही बन सकता। मगर लोग नैतिक जीवन के महत्त्व को नही समझते। पर भगवान ने सबसे पहले नैतिक जीवन की ओर ही दृष्टिपात किया। उन्होने सोचा कि यह लोग अगर आलसी बने रहेगे तो इनकी आत्मा ऊची नही बढ सकेगी। अतएव सर्वप्रथम इनका आलस्य मिटाकर इनके जीवन को नीतिमय बनाना आवश्यक है। जब मनुष्य मे सामर्थ्य है तो उसका उपयोग होना चाहिये।

भगवान् ने उस समय की प्रजा से कहा– अरे मनुष्यो! तुम्हारे हाथ–पैर है नाक–कान है, तुम्हारे भीतर शक्ति भरी हुई है, फिर आलस्य मे क्यो पडे रहना चाहते हो? क्यो किसी की भीख के सहारे जीना चाहते हो? अपनी शक्ति को पहचानो और अपनी शक्ति के सहारे रहो। ऐसा करने से प्रकृति तुम्हारा साथ देगी। तुम हाथ मे हल पकडोगे तो बैल भी तुम्हारी मदद करेगे। अगर तुम हाथ–पैर न हिलाओगे तो प्रकृति कैसे मदद करेगी? इसलिए आलस्य छोडो फितूर मत बढाओ, सादगी से रहो और अपना भार दूसरों पर मत डालो। अपने लिए आप ही उद्योग कर लो। जब जीवन मे इतनी नैतिकता आ जाएगी तो जीवन आध्यात्मिकता की ओर भी अग्रसर हो सकेगा।

भगवान की यह बात युगलियो ने स्वीकार की मगर–

महाजनो येन गत स पन्था ।

इस कहावत के अनुसार भगवान् को सब काम अपने हाथ से करके बतलाने पडे। बहुत से काम आखो से देखकर ही सीखे जाते हैं। तदनुसार भगवान ने सब काम असली तौर पर उस समय की प्रजा को सिखलाए।

भगवान ने आरभ–समारभ करना क्यो सिखलाया? इस सम्बन्ध मे यही कहा जा सकता है कि जीवन सर्वथा निरारम्भ न हुआ है न है और न होगा। आरभ के अभाव मे जीवन टिक ही नही सकता। ऐसी स्थिति मे आरभ की तारतम्यता का विचार करना पडता है और जो कार्य कर्म आरभ का हो उसे अपनाना पडता है। आत्मघात करने वाला धर्मात्मा नही हो सकता।

अतएव जीवन निभाने के लिए किये जाने वाले अनिवार्य आरभो का विरोध करना बुद्धिमत्ता नही है।

भगवान् ऋषभदेव पर यह आरोप लगाना कि उन्होने पाप करना सिखलाया है, निरी मूर्खता है। कल्पवृक्षो से जीवनोपयोगी वस्तुए मिलना बन्द हो गया था, ऐसी दशा मे भगवान् लोगो को अगर कार्यकलापो के द्वारा जीवन धारण करने की शिक्षा न देते तो लोग अनार्य कलापो की ओर झुकते उनमे प्रवृत्त होते और फिर उनके जीवन का पतन कहा जाकर रुकता? उस समय की जरा कल्पना कीजिए कि कल्पवृक्षो ने भोजन देना बन्द कर दिया ओर प्रजा को कलापो का ज्ञान नही था। उस समय की प्रजा पर यह कितना घोर सकट था। उन पर जो बीती होगी उसे कौन अनुभव कर सकता है। उस समय भी अगर भगवान् कलाए न सिखलाते तो ससार मे घोर पाप छा जाता। यहा तक आत्मघात की नौबत आ जाती या मनुष्य मनुष्य को खाने लगता। क्या ऐसा करना घोरतर पाप न होता? शास्त्र मे कहा है कि अन्न–पानी के बिना जो बिलबिलाहट करता हुआ मरता है वह अकारण मरता है और अनन्त ससार बढाता है।

एक ओर समय की प्रजा के भूखो मारने का प्रश्न था और दूसरी ओर महारभ होने की सभावना थी। तब भगवान् ने विचार किया महारभ से बचकर जीवन नीतिमय और धर्ममय किस प्रकार बन सकता है ओर फिर आध्यात्मिक प्रगति कैसे हो सकती है? जीवन धारण करने का अल्पारभ के अतिरिक्त ओर कोई मार्ग ही नही था और न आज है। अत अल्पारभ का मार्ग सिखाकर भगवान् ने प्रजा को महारभ के महापाप से बचाने का उपाय किया।

'अन्न वै प्राण' अर्थात् अन्न प्राण हे। शरीर के लिए अन्न की अनिवार्य आवश्यकता है और खेती के बिना अन्न प्राप्त नही हो सकता। इसलिए भगवान् ने अन्न उत्पन्न करने की कला बतलाई। खेती के कार्य म आरभ तो है ही लेकिन भगवान् कहते हैं कि शरीर निभाने के लिए खेती करने वाला अल्पारभी है। अलबत्ता जो धनवान् बनने के उद्देश्य से खेती करता हे वह अवश्य महारभी है। इसी प्रकार अपना तन ढकने तथा गर्मी–सर्दी ओर वर्षा से बचने के लिए वस्त्र बनाने वाले को अल्पारभी और धन के लिए मील चलाने वाले को महारभी कहा हे। मतलब यह है कि जीवन की रक्षा के लिए जो कार्य आवश्यक है और जिनके बिना जीवन की रक्षा नही हो सकती उन कार्यो मे होने वाले आरभ को भगवान् ने अल्पारभ कहा हे और भोग–विलास

आदि की अभिलाषा से किया जाने वाले अनावश्यक सावद्य व्यापार को महारभ कहा है।

महारभ से बचाने के लिए ही भगवान् ने पुरुषो को बहत्तर कलाए और स्त्रियो को चौसठ कलाए सिखलाई जिससे कि सुखपूर्वक नैतिक जीवन व्यतीत हो सके और आध्यात्मिक जीवन मे प्रगति हो सके। जब आध्यात्मिक जीवन मे प्रवेश हो चुके तब इन इन्ही कामो को भगवान् ने त्याज्य बतलाया है। आध्यात्मिक जीवन की साधना के पथ पर आरूढ होने के पश्चात् शरीर पर भी ममता न रखने का विधान किया गया है। भगवान् ने कहा है कि पूरी तरह ममता का त्याग कर दो और आत्मा पर ही ध्यान रक्खो और सोचो कि मै अविनाशी हू।

इस रीति से भगवान ने आध्यात्मिक विचार फैलाया जिससे बहुत से लोगो ने अपनी आत्मा को ऊचा चढाया, अपना कल्याण किया।

साराश यह है कि आप यह तो कहते हैं कि भगवान् ऋषभदेव के स्तोत्र से पापो का नाश होता है तो फिर हमारे पापो का नाश क्यो नही हुआ, परन्तु स्तोत्र के अनुसार आप कार्य नही करते। आप भगवान् ऋषभदेव के कथन के विरुद्ध जीवनयापन करते हैं। आप प्रत्येक वस्तु को भोग की तराजू पर तोलते है कमाते नही है। जब शरीर को वस्तु की आवश्यकता है तब बिना पैदा किये उस वस्तु का भोग कैसे होगा? जब तक यह बात आप भलीभाति नही समझ लेगे तब तक आध्यात्मिक जीवन को कैसे समझेगे? और जब तक आध्यात्मिक जीवन को नही समझेगे तब तक स्तोत्र बोल लेने मात्र से पापो का नाश कैसे हो सकता है? जिसने पक्षपात और स्वार्थ की दृष्टि का त्याग कर दिया है उसके पाप भगवान के स्तोत्र से अवश्य ही नष्ट हो जाते है।

दया करना कहना आत्मा और परमात्मा के बीच दीवाल खडी करना है। जब तक यह दीवाल नही हटेगी और हृदय साफ नहीं होगा तब तक परमात्मा का दर्शन किस प्रकार हो सकेगा? आरम्भ–परिग्रह का त्याग न कर सको तो कम से कम उपकारी के उपकार को तो स्वीकार करो।

आज समय बदल रहा है तो लोग रोते हैं जैसे युगलिया रोते थे। यह रोना और हाय–हाय केवल भोग के लिए है। ऐश–आराम में कमी हो जाने के डर से ही यह रोना है। मगर मित्रो! भोग के लिए क्यो रोते हो? जरा भगवान् ऋषभदेव को याद करो।

धनिक लोग सोचते हैं कि हमने पुण्य किया है। उसका फल भोग रहे हैं। अब उद्योग करने की आवश्यकता ही क्या है? उनके कथन का आशय यह है कि जो परिश्रम न करे वह धर्मात्मा है और जो परिश्रम करके खाता है वह पापी है। यह समझ की बडी भूल है। अब समय पलट रहा है। समय की प्रगति को देखो और अपने धर्म का भी विचार करो। आपको सही रास्ता मिल जायेगा। अगर आपका बिगडा हुआ नैतिक जीवन सुधर जाएगा और आरम्भ–परिग्रह के प्रति आपकी उग्र ममता छूट जाएगी तो परमात्मा की स्तुति आपके पापो का नाश कर देगी और आप निष्पाप बन जाएगे। आपका कल्याण होगा।

बीकानेर 14–8–30

(6)

मत्वेति नाथ। तव सस्तवन मयेद–
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सता नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्यु तिमुपैति ननून्दविन्दु ।। 8 ।।

हे नाथ ऐसा मानकर अल्पबुद्धिवाला भी मैं आपके प्रभाव से स्तुति आरभ करता हू। यह स्तुति आपके प्रभाव से सत्पुरुषो के चित्त को हरण करेगी। जल का बूद कमलिनी के पत्ते पर मोती की कान्ति प्राप्त करता है।

श्री मानतुगाचार्य कहते हैं– हे नाथ। मैं आपके प्रताप से आपके बल पर ही स्तुति बनाना आरभ करता हू, अपने बुद्धिबल के सहारे नहीं। मैं अपने बुद्धिबल के सम्बन्ध मे तो पहले ही कह चुका हू कि मुझ मे अल्पबुद्धि है। ऐसी स्थिति मे मैं आपके सहारे ही स्तुति करने को उद्यत हो रहा हू। मेरे द्वारा की गई आपकी स्तुति अवश्य ही सज्जनो के चित्त को हरण करने वाली होगी। इसका कारण यह नही है कि मैं अपने बुद्धिकौशल से सुन्दर रचना करूगा बल्कि यह स्तुति आपकी है। आपकी स्तुति, जो पारमात्मिक भाव से होती है सज्जनो के मन को हरण करने वाली होनी ही चाहिए। जल का बूद जब कमलिनी के पत्ते पर ठहरा होता है तब मोती की तरह चमकने लगता है यह बात छिपी नही है। यह बडाई उस पानी की नही है किन्तु उस स्थान की है जिसे पाकर वह चमकने लगता है। मेरे शब्द भी पानी के समान हैं किन्तु आपका आधार पाकर अर्थात आपकी स्तुति के काम मे आकर वे मोती के समान हो गये हैं।

मित्रो। मानतुगाचार्य के काव्य की उत्तमता को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि वे विद्वान नही थे या उनका काव्य साधारण कोटि का है। उनकी कविता से प्रकट है कि वे असाधारण विद्वान थे। ऐसा होते हुए

भी उन्होने जो नम्रता प्रकट की है, वह हम लोगो को मार्ग दिखाने के लिए है। आचार्य दिग्गज विद्वान और भक्त कवि थे। ऐसी सुन्दर रचना करना साधारण कवि का काम नही है। इसमे भाषा की सुन्दरता के साथ भावो की जो विशिष्ट सुन्दरता हैं, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि इसके रचयिता असामान्य भक्त विद्वान थे। फिर भी उन्होने जो नम्रता प्रकट की है। उससे हम लोगो को यह सूचना मिलती है कि अपनी शक्ति का अहकार तज दो। शब्द चाहे जैसे हो, परमात्मा को समर्पित कर दो। मुझे अल्पबुद्धि वाले के शब्द भी प्रभु की स्तुति मे लगने के कारण सज्जनों का मन हरण करेंगे, यह कहकर आचार्य प्रकट करते हैं कि मनुष्य को देखना चाहिए कि उसके शब्द किधर जाते हैं। शब्द भले ही टूटे-फूटे हो फिर भी यदि वे परमात्मा के प्रति समर्पित होगे तो उत्तम ही हैं और सज्जन पुरुषो को मनोहर प्रतीत होगे।

बहुत-से लोग देवता को फूल-फल-पत्ता चढाते हैं और कई अनार्य पुरुष बकरा तथा भैंसा जैसे त्रसजीवो की बलि देते हैं। यह सब आडम्बर है। देवता सज्जन हैं। उन्हें प्रसन्न करना है तो परमात्मा को अपनी वाणी चढाओ। ऐसा करने से देवता स्वत प्रसन्न हो जाएगे क्योकि वे भी परमात्मा के भक्त और दास हैं। महामहिम परमात्मा की स्तुति करने से देवताओ का प्रसन्न हो जाना स्वाभाविक है।

आधार-आधेय का विचार करके देखना चाहिए कि वस्तु कहा जाती है? विद्वानो ने वस्तु की गति तीन प्रकार की बतलाई हे। एक ही वस्तु उत्तम स्थान पर जाने से उत्तम हो जाती है, मध्यम स्थान पर जाने माध्यम हो जाती हैं और नीच स्थान पर जाने से नीच बन जाती है। भर्तृहरि ने जल के सम्बन्ध मे कहा है-

सतप्तायसि सस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थित राजते।
स्वात्या सागरशुक्तिमध्यपतित तन्मौक्तिक जायते,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणा ससर्गतो देहिनाम्।।

यो पानी के बिन्दु की कोई कीमत नही करता। लेकिन वही पानी का बिन्दु जब स्वाति नक्षत्र मे सीप के मुख मे गिरता हे तो मोती बन जाता है। तब वह आदर पाता है और उसे धारण करने के लिए राजा अपना कान छिदवाता है और रानी अपनी नाक छिदवाती हे। वह मोती हे उसी पानी का प्रताप, मगर पानी जब सीप से मिला तभी उसे यह प्रतिष्ठा मिली। उत्तम पात्र को पाकर पानी भी उत्तम हो गया।

जल के बूद की दूसरी गति है कमल के पत्ते पर गिरना। कमल के पत्ते पर गिरने वाला पानी मोती तो नही बनता, लेकिन मोती सरीखा दिखाई देता है उसकी कीमत तो नही आ सकती फिर भी देखने से चित्त को वह पसन्न अवश्य करता है।

जो जल–बिन्दु सीप मे पडकर मोती बन जाता है, कमल के पत्ते पर पडकर मोती सरीखा दिखाई देने लगता है। वही अगर गरम तवे पर पड जाये तो तत्काल भस्महो जाता है। यह उसकी तीसरी गति हुई।

जल–बिन्दु की यह तीन बडी गतिया बतलाई गई हैं। उसकी अवान्तर दशाए तो बहुत सी हैं जैसे–वह अन्न मे पडकर अन्न–सा हो जाता है इक्षु मे पहुचकर मधुर हो जाता है नीम मे पहुचकर कटुक बन जाता है और साप के मुह मे पडकर जहर बन जाता है। इस प्रकार की अनेक अवस्थाए उसकी होती है। मगर तीन अवस्थाए उसका ध्यान आकर्षित करने वाली है। इन तीन अवस्थाओ मे से स्तुतिकर्त्ता ने यहा मध्यम अवस्था पकडी है। आचार्य कहते है मेरे शब्द भले ही कौडी के बराबर हो लेकिन भगवान् की स्तुति मे ले जाने से मोती बन गये हैं।

हम लोगो को पुण्य के उदय से मन, वचन और काया की प्राप्ति हुई है। वह पुण्य तीव्र था, इस कारण आर्य क्षेत्र मिला, मनुष्य गति मिली और दूसरी सब उत्तम सामग्री मिली। वैसे देखा जाय तो इन सब की कोई कीमत नही है फिर भी वह महान् दुर्लभ वस्तुए हैं।

लोगो का दृष्टिकोण इतना अर्थप्रधान बन गया है कि अर्थ के सामने किसी दूसरी चीज की कोई कीमत ही नही है। महत्त्व उसी का समझा जाता है जिसके बदले मे पैसा चुकाना पडता है। यह एकदम भौतिक दृष्टिकोण अपने आप को भुलावे मे डालने वाला है। धनवान् की कोई कीमत नही, जो कुछ है धन की ही कीमत है। धन के सामने जीवन तुच्छ है आत्मा नाचीज है। यह दृष्टिकोण इतना व्यापक हो गया है और इसका असर लोगो पर इतना अधिक हो चुका है कि इससे भिन्न दूसरी बात सोचना भी उनके लिए कठिन हो गया है। मगर मनुष्य अपनी मनुष्यता को भूल जाय वह कितने [illegible] की बात है। आर्थिक मूल्य न चुकाने पर भी देखना चाहिए कि वस्तु का महत्त्व कितना है? इस दृष्टि से अपने वचन और काया की कीमत समझनी चाहिए। इसके लिए हमे पैसा नही देना पडा है यह सही है मगर यह मुफ्त भी नही मिले है। इनके लिए पहले से सचित पुण्य की एक बडी राशि खर्च करनी पडी है और पुण्य की पूजी पैसे की पूजी से हल्की नही वरन् बहुत

ज्यादा कीमती है। कहना चाहिए कि पुण्य की पूजी से ही पैसे की पूजी प्राप्त होती है। जब पुण्य समाप्त हो जाता है तब जमीन खोदकर गाडा हुआ धन भी कोयला हो जाता है, मोतियों की माला भी साप बन जाती है। इस प्रकार पुण्य ही सब प्रकार की सम्पत्ति का आद्य स्रोत है। जिस वस्तु के लिए पुण्य को व्यय करना है वह बडी कीमती वस्तु है। इस दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि गगा, यमुना और सरस्वती के सगम की अपेक्षा भी मन वचन और काया का सगम होना कठिन है।

गगा, यमुना और सरस्वती के एक ही जगह मिलने से उस स्थान को त्रिवेणी कहते हैं और लोग उसे तीर्थ मानते हैं। इसी प्रकार मन वचन और काय का जहा सगम है वह क्या तीर्थ से कम है? यह तीर्थ सच्चा तीर्थ है, जिसके द्वारा भवसागर तिरा जा सकता है। मगर इन तीनो के लिए आपको इस समय पैसा नहीं देना पडा है, इसीलिए आप इनकी कद्र नही करते। फिर भी विचार करने पर मालूम होगा कि वह कितनी उत्तम वस्तुए है। आपके मन, वचन और तन की आर्थिक दृष्टि से कितनी कीमत है? कितना धन लेकर आप अपना मन बेच सकते हैं? कितने रुपये पाकर आप वचन बेच देगे और गूगा होना स्वीकार कर लेगे? और आपकी काया की कीमत क्या है? कितना मूल्य लेकर आप अपनी काया त्याग सकते हैं? इन प्रश्नो पर विचार करो तो असली बात समझ मे आयेगी। जब इनका महत्व इतना अधिक है और यह उत्तम वस्तुए हैं तो इन्हे उत्तम काम मे ही लगाना चाहिए या नीच काम मे लगाना चाहिए? किसी पागल को राज्य देने लगो तो उसके किस काम का? अर्थात् मन राज्य से भी मूल्यवान् है। वाणी की महिमा किसी गूगे से पूछो। उसे वाणी और मोतियो की माला मे से एक चीज देना चाहो तो वह माला पसन्द नही करेगा, वाणी ही लेना चाहेगा और काया के सहारे तो यह सब खेल ही है। यह तीनो चीज आपको मिली हैं, यह कितने आनन्द और सतोष की बात है। जिन्हे यह प्राप्त नही हैं, उनके साथ अपनी तुलना करके देखो तो ज्ञात हो कि यह अपूर्व और अमूल्य वस्तुए हैं। किन्तु बादाम–पाक खाते–खाते जिसे अजीर्ण हो गया वह रोटी की कीमत नहीं समझता उसी प्रकार आप भी इस अपूर्व सम्पत्ति की कीमत नहीं समझते।

मन, वचन और काया अत्यन्त तीव्र पुण्य के उदय से मिले हैं और धर्मरूपी सीप हमारे सामने मुह फाडे खड़ा है, तो हम इन्हे पानी की बूद की तरह धर्म–सीप के ही मुह मे क्यो न डाल दे? धर्म और परमेश्वर एक ही हैं दो नही। उसे धर्म भी कह सकते हो और परमेश्वर भी कह सकते हो। 'सव्व

भगवओ सत्य भगवान् भी कह सकते हो। उस सत्य की सीप मे अपने मन, वचन, काया को डाल दोगे तो ये मोती बन जायेगे। ये ऐसे मोती बनेगे जो राजा–महाराजाओ के आदर के ही पात्र नहीं बनेगे वरन् देवता भी इनकी पूजा करेगे।

देवा वि त समसति जस्स धम्मे सयामणो ।

अर्थात् जिसके मन मे सदैव धर्म का वास होता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं।

इस पकार काक्षाहीन होकर अगर आप भगवान की भक्ति करेगे तो देवता भी आपको नमस्कार करेगे। विनयचन्द्रजी कहते हैं–

आगम–सखा सुणो छे एहवी,
जो जिनसेवक थाय हो सुभागी।
तेहनी आशा पूरे देवता,
चौंसठ इन्द्रादिकसाय हो सुभागी ।।
श्री शान्ति जिनेश्वर सायब सोलवां,
शान्तिदायक तुम नाम हो सुभागी ।
तन मन वचन हो शुध कर ध्यावता,
पूरे सगली हाम हो सुभागी ।। श्री ।।

यह आगम की साक्षी है कि जो तन, मन और धन का अहकार त्याग कर उन्हे परमात्मा को समर्पित कर देता है और फिर भी निष्काम बना रहता है उसकी आशा देवता पूर्ण करते है। आप देवताओ से आशा रखते हैं, इसी कारण वे आपकी आशा पूरी नही करते। अगर आप तन, मन, धन, परमात्म–समर्पण कर दे तो देवता आपकी आशा पूरी करेंगे और इन्द्र दास हो जायेगे।

मन रात–दिन घोडे की तरह दौड लगाता रहता है। लेकिन यह देखना आवश्यक है कि परमात्मा की ओर कितना दौडता है और नीच कामो की ओर कितना दौडता है? यह अपूर्व चीज आपको मिली है। क्षण भर के लिए भी इसका दुरुपयोग मत होने दो। सोते बैठते सब समय परमात्मा मे ही [illegible] रहना चाहिए।

सुत्ता मुणिहया

[illegible] सयमी मुनि जब सोते है तब भी उनके योग उसी प्रकार [illegible] रहते है जैसे कि जागृत अवस्था मे करते हैं। कुम्भार का चाक [illegible] घुमाकर छोड दिया जाता हैं तो थोडी देर तक बिना घुमाये

घूमता रहता है। इसी प्रकार जिसने जागते समय मन को परमात्मा मे सम्पूर्णता के साथ लगाया है, उसका मन सोते समय भी वहा लगा रहेगा। जो निरन्तर परमात्मा की भावना से हृदय को भावित करता रहेगा उसका मन सुषुप्ति दशा मे अन्यत्र जा ही नहीं सकता।

आज अधिकाश लोग ऊपरी दिखावे के लिए परमात्मा के भक्त बनते हैं। जैसे कोई अच्छा मकान बनाने वाला समझता है कि फर्नीचर के बिना इस मकान की इज्जत नही होगी और यह सोचकर वह दिखावे के लिए फर्नीचर बसा लेता है, इसी तरह लोग सोचते हैं– दुनियादारी के सब काम–काज करते हैं, अगर धर्म न करेगे तो अच्छा नहीं लगेगा। करीब–करीब ऐसे विचारों से लोग धर्मक्रिया करते हैं। मगर जो धर्मात्मा है, जिसने धर्म का मर्म समझ लिया है, उसके विचार निराले होते हैं। वह सोचता है ससार–व्यवहार के काम माथे आ पडे हैं तो मकान मे फर्नीचर बसाने की तरह करने पडते हैं लेकिन धर्म तो मकान ही है। फर्नीचर के चक्कर मे फसकर मकान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मकान ही न होगा तो फर्नीचर किसमे बसायेगे?

जल मे रहने वाली मछली खाती तो है, मगर उसके भीतर ही बाहर नही। वह देखती भी है मगर जल के भीतर ही। जल के बाहर तो उसके लिए घोर अन्धकार है। वह चलती–फिरती भी है, मगर जल के बाहर नही। इसी प्रकार जिसमे सच्ची धर्मभावना होगी वह धर्मभावना से बाहर कभी नही निकलेगा। उसे धर्मभावना से निकलना उसी प्रकार अरुचिकर होगा जिस प्रकार जल से बाहर निकलना मछली के लिए अरुचिकर होता है। ऐसी प्रगाढ धर्मभावना की प्रशसा इन्द्र करते हैं।

इन्द्र पौषधशाला मे बैठे हुए कि प्रशसा करे तब तो कोई बात ही नही, मगर इन्द्र जहाज मे बैठे हुए धर्मात्मा की, जहा आरम्भ ही आरम्भ है प्रशसा क्यो करता है? इसका कारण यही हे कि जहाज मे बैठे हुए भी धर्मात्मा की भावना परमात्मा मे ही लगी है। धर्मभावना वाला पुरुष चाहे जहाज म बैठा हो, चाहे पौषधशाला मे बैठा हो मन उसका परमात्मा मे ही लगा रहता है। इसी कारण वह इन्द्र द्वारा प्रशसनीय हो जाता है।

आप यह न समझे कि धर्म केवल पौषधशाला ही हे अन्यत्र पाप ही पाप है। इस प्रकार की भावना से पाप की अधिक वृत्ति होती हे। आपका विचार यह होना चाहिए कि मैं धर्मी हू और धर्म की आजीविका करता हू। पौषधशाला तो धर्म की शिक्षा–शाला है। उस शिक्षा का उपयोग तो बाहर ही होता है अगर आपने पाठशाला मे पाच और पाच दस गिने और पाठशाला स

बाहर निकलते ही ग्यारह गिनने लगे, तो आपकी वह शिक्षा व्यर्थ हुई। धर्म का सस्कार धर्मस्थान से ऐसा ग्रहण करो कि वह जीवन–व्यवहार मे काम आवे। कदाचित् आप सोचते हो कि व्यवहार मे धर्म का अनुसरण करने से काम नही चलेगा, व्यवहार चौपट हो जायेगा, तो आप अपने हृदय से भ्रम दूर कर दीजिये। धर्म का व्यावहारिक अनुसरण करने वाले कभी भूखो नही मरते।

बहुत लोग धर्म के सम्बन्ध मे एक भ्रम मे पडे हैं। उनका यह अभिप्राय है कि धर्म व्यवहार की वस्तु नही है। अगर धर्म व्यवहार मे लाने की वस्तु न होती तो उसका महात्म्य ही न होता। प्राचीनकाल के अनेक चरित हमारे सामने है जिनसे भलीभाति समझा जा सकता है कि लोकव्यवहार मे धर्म का आचरण करने वालो का व्यवहार कभी नही रुका है। धर्म न दिखावे की वस्तु है और न कीर्ति उपार्जन का साधन है। यह बात दूसरी है कि धर्मात्मा की कीर्ति स्वत ससार मे फैल जाती है, पर धर्म का उद्देश्य कीर्ति उपार्जन करना नही है। धर्म तो आचरण की वस्तु है। धर्मस्थान का जीवन और दुकान का जीवन अलग–अलग नही है। वह एक है, अविभक्त है। अतएव धर्मस्थान और दुकान के जीवन–व्यवहार मे भी एकरूपता होनी चाहिए।

जीवन मे एकरूपता लाने के लिए सदा सर्वदा परमात्मा की भक्ति मे लीन रहना चाहिए। व्यावहारिक कार्य करते समय भी परमात्मा अन्त करण मे मौजूद रहना चाहिए। परमात्मा को भुलाने वाला अथवा परमात्मा के आदेशो के विरुद्ध व्यवहार करने वाला भक्ति के मर्म को नही समझा है जो भक्ति के मर्म के प्रभाव को समझ जायगा, वह क्षणभर के लिए भी परमात्मा को विस्मरण नही करेगा। वही कल्याण का पात्र बनेगा।

बीकानेर,

(7)

आस्तॉं तव स्तवनमस्तसमस्तदोष,
त्वत्सकथाऽपि जगता दुरितानिहन्ति ।
दूरे सहस्रकिरण कुरुतै प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकाशमाजि ।। 1 ।।

अर्थ –सूर्य की बात तो जाने दीजिए उसकी प्रभा से सरोवरो के कमल खिल जाते हैं। इसी प्रकार समस्त दोषो से रहित आपकी स्तुति की तो बात ही क्या, आपका नाम लेने से ही जीव के पापो का नाश हो जाता है।

भगवान ऋषभदेव की स्तुति करते हुए आचार्य मानतुग कहते हैं कि साधारण वस्तु भी जब किसी विशिष्ट वस्तु का आश्रय लेती है तो उसकी साधारणता मिट जाती है और उसमे असाधारणता आ जाती हे। आश्रय की विशेषता वस्तु मे विशेषता उत्पन्न कर देती है। इसी प्रकार अच्छी वस्तु अगर बुरी वस्तु का आश्रय लेती है तो वह भी बुरी बन जाती है। मुझे जो सामान्य वस्तु मिली है, उसे अगर परमात्मा का आश्रय प्राप्त हो जाय, अगर वह प्रभु के प्रति समर्पित हो जाय तो वह असाधारण बन जायगी।

परमात्मा का यह आह्वान है कि तू जैसा है वैसा ही मेरे पास आ। यह मत विचार कि मेरे पास ऋद्धि–सम्पदा या विद्वत्ता नहीं है तो मैं परमात्मा के पथ पर कैसे पाव रख सकूगा। इस विचार को छोड दे और जैसा है वैसा ही परमात्मा की शरण मे जा। जैसे कमल के पत्ते का सयोग पाकर जल की साधारण बूद भी मोती की कान्ति पा जाती है उसी प्रकार तू परमात्मा का सयोग पाकर असाधारण बन जायेगा।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अगर किसी मे स्तोत्र वनाकर गाने की शक्ति न हो तो उसे क्या करना चाहिए। स्तोत्र छन्दवद्ध होन के

कारण बडो का अर्थात् विद्वानो का मन चाहे हर ले लेकिन छोटो का इससे क्या लाभ होगा? लेकिन स्तोत्र से अगर विद्वानो का ही मनोरजन होता हो और छोटो को उससे लाभ न पहुचे तो वह स्तोत्र ही क्या? ज्वार मोतियो से कम कीमती होने पर भी अधिक कीमती होती है, क्योकि उससे गरीब और अमीर–सब का काम चलता है। मोती तो सिर्फ अमीरो के ही काम आते हैं। इसी पकार वही स्तोत्र मूल्यवान् है जिससे सब लोग लाभ उठा सकते हो। मगर जो लोग छन्दबद्ध स्तोत्र से लाभ नही उठा सकते वे अपने मन, वचन और काया परमात्मा को किस प्रकार अर्पित कर सकते हैं?

इस सम्बन्ध मे आचार्य कहते हैं कि जिसके प्रभाव से सब पाप धुल जाते है उस प्रभु की प्रसगकथा भी सब पापो का नाश कर सकती है, यहा तक कि उसका नामकीर्तन भी पापो को नष्ट कर देता है। जिस प्रभु का नामकीर्तन और प्रसगकथा भी पापमोचिनी है उसके स्तोत्र के प्रभाव का कहना ही क्या है?

प्रभु के स्तोत्र मे वह शक्ति है कि अन्त करण को वलवती प्रेरणा स्तोत्र बनाने वाला स्वय ही इन्द्र की स्तुति का पात्र बन जाता है। जिनके स्तोत्र बनते है उनकी कथा भी महान् होती है। इसी कारण स्तोत्र भी महान् बनते है।

इतिहास वह है जिसमे बीती बातो का वर्णन हो। इतिहास के लिखने मे तो थोडी ही देर लगती है और परिश्रम भी कम करना पडता है, लेकिन इतिहास मे वर्णित कार्यो को करने मे कितना परिश्रम हुआ होगा? कितना समय लगा होगा? किसी व्यक्ति के चरित को ही लीजिए। चरित की रचना तो सहज ही की जा सकती है मगर चरित मे लिखित बातों का अमल करने मे चरितनायक को कितना परिश्रम करना पडा होगा? कल्पना कीजिए– किसी राजा ने एक सुन्दर और विशाल महल बनवाया। दूसरे आदमी ने उसका वर्णन लिखा कि इस महल में इतने कमरे इतनी खिडकिया और इतने द्वार है आदि–आदि। बस मकान की कथा तो इतने मे ही समाप्त हो गई, मगर विचार कीजिए कि महल बनाने मे कितना श्रम और समय लगा होगा? इस प्रकार विचार करने पर आपको भगवान् की कथा की महिमा ज्ञात होगी। महापुरुषो की कथा पापो को हरण करने वाली होती है और जिनकी कथा पापो का हरण करने वाली होती है उन्ही का स्तोत्र महान् कल्याणकारी होता है।

आचार्य कहते है– परमात्मा सम्बन्धी कथा भी पापो का विनाश करने वाली होती है। जैसे कमल को विकसित करने के लिए सूर्य तो दूर रहा

गरीबो और अमीरो के बीच भेदभाव की दीवाल खडी हो गई है, जिससे अमीर लोग गरीबो से अलग रहते हैं। इस दीवार को गिराने के लिए ही सत–महात्मा कहते हैं कि गरीबो के अनुकूल रहो, प्रतिकूल मत रहो। अनुकूल रहने वाला ही पुण्यवान् है।

अमीरों को यह नहीं सोचना चाहिए कि हमे गरीबो की क्या परवाह है। उनके बिना हमारा कौन–सा काम अटकता है? वास्तव मे अमीर लोग गरीबो की सहायता के बिना एक दिन भी नहीं जी सकते। धर्म तो ऊची चीज है। पर मैं नैतिक जीवन के लिए ही कहता हू। नैतिक जीवन मे गरीबो की सहायता की पद–पद पर आवश्यकता रहती है। अमीरो की विशाल और सुन्दर हवेलिया गरीबो के परिश्रम ने ही तैयार की हैं, अमीरो का षटरस भोजन गरीबो के पसीने से ही बना है। अमीरो के बारीक और मुलायम वस्त्र गरीबों की मेहनत के तारो से ही बने हैं। याद रक्खो आध्यात्मिक जीवन का पाया नैतिक जीवन है। जिसकी सहायता के बिना एक दिन भी काम नही चल सकता उसकी सहायता को भुला देना और यह कहना कि गरीबो के बिना हमारा क्या काम अटकता है घोर कृतघन्ता नैतिक पतन को सूचित करती है।

जैन शास्त्र मे पृथ्वी, पानी आदि की दया इसलिए भी बतलाई गई है कि उनकी सहायता से ही जीवन टिकता है। जिनकी सहायता पर जीवन निर्भर हे समय पर उनको याद न करना कृतघ्न्ता हे। विवाह के अवसर पर गरीबो का चाहे चूरा हो जावे लेकिन लोग अमीरो की ही सेवा करते हें और उनके लिए ही थाल सजाते हें पर गरीबो के प्रति ध्यान नही देते। यह बडी कृतघ्न्ता है।

अमीर और गरीब के बीच की दीवाल गिराने के लिए ही शास्त्र की कथाए हें। श्रीकृष्णजी ने गरीव बूढे की ईटे उठवाईं तो ऐसा करने स वह दीवाल मजबूत हुई या टूटी?

टूटी।

घर का कोई आदमी वीमार हा जाय ता छेल–छवील लोगा का वह भी प्यारा नही लगता। एसे समय म गरीव ही सवा करते हैं। छेल–छवीली वाई को बीमार सासू की सवा कब अच्छी लगेगी? बहुत हुआ तो वह किसी नोकरानी को रख दगी मगर नौकरानी भी तो गरीबनी ही हे। ता फिर दया किस पर हाना चाहिए– गरीवो पर या अमीरा पर? कोन अधिक दया का पात्र हैं?

आप मैनचेस्टर का मलमल पहनने मे अपना गौरव समझते हैं और खादी पहनने मे गौरवहीनता मानते हैं, तो आपके दिल मे दया कहा रही? जिस दिन आपके दिल मे दया उपजेगी उस दिन आपके शरीर पर बारीक वस्त्र नही रहेगे।

भारत के बहुत सी बहिने विदेशी वस्त्रों पर पिकेटिग करने कारण अपने कोमल शरीर पर लाठिया और बेत सहन करती हैं और आप मर्द होकर भी बेपरवाह हैं? अगर आप पिकेटिग नही कर सकते तो कम से कम स्वय तो चर्बी लगे विदेशी वस्त्रों के पहनने का परित्याग कर सकते हैं? विदेशी वस्त्रो के व्यवसाय का त्याग तो कर सकते हैं? मगर आपको तो पैसा चाहिए, देश रहे या डूबे, इस बात की चिन्ता ही क्या है? धरना देने वाली बहिने जो बुरी तरह मार खा रही हैं उनकी उस मार–पीट का कारण कौन है? व्यापारी अगर विदेशी वस्त्र न बेचे और खरीददार न खरीदे तो उन्हे क्यो इतना कष्ट सहन करना पड़े? मगर लोग पैसे के लोभ मे पडकर दया भूल गये हैं, धर्म को बिसर गये हैं। आप मर्द हैं और आपकी मा–बहिने पापमय विदेशी वस्त्रो का व्यवहार बन्द कराने के लिए मार खा रही हैं। फिर भी आपको लज्जा नहीं आती? यहा तक कि आप उन वस्त्रो का त्याग नही कर सकते। अहकार त्याग कर देश की भलाई के लिए मार खाने वाली बहिनो की तपस्या कम नही है। महारानी देवकी बिना अपराध हथकडी–बेडी पहनकर कारागार मे रही चन्दनबाला बिना अपराध हथकडी–बेडी मे जकडी भौंयरे मे बन्द रही अजना ने बिना अपराध घोर अपमान सहन किया तो क्या इन देवियो के नाम प्रात–स्मरणीय नही हो गये? जिन देवियो ने घोर सकट सहनकर भी सत्य को नही छोडा है उनमे कैसी शक्ति रही होगी, इस बात पर विचार करो। थोडे दिनो पहले किसी को ख्याल ही न होगा कि बहिनें इस प्रकार लाठियों की मार खाएगी पर सत्य न मालूम कब, किस रूप में प्रकट होता है।

बहिनो अगर आपको अजना द्रौपदी आदि सतियों की बात याद हो तो आप अपने धर्म का विचार करो। अपने धर्म का विचार करने और उसे व्यवहार मे लाने से ही चरित कथा सुनने का लाभ मिलेगा।

आपको चन्दनबाला की कौन–सी पोशाक महत्वपूर्ण मालूम होती है? देवो द्वारा अपनाई हुई या हथकडी–बेडी के समय? चन्दनबाला के जीवन मे एक समय वह था जब उसका सिर मुडा हुआ था और उसके हाथ–पैर हथकडियो–बेडियो से जकडे हुए थे और वह भौंयरे मे बधी पडी थी। दूसरा समय वह था जब देवो ने उसे पोशाक पहनाकर सिहासन पर विराजमान

किया था। आपको इन दोनो अवस्थाओ मे कौन–सी अवस्था अच्छी लगती है?

'हथकडी बेडी वाली।'

भाइयो, तप दुर्लभ है। न मालूम उसका तप कितने महत्त्व का था कि उस अवस्था मे भी उसे आनन्द का ही अनुभव हुआ। वह समझती थी कि धर्म की सजा भुगतने मे तो आनन्द ही है। पश्चात्ताप तो तब हो जब मैं पाप की सजा भुगतू।

यह भावना और दया आपमे कहा है? इसलिए तो अमीरो और गरीबो के बीच दीवाल खडी है। इसी कारण तो अमीर लोग गरीबो पर निर्भर होते हुए भी उनके सुख–दुख की परवाह नहीं करते।

परिग्रह मे आदि से ही पाप है। इस पाप को मिटाने के लिए ही महापुरूषो ने परिग्रह के त्याग की कथा बनाई है। श्री कृष्ण मे ऐसी शक्ति थी कि वे गर्भ मे रहते हुए कस को मार सकते थे। फिर भी वे ग्वालो के साथ रहे ग्वालो के काम करते रहे ग्वालो के वस्त्र पहनते रहे। इसका उद्देश्य क्या था? सादगी का महत्त्व प्रकट करने के लिए ही उन्होने ऐसा किया। उन्होने समाज मे बड समझे जाने वालो का सम्पर्क गरीबो के साथ कर दिया। गरीब–अमीर के बीच की दीवाल सतोड दी और यह दिखा दिया कि सादगी मे ही धर्म है। इसीलिए कवियो ने उनके स्तोत्र बनाये है। एक कवि कहता हे–

मोर मुकुट सिर पर धरे, उर गुजन की माल।
वा छवि मेरे उर बसो, सदा बिहारी लाल ।।

कवि बिहारी लाल कहते हें– मेरे हृदय मे वही भेष बसा रहे जिसम सिर पर मोर–पख का मुकुट हे। गल मे चिर्मिया की माला हे ओर कमर म लगोटा हे।

कवि न वहा उस रूप की कामना की हे जिसके लिए धन की आवश्यकता ही होती। उसन धनिका क वेष की कामना नही की। श्रीकृष्ण ने धनिको आर गरीबा क बीच की दीवाल ताडन क लिए ही चरित रचा था।

श्रीमता आर गरीबा के बीच की दीवाल ताडन वाल महापुरुषा म भगवान ऋषभदेव सब स प्रथम हें। उन्हान उस समय क निरुद्यम लागा स कहा था कि कल्पवृक्ष की आशा छाडकर उद्यागी बनो। उन्हान स्वय कला आर विज्ञान द्वारा लागा का स्वावलम्बी बनना सिखलाया था। इसी स प्रजा स्पतन्त्र जीवन का लाभ लन वाली बन सकी। उन्हान अपन लम्ब जीवन का

एक बडा भाग पजा के नैतिक जीवन के सुधार करने मे लगाया। जब वे नैतिक जीवन के सुधार करने मे लगे जब वे नैतिक जीवन की शिक्षा दे चुके तो बाद मे उन्होने धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन का पाठ पढाया। नैतिक जीवन के अभाव मे धार्मिक जीवन व्यतीत नही किया जा सकता। इसी कारण भगवान ने धर्मिक जीवन की शिक्षा देने से पहले जीवन को नीतिमय बनाने की शिक्षा दी थी। आध्यात्मिक जीवन ऊचा अवश्य है पर उसका आधार तो नैतिक जीवन ही है।

धन्ना सेठ ने ढिढोरा पिटवा दिया था कि जिसके पास कपडा, भोजन पूजी या सवारी न हो, वह मुझ से ले ले। मेरे साथ जो चलना चाहे चल सकता है। परदेश मे जो खर्च होगा मेरा होगा और जो आमदनी होगी, कमाने वाले की होगी। ऐसा करने से गरीब–अमीर के बीच की दीवाल टूटी या मजबूत हुई?

इसलिए मानतुगाचार्य कहते हैं–प्रभो! आपकी कथा का रहस्य समझने वाले के भी पाप धुल जाते हैं। अगर आप अपने पाप धोने चाहते हैं तो आप भी गरीबो की सुध लीजिए। एक गरीब आपके पास भूख का मारा तडफडाता रहे और आप बादामपाक उडाते रहे दूसरा कडाके की सर्दी मे सिकुडता रहे और कापता रहे और आपकी पेटिया कपडो से भरी पडी रहे यह कितनी घोर निष्ठुरता है? ऐसी निष्ठुर व्यक्ति कभी दयाधर्म पा सकता है? नही।

आश्चर्य की बात तो यह है कि आजकल के कतिपय धर्मगुरु कहलाने वाले लोग भी यह शिक्षा देते हैं कि तुम तो मौज करो और दूसरे मरते है तो उन्हे मरने दो। उनका कथन है कि जो मोटर या बग्घी मे बैठा है वह पुण्यवान है और जो थका हुआ पडा है वह पापी है। पापी अपने कर्म खपाता है। उसे सहायता देकर कर्म खपाने मे बाधा क्यो पहुचाते हो? कैसी अनोखी शिक्षा है? ऐसे पाखण्डो को चलते भी देखोगे और डूबते भी देखोगे।

साथ चलते हैं। धन्ना सेठ ने कहा—अवश्य चलिए, आपके साथ चलने से बढकर बात और क्या होगी? मेरा अहोभाग्य है कि आप साथ चल रहे हैं।

जगल मे सेठ ने अपने सब साथियो की रक्षा की। सबको अपने खेमे मे रक्खा। सब की सार—समाल की। परन्तु मुनि गुफा मे बेठ थे इस कारण धन्ना सेठ उनकी समाल नहीं कर सके। इस कारण रात भर उन्ह मुनि की चिन्ता लगी। प्रात काल होते ही सेठ मुनि के पास पहुचे ओर आखो मे आसू भर कर उनसे क्षमाप्रार्थना करने लगे। मुनि ने कहा— हम तुम्हारी सहायता से बडे मजे मे आये हैं। तू चिन्ता क्यो करता है?

इस मुनि की सेवा के प्रभाव से धन्ना सेठ ने तीर्थंकर गोत्र की नींव डाल दी।

मित्रो! उनकी यह कथा पाप को हरण करेगी या नही? आप गरीबो की ओर ध्यान दो और ऐसा उपाय करो कि कोई भूखो न मरे। गरीबो मे आज जो अशक्तता है वह आप लोगो मे सादगी न होन कारण है। आप सादगी को अपनाए तो गरीबो की दुर्दशा बहुत कुछ दूर हो सकती है। ऐसा करने पर ही परमात्मा की भक्ति सार्थक होगी। प्रभु की कथा को यही आदेश है। प्राणीमात्र के सुख के लिए यत्नशील होना और स्वार्थ भावना का परित्याग देना ही परमात्मा की भक्ति करना हे। एसा करने वाले निष्पाप और निस्ताप बनते हैं।

बीकानर 13—8—30

(8)

नात्यम्दुत मवनमूषण। मूतनाथ।
भूतैर्गुणैर्भुवि मवन्तममीष्टवन्त ।
तुल्या भवन्ति मवतो ननु तेन कि वा,
मूत्याश्रित य इह नात्मसम करोति ।। 10 ।।

अर्थ– हे लोक के भूषण। हे प्राणियो के नाथ। आपके वास्तविक गुणो के द्वारा आपकी स्तुति करने वाले भक्त आपके ही समान हो जाते हैं, यह कोई अद्भुत बात नही है। आखिर उस स्वामी से लाभ ही क्या है जो अपने आश्रितजन को अपने समान वैभवमाला नही बना देता है।

दृष्ट्वा मवन्तमनिमेषविलोकनीय,
नायत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षु ।
पीत्वा पय शशिकरद्यु तिदुग्धसिन्धौ,
क्षार जल जलनिधेरसितुम् क इच्छेत् ।। 11।।

अर्थ– प्रमो। आप टकटकी लगाकर देखने योग्य हैं। आपको देख लेन के बाद भक्त के नेत्र किसी दूसरे को देखकर सतोष नहीं पाते। चन्द्रमा की किरणो के सामन धवल क्षीरसागर का जल पी लेने के पश्चात् साधारण समुद्र का जल कौन पीना चाहेगा?

अद्‌भुत बात नहीं है। ससार में भी देखा जाता है कि लक्ष्मीवान् की सेवा करने वाले को लक्ष्मीवान् अपना सा बना लेता है। फिर जो तेरा भजन करके तेरी शरण मे आए, वह अगर तेरे ही समान बन जाए तो इसमे आश्चर्य ही क्यो हैं?

समुद्र मे पडे हुए को जब कोई आधार न मिल रहा हो तब अचानक ही अगर नौका का आश्रय मिल जाय तो उसके आनन्द की पार नही रहता। वह नौका पाकर अत्यन्त प्रसन्न होता है। इसी प्रकार भवसागर मे पडे हुए प्राणियो के लिए परमात्मा परम आधार है और भक्तजन इस आधार को पाकर असीम और अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव करते हैं।

किसी सेठ की सेवा करने पर सेठ सेवक पर प्रसन्न होकर उसके दारिद्र्य दूर कर देता है। सेठ की सच्ची सेठाई इसी मे है कि वह अपने उपकारक या सहायक के उपकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट करे और उसे अपना–सा बना ले। जो सेठ अपने सेवक की सम्पूर्ण शक्तियो को अपने हित मे प्रयुक्त करता रहता है, उसके द्वारा धन–दौलत यश प्रतिष्ठा आदि प्राप्त करता है, किन्तु उस सेवा का बदला अपनी ओर से उचित रूप मे नहीं देता उसे कृतज्ञ या कर्त्तव्यनिष्ठ नही कहा जा सकता। सच्चा श्रीमान् ऐसा नही करेगा।

इसी प्रकार ग्रामवासी को देशस्वामी और चक्रवर्ती की सेवा से अधिक–अधिक लाभ होता है। चक्रवर्ती की सवा करने पर चक्रवर्ती राजा का भी पद दे देता हे ओर चक्रवर्ती भी अपने राज्य की उन्नति की आशा से इन्द्र की सेवा करता है। अर्थात् चक्रवर्ती भी इन्द्र की आशा रखता हे ओर हे प्रभो! इन्द्र भी तेरा दास है। ऐसी स्थिति मे अगर मुझे आप मिल गये तो फिर क्या प्राप्त करना शेष रह गया?

गरीब लोग सेठ की सेवा करते हें ओर सेठ ग्रामधनी की सेवा करता है। वह जानता हे। ग्रामधनी ग्राम का स्वामी हे। मेरा वेभव उसी क अनुग्रह पर निर्भर हे। वह चाहेगा तो रह सकूगा नही चाहेगा तो गाव छोडकर भागना पडेगा। ऐसा सोचकर सठ ग्रामधनी की सेवा करता है ओर ग्रामधनी देशधनी की सेवा करता ह। देशधनी चक्रवर्ती की आशा रखता हे ओर सोचता हे कि चक्रवर्ती की कृपा रहन पर ही में राजा रह सकता हू मगर चक्रवर्ती भी दव की आशा रखता हैं। वह समझता हे कि मरा अखड–एकछत्र राज्य दवीकृपा पर ही निर्भर ह। दवीकृपा स अनायास ही जा कार्य हा जाता हे वह दवीकृपा क अभाव मे वहुत कुछ प्रयत्न करन पर भी नही हा सकता। इस सकारण

चक्रवर्ती इन्द की आशा रखता है और चक्रवर्ती का आराध्य देवराज इन्द्र भी तेरी आराधना मे ही अपनी कृतार्थता समझता है और सब तो भौतिक लालसा से एक–दूसरे की सेवा करते हैं परन्तु इन्द को भगवान् से क्या लालसा पूरी करनी है? प्रभो। इन्द किस आशा से तेरी सेवा करता है?

इन्द भगवान् की सेवा करता है, इस बात पर विचार करने से विदित होता है कि इन्द बन जाने पर भी और इन्द्र की सेवा करने पर भी आत्मा सनाथ नही हो सकता। इन्द्र स्वर्ग का स्वामी है, देवगण का राजा है, लोकोत्तर शक्तियो का निधान है, अनुपम वैभव उसे प्राप्त है फिर भी सनाथ नही है। जब इन्द्र की आयु पूर्ण हो जाती है और वह अपने पद से च्युत होता है तो उसे आधार देने वाला कोई दूसरा नही है। इन्द्राणी अपने स्वामी की रक्षा नही कर सकती। सामानिक देव लोकपाल या आत्मरक्षक देव देखते रह जाते है मगर इन्द्र को गिरने से नही बचा सकते। उस समय इन्द्र भी अनाथ हो जाता है। जो अपने कृपाकटाक्ष से एक दिन दूसरे को निहाल कर देता था काल आने पर उसे कोई बचा नही सकता और न वह आप ही बच सकता है। इसी कारण इन्द्र भी कालविजेता परमात्मा की शरण मे जाता है। परमात्मा की शरण ग्रहण करने के पश्चात् काल का जोर नहीं चलता।

इस प्रकार एक विशाल विश्व मे एक पर दूसरे की सत्ता चल रही है। परन्तु एक सत्ता वह है जिस पर किसी की सत्ता नही चलती उस सत्ता का आश्रय समस्त दु खो का अन्त करने वाला है। वह स्वत मगलमई सत्ता अपने आश्रित को मगलमय बना लेती है। वह सत्ता क्या है?

अनन्त जिनेश्वर नित नमू, अद्‌भुत ज्योति अलेख ।
ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख।। अनन्त ।।

यहा भगवान अनन्तनाथ को नमस्कार किया गया है। भगवान् को चाहे अनन्तनाथ कहो चाहे आदिनाथ कहो बात एक ही है। भक्तामरस्त्रोत्र मे भी इसका स्पष्टीकरण कर दिया गया है–

त्वामव्यय यविभुमचिन्त्यमसख्यमाद्यम्
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनककेतुम् ।
योगीश्वर विदितयोगमनेकमेक
शा तस्वरूपममल प्रवदन्ति सन्त ।।

मे एक है। इन सब नामो में तेरी ही शक्ति व्याप्त है। परमात्मा के वाचक सभी शब्द तेरे ही गुणो पर प्रकाश डालते हैं।

वह परमात्मशक्ति बडी अद्‌भुत है। न आख उसे देख सकती है, न जिह्वा उसे कह सकती है। वहा किसी इन्द्रिय की पहुच नहीं हो पाती।

प्रश्न हो सकता है– जब वह शक्ति इतनी अगम अगोचर है तो हमे उसका पता किस प्रकार लग सकता है? हम उसे कैसे ध्यान मे लावें?

आज सयोगवश शरदपूर्णिमा है? ग्रन्थो मे आज की पूर्णिमा की बडी महिमा गाई गई है। ग्रन्थो के कथनानुसार आज वनस्पति मे रस आता है। आज आपके अन्त करण मे भी ऐसा रस उत्पन्न होना चाहिए, जिससे लोहा भी कचन बन जाता है। इस रसायन को बनाने के लिए मेरी बात पर ध्यान दो। अगर आपने ध्यान दिया तो रसायन अवश्य बनेगा।

जो शक्ति आखो से देखी नहीं जा सकती और जिसका वाणी द्वारा वर्णन नही हो सकता, उस पर विश्वास हुआ वह शक्ति आपके ध्यान मे आ गई तो आपके भीतर एक अभूतपूर्व और अद्‌भुत शक्ति पैदा होगी वही शक्ति तो रसायन हे। उसे देखकर कह नही सकते फिर भी उसकी सत्ता अखड और अबाधित है। दृश्य शक्ति मे अदृश्य शक्ति काम करती है। उस अदृश्य शक्ति को पहिचान लो तो बस रसायन बन गई लेकिन उस शक्ति की ओर आपका ध्यान नही जाता। आपकी आत्मा तो इन्द्रियो का खेल दखने म ही लगी रहती हे। उसे उस अदृश्य सत्ता को पहिचानने का अवकाश नही मिलता। फिर भी वह ज्ञान म आवे केसे? अदृश्य शक्ति को जानने के लिए एक उदाहरण लीजिए।

एक सेठ कलकत्ता मे हे ओर सेठानी घर पर हे। सेठ कलकत्ता म धन कमाता हे ओर सेठानी बीकानेर मे, अपनी हवेली मे बेठी रहती हे। फिर भी सेठ की कमाई म सठानी की शक्ति कुछ काम करती हे या नही?

'करती हे।

सेठानी की कमाई के लिए कोई शक्ति काम करती हो यह नही देखा जाता और न सेठानी की शक्ति दखी हे फिर केसे मान लिया कि सेठानी की शक्ति कलकत्त मे भी अदृश्य रूप म काम करती है?

आप यहा बेठ हैं। आपका मालूम नही कि मर घर खान को क्या बना है। लेकिन आप भाजन करन बेठ ओर मव की खिचडी आपक सामन आई जा आपका प्रिय लगी। अब आप विचार कीजिए कि आपकी शक्ति न मव की खिचडी बनान म कुछ भाग लिया है या नही?

'लिया है।

इष्ट गध, इष्ट रस और इष्ट स्पर्श आदि विषय पुण्य के प्रभाव से प्राप्त होते हैं। यह पुण्य क्या है? आपका पुण्य आपकी शक्ति है, जिसके द्वारा नाना देशो मे आपके लिए नाना प्रकार के उपभोग के योग्य पदार्थ तैयार होते हैं। जिस पदार्थ मे आपकी शक्ति ने काम नहीं किया होगा वह आपको मिल ही नही सकता। मगर देखना तो यह चाहिए कि वह किस प्रकार अपना काम करती है। इन उदाहरणो के आधार से अदृश्य शक्ति को पहचानने का प्रयत्न करो और कहो–

अनन्त जिनेश्वर नित नमू, अद्‌भुत ज्योति अलेख ।
ना कहिये ना देखिए, जा के रूप न रेख ।।

मैं अनन्तनाथ या आदिनाथ भगवान् की जिस शक्ति के विषय मे कह रहा हू, यह अनन्त है। आपकी शक्ति का अन्त है, मगर उस शक्ति का अन्त नही है। वह काल से अनन्त है और परिणाम से भी अनन्त है। ऐसी शक्ति कितनी अद्‌भुत होगी, जरा इस बात पर विचार कीजिए। अपने मन को उस शक्ति की ओर खीच ले जाइए।

उस शक्ति की ओर मन की गति किस प्रकार हो सकती है? इस प्रश्न का उत्तर शब्दो द्वारा देना कठिन नही है, यद्यपि उन शब्दो के अनुसार साधना करने मे कठिनाई हो सकती है। पर वह कठिनाई प्रारभ मे ही मालूम होगी आगे नही। आलस्य से काम न होगा। वह शक्ति तुम्हारे उद्योग और तुम्हारी निष्ठा मे है। शुद्ध निष्ठा रखकर उद्योग मे लगने से ही उस शक्ति के दर्शन हो सकते है।

भारत मे अग्रेजी राज्य के सस्थापक लार्ड क्लाइव के सम्बन्ध मे एक बात सुनी थी। उसने एक बार ढाका के नवाब से मिलने की इच्छा प्रकट की। नवाब ने मिलने का समय दिया और साथ ही कहला भेजा कि तुम्हें नीचे खडा रहना पडेगा। क्लाइव ने उत्तर दिया– मुझे जहा खडा करोगे वही खडा रह जाऊगा।

नवाब ने क्लाइव से मिलने की तैयारी की। उसने अपने गुलामों को उम्दी पोशाक पहनाकर कतार मे खडा किया। गुलाम नियमानुसार हाथ जोडकर और सिर नीचा करके खडे हो गये। क्लाइव को नीचे स्थान पर बैठाया गया और नवाब साहब रौब के साथ तख्त पर विराजमान हुए।

क्लाइव– गुलाम हैं ही नही।

नवाब– तुम्हारा बादशाह इतना बडा है और गुलाम हैं ही नही?

क्लाइव ने अपना विचार पलट कर कहा– नही, हैं तो सही।

नवाब– कितने हैं?

क्लाइव– उनकी कोई निश्चित सख्या नही है।

नवाब– परस्पर विरोधी बाते कैसे कह रहे हो?

क्लाइव– समझ मे फर्क है, बाते विरोधी नही हैं।

नवाब– समझ मे फर्क कैसा?

क्लाइव– हमारे बादशाह के यहा गुलाम तो हैं, पर जिस्म के नही दिल के गुलाम हैं।

नवाब को कुछ नवीनता मालूम हुई। उसने पूछा– क्या मतलब है? दिल के गुलाम कैसे होते हैं।

क्लाइव– जिस्म का गुलाम गुलामी के बदले मे धन चाहता है और वह तभी तक गुलाम रहता है जब तक उसे रकाबियो में अच्छा खाना मिलता रहता है। लेकिन दिल का गुलाम ऐसा है कि गुलामी छोड देने के लिए उसके टुकडे–टुकडे कर दिये जाए तो भी वह अपने मालिक से नही बदलता। उन्हीं गुलामो मे से एक मैं भी हू।

दीनदयाल दीनबन्धु के ।
खानाजाद कहास्या राज ।।
तन धन प्राण समर्पी प्रभु ने
इन पर बेगि रिझास्या राज ।।
आज म्हारा सभव जिनजी रा।
हित चित से गुण गास्या।। राज ।।

परम प्रभु के ऐसे गुलाम वनो तो ससार तुच्छ जान पडगा और प्राण जाने पर भी स्वामी से विमुख न होओगे। हृदय म परमात्मा का वास हाते ही रस का ऐसा प्रवाह बहने लगगा मानो शरदपूर्णिमा क चन्द्र का रस आपक ही हृदय मे आ गया है। मगर विश्वास का होना अत्यन्त आवश्यक हे।

महाभारत के अनुसार अर्जुन ओर दुर्योधन श्रीकृष्ण का अपनी–अपनी ओर से युद्ध मे सम्मिलित होने का निमत्रण दने गये थे। कृष्ण उस समय सो रहे थ। उन्ह जगान का ता किसी म साहस नही था अतएव दाना उनके जागन की प्रतीक्षा करने लगे। अर्जुन म कृष्ण के प्रति सवक भाव था अतएव उसन उनक चरणा की आर खडा रहना उचित समझा। वह चरणा की आर

ही खडा हो गया। दुर्योधन मे अहकार था। वह सोचता था– मैं राजा होकर पैरो की ओर कैसे खडा रह सकता हू? इस अभिमान के कारण वह कृष्ण के सिर की ओर खडा हुआ। कृष्ण जागे। कोई भी मनुष्य जब सो कर उठता है तो स्वाभाविक रूप से पैरो की ओर वाले मनुष्य के समीप और सिर की ओर वाले मनुष्य से दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त पहले उसी पर दृष्टि पडती है जो पैरो की ओर खडा होता है। इस नियम के अनुसार अर्जुन कृष्ण के नजदीक हो गये और अर्जुन पर ही उनकी दृष्टि पहले पडी। दुर्योधन पश्चात्ताप करने लगा कि सिर की तरफ क्यो खडा हो गया। हाय! मे पैरो की तरफ क्यो नही खडा हुआ? अर्जुन, कृष्ण से पहले मिल रहा है। कहीं ऐसा न हो कि वे उसका साथ देना स्वीकार कर ले। मैंने इतनी दौड–धूप की। कही ऐसा न हो कि मेरा आना वृथा हो जाय।

इस प्रकार सोचकर दुर्योधन ने किसी सकेत द्वारा कृष्ण पर अपना आना पकट कर दिया।

अर्जुन के प्रणाम करने पर श्रीकृष्ण ने आने का कारण पूछा। अर्जुन ने कहा–कौरवो के साथ युद्ध होना निश्चित हो चुका है। अतएव मैं आपको युद्ध का निमन्त्रण देने आया हू।

श्रीकृष्ण– मुझे जो आमत्रित करे मैं उसी के यहा जाने को तैयार हू। लेकिन दुर्योधन भी आया है। उसे निराश करना उचित नही होगा। इसलिए एक ओर मै हू और दूसरी ओर मेरी सेना है। दोनो मे से जिसे चाहो, पसद कर लो।

अर्जुन को श्रीकृष्ण पर विश्वास था। उसने कहा– मैं आपको ही चाहता हू।

अर्जुन की माग सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ वह मन मे सोचने लगा– मेरा भाग्य अच्छा है इसी कारण तो अर्जुन ने सेना नहीं मागी। युद्ध मे तो आखिर सेना ही काम आएगी। अकेले कृष्ण क्या करेगे?

क्या लाभ? मागी हुई चीज को फिर मागना क्षत्रियो का काम नही है, अतएव आप अपनी सेना मुझे दे दीजिए।

कृष्ण बडे चतुर थे। दुर्योधन की समझ पर मन ही मन वह हसे और सोचने लगे– दुर्योधन को मुझ पर विश्वास नही है, मेरी सेना पर विश्वास है। आखिर उनहोने कहा – अर्जुन, मैं तुम्हारा हू और दुर्योधन। सेना तुम्हारी है।

अर्जुन को कृष्ण पर और दुर्योधन को सेना पर विश्वास था। फल क्या हुआ? गीता मे अन्त मे कहा है–

यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर ।

सजय धृतराष्ट्र से कहते हैं– आप युद्ध के विषय मे क्या पूछते हैं? यह निश्चित समझिए कि जिस ओर योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन हैं विजय उसी पक्ष की होगी, विरोधी पक्ष को विजय मिलना असभव है।

गीता की आलकारिक भाषा मे उलझा रहने वाला यह समझेगा कि गीता लडाई के लिए उत्साहित करने वाली पुस्तक है। लेकिन अलकारो के आवरण को दूर करके उसके तथ्यो को समझने वाला ही उसके मर्म को समझ सकता हे। गीता अगर सिर्फ महाभारत युद्ध के लिए ही थी तो अब किस काम की? और लडाई कराने वाली पुस्तक को हाथ मे लेने की आवश्यकता ही क्या हे? मगर बात ऐसी नही है। सम्यग्दृष्टि के साथ उसे समझने का प्रयत्न करने पर उसमे कई खूबिया मिलती हैं।

शास्त्र वह है जिसके सुनने पर आत्मा मे नवीन ज्योति जागृत हाती हे। जिसके सुन लेने पर भी नवीन ज्योति नही जागती उसे सुनो भल ही पर ज्योति जागने पर कुछ निराली ही बात होती हे।

गाधीजी ने गीता की अन्तिम टिप्पणी मे लिखा हे– योगेश्वर कृष्ण का अर्थ है अनुभव सिद्ध शुद्ध ज्ञान ओर अर्जुन का आशय है– उस शुद्ध ज्ञान के अनुसार की जाने वाली क्रिया। थोथा ज्ञान काम का नही। थोथी क्रिया भी निकम्मी है। अनुभव सिद्ध शुद्ध ज्ञान से युक्त शुद्ध क्रिया ही सफलदायिनी होती हे। जहा दाना का समन्वय हे वहा सिद्धि हाथ बाध खडी रहती हे।

श्रीकृष्ण ने कहा था– हम शस्त्र नही उठाएगे कवल ज्ञान दग। इसका अर्थ यही है कि ज्ञान प्राप्त करके क्रिया करने से ही सिद्धि प्राप्त हाती हे।

हत ज्ञान क्रियाहीन हता चा ज्ञानिना क्रिया।

क्रिया स शून्य ज्ञान ओर ज्ञान से शून्य क्रिया दाना बकार हे। साराश यह ह कि उस अदृश्य शक्ति पर विश्वास रखकर निष्काम भाव स ज्ञानयुक्त क्रिया कराग ता बडा पार हुए विना नही रहगा।

(ख)

आचार्य मानतुग कहते है– हे भुवनभूषण! मुझे इस बात का आश्चर्य नही जान पडता कि आपका स्तुति करने वाला आप जैसा बन जाता है। ऐसा होना तो स्वाभाविक है। या तो अनहोनी बात हो जाने पर आश्चर्य होता है या जिससे जो काम होना असभव न प्रतीत होता हो, फिर भी वह उसे कर डाले। विनीत पुत्र पिता की और पतिव्रता स्त्री पति की सेवा करे तो आश्चर्य नहीं आश्चर्य तो तब है जब अविनीत पुत्र पिता की और कुलटा स्त्री पति की सेवा करे। इस कथन के अनुसार परमात्मा के गुणो का स्तवन करने से स्तवन करने वाला अगर स्वय परमात्मा बन जाता है तो आश्चर्य ही क्या है।

प्रश्न किया जा सकता है– परमात्मा अनादि और अनन्त है। ऐसी स्थिति मे परमात्मा के गुणो का स्तवन करने वाला परमात्मा किस प्रकार बन सकता है? क्या आत्मा मे ऐसे गुण हैं कि वह परमात्मा के साथ एकाग्रता साध कर परमात्मा बन जाए? आत्मा और परमात्मा जब अलग–अलग हैं तो आत्मा का परमात्मा बन जाना अचरज की बात क्यो नही है?

जब तक वस्तु का ठीक–ठीक स्वभाव मालूम नहीं होता तब तक भ्रम बना ही रहता है। परन्तु गम्भीर विचार करके वस्तुस्वरूप समझ लेने पर भ्रम हट जाता है। आत्मा और परमात्मा के विषय मे पहली बात यह समझ लेना आवश्यक है कि वास्तव मे दोनो मे कोई मौलिक अन्तर नही है। मैं अनेक बार कह चुका हू कि आत्मा जब तक आवरणो से लिपटा है, जब तक उसकी अनन्त शक्तिया कुण्ठित हैं तब तक वह आत्मा हे। आत्मा की सम्पूर्ण मलीनता हट जाती है आत्मा अपनी शुद्ध दशा में आ जाता है, तब उसमे परम विशेषण लगा दिया जाता है। अर्थात् परम–आत्मा–परमात्मा कहलाने लगता है। परमात्मा को अनादि मानना भ्रमपूर्ण है। अगर आत्मा लाख प्रयत्न करने पर भी परमात्मा नही बन सकता तो उसका पुरुषार्थ व्यर्थ ही सिद्ध होता है। अतएव यह निश्चित है कि आत्मा परमात्मा के प्रति जब एकाग्र बन जाता है तो स्वय परमात्मा का रूप धारण कर लेता है।

आप भोजन करते है। भोज्य पदार्थो मे किसी का नाम रोटी है, किसी का नाम भात है किसी का ओर कुछ। इनसे भोज्य वस्तुओ को जब आप ग्रहण करते है तो वह शरीर का रूप धारण कर लेती है। पहले जो [illegible] रूप मे थी वही अब शरीर के रूप मे परिणत हो जाती हैं। शरीर

मे जो उनके नाना रूप बनते हैं जैसे रक्त, मज्जा हडडी आदि। यह सब धातुए अन्न से ही बनी हैं। अन्न मे वह जो विलक्षण परिवर्तन हुआ है सो आपकी चेतन्यशक्ति के प्रताप से हुआ है। मुर्दे के पेट मे रोटी ठूस दी जाय तो वह सड–गल जायगी। उससे रस रक्त आदि नही बनेगा। चैतन्यशक्ति के सयोग से अन्न के द्वारा रक्त आदि धातुओ के निर्माण का कार्य प्रतिदिन यहा तक कि प्रतिक्षण होता रहता है। अपनी चेतना मे ऐसी अद्भुत शक्ति है मगर हम लोग इसका विचार ही नही करते कि चेतन आत्मा मे कैसी–कैसी शक्तिया भरी हैं। रोटी से रक्त बनता है, इस बात को छोड कर अब आगे की बात पर विचार कीजिए। यह देखिए कि उस रोटी से आत्मा मे कोन–कौन सी शक्तिया निखरती हैं। दूध का आहार नही किया गया हो और वह पात्र मे पडा हो तो जगत् के किसी भी वैज्ञानिक मे यह शक्ति है कि वह उसे आख के रूप मे परिणत कर सके? जिन आखो से आप देखते हैं उन्हे बनाने की किसी मे ताकत है? लेकिन आपका चिदानन्द नित्य ही बनाता रहता हे।

जब आप चेतन्य शक्ति के द्वारा जड से भी सब काम करा सकते हें जड भी आपकी चैतन्य शक्ति से मिल जाता है ओर उस जड को भी आपके चेतन्य से शक्ति मिलती हे। तो फिर क्या आश्चर्य है कि आत्मा परमात्मा से लगकर परमात्मा बन जाता हे? जब उरा अन्न को आपकी शक्ति प्रदान करता है तो आत्मा को परमात्मा शक्ति क्यो नही देगा?

मित्रा! ससार की समस्त शक्तियो से आपकी चैतन्य भाक्ति बढकर हे और अलौकिक हे। जड शक्तियो को एक–चित्त करके अगर आप चेतन्य शक्ति से तोलेगे तो पता चलेगा कि अन्य शक्तिया चेतन्य शक्ति क रामन कुछ भी नही हैं– नगण्य हें।

डाक्टर नकली आख बनाते हें लेकिन उसे दिखाई नही दता। परन्तु जिन आखा से आप दख सकते हैं जिनकी उत्पति स्वाभाविक रूप रा अन्न स या माता–पिता क रक्त स हुई हे जा आख आपकी आन्तरिक शक्ति स बनी हैं उन सरीखी आखे काई बना सकता हे?

'नही।

चीटी ओर रल म स किसकी शक्ति अधिक हे ?

'रल की।

क्या आप समझत हें कि रल सवारी का काम दती हे और हजारा मन बाझ खीचती ह लकिन चीटी ता बचारी चीटी ही रही। लकिन यह उत्तर

देते समय आपने अपनी बुद्धि का ठीक उपयोग नही किया। ...
शक्ति चीटी मे है वह रेल मे कदापि नही हो सकती। रेल ...
से घूमती है चलाने से चलती है। उसे चलाने के लिए पटरी ...
की आवश्यकता होती है और इजीनियर उसे बनाता है। चीटी ...
की सहायता के स्वय ही दीवाल पर चढ जाती है ओर उतर जाती है। ...
रेल इस पकार चढ–उत्तर सकती है?

'नही।

तो फिर विचार करना चाहिए कि चीटी और रेल म स्वतन्त्र शक्ति सम्पन्न कौन है? आप परतत्रता के सस्कारो मे पडकर स्वतन्त्रता को भूल गये है। मगर आप विचार करेगे तो चीटी के सामने रेल तुच्छ दिखाई देगी। चीटी क्या–क्या करती है किस–किस प्रकार से कैसी–कैसी बातो का पता लगाती है और किस प्रकार सगठित होकर कार्य सम्पादित करती हे इत्यादि बातो पर विचार करेगे तो चीटी के सामने मनुष्य को भी लज्जित हो जाना पडेगा।

कहने का आशय यह है कि जब दूध का खून आदि बन जाता है ता यह सिद्ध है कि आत्मा मे शक्ति है। प्रश्न यही है कि उस शक्ति का उपयोग कहा किया जाय? इस सम्बन्ध मे विद्वानो और शास्त्रकारो का मत है कि जड पदार्थो के प्रति जो अहकार हे उसे हटा लिया जाय और आत्मा की समस्त शक्ति उसे ऊर्ध्वगामी बनाने मे ही लगाई जाय। ऐसा करने से आत्मा की शक्ति बढेगी और वह परमात्मा बन जायेगा।

कल एक सज्जन श्री रामनरेश त्रिपाठी के सामने मैंने टाल्सटाय का जिक्र किया। तब उन्होने उसके जीवन की एक बात मुझे सुनाई। उसके पतित जीवन का उत्थान किस प्रकार हुआ यह दिखलाने के लिए ही मैं उस घटना का उल्लेख कर रहा हू। टाल्सटाय का पतन इतना अधिक हो चुका था कि उसके कुकृत्यो की पराकाष्ठा हो चुकी थी। शायद ही कोई कुकर्म शेष रहा होगा जिसका टाल्सटाय ने सेवन न किया हो। ऐसी पतित आत्मा एक वेश्या की घटना से जागृत हो उठी।

यौवन धनसम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र यचतुष्टयम्?

जवानी, धन अधिकार और अविवेक मे से कोई एक भी अनर्थ का कारण हो जाता है। जहा चारो मिल जाए वहा तो कहना ही क्या? चण्डाल चौकडी सभी अनर्थो का कारण बन जाती है। प्रथम तो युवावस्था को ही शान्तिपूर्वक बिताना कठिन है। फिर ऊपर से धन–सम्पत्ति और अधिकार मिल जाय तो उसकी अनर्थकारी शक्ति वैसे ही बढ जाती है जैसे तीन इकाइया मिल जाने पर एक सौ ग्यारह हो जाते हैं। इन तीनो के होने पर भी अगर विवेक हुआ तो वह इन्हे ठीक रास्ते पर लगा देता है। अगर अविवेक हुआ तो मत पूछिये बात! फिर तो अनर्थ की सीमा नहीं रहती।

टाल्सटाय को तीनो शक्तिया प्राप्त थी और ऊपर से अविवेक था। इस कारण उसने कुवारी कन्या को भ्रष्ट कर दिया। कन्या गर्भवती हो गई। घर वालो ने सगर्भा समझ कर उसे घर से निकाल दिया। कुछ दिन तक तो वह इधर–उधर भटकती रही मगर दूसरा मार्ग न मिलने से उसने वेश्यावृत्ति अगीकार कर ली। कहा है–

विवेकभ्रष्टाना भवति विनिपात शतमुख ।

जो एक बार विवेक से भ्रष्ट हो जाता है उसका पतन होता ही चला जाता है। कोई भी स्त्री जब पतित होती है और उसकी पवित्रता मलीनता के रूप मे परिणम हो जाती हे तो फिर उसके पतन का ठिकाना नही रहता। वेश्या के सम्बन्ध मे भी यही बात हे। वेश्या किन–किन नीच कार्यो म प्रवृत्ति नही करती यह कहना कठिन है। इस वेश्या ने भी किसी धनिक को अपने चगुल मे फास लिया ओर धन के लोभ मे पडकर उसे मार डाला। पुलिस ने पता लगा लिया ओर वेश्या अदालत मे पेश की गई। सयागवश उस अदालत का न्यायाधीश वही टाल्सटाय था जिसने उस भ्रष्ट किया था जिसकी बदौलत उसे वेश्यावृत्ति स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पडा था। वश्या ने तो उसे नही पहचाना मगर वह वेश्या को पहचान गया। टाल्सटाय ने उरा वश्या का धेर्य बधाकर हत्या के विषय म पूछा। वेश्या न हत्या करने का अपराध स्वीकार करत हुए कहा– 'मुझ एक पापी न धन का लाभ दकर भ्रष्ट किया। उस समय मे अबोध थी ओर उस पाप क परिणाम का नही समझ सकी थी। इसी कारण में उसक चगुल म आ गई। में गर्भवती हुई। घर सा निकाली गई। निरुपाय होकर मेंन वश्यावृत्ति स्वीकार कर ली। एक दूसरी वश्या की दाता म आकर धन क लिए मेंन इस धनिक की हत्या की।

खुल चुकी थी। वह उस वेश्या की बाते सुनकर पश्चात्ताप करते और उसकी अधिकाधिक सहायता करते थे। वह सोचते—मेरा ही पाप उसके पास पहुचकर ऐसा कहला रहा है। वह मुझे अपशब्द नही कहती वरन् मगल उपदेश दे रही हे। धीरे—धीरे टाल्सटाय के जीवन मे आमूल परिवर्तन हो गया।

सन्देह किया जा सकता है कि कहीं गालियो से या वेश्या से भी उपदेश मिल सकता है? इसका उत्तर यही है कि हम सब मे और वेश्या मे मूल तत्त्व तो एक ही है। मगर उसे समझने के लिए गहराई मे घुसना पडता हे। इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा मे भी मूल तत्त्व समान है। उसे खोज लेने उस तक पहुचने और प्राप्त करने के लिए जिस उपाय की आवश्यकता हे वह आचार्य मानतुग ने प्रकट कर दिया है।

मित्रो! आप लोग दूसरो की बुराई देखना छोडकर अपनी बुराइया देखो। यह देखो कि आपने दूसरो को पतित ही किया है या किसी का उत्थान भी किया हे? इस बात पर विचार करने से आपका उत्थान होगा। ईश्वर दूर नही है। जिनको तुमने पतित किया है उनके अन्त करण से निकलने वाली ध्वनि अपने कानो से सुनो और सोचो कि वह तुम्हारे विषय मे क्या कहते हैं?

टाल्सटाय ने वेश्या को भ्रष्ट किया था। अगर आपके जीवन मे ऐसा कोई काला धब्बा नही हे तो आप भाग्यशाली हैं। लेकिन दूसरे पदार्थो को तो आप भ्रष्ट करते ही हें। यह कपडे जब तक आपने नही पहने थे पवित्र मानते जात थे मगर आपने पहन लेने पर यह निर्माल्य हो गये। इस प्रकार आप स्वादिष्ट ओर सुगधित भोजन पेट मे डालते हैं। मगर पेट म पहुचकर उसकी क्या स्थिति हो जाती हे? क्या आप पवित्र वस्तु को अपवित्र करने क लिए ही पेदा हुए हें? मित्रा! दूसरे के कल्याण म अपना कल्याण मानन स आत्मा क उद्धार होने म देर नही लगती। इसलिए शास्त्र म कहा गया हे—

परोपकाराय सता विभूतय ।

अर्थात— सत्पुरुषो की विभूतिया परापकार क लिए हाती हें।

टाल्सटाय न धीर—धीर ही सही पर अपनी सम्पत्ति किस प्रकार परापकार म लगाई यह दखन याग्य हे।

आप सदा माल खात हें। आपक खान क समय एक दिन काई भूखा आ गया आर आपन उस थाडा—सा द दिया ता बुरा नही हे पर एसा करन म आपकी काइ विशषता भी नही हे। विशषता ता तब हे जब आप इस बात

पर विचार करे कि– 'यह भूखा क्यो मर रहा है? एक जून का भोजन तो दे दिया है पर इससे क्या इस की दरिद्रता जीवन भर की दूर हो जायगी? इसका यह दुख किस प्रकार दूर हो सकता है? अगर आप इस प्रकार विचार करेगे और आपके हृदय मे थोडी–बहुत भी दयाभावना होगी तो आपका खाना–पीना छूट जायेगा और उसका दुख दूर करने की चिन्ता लग जायगी। इसी प्रकार विचार कर बडी–बडी ऋद्धि वाले अपनी ऋद्धि छोड देते है। धन्नाजी बत्तीस कोटि दीनारो का त्याग करके मुनि बने थे। मुनि होने के बाद वे ऐसा भोजन करते थे जैसा गरीब से गरीब भी करना पसद नही कर सकता। आज वह बाते आपको अद्भुत मालूम होती है और आपकी कल्पना मे भी नही आती लेकिन जब कथाओं पर विचार करो कि वे क्या सन्देश देती है? उनमे से क्या परिणाम निकलता है? बत्तीस कोटि दीनारो के त्यागी का भोजन कैसा रहा होगा? और अब वही दो दिन के बाद तीसरे दिन भोजन करते है और वह भी रूखा–सूखा, नीरस बचा खुचा, जिसे भिखारी भी खाना पसद न करे। यह बात आज कल्पना मे भी आती है? थोडी देर के लिए इसे कल्पना ही मान लो फिर भी टाल्सटाय आदि के सिद्धातो पर दृष्टि डालते हुए विचार किया जाय तो मालूम होगा कि यह कल्पना भी कितनी सहृदयतापूर्ण सत्य शिव सुन्दर और बुद्धिमत्ता से परिपूर्ण है। लेकिन एक बात आप ध्यान मे रखिए। कल्पना किसी सर्वथा असत् पदार्थ की नहीं की जाती। जो वस्तु किसी अश मे विद्यमान होती है जिसका किसी रूप मे सिलसिला चालू होता है उसी की कल्पना की जाती है। कल्पना के लिए कोई आधार तो होना ही चाहिए।

निराधार कल्पना सभव नही है। धन्ना (धन्यकुमार) मुनि के इस चरित से प्रकट होता है कि उस समय अनेक महात्माओ ने आश्चर्यजनक सादगी धारण की थी।

राम ने जनक के घर और अपने घर कैसे–कैसे बढिया भोजन किये थे? परन्तु वनवास के समय वे अपने साथ कुछ नही ले गये थे? नही।

राणा प्रताप अठारह वर्ष तक अपनी रानी और अपने बाल–बच्चो के साथ वनो मे भटकते रहे। जगली अन्न और फलो से गुजारा करते रहे। उस रूखे–सूखे भोजन के समय भी जब शत्रु आ पहुचते तो भोजन त्याग कर उनका सामना करते रहे। आज के लोग भोगो के कीडे बन रहे हैं, इसी से इन्हे यह घटनाए कल्पित मालूम पडती हैं।

रामचन्द्र को के वन कटुक फल क्यो अच्छे लगे थे? क्या कारण था कि भरत और कैकेयी के अयोध्या लौटने के आग्रह को ठुकराकर उन्होने वनवास के कष्टो को स्वेच्छापूर्वक अगीकार किया? राम समग्र भारत के समक्ष एक आदर्श उपस्थित करना चाहते थे। इसलिए उन्होने हसते–हसते सकटो का सामना किया। आज आप लोग चाहे जितनी कायरता दिखलाए, मगर इस भारतभूमि पर उन महात्माओ के चरण पड चुके हैं। अतएव भारत म कब कौन–सी शक्ति आ जाएगी यह नही कहा जा सकता।

जेसे टाल्सटाय ने विचार किया था कि इस बाई को बिगाडने वाला कोन उसी प्रकार राम भी विचारते थे कि मेरी माता के पवित्र हृदय को बिगाडने वाला कौन है?

मैं आपसे प्रश्न करता हू कि हिन्दुस्तान को बिगाडने वाला कौन है? अगर आप परावलम्वी जीवन का त्याग कर दे, स्वातन्त्र्यजीवी बने फिजूल के खाने–पीने ओर पहनने के चक्कर मे न पडे तथा अपने कर्त्तव्य का विचार कर पालन करे तो देश मे पाप आ सकता हे?

'नही।

कोन इस बात को अस्वीकार कर सकता हे कि हमारे कर्त्तव्य के न पालने से ही देश मे पाप आ घुसा हे?

राम ने विचार किया कि माता केकेयी के मन मे यह भेदभाव क्या आया कि राम हमारा बेटा नही हे भरत हमारा बेटा है राम को राज्य मिलेगा तो कोशल्या प्रसन्न होगी और भरत का राज्य मिलेगा ता मे प्रसन्न हाऊगी?

आप ककयी को बुरी कह दने म दर नही लगात मगर राम न उसे बुरी क्या नही कहा अगर यह समझ ल तो आप का दु ख मिट जाय। जिस दिन ससार राम क इस कार्य का मर्म समझ लगा उस दिन ससार स्वर्ग बन जायगा। राम अगर राम सरीख न हाकर जेसा आप सोचते हें वेस हा तो उनक राज्य का छीनन की किसी म शक्ति नही थी। केकयी का छोडकर सभी उनक पक्ष म थे। राम कह सकत थे– 'तुम स्त्री हा। घर का काम सभाला। राज्य हमारा हे ओर हमारा ही रहगा। पर उन्होन एसा नही कहा।

राम अगर भरत के लिए अपने अधिकार का राज्य न छोडते और अयोध्या मे ही मौज उडाते रहते तो आज उसका नाम कौन लेता? मगर उन्होने कैकयी के हृदय को पहचाना और उसमे पैदा होने वाली दुई को भी समझ लिया। वह कहने लगे– जिस घर मे मैं पैदा हुआ हू, उस घर मे माता के हृदय मे इस प्रकार के विचार उत्पन्न होना मेरा दुर्भाग्य है। माता की यह दुर्भावना मेरी तपस्या से ही दूर होगी। यहा के राज्य का कार्य तो भरत सभाल ही लेगा मगर ससार की शुद्धि का काम मुझे ही करना होगा। अगर मैंने सादगी धारण न की गरीबो के योग्य वस्त्र न पहने और गरीबो जैसा भोजन न किया तथा राजमहल को न त्यागा तो मेरे द्वारा गरीबो का कल्याण न होगा।

इन महान् आदर्शो पर ही टालस्टाय आदि के विचार बने हैं। लेकिन हमारा देश कितनी पतन–अवस्था मे पहुच गया है कि इन कथाओ को ही हम असभव मानते है।

राम को अगर रावण की पराजय ही करना अभीष्ट होता तो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वन मे जाने की क्या अवश्यकता थी? अयोध्या मे रहते हुए ही उसे परास्त करने की तैयारी वे कर सकते थे। अयोध्या मे सेना सजाकर रावण पर चढाई कर सकते थे और उसे जीत सकते थे। फिर ऐसा न करके वन मे जाकर नगे पैर घूमने, वनफल खाने, सर्दी–गर्मी और वर्षा का कष्ट सहने महल छोडकर झाडो के नीचे सोने और कुटिया मे रहने की क्या आवश्यकता थी? क्या राम को जो राजकुमार थे और राज्य के उत्तराधिकारी थे ऐसा करना शोभा देता है? पर इसका रहस्य तो वही समझ सकता है जिसने शुद्ध चित्त से मनन किया हो। दुखी जीवन मे किस प्रकार उत्थान भरा है यह देखने के लिए राम का जीवन स्वच्छ दर्पण है। वे लोगों को त्याग की महिमा दिखलाना चाहते थे और अपनी जीवनी से ही बतलाना चाहते थे कि जो काम शस्त्रो से भी समव नही है वह त्याग के प्रभाव से सहज ही हो सकता है। राम ने बडी खूबी के साथ यह दिखला दिया है।

राम की महिमा रावण को मारने से नही, त्याग के कारण है। वन-भ्रमण के कष्टो से उनका शरीर तो अवश्य दुबला हुआ होगा पर आत्मा तो उनका बलवान् ही हुआ। आत्मा को बलवान् बनाने की यह सीधी दिनचर्या दिखाने से ही राम सब के हृदयेश्वर हुए हैं। अगर राम ने शस्त्रो से ही काम लिया होता तो वे चाहे बडे–राजा हो जाते पर आज जैसे सब के स्मरणीय बने हुए हैं वैसे न हो सके होते।

भगवान महावीर की तरफ ख्याल करो। उन्होने तप का कष्ट क्यो सहन किया? उन्हे कर्म ही खपाने थे तो कर्म खपाने के लिए शुक्लध्यान आदि साधनो को वे भलीभाति जानते थे। मगर भगवान् ने व्यवस्थित रूप से धर्मशासन चालू रह सके उस उद्देश्य से सघ की स्थापना की और सघ का उद्धार करने के लिए, जनता को सिखाने के लिए तप किया। इसी हेतु भगवान् ने पाच मास और पच्चीस दिन के महान् उपवास के पारणे मे उडद के छिलके खाये। ऐसा करके उन्होने तप त्याग और सादगी को आदर्श स्थापित किया। ऐसी स्थिति मे आप लोग सादगी न धारण करके मौज–शौक मे रहते हुए ही धर्म माने तो कहना होगा कि अभी आप दया–धर्म से दूर हैं।

जो भावनाशील व्यक्ति ससार के दु खो को अपना ही दु ख मानता है, उसे अपना व्यक्तिगत दु ख जान ही नही पडता। रोग होने पर आप दुर्गधयुक्त और कडवी दवाई गले से नीचे उतार जाते हैं। आप जानते हैं कि हमारे पेट मे रोग है और यह दवा हमे शाति पहुचायेगी। इसी विचार से आप दवा पी जाते हैं और वैद्य को पुरस्कार देते हैं। ऐसी ही बात महापुरूषो के कष्ट सहन मे भी है। अन्तर है तो यही कि आप सिर्फ अपने ही दु ख को दु ख समझते हैं और महापुरुष ससार के दु ख को अपना दु ख मानते हैं। राम को अपनी माता का हृदय शुद्ध करना था। महावीर स्वामी को साधु, साध्वी श्रावक और श्राविका का सघ चलाकर उनके दु खो का अन्त करना था। धन्यकुमार धन्ना मुनि को दूसरे मुनियों के सामने आदर्श उपस्थित करना था। इसीलिए तो चोदह हजार मुनियो मे यह बहुत उत्तम मुनि माने जाते थे।

मतलब यह है कि दूसरो के दु ख को अपना दु ख मानकर उनकी सहायता करना और अपनी सकीर्ण वृत्तियो को व्यापक बना लना ही आध्यात्मिक उत्कर्ष का उपाय है। आध्यात्मिक उत्कर्ष की चरम सीमा ही परमात्मदशा प्राप्त होना है। भगवान् की स्तुति और भावना से उसकी प्राप्ति होती है।

(ग)

स्तुतिकार न भगवान ऋषभदव की स्तुति करत हुए उन्ह भुवनभूषण और भूतनाथ कहकर सम्बाधित किया है।

भगवान की स्तुति एसी प्यारी वस्तु हे कि हार्दिक भावना क साथ उस पर विचार करन पर एसा आनन्द हाता हे कि कहा नही जा सकता।

हृदय अपूर्व आनन्द का केन्द्र बन जाता है। हृदय की दुर्बलता भी उससे दूर हो जाती है।

शरीर के शृगार के लिए बहुत से आभूषण पहिने जाते हैं। विशेषतया स्त्रिया हाथ कान आदि अवयवो को सिगारती हैं। यह भूषण शरीर के भूषण हैं और शरीर सिगारते हैं। इसी पकार घर का भूषण घर को, कुल का भूषण कुल को ग्राम का भूषण ग्राम को, नगर का भूषण नगर को और देश का भूषण देश को सिगारता है। इसी तरह का जो जगत् का भूषण है वह जगत् को सिगारता है।

लोग अपने–अपने आभूषणों से प्रेम करते हैं। गृह–भूषण से गृहवालो का और राष्ट्रभूषण से राष्ट्र का प्रेम होता है। ऐसी दशा मे विचारणीय बात यह है कि जो अखिल विश्व का भूषण है और जिसे हम इसी रूप मे मानते हैं उससे किस प्रकार प्रेम किया जाय?

अगर हम यह स्तुति हृदय से करते हों तब तो जगतभूषण का विचार बहुत विशाल हो सकता है। मगर हम लोग यह भूल कर रहे हैं कि हम जगद्भूषण की स्तुति तो करते हैं किन्तु साथ ही उनके कामो का विरोध भी करते है। वास्तव मे विश्व के कल्याण मे ही परमेश्वर का वास है। ससार के कल्याण की आन्तरिक कामना ही परमेश्वर का दर्शन कराती है। अगर हम हृदय से भुवनभूषण का स्मरण करे और उनके कामों मे बाधा न डाले तो कोई त्रुटि न रह जाय।

आप जानना चाहते होगे कि हम भुवनभूषण के काम में क्या बाधा डाल रहे है? अगर यह बतलाने के लिए मैं ससार–व्यवहार सम्बन्धी कामो मे से ही कुछ उदाहरण देता हू। उनसे आप समझ जाएगे कि आप किस प्रकार से बाधा डाल रहे है।

राजा आपको मुफ्त मे बिजली दे दें तो आप अपना गौरव समझेंगे। आपकी प्रसन्नता का पार नही रहेगा। मगर राजा उदार होकर सभी के घर मुफ्त बिजली पहुचा दे तो आपको उतना आनन्द होगा?

नही।

क्यों मिट गई? हृदय की सकीर्णता ने आपके आनन्द को नष्ट कर दिया। बस भुवनभूषण को पहिचानने मे भी हृदय की सकीर्णता हृदय की दुर्बलता और हृदय की क्षुद्रता ही बाधा डालती है।

क्षुद्र हृदयदौर्बल्य त्वक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।

हे अर्जुन। हृदय की क्षुद्र दुर्बलता को छोडकर तैयार हो जा।

यह हृदय की दुर्बलता ही है जो आप से कहलाती है कि बिजली दूसरो के घर न हो, सिर्फ मेरे घर हो। तभी मैं सुख का अनुभव करूगा।

आपने कान मे मोती पहिने हैं। अब किसी गरीब को भी मोती मिल जावें और वह भी कान मे पहन ले तो आपको प्रसन्न होना चाहिए या अप्रसन्न होना चाहिए?

'प्रसन्न होना चाहिए।'

लेकिन आपको प्रसन्नता नहीं होती। यही नही उस समय आपकी क्षुद्रता जाग उठती है और अभिमान मिसमिसाने लगता है। कई जगह तो हरिजनो की स्त्रियो को सिर्फ इसलिए पीटा गया है कि उन्होने पैरो मे चादी के गहने पहन लिये। इस अभिमान और क्षुद्रता की कोई सीमा है। अगर इस प्रकार की क्षुद्रता मन मे रखना है तो फिर भुवनभूषण के गुण गाने की आवश्यकता ही क्या है? आप अपने ही भूषणो के गुण क्यो नही गाते? इस तरह की विचारधारा रखकर परमात्मा के गुण गाने वाले को परमात्मा नही मिल सकता।

बहिनो का भी यही हाल है। वे भी यही सोचती हैं कि मेरे ही हाथा में मोतियों की बगडिया रहे और दूसरी के हाथो मे न रहे। अगर उन्हीं के हाथ मे रही तो उनका सेठानीपन कायम रहेगा ओर दूसरी के हाथ मे भी हो गई तो सेठानीपन डूब जाएगा।

मित्रा। हृदय की दुर्वलता के ही कारण इस प्रकार के विचार आपके मस्तिष्क मे पैदा होते हैं। आप दूसरो के सुख को अपना सुख नही समझते बल्कि दु ख समझते हैं। आप सिर्फ सुखी बनना चाहते हैं ओर चाहते हैं कि ससार का सारा सुख आपके ही घर मे आकर जमा हा जाय किसी दूसर क हिस्से मे न आवे।

अच्छा आप बतलाइये कि सूर्य का प्रकाश अधिक या बिजली का?

'सूर्य का।

विज्ञान द्वारा लाख प्रयोग करके भी सूर्य के समान दूसरा प्रकाश नही बनाया जा सकता। कदाचित सूर्य के समान प्रकाश दन वाली बिजली

कोई भी बना दे तो भी उससे भयकर बीमारियों के उत्पन्न होने की सभावना है। आज जो बिजली प्रकाश दे रही है उससे भी अनेक हानिया हुई हैं। चन्द्रमा फलो मे जैसा रस उत्पन्न करता है, सूर्य उन्हे जिस प्रकार पकाता है, वैसा दूसरा कोई नही कर सकता। इसलिए सूर्य को जगत्पोषक की पदवी मिली है। यह पदवी सूर्य ने स्वय नही मागी, किन्तु बडे–बडे ऋषियों ने, विद्वानो ने और तत्त्ववेत्ताओ ने गभीर अनुसधान करने के पश्चात् सूर्य को जगत्पोषक आदि पदविया प्रदान की हैं। शरीर मे रक्त का बेगवान् सचार हो रहा है इन्द्रियो मे जो विकास है, दूसरो का शब्द कानो तक पहुचकर सुनाई देता है, इन सब का निमित्त कारण सूर्य है। सूर्य न हो तो न शरीर मे खून दौडे न शब्द सुनाई दे और न जीवन ही स्थिर रहे। एक वृक्ष ऐसी जगह हो जहा सूर्य की किरणे न पहुच पाती हो, और दूसरा ऐसी खुली जगह मे हो कि जहा बिना रुकावट सूर्य की किरणे पहुचती हों तो इन दोनो मे से कौन–सा वृक्ष हरा–भरा रहेगा और बढेगा?

जिसके पास किरणे पहुचती हैं।'

वैज्ञानिको का कहना है कि रग भी सूर्य की किरणो से ही बनता है। सूर्य की किरणो के आदान–प्रदान पर ही रग की विशेषता निर्भर है। सूर्य किसी फूल को अपनी जितनी किरणे देता है, उन सब किरणों को अगर फूल लौटा देता है तो वह फूल सफेद होता है। सफेद रग सब रगों मे अच्छा समझा जाता है। इस रग को प्राप्त करने वाले फूल सूर्य की जितनी किरणे लेते हैं, उतनी या उससे भी अधिक सूर्य को लौटा भी देते हैं। फिर जो फूल किरणे लेते ज्यादा हैं और लौटाते कम है, उनमे लौटाने की कमी के अनुपात से ही रगभेद हो जाता है। गुलाब का फूल सूर्य से जितनी किरण ग्रहण करता उतनी वापिस नही लौटाता कम लौटाता है। इस कारण उसका रग गुलाबी होता है। जो फूल कितनी किरणे कम लौटता है उसका रग उतना ही खराब हो जाता है। जो फूल सूर्य की किरणे लेता तो है मगर लौटाता बिलकुल नहीं उसका रग काला हो जाता है।

फोटो खीचते समय काला कपडा ढकने का कारण यही बतलाया जाता है कि काला कपडा सूर्य की किरणो को कमरे में प्रवेश नहीं करने देता, आप ही हजम कर जाता है। तात्पर्य यह है कि जिसमे कालिमा होगी, जिसका हृदय काला होगा, वह ले तो लेगा परन्तु देगा नही।

सूर्य की किरणो मे अलौकिक गुण हैं। उन्हीं गुणो के कारण वह जगत् का चक्षु हो रहा है। सूर्य आपको प्रकाश देता है सो बदले में क्या कुछ लेता भी है?

'नहीं।'

अगर आपको बिजली मुफ्त मे मिल जाय तो आप बिजली देने वाले का उपकार मानते हैं और उसे बडा समझते हैं, लेकिन सूर्य का प्रकाश मुफ्त मे लेकर के भी कभी सूर्य का उपकार माना है?

अगर सूर्य सिर्फ आपको ही प्रकाश देता और दूसरो को न देता तो आपके घमड का अन्त न रहता। आप इतना आनन्द मनाते कि फूले न समाते। आप अपने को ईश्वर समझने लगते। लेकिन सूर्य सभी को प्रकाश देता है यह बात आपके लिए आनन्ददायक नही है। इसीलिए आप सूर्य के प्रति कृतज्ञ नहीं होते।

आप थोडा विचार तो कीजिए कि सूर्य ने सब को प्रकाश दिया तो आपको क्या हानि हो गई? आपके हिस्से का प्रकाश तो सूर्य ने दूसरो को नहीं दिया है। सूर्य ने समान रूप से सब को प्रकाश दिया है वह उसकी महिमा है या बुराई है?

'नहीं।

तो फिर सूर्य का प्रकाश पाकर आप प्रसन्नता का अनुभव क्यो नही करते? आपको प्रकृति पर ध्यान देकर विचार करना चाहिए कि मुझ सूर्य चन्द्र पृथ्वी आदि से आनन्द मिला है तो मैं इनका उपकार क्या न मानू? लेकिन हृदय की क्षुद्रता आपकी प्रसन्नता का उत्पन्न ही नही होने देती। इसीलिए आचार्य कहते हें कि आप भुवनभूषण के गुण जानाग तो न आत्मा मे द्वेष उत्पन्न हागा न गर्व होगा ओर न दीनता ही आएगी। आपको सताष प्राप्त होगा। परमात्मा की स्तुति से दर्प और दीनता दोना दूर हा जाएग।

अपने मनोभावा का आप पर प्रकट करने क लिए मैं अधिक सा अधिक सरल पद्धति से काम लता हू। आप मर भाव को समझ गय हाग। फिर भी एक उदाहरण और लीजिये।

आपके ऊपर पखा किया जाय या चवर ढोरा जाय तो आपको आनन्द होता है लेकिन प्रकृति ने सभी को समान रूप से पखा कर दिया तो आपको आनन्द क्यो नही होता? इस सब पर पखा होने से आपकी कुछ हानि हो गई? फिर आपका आनन्द क्यो चला गया? मगर आप सोचते हैं– प्राकृतिक पखा अर्थात् पवन तो सभी के लिए समान है। इसमे आनन्द की क्या बात है? आप उसी वस्तु मे आनन्द मानते हैं जो सिर्फ आपके लिए ही हो औरो के लिए न हो।

अकृत्रिम पवन मे जो गुण है वे क्या कृत्रिम पखे के पवन में हो सकते है?

'नही।

फिर भी आप नैसर्गिक पवन मे आनन्द न मानकर कृत्रिम मे आनन्द मानते है। आपने कभी सोचा है कि आपके हृदय की कौन–सी भावना इसमे कार्य कर रही है? ऐसा करके आप ससार के कल्याण का परोक्ष रूप मे विरोध करते है। स्मरण रखना चाहिए कि विश्व–कल्याण का विरोध न करने वाला ही परमात्मा को पहिचान सकता है। आपकी जीभ 'ईश्वर–ईश्वर' भले ही जपती हो परन्तु आपका हृदय ईश्वर को भूला हुआ है और मस्तिष्क ईश्वर विरोधी कामो मे उलझा हुआ है। हृदय और मस्तिष्क दोनो जब परमात्मा के आदेश को शिरोधार्य करते है तभी कल्याण होता है।

हृदय और मस्तिष्क का अन्तर समझ लेने की आवश्यकता है। हृदय के काम प्राय जगत– कल्याण के लिए होते है और मस्तिष्क के काम प्राय जगत के अकल्याण के लिए हुआ करते है। कपटाचार मस्तिष्क की उपज है जिसमे दिखलाया कुछ जाता है और किया कुछ और जाता है। यथा बिजली के विषय मे कहा तो यह जाता है कि लोगो के आराम के लिए इसकी खोज की गई है परन्तु वास्तव मे यह अपना स्वार्थ साधने और लोगो को पराधीन बनाने का साधन है। इस प्रकार की बाते ससार को खराब कर रही है।

हृदय की उपज है। जिन कामों से अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना होता है दूसरे के कल्याण की ओर दृष्टिपात नही किया जाता किन्तु दूसरो को पगु बनाना अभीष्ट होता है वे काम मस्तिष्क की उपज हैं।

मस्तिष्क की उपज के काम राक्षसी राज्य के हैं और हृदय की उपज के काम रामराज्य के हैं। सिक्का भी मस्तक की उपज का नमूना है। उसके सम्बन्ध मे कहा तो यह जाता है कि सिक्के से दुनिया के व्यवहार मे बडा सुमीता होता है और इसीलिए उसका निर्माण किया गया है, लेकिन वास्तविक बात यह नही है। थोड़ी देर के लिए यह कथन सही मान लिया जाय तो सिक्का बना लेने की छूट सब के लिए क्यो नही है? प्राचीनकाल मे सोनैया, स्वर्ण मोहरे थे। मगर उनका मूल्य कल्पित नहीं था अतएव उनसे कोई हानि नही होती थी। मगर कल्पित मूल्यो के सिक्को ने जगत को बडी हानि पहुचाई है। सिक्को के प्रताप से आज विश्व मे आर्थिक विषमता रूपी पिशाचिनी का भैरवनृत्य हो रहा है।

यह हृदय और मस्तिष्क के सम्बन्ध मे व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया गया हे। अध्यात्मिक कार्यो मे भी इसी प्रकार विचार किया जा सकता है।

हृदय और मस्तक के कार्यो की तुलना की जाय तो दोनो का भेद अनायास ही समझ मे आ जायगा। हृदय मे दया करुणा परोपकार, सवेदना सहानुभूति, सहृदयता आदि गुण भरे हैं। मस्तिष्क जब हृदय शून्य होता हे तो स्वार्थबुद्धि की प्रबलता के कारण इन सब दिव्य ओर मृदुल भावनाओ को नष्ट कर देता हे। वह स्वार्थ भी थोडे ही दिनो का मेहमान होता हे। कुछ दिना बाद स्वार्थ भी नष्ट हो जाता है ओर सारा ससार चक्कर मे पड़ जाता हे।

ठडाई शर्बत, शराब आदि से स्वास्थ्यनाश के सिवाय कुछ भी नही है। क्या पानी के विना जीवन निभ सकता हे?

'नहीं।

फिर भी आप पानी मे आनन्द न मानकर गुलाब के शर्बत म ही आनन्द मानते हें। यह ससार के कल्याण के विरुद्ध है या नही?

एकान्त रूप से धर्म का आचरण करने वाला को भी पाच वस्तुआ का उपकार नहीं भूलना चाहिए ऐसा शास्त्र का आदेश हे। उनम से छह कार्य का वहुत बडा उपकार वतलाया गया हे। क्या पृथ्वी की सहायता क विना सयम पल सकता है?

'नहीं।

इसलिए भगवान् महावीर कहते हैं कि पृथ्वी का उपकार मानो। जिस भूमि पर पैर टेक कर खडे हो वह स्वर्ग से भी बडी है। भूमि कही की हो लेकिन जो हमारा वजन उठा रही है और जिस भूमि पर हमारे सयम की क्रिया पल रही है, उसे अगर स्वर्ग सी ही माने तो उस पर पैर धरने का क्या अधिकार है? इस भूमि पर आप सामायिक करते हैं। क्या स्वर्गभूमि मे सामायिक की जा सकती है?

'नहीं।

यहा के पावन से और पुद्‌गलों से आपका शरीर पल रहा है आपका धर्मध्यान हो रहा है फिर आप अपनी जन्मभूमि की महिमा न समझकर स्वर्ग की भूमि को बडी समझे, यह कैसे उचित कहा जा सकता है?

रामनरेशजी त्रिपाठी ने एक ग्राम्यगीत सुनाया। उसका आशय यह है कि एक ओर राजा का महल है जिसमे सब प्रकार की तैयारी के साथ पकाश जगमगा रहा है और दूसरी ओर एक किसान का टूटा झौंपडा है, जिसमे शीत ताप और वर्षा नही रुकती। किसान इतना गरीब है कि घर मे जलाने के लिए दीपक तक नही है। फिर भी किसान खडा हुआ मस्ती के साथ गा रहा है। वह कहता है– प्रभो! तूने राजा के घर तो दीपक का प्रकाश किया परन्तु मेरे घर को तो अन्धकार ने ही हर लिया।

गरीब किसान ऐसी अवस्था मे जब कि उसकी झौंपडी टूटी–फूटी है और सामने राजमहल है, क्यो मस्त होकर गा रहा है? जो लोग मस्तक से ही विचार करते है उन्हे इस का कारण मालूम नहीं हो सकता। अहिसा सयम ओर तप हृदय की उपज हैं। कोरे मस्तिष्क की सहायता से इनका महत्त्व और रहस्य कैसे समझा जा सकता है?

किसान के गाने मे कौन–सी प्रेरणा काम कर रही है यह कौन कह सकता है? फिर भी कल्पना की जा सकती है। वह दरिद्रता की अवस्था मे दूसरो की तरह परमात्मा को गालिया न देकर उनका उपकार मान रहा है। उपकार इसलिए कि राजा के घर मे ससार के समस्त अन्यायो का पैसा है। [illegible] शराबी कसाई चोर डाकू निस्सतान आदि सबका पैसा राजा के घर [illegible] आता है। उन्ही पैसो से राजा के घर मे दीपक जग–मगा रहे हैं। किसान [illegible] दीपको की मौजूदगी मे भी अन्धकार ही मानता है। वह प्रसन्न है क्योकि [illegible] पाप और अत्याचार से दूर है। वह किसी दूसरे के परिश्रम का नही [illegible] । [illegible] परिश्रम करता है और उसके बदले मे जो कुछ पाता है सन्तोष [illegible] लेता है।

जो सहृदय होगा वह अवश्य ही विचार करेगा कि मेरे किसी भी कार्य से दूसरे को दु ख न उठाना पडे। जिन कार्यो मे करुणा का अभाव होगा वे हृदय की नही वरन् मस्तिष्क की उपज होगे। हृदय मे करुणा होने पर ही भुवनभूषण को पहिचाना जा सकता है। दयाधर्म को पाने वाला ही पुण्यवान होता है। जिसका हृदय दया से भरपूर है, वह स्वर्गीय सम्पत्ति से सुशोभित है। आप ऊपरी वैभव देखकर ही किसी को पुण्यवान् मान लेते हैं पर हृदय के विचारो से पता लगता है कि वास्तव मे कौन पुण्यशाली है और कौन नहीं?

एक करोडपति गहनो और कपडो से सजा हुआ मोटर मे बैठा हुआ है। मोटर तेजी के साथ जा रही है। किसी गरीब को मोटर की ठेस लगी। इधर तो मोटर की ठेस लगी, उधर सेठजी उसे डाटकर कहने लगे– मूर्ख कही का। देखता नही मोटर आ रही है। एक किनारे हटने के बदले सामने आता हे ओर हमे बदनाम करना चाहता है। इतना कहकर सेठजी चले गये। उस चोट खाये गरीब को उठाना या सहानुभूति प्रकट करना उन्होने आवश्यक नही समझा। इतने मे दूसरा गरीब वहा आ पहुचा। उसने आहत गरीब को उठाकर छाती से लगाया चिकित्सालय मे पहुचा दिया और उसकी यथोचित सेवा की। अब आपका हृदय किसे पुण्यवान् कहता है– उस अमीर को या इस गरीब को?

गरीब को।

इस निर्णय मे आपको शका तो नही हे?

'नही।

यद्यपि हृदय गरीब को पुण्यवान स्वीकार करता हे लेकिन जब मस्तिष्क के विचार हृदय की भावना को दबा लेते हें तब उस अमीर को ही पुण्यशाली मान लिया जाता हे। वह अविवेक हे।

भगवान क लिए भूतनाथ शब्द का भी प्रयोग किया गया हे। इस शब्द मे क्या भाव भरा हे यह समझने क लिए बहुत समय चाहिए। सक्षेप म अभी इतना ही कहता हू कि प्रभु प्राणीमात्र के नाथ हें भगवान जब प्राणीमात्र क नाथ हें ता किसी भी प्राणी को कष्ट पहुचाना उसके सुख म बाधा डालना अथवा अपन स्वार्थ म अन्धा हाकर दूसरे के सुख–दु ख की परवाह न करना उचित नही। ऐसा करन वाला भगवान् का सच्चा भक्त नही हा सकता। भगवद् भक्ति की प्राथमिक भूमिका भूतमात्र का अपना भाई मानकर उसक प्रति सहानुभूति रखना ह। प्राणीमात्र क प्रति आत्मभाव रखकर भगवान की स्तुति करन स कल्याण का द्वार खुलता हे।

हे प्रभो। अगर आपके विद्यमान गुणो का यथावस्थित रूप से अभ्यास करने वाला आप सरीखा हो जाता है, इस बात मे मुझे कोई आश्चर्य नही लगता। यह ससार मे भी देखा जाता है। कि किसी लक्ष्मीवान् की सेवा करके सेवक स्वय लक्ष्मीवान् बन जाता है। साधारण मनुष्य भी अपने सेवक को अपना सरीखा बना लेता है तो आपके गुणो मे लीन हो जाने वाला अगर आप सरीखा ही हो जाता है तो इसमे आश्चर्य ही क्या है?

पश्न हो सकता है कि भगवान् के गुणो का अभ्यास किस प्रकार किया जाय? भगवान आरूपी सत्ता हैं उनके अनन्त गुण हैं, ऐसी दशा मे उनके गुणो का अभ्यास करने की क्या विधि हो सकती है?

इस पश्न के उत्तर मे ज्ञानियो का कहना है कि भगवान के गुणो का अभ्यास करना कठिन है। लेकिन लोगो ने ऊपरी आडम्बर मे पडकर कठिनाई मान ली है इसी कारण कठिनाई मालूम होती है। भगवान् मे जो गुण हैं वे उनके नाम से अच्छी तरह प्रकट होते हैं।

भगवान् के भुवनभूषण' नाम के विषय मे कहा जा चुका है। भगवान् को भूतनाथ' भी कहा है। अर्थात् परमात्मा प्राणीमात्र का मालिक है।

अभ्यास करने के लिए एक ही वस्तु काफी होती है। एक ही वस्तु पर विचार करके अभ्यास किया जाय तो यह शका नही रह सकती कि भगवान् दिखाई नही देते। उनके गुण हमारी बुद्धि मे नही आते, ऐसी दशा मे हम भगवान की सेवा कैसे करे और उनके गुणो का अभ्यास कैसे करे?

भगवान अरूपी सत्ता हैं उसे देखे बिना उसकी उपासना किस प्रकार हो सकती है इस तकलीफ को मिटाने के लिए ईश्वर की मूर्ति बनाकर उसके द्वारा ईश्वर की उपासना करने की पद्धति स्वीकार की है। अव्यक्त का ध्यान करना कठिन है इस विचार से लोग मूर्ति स्थापित करते हैं। लेकिन मेरा [illegible] कि जब परमात्मा की मूर्ति बिना बनाये ही मौजूद है तो फिर [illegible] के बदले क्यो नही उसी पर अपना लक्ष्य स्थापित करते? परमात्मा [illegible] प्रकार [illegible] है यह समझ लेना चाहिए।

सोचना चाहिए कि यह शरीर वह है जिसमे परमात्मा हुआ था। ईश्वर की मूर्ति की कोई अवज्ञा करेगा?

'नहीं।'

तो यह मनुष्य शरीर ईश्वर की मूर्ति है ऐसा समझ कर मनुष्यो की अवहेलना या घृणा न करना ही सच्ची मूर्ति पूजा है।

परमात्मा की मूर्ति की अवहेलना किस प्रकार नहीं करना चाहिए इसके लिए सर्वप्रथम तो प्राणातिपात का त्याग करना आवश्यक है। ऐसा करने से परमात्मा की आराधना होगी। क्योकि मनुष्य परमात्मा की मूर्ति है इसलिए इनकी हिसा न करना, न कराना और न हिसा का अनुमोदन करना चाहिए। ऐसा करके उस अहिसा को परमात्मा के लिए समर्पित कर देने से ईश्वर की पूजा हो जायगी।

मनुष्य को हिसा त्याग के लिए कहा गया है सो इसका अर्थ यह नही समझना चाहिए कि अन्य प्राणियो की हिसा त्याज्य नही है। हिसा तो प्राणीमात्र की त्याज्य है। लेकिन मनुष्य मनुष्य की विशेष और अन्य प्राणियो की सामान्य हिसा करता है। इसी कारण यहा मनुष्य हिसा के त्याग पर जोर दिया है। मनुष्य विशेष मूर्ति है और अन्य जीव सामान्य मूर्ति हैं। यो सभी शरीर मूर्ति ही हैं।

भगवान ने कहा हे –

पुढयोकायमइगओ उक्कस जीवो उ सब से।
काल सखाईय समय गोयम! या पगायए।।

हे गौतम! हमारा– तुम्हारा यह जीव असख्यात काल तक पृथ्वीकाय मे रहा।

इस प्रकार भगवान की आत्मा कभी पृथ्वीकाय मे रही ओर कभी मनुष्य शरीर म। अतएव साचना चाहिए कि सन्निकट मे तो मनुष्य शरीर को भगवान महावीर का स्वरूप मानू ओर दूर मे पृथ्वी म भी ईश्वरीय सता मानू एसा समझकर किसी की हिसा न करने से परमात्मा की पूजा हा जायगी।

जब भगवान भूतनाथ हें ता पृथ्वीकाय के भी नाथ हें। कदाचित् आप परमात्मा को नही दख सकत ता भी वे जिनके नाथ हें उन्ह ता देखत हें? अतएव परमात्मा के नात स ही सव प्राणिया के साथ सलूक करा। प्राणिया की सवा करन स ईश्वर की सवा हो जायगी। ईश्वरीय आदश का पालन ही ईश्वर की सच्ची सवा हे। ओर ईश्वर का आदश हे कि किसी भी प्राणी को कष्ट मत पहुचाओ।

मनुष्य का मनुष्य के साथ विशेष सम्बन्ध है, इसलिए मनुष्य की हिसा त्यागने के लिए विशेष रूप से कहा जाता है। जो मनुष्य पर दयाभाव रखेगा वह दूसरे जीवधारियो पर भी रखेगा। मगर मनुष्य ही मनुष्य को अधिक सताता है। पशुओ को केवल हाड, मास, चर्बी आदि के लिए मारा जाता है, लेकिन मनुष्य मनुष्य को सैकडों तरह से घात करता है। मनुष्य को मनुष्य से जितना भय लगा रहता है, उतना किसी पिशाच और राक्षस से भी नही लगता। यह मशीनगने तोप, बदूक आदि किसके लिए बने हैं?

मनुष्यो को मारने के लिए।'

मनुष्यो ने मनुष्य को मारने के लिए जितने उपाय रचे हैं, उतने उपाय पशु को मारने के लिए नही रचे। मनुष्य को मनुष्य पर जितना द्वेष होता है और मनुष्य मनुष्य को जितनी हानि पहुचाता है, उतनी पशु को नहीं पहुचाता और न पशु ही पशु या मनुष्य को पहुचा सकता है। पशु मनुष्य को कदाचित हानि पहुचाता है तो अल्प ही पहुचाता है। इसी कारण मनुष्यो पर विशेष रूप से दया करने की आवश्यकता है जो मनुष्य पर दयावान् होगा उसे अन्य सत्तरह पाप भी छोडने होगे।

मनुष्य की दया करने वाले को सब से पहले झूठ का त्याग करना पडेगा क्योकि झूठ मनुष्य से ही बोला जाता है, पशु से नही। झूठ, कपट आदि पापो का सेवन मनुष्य मनुष्य को ठगने के लिए ही करता है। ऐसा साहित्य तो मिल सकता है जिससे लाखो–करोडो मनुष्य भ्रष्ट हो गये हो, लेकिन क्या ऐसा भी कोई साहित्य मिल सकता है जिससे पशु भ्रष्ट हो गये हो?

'नही।'

तो जो ऐसा साहित्य नही रचता है और मनुष्य जाति के उत्थान के लिए साहित्य की रचना करता है वह क्या परमात्मा की सेवा नही करता?

नियमित रूप से सत्य वही बोलेगा जो मनुष्य के प्रति अहिसक होगा। जिसके हृदय मे मनुष्य के प्रति दया होगी वह झूठ नहीं बोलेगा। जो कपट करेगा उसमे हिसकता आये बिना नही रहेगी। ससार मे प्रचण्ड हिसा के प्रसार का प्रधान कारण यही है कि मनुष्य मनुष्य के साथ झूठ–कपटमय व्यवहार कर रहा है।

मनुष्य मुख्य रूप से मनुष्य की ही चोरी करता है। वह पशुओ को चुराता है तो वे पशु भी आखिर मनुष्य के ही होते हैं। जो मनुष्य मनुष्य पर दयालु होगा वह किसी की वस्तु चुराकर उसे दु खी न करेगा।

अगर आपके हृदय मे इस प्रकार की भावना बद्धमूल हो गई कि मनुष्य ईश्वर का प्रतिनिधि है और उसके प्रति दुर्व्यवहार करना परमात्मा के प्रति दुर्व्यवहार करना है तो आप थोडे ही दिनो मे देखेगे कि आपके अन्त करण मे अपूर्व भक्तिभाव पैदा होगा और आप परमात्मा के सच्चे उपासक बन जाएगे। पाषाण की बनी परमात्मा की मूर्ति की पूजा करता हुआ भी अगर कोई मनुष्य रूप मूर्ति की चोरी करता है तो समझना चाहिए कि वह परमात्मा की उपासना के मर्म को नही समझता।

इसी प्रकार जिसके हृदय मे दया होगी वह दूसरे की स्त्री की तरफ कदापि बुरी दृष्टि से नही देखेगा। वह कभी किसी स्त्री को भ्रष्ट करने की इच्छा नही करेगा।

जिसका अन्त करण दया से द्रवित रहता है वह कभी अनुचित सग्रह नही करेगा व दूसरो का भाग हडपने की चेष्टा से सदा घृणा करेगा। दूसरो को दु खी करके आप मोटा बनने की इच्छा नही करेगा।

जहा परिग्रह है वहा आरभ है। बहुतेरे परिग्रहशील व्यक्ति इतना अमर्यादा सग्रह करते हें कि यह सग्रह न उनके काम आता है न दूसरो के काम आ पाता हे। हृदय मे अहिसा या करुणा न होने कारण ही लोग चाहते हें कि में ही सबका मालिक बना रहू। दूसरे मरते हैं तो मरे। उन्हे मरने वालो की परवाह नही।

मनुष्य दूसरे मनुष्यो का ही हिस्सा छीनकर सग्रह करता हें ओर दूसरो के प्रति दया न होने के कारण ही सग्रह करता हे। इसी कारण महात्मा पुरुष पूर्ण रूप से निष्परिग्रह बन कर जगल म जाकर तप करत हें ओर वह तप भी कितना कठोर। कहा हे–

शीत पडे कपि–मद भरे बाझे सद वनराय।।
ताल तरगिनी के निकट ठाडे ध्यान लगाय।
वे गुरू मेरे मन वसो तारण तरण जहाज।

जिन महानुभाव क चित्त म ईश्वर का दिव्य स्वरूप बस जाता हे जा दया भाव भूपित है अहिसा की भावना से जिसका हृदय उन्नत हे वह कभी किसी प्राणी का अनिष्ट नही करता। अगर कोई उसका अनिष्ट करता हे ता भी उसस बदला लने का विचार नही करता। वह सावता हे– वह मरा अनिष्ट नही कर रहा ह किन्तु मरा अदृष्ट ही सता रह हें। यह मनुष्य जिस

जिस क्रोध के वश होकर मुझे पीडा पहुचा रहे हैं वह क्रोध मेरे अन्त करण मे आविर्भूत न हो तो मेरे लिये बहुत है। अगर मुझ मे भी काम–क्रोध आ गया तो मैं भी भ्रष्ट हो जाऊगा। अतएव अपने अन्त करण मे किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न होने देना परमात्मा की सच्ची उपासना है।

जीवन व्यवहार जब अहिसामय बन जाता है तो काम, क्रोध आदि विकार सहज ही जीते जा सकते हैं। जो पुरुष मनुष्य को ईश्वर का प्रतिनिधि मानेगा वह उसके प्रति असत्यमय व्यवहार कैसे करेगा?

चन्दन पडयो चमार घर नित उठ चीरे चाम ।
कह चन्दन! कैसी भई पडयो नीचे से काम।।

जो चन्दन देवता पर चढाया जाता है, ललाट पर लगाया जाता है और पवित्र कार्यो मे व्यवहृत होता है उस चन्दन का वृक्ष एक चमार के घर था। चमार उस पर चमडा सुखाया करता था। किसी ने चन्दन से पूछा–कहो चन्दन कैसी बीती! चन्दन ने कहा– जिसके घर रहते हैं, वैसा ही गुण आ जाता है।

चन्दन के वृक्ष पर चमार चमडा सुखाता है। इससे चन्दन की महिमा नही घटी वरन् चमार की ही महिमा घटी। ऐसा करने वाले चमार को आप बुरा कह सकते है लेकिन आप अपनी तरफ भी देखें। यह तुम्हारा मनुष्य शरीर जो ईश्वर को मिला था और जो समस्त शरीरो मे उत्तम है, चन्दन के समान है। लेकिन यह चमार के घर पडा है। चमार के घर किस प्रकार पडा है, यह बात मे भक्तो की वाणी मे कहता हू। तुलसीदास जी कहते हैं–

चतुराई चूल्हे पडो, धिक् धिक् पडे अचार ।
तुलसी हरि के भजन विन, चारो वर्ण चमार।।

जो लोग ऊपर से चतुराई करते हैं लेकिन जिसके हृदय में दया नहीं है– भक्ति नही है जो ऊपरी आचार–विचार से ही ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते है ऐसे लोगो की गणना तुलसीदासजी चमार ही मे करते हैं, चाहे वह किसी भी वर्ण का हो।

तुलसीदास जी कहते हैं–जिसने ऊपरी चतुराई तो की, आडम्बर दिखाने के लिए द्रव्य आचार तो पाला लेकिन हृदय से भक्ति नहीं की वह दूसरे वर्ण मे होता हुआ भी चमार ही है।

माला फेर लेना ही भक्ति नही है किन्तु परमात्मा के मार्ग पर चलने के लिए तन, धन प्राण देने के लिए तैयार होना ही भक्ति है। सुदर्शन सेठ आदर्श भक्त था। उसे घर मे बैठकर माला फेरने से कोई रोकता नहीं था। फिर वह मरने का खतरा उठाने के लिए क्यो गया? वह भी आजकल के लोगों की तरह बहाना कर सकता था कि आने–जाने मे क्रिया लगती है इसलिए मैं घर बैठा–बैठा ही वन्दना कर लेता हू। मगर इस क्रिया को बचाना वास्तव मे क्रिया बचाना नही, मगर प्राण बचाने के लिए बहाना करना ही होगा।

बहुत से लोग दान करने मे पाप लगने का बहाना करते हैं, मगर वे लोग पाप को देखते होते तो ब्याह ही न करते। सच तो यह है कि इस प्रकार की बहानेबाजी से धर्म की घोर निन्दा होती है और लोग समझने लगते हैं कि धर्म स्वार्थ–साधना का उपाय है। तुलसीदास जी के कथनानुसार भगवान् का भजन न करने वाले चारो वर्ण चमार हैं।

चमडे को धोना रगना ओर सजाना चमार का काम है। चमार यह काम अपने लिए नही दूसरो के लिए करते हें। चमार अपना काम छोड बैठे तो लोगो को बडी कठिनाई हो जाय। ऐसी हालत मे अगर आप चमार का एकातत बुरा ही कहेगे तो आपको जूते पहनना छोडना होगा। चमार को बुरा कहने वाले जरा अपनी ओर देखे। वे क्या कर रह हें? क्या चमार की तरह ही शरीर के चमडे को नहाने–धुलाने और सिगारन म ही नही लगे रहत हें? क्या यह काम चर्मकार का काम नही है? बढिया–बढिया कपडे ओर मातिया के गहने क्या चमडी का सजान क लिए ही नही पहने जाते? अगर आप अपने शरीर के चमडे को सिगार कर दयाभाव रक्खे भक्ति कर शरीर का दूसरा की सवा और परोपकार म लगाव तव ता आपका चमडा रगना चमारपन नही कहलाएगा और यदि यह कुछ भी न किया गया सिर्फ चमडी की सजावट म ही लगे रहे ता तुलसीदासजी का कथन आप पर भी लागू हागा ही।

कई लाग कहत हें– हमस खादी नही पहनी जाती। वह चमडी म चुभती है। एस लागा को चमडी का भक्त कहा जाय या नही? महीन कपडा क लिए चाह पचद्रिन्य पशुआ की चमडी उतारी जाय चर्वी निकाली जाय

और चाहे देश बर्बाद हो जाय पर इनकी चमडी की सुकुमारता कायम रहनी चाहिए। इनकी चमडी खादी से नही छिलनी चाहिए। ऐसा विचार करने वाले लोगो के दिल मे दया का वास कैसे हो सकता है? किसी पतिव्रता स्त्री ने श्रृगार किया और वह श्रृगार पति को प्रिय न लगा तो वह श्रृगार भी कोई श्रृगार है? इसी पकार जिन वस्त्रो के पहिनने से दया का धात होता है और दया का धात होने से जो परमात्मा के प्रतिकूल हैं, वे कपडे क्या पहनने योग्य हैं?

'नही।

पेम दया अहिसा परोपकर, सयम और सादगी का निर्वाह खादी पहनने से अधिक हो सकता है या मैन्चेष्टर के हिसामय वस्त्रो के पहनने से? खादी पहनने से गरूर कम होता है, भावना से सात्विकता आती है, देशप्रेम जागृत होता है। मिलो का बना वस्त्र राक्षसी वस्त्र है जो सयम और सादगी का विनाश करता है प्रेम का अन्त कर देता है। इन वस्त्रो के कारण पशुओं की ही नही मनुष्यो की भी हिसा होती है।

अब मै अपनी मूल बात पर आता हू। ऊपर के विवेचन से समझा जा सकता है कि जिसके हृदय मे मनुष्यो के प्रति दयाभाव होगा प्राय वह न हिसा करेगा न झूठ बोलेगा न चोरी करेगा न परस्त्रीगमन करेगा और न अनुचित सग्रह ही करेगा। क्रोध मान, माया लोभ, राग, द्वेष, क्लेश आदि मानसिक विकारो की उत्पत्ति प्राय मनुष्य के प्रति ही होती है। हृदय मे मानव-दया उत्पन्न होने पर इन सब विकारो का तुषारपात हो जाता है और जो इन सब पापो एव विकारो से बच जायगा स्वामाविक है कि वह परमात्मा के निकट पहुचेगा। इसलिए मै कहता हू कि इन पापो का परित्याग करो। अगर यकायक पूर्ण रूप से त्याग नही कर सकते तो धीरे-धीरे करो। पापो के परित्याग के पथ पर एक कदम भी जो चलेगा और उसी पथ पर आगे [illegible] की भावना रक्खेगा वह एक न एक दिन अपनी मजिल पूरी कर [illegible]। [illegible] ऐसे काम तो सर्वप्रथम त्यागने योग्य हैं जिनसे मनुष्यो का घात [illegible]। ऐसा मत करो कि पराया भोजन छीनकर आप मौज करे और वह [illegible]। ज्यादा कुछ न कर सको तो कम से कम परोपकार को तो [illegible]। आवश्यकता से अधिक सग्रह तो न करो। इस बात को मत [illegible] धन-दौलत काम नही जाएगी। शास्त्र मे कहा है-

वित्तेण ताणि न लभे पमत्ते

अर्थात – प्रमोदशील पुरुष धन–दौलत के द्वारा अपना बचाव नही कर सकता।

मत भूलो कि आज जो लखपती है, वही कल कगाल हो जाता है। फिर परोपकार करने मे क्यो कृपण बनते हो? कृपणता करके बचाया हुआ धन साथ नहीं जायगा, किन्तु कृपणता के द्वारा लगने वाला पाप साथ जायगा। यह जानते हुए भी लोग जब खर्च मे कमी करना चाहते हैं तो सबसे पहले परोपकार के ही काम बन्द करते हैं।

मित्रो। यह परमात्मा प्राप्ति का मार्ग नही है। उदार हृदय से, शुद्ध बुद्धि से और निर्मल मस्तिष्क से परमात्मा के आदेशो को समझो और पालन करो। ऐसा करने से आप परमात्मा के समान बन जाएगे।

य शान्तरागरुचिभि परमाणुभिस्त्व,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणव पृथिव्या,
वत्ते समानमपर न हि रूपमस्ति ।। 12 ।।

तीनो लोको के अद्वितीय सुन्दर प्रभो। जिन शान्त और सुन्दर परमाणुओ के द्वारा आपका निर्माण हुआ है जान पडता है कि पृथ्वी पर वे परमाणु उतने ही थे। क्योकि तुम्हारे समान दूसरा कोई रूप नही है।

वक्त्र क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
नि शेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्ब कलकमलिन क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ।। 13 ।।

अर्थ– प्रभो। सुर नर और नागकुमारो के नेत्रो को हरण करने वाला और तीन लोक की समस्त उपमाओ को जीतने वाला कहा तो आपका मुख और कहा कलक से मलिन चन्द्रमा का बिम्ब। चन्द्रमा का बिम्ब तो दिन मे ढाक के सूखे पत्ते के समान फीका पड जाता है। उसके साथ आपके मुख की तुलना नही की जा सकती।

सुन्दर शरीर दूसरा नही है। इस कारण यही अनुमान होता है कि जितने श्रेष्ठ परमाणु तेरे शरीर मे लगे हैं उतने ही ससार मे थे।

यह परमात्मा की स्तुति है। स्तुति वह है जिसके उच्चारण से आत्मा की परमात्मा के प्रति प्रीति जागृत होकर बध जाय। आज जो स्तुति की गई है उसमे बतलाया गया है कि कहा तो आपका वह सुर–नर उरग के नेत्रो को हरण करने वाला ओर देखने पर भी तृप्ति न हो ऐसा, ससार को आनन्द देने वाला मुख और कहा चन्द्रमण्डल। ससार की किसी भी श्रेष्ठ और सुन्दर वस्तु से आपके मुख की उपमा की जाय किन्तु वह उपमा ठीक नहीं बैठती। आपका मुख सभी उपमाओ को जीत चुका है। ससार की कोई भी वस्तु आपके मुख की समानता नही कर सकती।

कहा जा सकता है कि चन्द्रमा सौम्य, शीतल और आह्लादजनक हे, फिर भगवान के मुख के साथ उसकी तुलना क्यो नही की जा सकती? लेकिन आचार्य मानतुग चन्द्रमण्डल को घृणापूर्वक देखकर कहते हैं कि यह चन्द्रमा बिम्ब तो स्पष्ट ही कलक से मलीन है। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा की काति तभी तक रहती है जब तक सूर्य का उदय नही होता। सूर्य का उदय होते ही वह सूखे पत्ते के समान कान्तिहीन फीका पड जाता है। चन्द्रमा को राहु भी ग्रस लेता है। इस प्रकार कहा तो इस स्थिति मे रहने वाला चन्द्रमा का बिम्ब ओर कहा भगवान् का मुखमण्डल। यह मुखमण्डल जो सुर–नर और उरग के नेत्रो को भी हरण करने वाला है। इसलिए प्रभो। आपके मुख क सामने तीनो भुवन के पदार्थ तुच्छ दिखाई देते हैं ओर आपका मुख अनुपम है अद्वितीय सोन्दर्य से युक्त हे।

इस भक्तामरस्तोत्र के द्वारा परमात्मा से भट करना सभी को इष्ट है। इस स्तोत्र को दिगम्बर श्वेताम्बर मूर्तिपूजक ओर अमूर्तिपूजक सभी मानते है। सभी परम प्रीति के साथ इसका पाठ करके शाति लाभ करना चाहते हें। अतएव इसके भावो को ध्यानपूर्वक समझना चाहिए।

आचार्य ने यहा जो कुछ कहा हे यदि वह सत्य हे ता उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करो। आज हमे स्थूल दृष्टि स परमात्मा क दर्शन नही हो सकते फिर भी चन्द्रमण्डल तो दिखाई देता ही हे। वेज्ञानिको ने सर्चलाइट आदि नाना प्रकार क प्रकाशो का आविष्कार किया हे लकिन चन्द्रगा की समता करने वाला एक भी प्रकाश व नही वना सके। इस पर स ह मनुष्य। तू अपनी अपूर्णता ओर अशक्ति का विचार कर। अपनी शक्ति पर गर्व मत कर। सच ता यह है कि जहा सूर्य और चन्द्रमा विद्यमान हें वहा दूसर प्रकाश

की आवश्यकता ही नही है। कोई कितना ही प्रयत्न करे लेकिन चन्द्रमा और सूर्य के समान पकाश नही बन सकता। यह विचार कर खटपट मे पडने की आवश्यकता नही थी लेकिन मनुष्य गजब का प्राणी है। उसमे ईश्वरीय शक्ति विद्यमान है। अतएव वह प्रकृति से भी लडाई कर रहा है। मनुष्य प्रकृति पर विजय पाना चाहता और प्रकृति को नीचा दिखाना चाहता है।

प्रकृति से लडाई करने वालो को सोचना चाहिए कि मैंने विज्ञान के द्वारा जो वस्तुए बनाई हैं उनसे पहले की वस्तुओ का विकास हुआ है या विनाश हुआ है? कल्पना कीजिए, किसी के घर मे बिजली का सुन्दर प्रकाश हो परन्तु घर मे कोई बीमार पडा हो। एक ओर बीमारी बढती जाय और दूसरी ओर बिजली का प्रकाश बढता जाय। ऐसी स्थिति मे प्रकाश का बढना किस काम का? अगर बिजली का प्रकाश न हो और सूर्य–चन्द्र की किरणो से ही शान्ति पहुचती हो तो समझना चाहिए कि हमे किसी की ओर से यह सकेत मिल रहा है कि तुम्हे प्रकृति के ही भरोसे रहना चाहिए। प्रकृति के विरुद्ध आचरण करने से विकृति बढेगी।

आपके पूर्वजो के सामने बिजली का प्रकाश नही था। नकली घी और नकली आटा आदि भी नही था। लेकिन शारीरिक बल मे, बौद्धिक विकास मे और मानसिक चिन्तन मे वे बडे थे या आप बडे हैं?

पूर्वज बडे थे।

उन्हे मोटर बिजली नकली घी आदि चीजे पसद ही नही थी। वे इन चीजो से घृणा करते थे और आप इनसे प्रेम करते हैं। आपने इन सब को अपनाया है सही पर इसका परिणाम क्या हुआ है? यही कि पहले के लोगो को वृद्धावस्था मे भी चश्मे की आवश्यकता नही होती थी लेकिन आज कल के नवयुवको को भी चश्मा लगाना पडता है। इस अन्तर का क्या कारण है? आज इलेक्ट्रिक लाइट का अविष्कार हुआ तो नेत्रों का प्राकृतिक प्रकाश क्या विलीन हो गया? पहले के लोग क्या आजकल की तरह दवाइयो का सेवन करते थे? वे दही और बाजरे की रोटिया खाते थे फिर भी उनमे जैसी शक्ति थी वैसी आप माल–मलीदा खाने वालो मे है?

नहीं।

तो गन्दी होती सुनी जाती है लेकिन जहा बिजली का प्रकाश न हो वहा की हवा गन्दी होती सुनी है?

'नहीं।'

इतना ही नहीं बल्कि जहा बिजली का प्रचुर प्रचार है वहा की हवा गन्दी होती जाती है ऐसा सुना गया है। नयी–नयी वस्तुए देखकर आपका मन फिसल जाता है और आप उन्हे अपनाने के लिए तैयार हो जाते हैं परन्तु यह क्यो नही देखते कि ये वस्तुए प्रकृति प्रदत्त लाभो को बढाने वाली हैं या घटाने वाली?

ससार मे अगर बिजली की रोशनी, बिजली के पखे बिजली की सहायता से तैयार होने वाली दवाइया न हो तो मनुष्य की मूलप्रकृति पहुचने वाली नही हैं। यही नही, वरन् इनके अभाव मे मनुष्य ज्यादा सुखी, ज्यादा समृद्ध और ज्यादा सतुष्ट होगा। लेकिन अगर प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुए न हो तो कैसी बीतेगी? अगर सूर्य व चन्द्रमा का प्रकाश न हो तो मनुष्यो की क्या स्थिति होगी? सुनते हैं, दक्षिणी ध्रुवप्रदेश की तलाश करने के लिए कई अग्रेजो ने जाने का साहस किया और वे कुछ दूरी तक गये भी, फिर भी उन्हे सफलता नहीं मिली। सूर्य का प्रकाश न मिलने कारण उन्हे मृत्यु का आलिगन करना पडा। तात्पर्य यह है कि जहा नियमित रूप से सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश पहुचता है वहा मनुष्य जीवित रह सकता है। जहा यह प्रकाश नही मिलेगा वहा मनुष्य लम्बे समय तक प्राण धारण किए नही रह सकता।

भगवान् ने इन्द्रियो का स्वरूप बतलाने के साथ ही उनके निग्रह का भी स्वरूप बतलाया हे। प्रश्न व्याकरण सूत्र मे भगवान् ने मुनि के लिए नाटक देखने का निषेध किया है पर कही सूर्य व चन्द्रमा के प्रकाश को भी देखने का निषेध किया है?

'नहीं।

'क्यो? क्योकि इसके बिना काम नही चलता और नेत्रा मे विकार भी उत्पन्न नही होता।

दुनिया का कोई भी धर्मशास्त्र प्रकृति की बाता को राकन की हिमायत नही करता। सूर्य ओर चन्द्रमा का प्रकाश जीवन की अनिवार्य वस्तु हे। उसके बिना जीवन का निर्वाह सभव नही हे। ऐसी दशा मे अगर काई सूर्य–चन्द्र को दखन का निषध करता हे तो वह अज्ञानी ही समझा जायगा। जा मनुष्य हठपूर्वक सूर्य क प्रकाश से वचने की काशिश करगा उसका जीवन भी कठिन हा जायगा।

भगवान् ने साधुओ को दीपक आदि के कृत्रिम प्रकाश के उपयोग की मनाई की है। अगर साधु दीपक के प्रकाश का उपयोग करे तो वह सयम से च्युत हो जाता है। लेकिन वह यदि सूर्य के प्रकाश का उपयोग न करे तो सयम का पालन नही हो सकता। सूर्य की साक्षी से हम लोग भोजन कर सकते है और सयम का परिपालन कर सकते हैं। सूर्य की साक्षी के अभाव मे साधु को भोजन करने का निषेध है।

आपमे समभाव होता तो आप बिजली की अपेक्षा सूर्य–चन्द्र से अधिक पसन्न होते। बिजली सूर्य और चन्द्र की तरह व्यापक नही है, जीवन के लिए अनिवार्य नही है और लाभदायक भी नहीं है, फिर भी आपको उसकी कीमत देनी पडती है इसी कारण आप उसकी कद करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा की कीमत नही देनी पडती इस कारण उसकी कद्र नहीं की जाती और न उसका उपकार ही माना जाता है।

प्रकाश असल मे पकृति की देन है। उसे राजा अपनी मिल्कियत समझे यह राजधर्म न जाने कहा से निकल पडा है? राजा समाज की शक्ति के लिए होता है। अगर वह धीरे–धीरे इसे अपनी निजी चीज समझ कर मन लगा दे तो ससार का काम किस प्रकार चलेगा?

विशिष्ट पुण्य का उदय होने पर मनुष्य राजा बनता है। अतएव पकृति के नियमो का विशिष्ट रूप से पालन करना चाहिए। दूसरो की भूलो से इतनी हानि नही होती जितनी राजा की भल से।

राजा का धर्म है। इसके बदले वह प्रकृति का मालिक बन बैठे और कहने लगे कि मैं जैसे पृथ्वीपति हू उसी प्रकार सूर्यपति, चन्द्रपति जलपति और वायुपति भी हू, तो यह राजा का अन्याय समझा जाएगा। राजा जीवन की सुविधाओ का मालिक नहीं बन सकता और न उनसे किसी को वचित ही कर सकता है। अप्राकृतिक वस्तुओ का स्वामी बन कर उन पर भले ही वह टैक्स लगा दे पर प्राकृतिक वस्तुओ पर, जो जीवन निर्वाह के लिए अनिवार्य रूप से उपयोगी हैं, टैक्स लगाना उचित नहीं और न पूरी तरह शक्य ही है। बिजली का टैक्स न चुकाने पर बिजली रोकी जा सकती है, क्योकि उसकी चाबी राजा के हाथ मे है। अगर वह सूर्य के प्रकाश पर या पवन पर कर लगा दे और प्रजा कर देना अस्वीकार कर दे तो राजा सूर्य या पवन को रोक देने मे समर्थ नही है। इनकी चाबी उसके हाथ मे नही है। यह बात दूसरी है कि प्रजा अपनी कमजोरी के कारण इन वस्तुओं का भी कर देती रहे। ऐसी निर्वीर्य प्रजा तो शायद श्वास लेने का भी कर देने को तैयार हो जाएगी।

मेरे कहने का आशय यह है कि प्राकृतिक पदार्थो मे जैसा सौन्दर्य होता है और वे जैसे लाभदायक होते हैं वैसे कृत्रिम पदार्थ नही हो सकते। सूर्य ओर चन्द्रमा निसर्ग के सर्वोत्तम उपहारो मे हैं। अतएव आचार्य मानतुग ने चन्द्रमा के साथ भगवान् के मुख की तुलना की है। आचार्य का कथन है कि परमात्मा के मुख की समानता चन्द्रमा भी नही कर सकता। चन्द्रमा सूर्य को उदय होने पर पीले पत्ते के समान निस्तेज ओर फीका पड जाता हे। अतएव उससे भगवान् के मुख की उपमा केसे दी जाय। जब प्रकृति–रानी का सर्वोत्तम शृगार चन्द्रमा भी भगवान् के मुख के सामने नगण्य हे तो मनुष्य के दिमाग से उपजने वाला कोई भी कृत्रिम पदार्थ उसकी बराबरी केसे कर सकता हे?

भगवान का स्वरूप कितना सुन्दर ओर मनोरम हे यह बात इस काव्य से भलीभाति मालूम हो जाती हे। उस सोन्दर्य को परखने के लिए दृष्टि निर्मल हानी चाहिए। निर्मल दृष्टि से ओर साथ ही स्वच्छ अन्त करण स अगर आप परमात्मा के स्वरूप पर विचार करगे तो ससार के पदार्थ आपका निस्सार प्रतीत हुए विना नही रह सकत। इसलिए मरा कथन हे कि पक्षपात की दृष्टि दूर करके ईश्वरीय प्रेम का अपनाआ। ईश्वरीय प्रेम का अपनान क लिए चार उपाय हें आर व कामधेनु क समान हे। इनम पहली मेत्रीभावना दूसरी प्रमादभावना तीसरी करुणाभावना ओर चोथी मध्यस्थ भावना हे।

मैत्रीभावना का अर्थ चूरमा खाने–खिलाने वाले मित्र बनना नही है। ससार मे ऐसे भी मित्र होते है जिनके विषय मे कहा गया है कि

आओ मियाजी खाना खाओ, करो बिसमिल्ला हाथ धुलाओ।
आओ मियाजी छप्पर उठाओ, हम बुड्ढे कोई जवान बुलाओ।।

इस प्रकार की मित्रता वास्तविक मित्रता नही है। मित्रता सूर्य के प्रकाश के समान होती है। सूर्य समान रूप से समस्त ससार को प्रकाश देता है। किसी को कम और किसी को अधिक नही देता या किसी को प्रकाश दे और किसी को न दे ऐसा भी नही करता। इसी प्रकार मनुष्य के हृदय रूपी आकाश मे जब मैत्रीभाव का सूर्य उदित होता है तो उसका प्रकाश प्राणीमात्र को समान रूप से मिलता है। जिसका अन्त करण मैत्री भावना से उज्ज्वल हो जाता है वह प्रत्येक प्राणी को अपना मित्र समझता है। किसी के प्रति उसके चित्त मे दुर्भावना नही हो सकती। इस प्रकार मैत्रीभावना की आराधना के लिए आपको प्राणीमात्र का मित्र बनना चाहिए।

प्रश्न हो सकता है कि गृहस्थ सब प्राणियो का मित्र कैसे बन सकता है? उसे लेन–देन करना पडता है कहना–सुनना पडता है और पचासो काम करने पडते हैं जिससे प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभावना मे बाधा पडती है। ऐसी स्थिति मे मैत्रीभावना की बात साधुओ को भले ही उपयोगी हो, गृहस्थो के लिए वह उपयोगी नही हो सकती।

इस तरह का विचार भ्रमपूर्ण है। गृहस्थ अगर मैत्रीभावना को धारण नही कर सकता तो इसके मायने यह हुए कि वह धर्म का ही पालन नही कर सकता। क्या धर्म इतना सकीर्ण है कि सर्वसाधारण उससे लाभ नही उठा सकते? नही ऐसा नही है। धर्म का प्रागण बहुत विशाल है। उनमे सभी के लिए स्थान है। अगर गृहस्थ समझदारी से काम ले तो मैत्री भावना की आराधना उसके लिए कठिन नही है। गृहस्थ को गृहस्थ की भाति साधु को साधु के समान और वीतराग को वीतराग की तरह मैत्रीभावना रखनी होती है।

यह सब मित्र बनकर ही करता हू, शत्रु बनकर नही। किसी के प्रति मेरे अन्त करण मे पक्षपात नही है शत्रुता नही है द्वेषभाव नही है। फिर ऐसा कौन–सा पुण्यमय दिवस होगा जब मैं इस कर्त्तव्य का भी त्याग करके इससे भी बहुत ऊची श्रेणी के कर्त्तव्य का पालन करने मे समर्थ हो सकूगा? हे प्रभो! मेरे हृदय मे ऐसा भाव भर दो कि मैं किसी के प्रति अन्याय न करू। राजसत्ता का मद मरे मन को मलीन न होने दे। मैं प्रजा की सुख–शाति के लिए अपने स्वार्थो को त्यागने के लिए सदैव उद्यत रहू। इस प्रकार की निष्पक्ष और उदार भावना से जो राजा राज्य करेगा वह अवश्य ही मैत्रीभावना का अधिकारी हो सकता है।

माता अपने पुत्र पर मैत्रीभावना रखती है फिर भी समय पर उसे दण्ड देने से नही चूकती। उसकी दड देने की क्रिया मे पुत्र के कल्याण की ही भावना होती है। वास्तव मे चाहे कोई त्यागी हो या गृहस्थ हो राजा हो या व्यापारी हो किसान हो या सराफा हो अगर उसके अन्त करण मे न्याय का भाव हे निष्पक्षता हे और स्वार्थ साधना के लिए दूसरो का अनिष्ट करने का इरादा नही हे तो अवश्य ही वह मैत्रीभावना की आराधना कर सकता ह। समाज रूप विराट पुरुष की सेवा का जो भी काम किसी ने अपन हाथ म लिया हो उसे प्रामाणिकतापूर्वक करने पर ही मैत्रीभावना हाती है। जिराके हृदय मे मेत्रीभावना जागृत होगी वह किसी को धाखा नही देगा। वह किरी से ईर्षा–द्वेष नही रखेगा। सच्चाई ओर सरलता के साथ ही वह सबक प्रति बर्त्ताव करेगा। वह दड देगा तो आत्मा को शुद्ध करने के लिए ही देगा।

दूसरी प्रमोदभावना हे। यह भावना सदा गुणीजना का ध्यान कराती हे। एक आदमी शत्रु हे मगर मुनि बन गया हे ओर दूसरा मित्र हे मगर पतित हा गया हे। प्रमोद भावना वाला पुरुष इन दोना म से गुणी का ही अपनाएगा गुणी का ही आदर करेगा। घर म भी गुण क आदर की आवश्यकता हे कवल हडिडया क आदर का नही। भाई का लडका गुणी हे फिर भी उस पराया माना ओर उसका आदर न करा ओर अपन निर्गुण लडक का भी आदर करा आर उस अपना माना यह प्रमादभावना क विरुद्ध हे। प्रमादभावना का विकास करक गुणी की पूजा सवा की वृद्धि करा ता आप स्वय गुणमय बन जाएग आँर आपका प्रसाद की प्राप्ति हागी। अतएव गुणीजना का सत्कार करा उनक गुणा का अपनाआ अगर उनम काई त्रुटि दिखती हा ता उराका अनुसरण मत करा।

कहा जा सकता है कि यह परस्पर विरोधी उपदेश है। ... प्राणीमात्र पर मैत्री भावना रखने का उपदेश दिया जाता है। यह ... कैसे सगत हो सकते हैं?

गाय के चार पैर और चार ही स्तन होते हैं। गाय लगडी ... उसके स्तनो मे त्रुटि हो जायगी। अतएव लगडी गाय उतने काम की नहीं होती। इसीलिए करुणा भावना कही है। जिसमे गुण न हो उसके प्रति करुणा भावना धारण करो। किसी को दु खी मत करो और कोई दु खी दिखाई दे तो उस पर करुणा भाव लाओ। करुणा इतनी उदार होती है कि वह गुण–अवगुण नही देखती। गुणी की पूजा होती है और दु खी पर करुणा की जाती है। मुनि को आहार दिया जाता है सो करुणा से नही वरन् गुणपूजा के भाव से दिया जाता है। गुणपूजा ही मुनि को वदना करने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार प्रमोदभावना गुणीजनो के प्रति और करुणा भावना दीन–दुखियो के प्रति धारण की जाती है।

भगवान् ऋषभदेव ने मनुष्यो को दु खी देखकर ही इस स्थिति पर पहुचाया था कहा जा सकता है कि इस स्थिति पर पहुचने से तो आरम–सभारम बढ गया। परन्तु करुणा मे डूबा हुआ आरम–समारम या भूत–भविष्य के विचार से अपने कर्त्तव्य का परित्याग नही करता और न अपनी मर्यादा ही लोप करता है। वह पराये दु ख को भी अपना ही दु ख मानता है और जब तक उसे दूर नही कर देता तब तक चैन नही लेता। ऐसी भावना वाला सब का मित्र बन सकता है। हा जिसके दिल मे यह विचार होगा कि अमुक की दया करु और अमुक की नही वह पक्षपाती है। करुणा सर्वभूती होनी चाहिए।

कल्पना करो कि आपके शत्रु का लडका और आपका लडका–दोनो साथ साथ खेल रहे है। शत्रु का लडका किसी की गाडी की टक्कर लगने से गिर पडा। ऐसे समय पर आप क्या करेगे? अगर आपके हृदय मे करुणा ... है तो आप उस समय वैर का विचार नही करेगे। अगर दोनो ... गिर पडे हो और अपना लडका दूर तथा शत्रु के लडके को ही ... अगर दूर पास मे पड हुए लडके की उपेक्षा करता है तो पक्षपात है।

कोई धर्म के मार्ग मे काटे बिखेरता दिखाई दे तो भी उस पर समभाव रखना चाहिए।

इन चार भावनाओ का सेवन करने वाला भगवान् ऋषभदेव के पथ पर अग्रसर हो सकता है और अपने जीवन को धन्य बना सकता है। भगवान की स्तुति करने के साथ उनके मार्ग पर चलने वाला ही कल्याण का भागी होता है।

मौरवी के व्याख्यान

1 : दो बहिने–सम्पत्ति और विपत्ति

श्रीजिन मोहनगारो छे जीवन–प्राण हमारो छै।

यह भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना है। भगवान् अरिष्टनेमि का रित्र भारतीय साहित्य मे अत्यन्त उच्चकोटि का है। ऐसा चरित्र दूसरा मेरे खने मे नही आया। यद्यपि भीष्म का चरित्र भी बहुत उज्ज्वल और आदर्श है लेकिन भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र के साथ उसकी समानता नहीं हो सकती। श्री अरिष्टनेमि का चरित्र कुछ असाधारण बोधदायक है। भीष्म ने पिता की सेवा के लिये ही ब्रह्मचर्य स्वीकार किया था लेकिन भगवान् अरिष्टनेमि ने पशु–पक्षियो की दया से प्रेरित होकर ब्रह्मचर्य अगीकार किया था और यहा तक कि ससार का भी त्याग कर दिया था। भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र को भलीभाति देखा जाये और उस पर मनन किया जाये तो विदित होगा कि उन्होने यादव कुल मे जन्म लेकर कैसा असाधारण कार्य किया था।

जिस समय भगवान अरिष्टनेमि का जन्म हुआ उस समय यादवो मे महान हिसा फैली हुई थी। भगवान् अरिष्टनेमि ने उस हिसा को मिटाने के लिए ब्रह्मचर्य अगीकार किया और ससार का त्याग किया।

1 : दो बहिनें–सम्पत्ति और विपत्ति

श्रीजिन मोहनगारो छे जीवन–प्राण हमारो छै।

यह भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना है। भगवान् अरिष्टनेमि का चरित्र भारतीय साहित्य मे अत्यन्त उच्चकोटि का है। ऐसा चरित्र दूसरा मेरे देखने मे नही आया। यद्यपि भीष्म का चरित्र भी बहुत उज्ज्वल और आदर्श है लेकिन भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र के साथ उसकी समानता नहीं हो सकती। श्री अरिष्टनेमि का चरित्र कुछ असाधारण बोधदायक है। भीष्म ने पिता की सेवा के लिये ही ब्रह्मचर्य स्वीकार किया था लेकिन भगवान् अरिष्टनेमि ने पशु–पक्षियो की दया से प्रेरित होकर ब्रह्मचर्य अगीकार किया था और यहा तक कि ससार का भी त्याग कर दिया था। भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र को भलीभाति देखा जाये और उस पर मनन किया जाये तो विदित होगा कि उन्होने यादव कुल मे जन्म लेकर कैसा असाधारण कार्य किया था।

जिस समय भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म हुआ, उस समय यादवो मे महान हिसा फैली हुई थी। भगवान् अरिष्टनेमि ने उस हिसा को मिटाने के लिए ब्रह्मचर्य अगीकार किया और ससार का त्याग किया।

महापुरुष मुह से कुछ कहने की अपेक्षा अपने चरित्र के द्वारा ही जगत के सामने आदर्श उपस्थित करना उचित समझते हैं। जो बात वे दुनिया से मनवाना चाहते है उसे पहले अपने जीवन मे उतारते हैं। उनके आदर्श जीवन से जगत के जीव बोध पाकर कुमार्ग का त्याग करते हैं और नाना प्रकार की बुराइयो से बचकर शाति प्राप्त करते हैं।

कि आजकल हिसा बहुत फैल रही है। बात–बात मे पशुओ को तलवार के घाट उतार दिया जाता है। पशुओ मे भी हमारी ही तरह चेतना है। उन्हें भी हमारी ही तरह सुख–दु ख की अनुभूति होती है। पशु भी हमारी ही तरह दु ख से बचना चाहते हैं। मगर ऐसा समझा जाता है, मानो पशुओ मे चेतना ही नही है और उनके प्राणो की कीमत ही नही है। अतएव हर्ष या शोक का कोई भी अवसर आया और पशुओ के प्राणो पर आ बनती है। इस प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि ने उस समय की परिस्थिति पर गौर किया।

कल मैंने कहा ही था जब विषय सुख की अभिलाषा नही होती तभी अनुकम्पा होती है। इसके विपरीत विषय–सुख की तीव्र अभिलाषा होने पर मनुष्य सोचने लगता है कि चाहे कोई मरे या जीये किसी का कुछ भी क्यो न हो, हमे विषय सुख प्राप्त होना चाहिये। इस प्रकार की मानसिक स्थिति मे अनुकम्पा नहीं होती। उस समय यादवो की स्थिति ऐसी ही थी। वे लोग विषयलोलुप हो रहे थे और इस कारण पशु–पक्षियों की घोर हिसा कर डालते थे। इस हिसा को रोकने के लिए भगवान् ने विवाह का प्रपच रचे जाने मे बाधा नही पहुचाई।

कई लोग जैन धर्म का ठीक–ठीक स्वरूप नही समझते। अतएव वह सोचने लगते हें कि सब जीव एकान्तत समान हैं। यह समझकर वे वनस्पति ओर पानी के छोटे जीवो की रक्षा करने मे तत्पर हो जाते हैं मगर बडे जीवो की उपेक्षा कर देते हें। वे केवल छोटे जीवो की ही रक्षा करने मे धर्म की इतिश्री कर डालते हैं। ऐसे लोगो को भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिये।

भगवान् अरिष्टनेमि आरम्भ से ही तीन ज्ञानो के धनी थे वे इस बात को भली–भाति जानते थे कि अमुक वस्तु मे जीव है और अमुक मे कम जीव है या ज्यादा जीव हे। फिर भी उन्होने विवाह रचाना स्वीकार कर लिया था ओर जब विवाह सबधी स्नान आदि की विधि की गई तो उन्हाने कुछ नही कहा। इसी प्रकार जव बारात सजाई गई ओर हाथी होदे पर बैठ कर उग्रसेन के यहा तोरणद्वार पर जान लगे तब भी कुछ नहीं बोले। लकिन वहा पहुच कर उन्हाने पशु–पक्षिया की रक्षा की। अब विचारना चाहिय कि क्या भगवान् को स्नान करने क पानी म जीव हाने का ज्ञान नही था? बारात के चलन रा मार्ग के जीवो क मरन की बात उन्ह मालूम नही थी? फिर क्या कारण है कि उन्होंन जल ओर मार्ग के जीवा की उपक्षा करक तारणद्वार के समीप क पशु–पक्षिया की रक्षा की? तारणद्वार के पास बाडे म जा पशु–पक्षी वन्द किय

गये थे उनकी अपेक्षा स्नान के जल के जीवो की सख्या ज्यादा थी और मार्ग के जीवो की भी सख्या ज्यादा थी। फिर किस कारण से भगवान् ने उन बहुसख्यक जीवो की अपेक्षा इन पशु–पक्षियो की हिसा को प्रधानता दी और इनकी रक्षा की? भगवान् ने तो छोटे जीवो की अपेक्षा बडे जीवो को महत्त्व दिया लेकिन आजकल के कुछ लोग बडे जीवो की अपेक्षा करके छोटे जीवो की रक्षा करने मे ही अपने कर्त्तव्य की समाप्ति समझ बैठे हैं। छोटे कामो मे ही कर्त्तव्य की समाप्ति मान ली जायेगी तो फिर बडे काम करने की शक्ति कहा से आयेगी? बडे कामो की उपेक्षा करके छोटे कामो मे ही लगे रहना बुद्धिमानी नही है। अगर बडे काम की उपेक्षा करके छोटे काम करना ही उचित होता तो भगवान् ने स्नान करके जल के जीवों की हिसा की उपेक्षा करके बाडे के जीवो की हिसा क्यो बचाई? भगवान् को एक बडा आदर्श कार्य करना था। अतएव उन्होने वह हिसा तो होने दी और उग्रसेन के यहा तोरणद्वार पर आकर सारथी से कहा—सारथी इन सुख के अभिलाषी जीव को क्यो रोक रखा है ? और ये कुहराम क्यों मचा रहे हैं?

भगवान सभी कुछ जानते थे लेकिन जगत् के जीवों के सामने सारी बात स्पष्ट करने के उद्देश्य से उन्होंने सारथी से यह प्रश्न किया। सारथी स्पष्ट वक्ता था। उसने भगवान से साफ कह दिया —

अह सारही तओ भणइ एए भद्दा उ पाणिणो।
तुज्झ विवाहकज्जम्मि भोयावेउ बहुजणं।

सारथी ने कौन सा बडा काम किया था कि भगवान् ने मुकुट के सिवाय और सब आभूषण उतार कर उसे दे दिये? भगवान् के शरीर पर जो आभूषण होगे वे साधारण तो नही रहे होगे। वे महामहिम यादव कुल के राजकुमार थे और फिर दूल्हा बने हुए थे। निस्सदेह उनके शरीर पर उत्तम से उत्तम आभूषण रहे होगे। लेकिन आभूषणो का मूल्य आकने और काम का हिसाब लगाने की फुर्सत किसे थी? भगवान् सोचते थे कि सारथी ने मेरी आज्ञा मान–कर प्राणियो को मुक्त कर दिया है इसने दूसरे की अपेक्षा नहीं रक्खी। इसमे साहस है। साहस के कारण ही इसने ऐसा किया है। नहीं तो जिन जानवरो को राजा उग्रसेन ने बद करवा रखा था, उन्हे छोड देने की हिम्मत कौन कर सकता था? इस प्रकार अपनी आज्ञा के पालन से सतुष्ट होकर भगवान् ने अपने समस्त आभूषण सारथी को दे दिये। केवल एक मुकुट रहने दिया क्योंकि मुकुट राज चिह्न माना जाता है और वह सारथी के पास रहने न दिया जाता। इस सिलसिले मे शास्त्र मे कहा –

सो कुण्डलाण जुयल सुतग च महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि सारहिस्स पणामए।।

भगवान् ने मुकुट के सिवाय दोनो कुण्डल, कटिसूत्र तथा और सब आभूषण सारथी को दे दिये। भगवान ने तनिक भी विचार नही किया कि मैं किस काम के बदले क्या दे रहा हू। इस घटना से भगवान् की उदारता और निस्पृहता का पता लगता है। भगवान की यह कैसी निरीहता है। धर्म की रक्षा उदारता और निस्पृहता से ही होती है। जो लोग पानी पीकर पशाव तोलते हैं वे धर्म की रक्षा कैसे कर सकते हैं?

ठाणागसूत्र मे कहा है कि धर्म की जिन पाच कारणा से रक्षा होती हे, उनमे एक राजा भी है। राजा की सहायता के बिना अहिसाधर्म का पालन नही किया जा सकता। ससार मे क्षुद्र मनुष्य भरे पडे हैं। राजा न हो तो वे धर्म पालन मे बहुत बाधा डाले और सर्वसाधारण के जीवन म कठिनाई पेदा कर दे। गीता मे कहा हे –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन ।

अर्थात – श्रेष्ठ पुरुष जेसा आचरण करते हें दूसरे लाग भी वेसा ही आचरण करत हें। महापुरुष माने जान वाले लाग जा वात स्वीकार कर लेत हें दूसरे लोग भी सरलता से स्वय ही वह बात अगीकार कर लत हें। इस प्रकार जो काम हमार उपदश स नही हाता वह महापुरुष क आवरण स अनायास ही हा जाता हे। सब क लिये कहा गया हे –

महाजनो येन गत स पन्था ।

यानी सब तरह के वाद–विवाद को दूर करके उसी मार्ग पर चलो जिस पर महापुरुष चले है। इस प्रकार महापुरुष माने जाने वालो पर ज्यादा जिम्मेदारी है। उन्हे सदा इस बात का ध्यान रखना पडता है कि मैं किस मार्ग पर चल रहा हू और मुझे किस मार्ग पर चलना चाहिये? राजा की गणना भी महापुरुषो मे है। इस कारण राजा को भी ध्यान रखना चाहिये कि मैं कैसे काम कर रहा हू और मुझे कैसे काम करने चाहियें?

भगवान अरिष्टनेमि राजपुरुष थे। वे महाराज समुद्रविजय के पुत्र थे। माता–पिता ने उनसे विवाह करने का बहुत आग्रह किया, मगर वे यही कहते रहे कि समय आने पर सब कुछ हो जायेगा। भगवान् के लिये यह अवसर आया और विवाह रचाकर उन्होने पशु–पक्षियों की रक्षा की और सब आभूषण सारथी को सौप दिये। इस प्रकार की उदारता राजपुरुष में ही होती है और इसलिये यह कहा जाता है कि राजा की सहायता के बिना धर्म पगु होता है।

भगवान् ने उन जीवो को बन्धनमुक्त करवा दिया था। अतएव उसके बाद विवाह करने मे किसी प्रकार का हर्ज नही माना जा सकता था। लेकिन भगवान् की दृष्टि मे तो विवाह करने मे हर्ज था। भगवान् ने विचार किया कि ब्रह्मचर्य के बिना काम नही चल सकता। लोगो के सामने अहिसा के साथ ब्रह्मचर्य का भी आदर्श मुझे रखना है। इसके लिये मुझे स्वय ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। ऐसा किये बिना लोगो पर प्रभाव नहीं पड सकता।

शिक्षक ने उस लडके को भली–भाति समझाई। लडके ने प्रतिज्ञा की–मैं माता की आज्ञा लिये बिना कभी गुड नही खाऊगा।

वह बाई शिक्षक से कहने लगी–आपने जो काम आज किया है वह कल ही कर सकते थे। फिर कल अवसर न होने की बात किस मतलब से कही थी? शिक्षक ने उत्तर दिया–मैंने स्वय गुड खाया था। जब मेरे ही पेट मे गुड था तो इस बालक को उसके त्यागने का उपदेश कैसे दे सकता था? जब मैंने स्वय गुड खाना छोड दिया तभी इसे त्यागने का उपदेश दिया है। स्वय आचरण न करके दिये गये उपदेश का प्रभाव नहीं पडता।

इस कथा के आधार पर आप अपने सम्बन्ध मे विचार करे। आपसे प्रश्न किया जाये कि आपको कैसी पत्नी चाहिए? तो आप सीता जैसी पत्नी की इच्छा करेगे। किन्तु कभी राम जैसे बनने की इच्छा करते हैं? आप राम जैसे बनना नही चाहते तो पत्नी सीता जैसी कैसे चाहते हो?

तात्पर्य यह है कि जो दूसरे को तो उपदेश देता है लेकिन स्वय उस उपदेश के विरुद्ध चलता है उसके उपदेश का जनता पर प्रभाव नही पडता।

शास्त्र मे भगवान् से प्रश्न किया गया कि आपके धर्म का उपदेश कौन दे सकता है? भगवान् ने इस प्रश्न का यह उत्तर दिया –

आयगुत्ते सया दंते छिन्नसोए अणासवे।
ते धम्म सुद्धमाक्खति पडिपुण्णमणेलिस।

अर्थात्–मेरे धर्म का उपदेश वही दे सकता हे जो आत्मा को गुप्त रखता हो। जिसकी आत्मा मेरे धर्म मे तन्मय हो गई हो। जो दूसरो को किसी काम को छोडने के लिये कहता हे ओर स्वय वही काम करता है उसका उपदेश केवल ढोग हे। अतएव जो स्वय अपने उपदेश के अनुसार चलता हो त्यागी हो, अहिसक हो, सत्यवादी हो अस्तेयव्रती हो ब्रह्मचारी हो ओर माया–ममता से रहित हो वही मेरे धर्म के उपदेश देने का पूर्ण अधिकारी हे।

हिन्दू धर्म के विषय में गाधीजी ने एक लेख लिखा था। उसम उन्हाने लिखा था कि हिन्दू धर्म का उपदेश शकराचार्य या विद्वान नही दे सकत हैं किन्तु वही दे सकता है–वही हिन्दू धर्म का सच्चा स्वरूप बतला सकता हे जा अहिसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य का पालन करता हो ओर निष्परिग्रह हा। भगवान् महावीर न जो कुछ कहा वही सीखकर ता गाधीजी ने यह लिखा ही नही हैं। भगवान महावीर आज स करीब अढाई हजार वर्ष पहले जा बात कह गये हैं उसकी वास्तविकता आज भी स्वीकार की जाती हे।

तात्पर्य यह है कि उपदेश देने वाले को चाहिये कि वह पहले अपने आपको अपने उपदेश के अनुरूप बनावे। उसके बाद ही उसका उपदेश प्रभावजनक होगा। स्वय आचरण न करके सिर्फ दूसरो को उपदेश देने वाले उस चाटू के समान है जो दाल–शाक आदि में डूबे रहकर भी किसी चीज का स्वाद नही जानते। अतएव भगवान् अरिष्टनेमि ने सोचा–मैं दूसरों को ब्रह्मचर्य का उपदेश दू और स्वय विवाह करू तो मेरे उपदेश का क्या मूल्य होगा। इस प्रकार जनता के सामने जीता–जागता उदाहरण रखने के लिए भगवान् तोरण द्वार तक पहुचकर लौट आये।

जिस समय दूल्हा बिना विवाह किये लौट रहा हो उस समय बरातियो को कितना खेद होता होगा? और बाराती भी साधारण मनुष्य नहीं थे। समुदविजय और कृष्ण जैसे प्रतिष्ठित राजपुरुषो को उस समय जो खेद हुआ होगा उसकी कल्पना करना भी कठिन है। उन्होंने भगवान् से कहा–आपने जीवो को बन्धन मुक्त कर दिया सो ठीक है। सारथी को आभूषण दे दिये सो भी ठीक है। लेकिन विवाह किये बिना ही आप वापिस लौट रहे हैं यह बडा अनुचित है। ऐसा करने से हमारी प्रतिष्ठा मे धब्बा लगता है। आप और जीव छुडा सकते है। चाहे तो और भी पुरस्कार दे सकते हैं। मगर विवाह किये बिना लौटना उचित नही है।

कृष्ण जैसे महापुरुष भी भगवान् से विवाह किये बिना न लौटने का आग्रह कर रहे थे। ऐसी स्थिति मे भगवान को क्या करना चाहिए था? उन्हे सबका कहना मान लेना चाहिये या हठ करना चाहिये? एक ओर वे सब लोग भगवान से रुकने के लिए आग्रह कर रहे थे और दूसरी ओर भगवान् यह सोच रहे थे कि मुझे परिमित दया ही नही करनी चाहिए किन्तु ससार मे अहिसा का प्रचार करना चाहिए।

वाले कार्य को दूसरो के आग्रह से रोक दिया जाये पर परमार्थ के कार्य को नही रोकना चाहिये।

भगवान सोचते थे—ये लोग अपनी ही बात रखना चाहते हैं किन्तु मैं सारे ससार की बात रखना चाहता हू। मैं किसी भी जीव की बात खोना नही चाहता। इस प्रकार विचार कर भगवान् ने कृष्ण आदि सबको समझाया। भगवान् ने उन सब को किन शब्दो मे समझाया था यह तो नही कहा जा सकता, लेकिन शायद यह कहा होगा मैं हठ नहीं करता हू। मगर दीन जीवा की दया मुझे अपनी ओर खींच रही है। ऐसी स्थिति मे मुझे किस ओर जाना चाहिये ?

ससार मे बडे लोगो पर दया तो सभी करते हैं लेकिन गरीबा पर—जिनका कोई स्वामी नही हे दया करने वाले विरले ही होते हैं। बडो की जो दया की जाती है वह दया नही सेवा है। दया तो दु खी की होती है। ओर दया करने के लिये जो दु खी का चरित्र देखने लगता है। वह दयावान नहीं हे। दयावान् वह है जो दु खी के चरित्र को सुधार देता हे।

भगवान् ने सब से कहा—इन दु खी जीवो की करुणा मेरा हृदय अपनी ओर आकर्षित कर रही हे। जगत् मे हाय—हाय मची हुई हे। उसी को मिटाने के लिये मैं यत्न करना चाहता हू मैं आपका अपमान नही कर रहा हू। इस पर भी आप अपना अपमान समझते हें ता यह आपका भ्रम हे।

जा गरीब जीवो की दया करत रहते हें उसकी आर सभी का आकर्षण रहता हे। मारवी के महाराजा स—जो यहा उपस्थिती हें मेरी बातचीत हुई ता मालूम हुआ कि आप दीनो का दु ख मिटान क लिय लाखा की सखावत किया करत हें ओर लोगा का उसका पता भी नहीं चलन दत। जिनक अन्त करण म एसी दया हे उनकी आर हमारा भी आकर्षण हाना स्वाभाविक है। इसी कारण अहमदाबाद क बदले यहा चोमासा करना पडा है।

भगवान न कहा कि में उन दीन—हीन जीवा की रक्षा करना चाहता हू जा दु खी हें। में दूसरा विवाह करन क लिय नही जा रहा हू बल्कि जगत का उद्धार करन जा रहा हू।

भगवान क इस प्रकार नम्रतापूर्ण आग्रह क सामन सबका झुकना पडा। भगवान की आन्तरिक प्ररणा स सभी प्रभावित हुए। अन्त म सबन कहा—ता भल पधारा। जसी आपकी इच्छा।

भगवान् हाथी लौटा कर घर पहुचे। घर पहुच कर उन्होने एक वर्ष तक गरीबो को यथेष्ट दान दिया। दान देने के पश्चात् दीक्षा ग्रहण की। उस समय कृष्ण ने उनसे कहा–

वासुदेवो य ण मणइ लुत्तकेस जिइदिय।
इच्छिय मणोरह तुरिय पावसु त दमीसर।।

अर्थात्–हे इन्दियो का दमन करने वाले। मैं चाहता हू कि आपका मनोरथ पूर्ण हो।

इस प्रकार दीक्षा लेकर भगवान् दीन–दुखियो पर दया करने का उपदेश देने लगे। अगर राजा और प्रजा मिलकर इस प्रकार सम्मिलित रूप स गरीबो के उद्धार का कार्य करे तो बहुत उद्धार हो सकता है। मोरवी के महाराजा उदार और दीन–दु खनिवारक है। कई राजाओ से मिलने का मुझे अवसर मिला है लेकिन जैसी उदारता आप मे सुनी है, वह प्रशसनीय है। आप लोगो को ऐसा दयालु राजा मिला है तो उसका सहयोग लेकर कोई सार्वजनिक हित का विशिष्ट कार्य करना उचित है। गीता मे कहा है –

मा शुच सम्पद दैवीमभिजातस्य भारत।

अर्थात – हे पार्थ। तू दैवी सम्पदा भोगने वाला है। इसी प्रकार आपके महाराजा भी दैवी सम्पदा भोगने वाले हैं–ऐसे राजा मिलने पर भी अगर इस राज्य मे अमर–पहेडा (हिसानिषेध का पटह) न बजा तो कब बजेगा? महाराजा के द्वारा होने वाले शुभ कार्यो के यज्ञ मे आप लोग भी कुछ भाग ले तो आपको भी लाभ होगा इन महाराज साहब को भी प्रोत्साहन मिलेगा और दुखियो का दु ख मिट जायेगा। जब जनता गरीबो के हित के कामो मे हाथ बटाने लगेगी तो इन्हे भी यही विचार आएगा कि यदि मैं ऐसे कामो मे अपनी सम्पत्ति न लगाऊगा तो फिर किन–किन कामो मे लगाऊगा? मोरवी काठियावाड मे एक विशिष्ट राज्य है। यह विशिष्टता स्वार्थ की ओर

की बात है। अब किसी दूसरे राजकुमार के साथ तुम्हारा विवाह हो सकेगा। अब उसकी आशा तो न रही। यह अच्छा ही हुआ। वे जेसे तन से काले हैं वेसे ही मन से भी काले हैं। राजकुमारी जो हुआ अच्छा ही हुआ। अब निश्चिन्त हो जाओ।

सखी की बात सुनकर राजीमती ने कहा—सखी, चुप रहो। ऐसा मत कहो। मैं उनकी निन्दा सहन नहीं कर सकती। वे शरीर से काले दिखाई दते हैं, इस कारण तुम उनकी उपेक्षा कर रही हो लेकिन मेरी दृष्टि म उनका बहुत महत्व है। काले होने कारण वह उपेक्षणीय नहीं हो सकते। मगर कालापन बुरा है तो आखो की काली—काली पुतलियो को निकाल कर क्यो नही फक देती? सखी तुम महापुरुषो के चरित्र की गहनता को नहीं समझ सकती। जा विषय भोग के कीडे बने हुए हें वे उनके पवित्र और उच्च चरित्र के महत्व को क्या समझे? अतएव तुम चुप ही रहो।

सखी—ऐसा है तो फिर उदास क्यो हो?

राजीमती—मेरी उदासी का कारण यह है कि पति तो चले गय ओर मैं घर मे ही रहू। राजीमती का त्याग कितना उज्ज्वल हे। इसीलिये कहा जाता है —

न होते नेम राजीमती तो क्या गाते जैन के जती।

राजीमती कहती हे—सखी प्रभु मुझ जागृत करन क लिय ही आय थे। व मरे साथ दगा करन नहीं आये थे। अगर वे यहा स जाकर किसी दूसरी कन्या के साथ विवाह कर लेते ता दगा समझा जा सकता था। उन्ह क्या दूसरी कन्या नहीं मिल सकती थी? महाराज समुद्र—विजय की पुत्रवधू कोन नही बनना चाहगी। लेकिन उन्ह ता विवाह ही नही करना था। व मुझ बाघ देन क लिये ही यहा तक आये थे। उनका बाध मुझ तक पहुच गया हे उसकी अव्यक्त वाणी मेर काना मे गूज रही है। वे कह रहे हें— "मैं जिस मार्ग पर जा रहा हूँ, उसी मार्ग पर तू भी आ।"

मित्रो। भगवान अरिष्टनमि न पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया था ता आप लाग कम स कम अपूर्ण ब्रह्मचर्य का ता पालन करा। यह ता कहा कि—परस्त्री माता। महाराजा यहीं बैठ हें। आपकी प्रतिज्ञा पर इनकी भी साक्षी हा जायगी।

परस्त्री का माता बनान म एक बडा रहस्य है। जब आप परस्त्री का माता मानग ता माता का पुत्र भाई ही हागा। इस प्रकार आपकी बधु भावना का सहज ही विकास हागा। आप दूसरा क सुख—दुःख का भाई क नात

पण्डित–हा अब तक तो सकुशल थीं पर आपका दर्शन होते ही वह मर गई हैं।

राजा–मरना–जीना तो प्रकृति का अटल नियम है। वह किसी क हाथ की बात नही हे। लेकिन उनका अतिम सस्कार अच्छी तरह करना।

पण्डित–मेरी दशा आप देख ही रहे हैं। मैं अपनी स्थिति के अनुसार अतिम सस्कार करूगा ही। पहनी हुई इस धोंती मे स आधी फाडकर उसके शव पर डाल दूगा। इससे अधिक और क्या कर सकता हू?

राजा–नही जी ऐसा क्यो? अपनी मौसी के अतिम सस्कार के लिय में तुम्ह सहायता दूगा।

पण्डित–आप सहायता देगे तो उसी के अनुसार क्रियाकर्म कर दूगा।

राजा ने भण्डारी को एक हजार मोहरे निकाल कर दे देने की आज्ञा दी। भण्डारी यह आज्ञा सुनकर आश्चर्य मे पड गया। राजा ने उसस कहा–मेरी मौसी का अतिम सस्कार करना है। इसलिये मेरे नाम लिख कर द दा।

राजा की आज्ञा क अनुसार भडारी ने हजार माहरे गिन दी। ब्राह्मण पण्डित हजार मोहर लेकर बाहर निकला उसने पहरेदार को भी कुछ दिया। कई लोग राजसम्मान पाकर दूसर का अहित करने म ही अपना बडप्पन मानते हें। लकिन ब्राह्मण पडित न पहरेदार का अहित नही किया। बल्कि उस कुछ दकर सतुष्ट कर लिया ओर अपन घर चला गया।

ब्राह्मण क चल जान क बाद एक सभासद न साहस करक पूछा–आपक यह भाई कहा रहत हें? कोन सी मोसी की बात अभी हो रही थी? यह पहल ता कभी मिले नही।

राजा–वह मरा ही नही तुम लागा का भी भाई हे लकिन तुम्हारी आख फिरी हुई हें। इसी कारण तुम उस नही पहचान सक। पहल इस बात पर विचार करा कि में किसका पुत्र हू? तुम मुझ किसी ओर का पुत्र बताआग लकिन में सम्पत्ति का पुत्र हू। ओर सम्पत्ति की बहिन हें विपत्ति। यह जा अभी आया ना सा विपत्ति का पुत्र हे। तुमन दखा ही हे कि उसका शरीर कितना कृश था। बाल कितन रूख थ। इसस ज्यादा विपत्ति ओर क्या हा सकती हे। म सम्पत्ति पुत्र हू आर वह विपत्तिपुत्र हे। सम्पत्ति ओर विपत्ति बहिन हे। इस कारण वह मरा भाई हुआ। एक सभासद न पृछा–आपक दर्शन हात ही मासीजी मर गई इसका क्या मतलब? राजा न कहा–मर दर्शन स ब्राह्मण की विपत्ति दूर हा गई–मोसी मर गई। सज्जन पुरुष वही ह जा सम्पति पाकर

विपत्ति को भूल न जाए। रामचन्द सम्पत्तिशाली थे फिर भी उन्हे विपत्ति ने घेर लिया और वनवास करने के लिए विवश किया। हरिश्चन्द्र को भी भगी की चाकरी करनी पडी। जब राम और हरिश्चन्द्र जैसे महापुरुषो पर भी विपत्ति आ सकती है तो क्या अपने ऊपर नही आ सकती थी ? इस कारण सम्पत्ति की बहिन विपत्ति को भूल जाना उचित नही। वह सम्पत्ति की बहिन विपत्ति का लडका होने के कारण मेरा भाई था और मेरी तरह तुम लोगो का भी भाई था। मगर तुमने उसे पहचाना नही। मै पहचान गया।

राजा भोज का यह स्पष्टीकरण सुनकर सब लोग अत्यन्त आनन्दित हुए। राजा की विवेकशीलता और उदारता से उन्होने शिक्षा ग्रहण की।

आज राजा भोज यहा मौजूद नही हे पर मोरवी के महाराज और आप लोग है। आप इस उदाहरण से अगर कुछ सबक सीखते हो तो सीख लीजिए। आप विचार कीजिये कि—गरीब लोग दु ख पा रहे हैं और आपमे उनका दु ख दूर करने की शक्ति है। फिर भी अगर आप उनका दु ख नही मिटाते—सम्पत्ति मे भी उनकी सहायता नही करते तो क्या विपत्ति के समय सहायता करेगे? इस प्रकार का विचार करके सम्पत्ति द्वारा गरीबो की विपत्ति मिटाओ। अगर आपने गरीबो का दु ख—दर्द दूर करने की ओर ध्यान दिया तो बढते—बढते सुबाहुकुमार की स्थिति प्राप्त कर सकते हो। कहा भी है —

परोपकाराय सता विभूतय ।

मै महाराजा से भी पूछना चाहता हू कि आप सम्पत्ति के पुत्र हैं लेकिन अपने भाई विपत्ति के पुत्र को कभी याद करते हैं या नहीं? गरीबो की सेवा—सहायता करने मे ही सम्पत्ति की सार्थकता है। अतएव क्या महाराजा, क्या दूसरे लोग सभी गरीबो को याद रखे। तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है —

दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोडिये जब लग घट मे प्रान।

2 : हृदयबल और मस्तिष्कबल

जय जय जिन त्रिभुवन धणी।

यह भगवान् शीतलनाथजी की प्रार्थना है। आत्मा परमात्मा को पहचान कर कहता है कि हे प्रभो! तेरा जय–जय कार हो क्योकि तू त्रिभुवन का नाथ हे ओर जिन है। इसलिए तेरी जय हो! जय हो!

भगवान शीतलनाथ जिन होने के कारण त्रिभुवन के नाथ हुए और त्रिभुवन के नाथ होने के कारण ही उनकी जय बोली जाती है। इस बात पर अगर भलीभाति विचार किया जाये तो आत्मा को बहुत बोध मिल सकता है। वहिरात्मा मनुष्य विचार करता हे कि मैं अपनी शारीरिक शक्ति क द्वारा सारे ससार को अपने अधीन कर लूगा। यह विचार कर वह एस ही प्रपच म फस जाता हे। अत मे जब वह देखता हे कि सारे ससार की बात दूर हे मैं अपने शरीर को भी वश म नही कर पाया हू तो उसे वडी निराशा हाती हे। वह पश्चात्ताप की आग मे दग्ध होन लगता है। मगर उस समय वह अशक्त हा जाता हे अतएव सिवाय पश्चात्ताप के वह ओर कुछ भी नही कर पाता। वृद्धावस्था और उसके साथी–सगी माना उसका उपहास करत हैं।

इसके विपरीत जा विवकवान पुरुष इस बात का विचार करता हे कि भगवान शीतलनाथ त्रिभुवन के नाथ केस बन हैं? त्रिभुवन की श्रष्ठ सम्पदा उन्हं किस प्रकार प्राप्त हुई? त्रिभुवन की लक्ष्मी न उनक गल म वरमाला क्यो डाली? तब आत्मा का ज्ञान हाता हे कि भगवान न समस्त प्रकार की अनुचित प्रवृत्ति राक दी थी। कर्मो का जाल काट कर फक दिया था ओर राग–द्वष पर पूर्ण रूप स विजय पई थी। इसी कारण ससार की समस्त श्रष्ठ सम्पदा उन्ह प्राप्त हुई थी। क्या जैनशास्त्र ओर क्या दूसर शास्त्र सभी एक स्वर स कहत हैं कि राग–द्वष का समूल नाश किय विना आत्मा म पूर्णता नही आ सकती। और जब तक आत्मा म पूर्णता नही आती तब तक वह ससार

की समस्त श्रेष्ठ सम्पदा का अधिकारी नही है। जो महाभाग राग–द्वेष को पूरी तरह जीत कर पूर्ण हो जाता है, सारा ससार उसका दास बन जाता है और उसकी जय मनाने लगता है। इस प्रकार समस्त ससार अपने अधीन किया जाता है पर चाहिये पयत्न करने वाला। प्रयत्न अपने लिये आप ही किया जाता है। एक दूसरे के लिये प्रयत्न करता है।

भक्तो ने भगवान् शीतलनाथ की प्रार्थना मे कहा –

जय जय जिन त्रिभुवन धणी,

करणानिधि करतार सेव्या सुरुतरु जहो।

हे प्रभो! आपकी जय हो! क्योकि आप त्रिभुवनपति है और साथ ही दयासागर भी हैं। आप केवल अपनी ही दया नही करते किन्तु ससार के सभी जीवो की दया करते है। ससार के सब जीवो की दया से प्रेरित होकर ही आपने महान प्रवृत्ति की है।

कहा जा सकता है कि जिसने राग–द्वेष को जीत लिया है, उसे किसी पकार की प्रवृत्ति मे पडने की क्या आवश्यकता है! ऐसा कहने वालो को सोचना चाहिए कि कोई आदमी अपने पास की वस्तु जगत् के सामने खोल कर रख दे और उस वस्तु से सब लोगो को लाभ उठाने के लिये आह्वान करे तो उसकी यह उदारता क्या सराहनीय नही है? एक व्यक्ति ने कही से रत्न उपार्जन किये है। वे उसके भण्डार मे भरे हैं। लेकिन वह आदमी अपना भडार खोलकर सबसे कहता है इन रत्नो से कोई भी लाभ उठा लो। पर वह भी सोचता है कि मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ है सो सिर्फ मेरे लिए ही नही हुआ है किन्तु सभी के हित के लिये प्राप्त हुआ है। ऐसा कहने और समझने वाले व्यक्ति की उदारता और सतोषवृत्ति कैसी आदर्श है! उसमे ऐसी उदारता है इसी कारण तो अपने श्रम से प्राप्त वस्तु का लाभ वह दूसरो को दे रहा है। मान लीजिए किसी आदमी ने महल बनवाया। अगर वह सोचता है कि मै इस महल से केवल मै ही लाभ उठाऊ और दूसरा लाभ न उठा सके,

सारांश यह कि अपनी वस्तु का लाभ दूसर का तभी लन दिया जाता हे जब हृदय म समभाव हा। उदाहरण के लिए मघकुमार की बात लीजिय। मघकुमार ने हाथी के भव म जा मण्डल बनाया था उस मण्डल से अगर उसे ममत्व हाता ओर उसम राग–द्वेष की उत्कटता होती ता वह दूसरे प्राणिया को मण्डल स लाभ न उठाने दता। हाथी की उदारता थी इसी कारण उसन दूसरे जीवों को आश्रय लेने दिया।

इसी तथ्य को आगे बढा कर देखो कि भगवान न राग–द्वेष का नष्ट करक भी दूसर जीवो की दया के लिए महान प्रवृत्ति क्यो की। अगर आप गभीरता क साथ इस बात पर विचार करग तो आपका परमात्मा का रूप समझ म आ जायेगा। आप समझ सकगे कि जब किंचित आत्मिक विकास हान पर ही अर्थात थाड अश म राग–द्वेष के मिटन ओर आंशिक रूप स समभाव अपनान पर आत्मा अपनी वस्तु का लाभ दूसरा का उठान दता हे ता जिन परमात्मा न पूर्णरूप स राग–द्वेष का नाश कर दिया हे जा त्रिलोकीनाथ हो चुक हैं व अगर प्राप्त ज्ञान का लाभ दूसरा का– अधकार मे भटकन वाल ससारी मनुष्यों को द तो इसम आश्चर्यकी बात ही क्या हे? उनम एसी उदारता–अनुकम्पा क्यों न हो? भगवान अपनी इस उदारता क फलस्वरूप ही अज्ञान अन्धकार स व्याप्त इस विश्व म ज्ञान का लोकात्तर प्रकाश फेलात हैं और जगत का आव्हान करके कहते हैं– भद्र पुरुषा! जा शक्ति मुझम हे वह तुम म भी विद्यमान हे। साधना क जिस पथ का मॅन अनुसरण किया हे उसी पथ पर तुम भी अग्रसर हाआ। एसा करन स तुम्हारी आत्मा म उसी शक्ति का प्रकाश हागा जा तुम मुझम देखते हा।

यहा एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित हाता हे। जा शक्ति भगवान म ह और जिस भगवान न प्रकट किया हे वही शक्ति जब सभी म विद्यमान हे ता सभी लाग उस प्रकट क्या नहीं कर पात? अगर काई यह समझता ह कि जो शक्ति परमात्मा म है वह हमन–आत्मा म नही हें ता वह भयकर भूल करता ह। मैं कई बार कह चुका हू कि आत्मा आर परमात्मा सजातीय हे दाना का स्वभाव आर गुण मूलत एक समान ह। दाना म मालिक अन्तर कुछ भी नहीं ह। जा अन्तर हैं वह आपाधिक ह। परमात्मा अपन स्वभाव क समस्त आवरणा का दूर कर चुक ह और परमात्मा क स्वभाव परकम क आवरण हैं। इन आवरणा क कारण आत्मा की शक्तिया उसी प्रकार व्यक्त नही हा पाती जिस प्रकार मघा क कारण सूर्य का प्राकृतिक तज प्रकट नहीं हाता। इस भिन्नता

को द्योतित करने के लिए ही 'परम' विशेषण लगाया जाता है। अर्थात् जो आत्मा समस्त आवरणो से अतीत हो जाता है, वह परम आत्मा परमात्मा है और जो आवरणो से युक्त है वह आत्मा है। यह दोनो सज्ञाए स्पष्ट सकेत कर रही है कि परमात्मा और आत्मा मूलत सजातीय द्रव्य हैं। बाहरी सम्पत्ति की बात अलग है पर आन्तरिक सम्पत्ति सभी जीवो की समान है।

तो फिर सभी जीव परमात्मा क्यो नही बन जाते? इसके उत्तर मे कहा जा सकता है कि पशु–पक्षी कीट–पतग मनुष्य आदि जीवो को तो सब आस्तिक एक ही कोटि मे मानते हे। फिर उनसे यह प्रश्न किया जा सकता है कि अगर सभी जीवो मे मनुष्य बनने की शक्ति है तो सभी मनुष्य क्यो नही बन जाते ? अमेरिका के प्रत्येक नागरिक को वहा के राष्ट्रपति (प्रेसीडेट) का पद पाने का अधिकार है। फिर सभी राष्ट्रपति क्यो नही बन जाते। वस्तुत इस भेद का कारण योग्यता है। प्रत्येक कीट–पतग मनुष्य बन सकता है लेकिन बनेगा तभी जब उसकी योग्यता का विकास हो जाये। यही बात राष्ट्रपति पद के विषय मे कही जा सकती है और यही समाधान परमात्मा के विषय मे किया जा सकता है। वस्तुत जीव परमात्मा बन सकते हैं किन्तु सभी की योग्यता का विकास नही हो पाता। आत्मिक गुणो का सर्वान्तिम विकास होने पर परमात्मदशा प्राप्त होती है। यही कारण है कि सभी जीव वह सर्वोत्कृष्ट दशा प्राप्त नही कर सकते। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि परमात्मा और आत्मा मे कोई मौलिक भेद है जो मिट नही सकता।

की अपेक्षा हृदय को अधिक महत्त्व मिलना चाहिये। जो ऐसा करता है वही आत्मिक शक्ति प्राप्त कर पाता है।

आजकल आम तोर पर हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क को अधिक महत्त्व दिया जाता है। प्राय लोग मस्तिष्क के कथनानुसार ही चलते हें। कल्पना करो कि एक आदमी किसी श्रीमत की लडकी को व्याह लाया हे। लडकी छबीली है बनी–ठनी है और आजकल के फैशन के अनुसार रहती हे। दूसरी ओर उस पुरुष की माता है जो अपने पुराने विचारो की है। अब वह पुरुप किसके अधीन होकर रहना चाहेगा? ओर वास्तव मे उसे माता के अधीन रहना चाहिये या पत्नी के अधीन रहना चाहिये? यद्यपि उचित तो यही हे कि पुत्र अपनी माता के अधीन होकर रहे किन्तु देखा जाता हे इसके विपरीत अर्थात पुरुष पत्नी के अधीन हो जाता हे। इसका प्रधान कारण हार्दिक विचारा से प्रभावित हो जाता है। उसे सोचना तो यह चाहिये कि ससुर ने मेरी श्रीमताई देखकर अपनी लडकी दी है लेकिन माता ने क्या देख कर मेरा पालन किया हे? माता ने केवल हृदय की प्रेरणा से ही मेरा पालन किया है। उसने और कुछ नही देखा। हार्दिक विचारो से प्रेरित होकर ही माता ने मेरे लिए कष्ट उठाये हें। इस प्रकार जिस हृदय–बल के कारण मेरा पालन–पाषण हुआ हे उस हृदय को अब भूल जाना कृतघ्नता तथा मूर्खता हे। मगर ऐसा विचार कितने लोगो को होता हे! मेरा ख्याल हे आज पत्नी क अधीन हाकर माता की उपेक्षा करने वाले लोग ही ज्यादा निकलेगे।

मातृहृदय की सभी लोगो ने प्रशसा की हे। आज क वेज्ञानिका का भी यही कहना हे कि माता म हृदय का बल होता हे। इसी बल के कारण वह सतान का पालन करती हे ओर सतान के लिए कष्ट उठाती हे। यदि माता म हृदयबल न होता तो वह स्वय कष्ट सहन करके सतान का पालन क्यो करती? कहा जा सकता हे कि माता भविष्य सम्बन्धी आशाआ स प्ररित हाकर सन्तान का पालन करती हे। इसके उत्तर म यही कहा जायेगा कि पक्षिया को अपनी सन्तान स क्या आशा रहती हे? पक्षी क बच्च वड हाकर उड जात हें। व न अपन पिता को पहिचानत हें ओर न माता को ही। फिर पक्षी अपनी सन्तान का पालन क्यो करते हें? उन्ह किसी प्रकार की आशा नहीं हाती। फिर भी व सतान का पालन करत हें। इसका एक मात्र कारण हृदय–बल ही हे। इस प्रकार मातृहृदय ससार की अनूठी सम्पदा हे अनमाल निधि हे। इसी कारण सबन मातृहृदय की प्रशसा की है। पहल बालका का यह शिक्षा दी जाती थी –

टगमग पग टगता नही खाय न सकता खाद।
उठ न सकतो आपथी लेश हती नहि लाज।।
ते समये आणो दया बालक ने मा–बाप।
सुख आपे दु ख बेठने ते उपकार अमाप।।
कोई करे एवे समय बे घयिडक वरदास।
सारी उम्मर थइ रहे ते नरनी नरदास।।

इस प्रकार माता ने हृदय–बल से ही अपनी सन्तान को पाला है। इसी कारण बालको को ऐसी शिक्षा दी जाती थी। लेकिन आज के लोग उस हृदय–बल को भूलकर मस्तक के विचारो के अधीन हो जाते हैं और पत्नी के गुलाम बन कर माता की उपेक्षा करते हैं। यह कृतघ्नता नही तो क्या है।

मतलब यह है कि आत्मा मे जो शक्ति है वह हृदय बल द्वारा ही प्रकट की जा सकती है। जो लोग अपने हृदय की उपेक्षा करके मस्तिष्क द्वारा हिलाई हुई डोरी के अनुसार ही नाचते हैं वे आत्मिक शक्ति कैसे प्राप्त कर सकते है ? उस शक्ति को प्रकट करने का सामथ्र्य तो हृदय–बल मे ही है। इसी कारण सभी विवेकवान हृदय–बल की प्रशसा करते हैं। गीता में भी हृदय–बल की सराहना की गई है लेकिन यह बात अभ्यास करने पर ही मालूम होती है।

कुछ लोगो का खयाल है कि गीता लडाई की पुस्तक है। उसमे युद्ध को उभारने की शिक्षा दी गई है। मगर ऐसा होता तो गीता की गणना ऐतिहासिक पुस्तको मे होनी चाहिये थी। धार्मिक ग्रन्थों मे उसकी गिनती क्यो होती? बहुत से लोग उसे धार्मिक ग्रन्थ मानकर उसका अध्ययन करते हैं। ऐसा भी क्यो किया जाता? गीता वास्तव मे लडाई की पुस्तक नहीं है। उसमें आलकारिक रूप मे हृदय बल को प्रकट करने की शिक्षा दी गई है। मेरा यह विचार नवीन नही बहुत पहले का है और इसे मैं पहले भी प्रकट कर चुका हूँ। गीता मे कौरव–पाडव–युद्ध की बात आई है। किन्तु विचार करने पर ज्ञात होता है कि यहा आलकारिक रूप मे आसुरी शक्ति या मस्तिष्क की शक्ति को कौरव का रूप दिया गया है। दैवी शक्ति या हृदय–बल को पाडवो का रूप [illegible] दिया गया है। इन दोनो मे युद्ध कराकर दैवी शक्ति अथवा हृदय–बल की विजय दिखलाई गई है। अतएव गीता युद्ध की पुस्तक नही है किन्तु धर्म [illegible] की पुस्तक है। भारत मे ऐसा उच्चकोटि का साहित्य विद्यमान् [illegible] आधुनिक लोग भारत के इस साहित्य की तो उपेक्षा करते हैं [illegible] विदेशी इसी साहित्य का कुछ अश बोलता है तो उसे बहुत

महत्व देते हैं। कई लोगों को तो भारतीय साहित्य की बात पसन्द ही नही आती। लेकिन जिस प्रकार राम के मदिर मे राम की और भैरों के मन्दिर मे भैरो की ही मूर्ति होती है दूसरे की नही उसी प्रकार यहॉ तो भारतीय साहित्य की ही बात हो सकती है। फिर चाहे वह किसी को अच्छी लगे या न लगे।

गीता के सम्बन्ध मे यह मानकर विचार किया जाये कि वहा कौरव का अर्थ आसुरी शक्ति या मस्तिष्क का बल है और पाण्डव का अर्थ दैवी शक्ति या हृदय का बल है और इन्ही दोनो का युद्ध करवाकर देवी प्रकृति की विजय दिखाई गई है, तो गीता मे बहुत चमत्कार दिखाई देगा। पाण्डवो के रूप म वहा दैवी बल की स्थापना की गई है। युधिष्ठिर पाण्डव थे। उनसे वन मे भी अगर पूछा जाता था कि आप कैसे हैं तो वे सदैव यही उत्तर दिया करते थे–आनन्द है। इस प्रकार उनके सदैव आनन्द मे रहने का कारण यही था कि उन्हे हृदय–बल प्राप्त था। अतएव हृदय–बल को पाण्डवो का रूप दिया गया है। यह बात ठीक तरह समझाने के लिये महाभारत मे आई हुई एक घटना सुनाता हू।

पाण्डव वन मे थे। उस समय उनके दिन बहुत ही कष्टपूर्वक बीत रहे थे। यहा तक कि भरपेट भोजन भी उन्हे नही मिल पाता था। उन दिना एक बार धर्मराज सहज ही द्रौपदी की झोपडे मे चले गये। उस समय द्रौपदी किसी जगली अनाज को साफ कर रही थी। धर्मराज को आते देख द्रौपदी ने उठकर उनका स्वागत किया। धर्मराज ने द्रोपदी से पूछा–देवी क्या कर रही हो?

द्रोपदी– सच कह दू?

धर्मराज– क्या यह भी पूछने की बात हे? सत्य तो कहना ही चाहिये।

द्रोपदी– अगर आप सत्य सुनना चाहते हैं तो मे कहती हू कि आपका पाप भोग रही हू। मैं राजमहल मे रहने वाली सब तरह के सुख भोगने वाली और वीर पत्नी होकर भी आज यहा जगली अन्न साफ कर रही हू, उस आपका पाप न कहू तो क्या कहू? आप ही भीम अर्जुन को बराबर दबाया करते हे। अभी उस दिन की बात हे कि दुर्योधन को दूसरे लोगा ने बाध लिया था। अगर दुर्योधन उस समय मारा जाता तो अपना ता दु ख ही मिटता। लेकिन आपने उस पापी को बचा लिया। आपने ही विधान किया कि दुर्योधन दूसरे क द्वारा नही मारा जाना चाहिये। वह अपना भाई हैं। जब उसक साथ अपना युद्ध हागा ता व सो भाई हैं और हम पाच भाई है। लकिन

किसी तीसरे के साथ युद्ध होने पर अपना एक सौ पाच भाई हैं। इस प्रकार कह कर और अर्जुन को भेजकर आपने ही उस पापी को बचा लिया और मुझे यह दुख भोगना पड रहा है। इसलिये मै इस दुख को आपका ही पाप कहती हू।

धर्मराज– अच्छा देवी, उस समय मुझे क्या करना चाहिये था?

दौपदी– उसे मरने देना चाहिये था।

धर्मराज– देवी तुमने अब तक मुझे और मेरे सिद्धान्त को नही समझ पाया। यह मेरा दुर्भाग्य ही समझना चाहिए।

धर्मराज के यह कहने पर दौपदी कुछ हिचकिचाई। वह कहने लगी–महाराज अगर मुझसे कोई भूल हुई है तो आप बतलाइये। आपके शब्दों ने मुझे व्यथित कर दिया है।

धर्मराज– तुम मेरे हृदय को तो समझती हो, मगर तुमसे फिर–फिर भूल हो जाती है। देवी आज तुम ऐसा कहती हो लेकिन जिस समय मैंने तुम्हे जुए के दाव पर लगा दिया था, मै तुम्हे हार गया था और तुम्हारे वस्त्र खींचे जा रहे थे उस समय तुम्हारी रक्षा किसने की थी? उस समय तुमने किसकी प्रार्थना की थी। क्या उस समय तुम्हारी रक्षा भीम और अर्जुन ने की थी। वे तो मेरी ही तरह बने बैठे थे फिर तुम्हारी रक्षा कैसे हुई थी।

दौपदी– उस समय किसी ने मेरी रक्षा नहीं की थी। मैंने तब परमात्मा की ही प्रार्थना की थी कि हे–प्रभो। यहॉ मेरे पति और पितामह आदि सभी लोग बैठे है। फिर भी मेरी लाज जा रही है। इस समय मेरी रक्षा होनी चाहिये।

द्रौपदी ने जब सब ओर की आशा त्याग दी और वह निर्बल हो गई तब उसकी आत्मा में तेज आया। आत्मा जब तक अपने दुष्कृत्य नहीं त्यागता है तब तक उसे परमात्मिक बल की प्राप्ति नहीं होती। गीता मे कहा है –

येषा त्वन्तगत पाप जनाना पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मा दृढव्रता ।।

आशय यह है कि जो दुष्कृत्य नही त्यागते वे परमात्मा को नहीं भज सकते। वही पुण्यात्मा परमात्मा को भज सकते हैं, जिनके पाप सुकृत्यो के कारण नष्ट हो चुके हैं। जो लोग माया के चक्कर मे पडे हैं वे प्रथम तो परमात्मा को भजेगे ही नही, कदाचित् भजेगे भी तो केवल इसलिए कि मेरा अमुक प्रयोजन सिद्ध हो जाये। ऐसे लोग जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए परमात्मा को भजते हैं, वह प्रयोजन किसी कारण सिद्ध नहीं होता तो वे कहने लगते हैं–कहा परमात्मा। होता तो अपना परिचय न देता?

वास्तव में आत्मा अपनी भूल तो देखता नहीं है और केवल दूसरो के दोष देखा करता है। सूर्य का प्रकाश तो सर्वत्र फैल जाता है। मगर किसी अन्धे से पूछो तो क्या वह जान सकता है कि सूर्य के विषय मे क्या कहेगे। वे यही कहेगे कि सूर्य तो और अधिक अन्धकार करने वाला है। उसके निकलने पर हमको कुछ दीखता ही नही है। लेकिन देखना चाहिये कि यह सूर्य की भूल है या जिन्हे दिखाई नहीं देता उन्ही का दोष है। इसी प्रकार परमात्मा को देखने के सम्बन्ध मे भी आत्मा से भूल होती है। परमात्मा अगर ही दीखता है तो अपनी भूल के ही कारण। अन्यथा परमात्मा तो प्रत्यक्ष ही है। परमात्मा को इस हिसाबी पद्धति से नही देखा जा सकता कि मैंने यह किया है इसलिये मेरा यह काम होना चाहिये। परमात्मा को देखने के लिये समस्त बल का त्याग करना पडता है।

धर्मराज द्रौपदी से कहने लगे–देवी। उस समय तुम्हारी रक्षा किसने की थी। कदाचित् मेरे द्वारा अथवा भीम या अर्जुन द्वारा तुम्हारी रक्षा होती भी तो क्या वैसा आनन्द आता जैसा आनन्द उस तरह रक्षा होने मे आया। इस तरह विचार कर तुम वास्तविकता को समझो और हार्दिक विचारो को भूल कर मस्तिष्क के विचारो मे मत पडो। मस्तिष्क सदा सासारिक सुखा की ही खोज में रहता है किन्तु हृदय न्याय ओर धर्म को ही चाहता हे। मैंने हृदय की प्रेरणा से ही दुर्योधन को बचाया है। हृदय–बल के कारण ही मैंने उसका दूसरे के द्वारा नही मार जाने दिया। दुर्योधन भले ही धर्म को भूल जाय अन्याय के पथ पर चले और दुष्टतापूर्ण व्यवहार कर मगर उसके कारण मुझ ता हृदयबल

की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। सममाव का त्याग करना मेरे लिए उचित नही है। दूसरे की देखादेखी करके अपने सौजन्य को त्याग देने वाला पुरुष बुद्धिमान नही कहा जा सकता। बुद्धिमान् पुरुष प्रत्येक समय अपने ही स्वभाव को देखते हैं। किस प्रकार देखते हैं यह बताने के लिये तुम्हें एक बात सुनाता हू।

एक ब्राह्मण गगा के किनारे खडा हुआ था। किनारे के वृक्ष पर एक बिच्छू चढा था। वह गगा के जल मे गिर पडा और तडफडाने लगा। यह देख कर ब्राह्मण को दया आ गई। उसने एक पत्ता लेकर बिच्छू को उठाया। लेकिन बिच्छू हाथ पर चढ गया और उसने हाथ मे डक मार दिया। डक लगते ही ब्राह्मण का हाथ हिल गया और बिच्छू फिर पानी मे गिर पडा ब्राह्मण ने उस बिच्छू को फिर उठाया लेकिन फिर भी ऐसा ही हुआ। ब्राह्मण ने तीन–चार बार बिच्छू को उठाया लेकिन हर बार बिच्छू ने उसे काटा। यह हाल देख कर वहा खडे कुछ लोग कहने लगे–यह ब्राह्मण कितना मूर्ख है। बिच्छू इसे बार–बार काटता है और यह उसे बार–बार उठाता है। उसे मरने क्यो नही देता?

इन लोगो के कथन के उत्तर मे ब्राह्मण ने कहा–बिच्छू अपना स्वमाव प्रकट कर रहा है और मैं अपना स्वमाव दिखला रहा हू। जब बिच्छू अपना स्वभाव नही त्यागता तो मैं अपना स्वमाव कैसे त्याग दू।

धर्मराज कहते है–देवी यह हृदयबल का ही प्रताप था कि ब्राह्मण ने बिच्छू के बार–बार काटने पर भी उसे पानी से निकालना नहीं त्यागा। ब्राह्मण मे अगर हृदयबल न होता और सिर्फ मस्तक का ही बल होता तो वह भी दूसरो की तरह कह देता–मरता है तो मरे। बात यह है कि जिसमें हृदय का बल है वह दूसरे को देख कर अपना स्वमाव नही बदलता है उस ब्राह्मण की तरह यही सोचता है कि जब मेरा विरोधी अपना स्वमाव नही त्यागता तो मैं भी अपना स्वभाव क्यो त्यागू। देवी तुममे भी हृदय–बल है। हृदयबल न होता तो तुम हमारे साथ कष्ट क्यो भोगती। तुमने हमारे साथ रह कर बहुत कष्ट भोगे हैं इससे प्रकट है कि तुम्हे हृदयबल प्राप्त है और तुम सीता, तारा आदि सतियो के पदचिह्नो पर चल रही हो लेकिन कमी–कभी कष्ट से घबरा कर दुःख करने लगती हो।

जाती है। यद्यपि ससार में ऐसे-ऐसे नर-वीर भी हुए हैं जिन्होंने माता के लिए सब कुछ यहा तक कि स्त्री को भी त्याग दिया है। लेकिन ऐसे लोग भी कम नही हैं जो स्त्री को प्रसन्न करने के लिये माता का भी अपमान करने से नही चूकते। इस प्रकार ससार मे दोनों ही बल हैं ओर रहेगे, मगर हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि आत्मा का कल्याण हृदयबल से ही हो सकता है। हृदयबल होने पर दूसरो के कल्याण की कामना अन्त करण मे जागृत होती है। देश समाज या आत्मा के सुधार की लगन हृदयबल से ही उत्पन्न होती है। पश्चिमी देशों मे यद्यपि मस्तिष्क के बल को अधिक महत्त्व दिया जाता है, और प्रधानत उसी का आश्रय लिया जाता है लेकिन हृदयबल की प्रशसा तो उन्हे भी करनी पडती है।

सुना हे, एक अमेरिकन पुरुष भारत मे आया। एक भारतीय से उसकी मित्रता हो गई। अमेरिकन अपना कार्य समाप्त करके अमेरिका लोट गया। उसका वह भारतीय मित्र जब अमेरिका गया तब उसने अपने अमेरिकन मित्र से मिलने का विचार किया। वह उसके घर पहुचा। साहव उस समय घर नही था। उसकी पत्नी ने भारतीय अतिथि का सत्कार करके उसे बिठलाया। भारतीय ने पूछा- साहब कहा गये हैं। मेम साहिबा ने कहा- आप बेठिये अब उनके लौटने मे कुछ ही समय बाकी हे। आते ही होगे।

भारतीय सज्जन बैठे रहे। थोडी देर बाद ही उन्होने देखा कि साहव आ रहे हें मगर उनके दोनो कधो पर दो कुदाल रखे हैं और वे मिट्टी स लथपथ हैं। भारतीय सज्जन मन ही मन सोचने लगे-भारत मे यह इतन ऊच पद पर कार्य करता था ओर बडे ठाठ से रहता था। यहा इसका यह केसा हाल हे? क्या इसका दीवाला निकल गया हे? इस प्रकार सोचते हुए वह भारतीय उससे मिलने के लिए आगे बढे। उन्होने साहब का अभिवादन किया। मगर साहब उससे कुछ भी न बोले। जब साहब की लडकी ने उन्हे पानी दिया ओर साहब स्नान करके अपनी बेठक मे आये, तब वह अपने मित्र स मिल।

भारतीय मित्र ने साहब से पूछा- आप भारत मे तो बडे पद पर थ। अब यहा इस प्रकार क्यो रहना पडता हे। साहब बाले-हम लाग भारतीया सरीके नही हें। भारतीय तनिक आग बढे कि वास्तविकता का ओर अपन असली धधे का भूल जात हें। हम लाग नही भूलते। खती करना हमार बाप-दादो का धधा है। में जब तक भारत म था दूसरा काम करता था। लकिन जब यहा आया हू ता अपन पेतृक धध म लगा हू।

जान पडता है। उन्होने सोचा—जैसे बादल या राहु मे चन्द्रमा छिपा है उसी प्रकार मजदूर के भेष मे यह विद्वान् छिपा हुआ है।

भोज मे प्रजा हित की लगन बड़ी तीव्र थी। राजा मजदूर के पास पहुचा। उसने देखा मजूर की दृष्टि नीची ही है। उसने मेरी ओर देखा तक नहीं। राजा सोचने लगा—जान पडता है यह आदमी इन्द्रियों को दमन करने वाला है। यह मेरे बोले बिना बोलेगा भी नही। मुझे स्वय बात आरम करनी चाहिये। भोज के जमाने में सस्कृत भाषा का अच्छा प्रचार था। भोज स्वय सस्कृत भाषा का उच्चश्रेणी का ज्ञाता था। अतएव उसने पद्यमय सस्कृत भाषा मे प्रश्न किया—

कियन्मान जल विप्र।

यद्यपि जल की गहराई साफ मालूम हो रही थी, फिर भी राजा ने मजदूर की परीक्षा करने के लिये प्रश्न किया। नदी मे कितना जल है।

मजदूर ने राजा की ओर देखकर जान लिया कि राजा मेरी परीक्षा कर रहा है। यह सोच कर उसने भी पद्य मे ही उत्तर दिया—

जानुदग्घ नराधिप ।

अर्थात् – हे राजन्, जानु से नीचे यानी घुटनो तक है।

यह उत्तर सुनकर राजा समझ गया कि यह पुरुष विद्वान् है। अन्यथा पद्य में उत्तर कैसे देता? राजा ने फिर सोचा—इसकी अधिक परीक्षा करनी चाहिये और अधूरे श्लोक को पूरा भी कर लेना चाहिये। यह सोच कर उसने फिर प्रश्न किया –

कर्थ सेयमवस्था ते ।

अर्थात्—तुम्हारी यह दशा क्यो है। राजा के इस प्रश्न के उत्तर मे मजदूर ने—जो जाति से ब्राह्मण था, कहा –

न हि सर्वे भवादृशा ।

अर्थात् सभी आप सरीखे नहीं हैं।

राजा सोचने लगा—इसका उत्तरदायित्व राजा होने के नाते मुझ पर आता है। इस का दु ख मिटाना मेरा कर्त्तव्य है। यह सोच कर राजा ने विद्वान से कहा—'यह अपने सिर पर का लकडी का भारा नदी मे फैंक दो। राजा का यह कथन सुन कर वह सोच सकता था कि कौन जाने राजा कुछ देगा भी या नही। कही ऐसा न हो कि मरा गाठ का भारा भी चला जाये। मगर उसने ऐसा नहीं सोचा। उसने यही विचार किया कि जब राजा भारा फैंकने का

कहता है तो इसे फैंक देने मे क्या हानि है। कुछ न भी देगा तो न सही। मेरा एक भारा ही तो जायेगा।

उसने लकडी का भारा नदी मे फैंक दिया। यह देख कर राजा ने सोच लिया यह त्यागी है और मेरे वचन पर श्रद्धा भी रखता है। इसके बाद राजा ने उससे कहा–तुम जाकर भण्डारी से कहो कि महाराज ने मुझे एक हजार मोहर देने के लिये कहा है। वह मोहरें मुझे दे दो।

राजा के यह कहने पर विद्वान कह सकता था कि ऐसा कह देने मात्र से कौन हजार मोहरे निकाल कर दे देगा। आप किसी को साथ भेजिये या कुछ लिख कर दे दीजिये। मगर उसने ऐसा कुछ भी नही कहा। उसने सोचा–भण्डारी देगा तो ठीक है नही तो एक चक्कर ही सही। इससे ज्यादा और क्या बिगाड होना है। इस प्रकार सोचकर वह भण्डारी के पास जाने को चल दिया। दरिद्र वेष मे होने के कारण वह बडी कठिनाई से भडारी के पास पहुच सका। वहा पहुच कर उसने कहा–महाराज ने हजार मोहरे देने के लिये कहा है। भडारी ने उससे पूछा तुमने ऐसा कौन–सा काम किया है। विद्वान ने उत्तर दिया और तो कुछ नही किया, महाराज के कहने से अपने सिर का भारा नदी मे डाल दिया है।

भण्डारी ने कहा–इतने से काम के लिये हजार मोहरे। कभी हजार मोहरे देखी भी हैं? सीधा–सामान के लिये कहा होता तो भी ठीक था। जाओ यहा से।

विद्वान लौट कर राजा के पास गया। राजा तो पहले ही जानता था कि इस प्रकार भडारी हजार मोहरे नही देगा। वह तो केवल विद्वान का धैर्य देखना चाहता था। फिर भी राजा ने पूछा– मोहरे मिल गई?

राजा के इस प्रश्न को सुनकर किसी दूसरे को क्रोध आ सकता था। मगर विद्वान् ने क्रोध नही किया। उसने कहा –

राजन्! कनकधाराम्यो भवाम् सर्वत्र वर्षति।
अभाग्यछत्रसच्छिन्न्ने मयि नायान्ति बिन्दव ।।

अर्थात्–हे राजन्! आप तो सर्वत्र स्वर्णधार बरसाते हैं परन्तु मेरे सिर पर अभाग्य का जो छत्र लगा हुआ है उसके कारण मेरे ऊपर एक बूद भी नही गिरती दुर्भाग्य का छत्ता आडा आ रहा है।

का आशय समझ गया उसने विद्वान से कहा—अच्छा, तुम भण्डारी के पास फिर जाओ। उससे कहो कि राजा ने कहा है कि दो हजार मोहरे दे दो।

ब्राह्मण कह सकता था कि भडारी ने एक हजार मोहरे तो दी नही दो हजार वह कैसे दे देगा? लेकिन उसने कुछ नही कहा और चुपचाप भण्डारी के पास चला गया।

भण्डारी ने उसे दुबारा आया देख कर कहा—तू फिर आ गया! अब क्यो आया है?

ब्राह्मण— महाराज ने आपको आज्ञा दी है कि आप मुझे दो हजार मोहरे दे दे।

भण्डारी— अरे, भाई तूने ऐसा क्या काम किया है?

ब्राह्मण— मैंने दूसरा कुछ काम तो नही किया केवल राजा से यह कहा था कि आप तो बरसते हैं लेकिन मेरे सिर पर अभाग्य का छत्र है वह एक भी बूद मेरे ऊपर नही गिरने देता।

भण्डारी— जो, चल यहा से। इस तरह कही दो हजार मोहरे मिला करती हैं? इतना कहने के साथ ही भडारी ने सिपाहियो को आज्ञा दी कि इसे धक्के देकर बाहर निकाल दो।

सिपाहियो मे दया कहाँ? उन्होने अपनी आज्ञाकारिता फौरन दिखला दी। धक्के खाकर भी विद्वान कुछ नही बोला। उसने सोचा—यह मार खाना भी व्यर्थ नही है। यह मार इन सिपाहियो की नही राजा की हे।

धक्के खाकर भी ब्राह्मण अपने घर नही गया। वह सीधा फिर राजा के पास पहुचा। राजा ने फिर पूछा—मोहरे मिली? ब्राह्मण ने भडारी या सिपाहियो के विरुद्ध एक शब्द भी न कहते हुए यही कहा —

त्वयि वर्षति पर्जन्ये सर्वे पल्लविता द्रुगा ।
अस्माक कर्मवृक्षाणा पूर्वपत्रेषु सक्षय ।।

अर्थात—आप रूपी मेघ से तो मूसलाधार वर्षा हो रही हे। जिससे वृक्ष पल्लवित हो गये हें जो सूखे थ वे भी हरे हो गये हें। लेकिन मेरा कर्म—वृक्ष ही ऐसा है जिसके लिये यह वर्षा भी विपरीत फल दने वाली सिद्ध हुई। जेसे वर्षा होने पर दूसरे वृक्ष हरे—भरे हो जाते हें किन्तु जवासा के पहल वाल पत्त भी सूखकर गिर जाते हें इसी प्रकार आपकी वर्षा स मर कर्मवृक्ष क भी पहल वाल पत्त गिर गय हें।

यद्यपि ब्राह्मण न स्पष्ट नहीं कहा कि मुझ माहरा क बदल मार खानी पडी ह—मुझ मिला कुछ नही हे। लकिन उसक इस कथन स राजा समझ गया

कि इसे कुछ नही मिला है, यही नही वरन् अपमानित होना पडा है। यद्यपि ब्राह्मण मे मस्तिष्क का भी बल था और हृदय का भी बल था। इसी कारण ब्राह्मण ऐसी बात कह सका और इसी से वह इतना धैर्य रख सका। आप भी अपने मस्तिष्कबल को अपने हृदय बल के अधीन रखे तो बुद्धि को एकाग्र बनावे। गीता मे कहा है –

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकैव कुरुनन्दन ।

राजा ने अपने सामन्तो को आज्ञा दी कि तुम लोग इस विद्वान् के साथ जाओ और भण्डारी से कहो कि इस ब्राह्मण को चार हजार मोहरे दे दे। इसे हैरान न करे। भण्डारी से कह देना कि इस पण्डित की परीक्षा हुई थी। इसने धैर्य दिखलाया है। इसी के बदले इसे चार हजार मोहरे दी जा रही हैं।

सामन्त विद्वान को लेकर भण्डारी के पास गये। अब तो भडारी को मोहरे देनी ही पडेगी। किन्तु धैर्य के बदले मे विद्वान् को मोहरे मिल रही हैं–मुफ्त मे नही। जो समय पर धैर्य रखते हैं और परीक्षा से घबराते नहीं हैं उन्हे अन्त मे अवश्य सफलता प्राप्त होती है।

सामन्तो ने जाकर भडारी से कहा–इस विद्वान् पर महाराज बहुत प्रसन्न है। महाराज ने आज्ञा दी है कि इसे चार हजार मोहरे दे दी जाये। तुम इसे व्यर्थ क्यो हैरान करते हो। महाराज इस विद्वान् पर प्रसन्न हैं, यह जान कर भण्डारी उसकी खुशामद करने लगा। उसने सोचा – कहीं ऐसा न हो कि महाराज से मेरी शिकायत कर दे। विद्वान् भण्डारी का अभिप्राय समझ गया। उसने भण्डारी को आश्वासन देते हुए कहा–तुम चिन्ता मत करो। तुमने मेरा अहित नही हित ही किया है। मे महाराज से तुम्हारे विरुद्ध कुछ नहीं कहूगा। पहली बार तुम मोहरे दे देते तो तुम्हे उपालम्भ मिलता कि बिना प्रमाण पाये मोहरे क्यो दे दी? और मुझे भी चार हजार के बदले एक ही हजार मिलती। अतएव मै तुम्हारे प्रति असन्तुष्ट नही हू। इस प्रकार भडारी को सन्तुष्ट करके और चार हजार मोहरे लेकर विद्वान पण्डित अपने घर चल दिये।

नम्रता आती जायेगी त्यो–त्यो आपका अधिक कल्याण होगा। परमात्मा की पूजा का यही मार्ग है। कोई इस प्रकार की पूजा मन से करता है, कोई वचन से करता है, कई कार्य से करता है और कोई मन, वचन, कर्म से करता है। कई लोग पूजा का अर्थ दूसरा करते हैं। मगर भगवतीसूत्र मे कहा है कि राजा श्रेणिक ने भगवान् महावीर की पूजा तीन तरह से की थी। जो मन से पूजा करता है वह अपने मन मे दुर्गुण नहीं रहने देता। वह अपनी दैवी सम्पद् से पूजा करता है। गीता मे दैवी सम्पद् का वर्णन करते हुए कहा है कि अहिसा, सत्य आदि दैवी सम्पद् मे हैं। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि हृदय का बल दैवी सम्पद् है और मस्तिष्क का बल आसुरी सम्पद् है अतएव तत्कालीन लाम न देखते हुए हृदय के बल का विकास करने की आवश्यकता है। अदृश्य शक्ति महान् शक्ति है। उस पर विश्वास रख कर दूसरे के कल्याण मे अपना कल्याण मानो। धीरज रखो। दीन–हीन मत बनो। अपने आत्मबल को विकसित करो। ऐसा करने से आपको वह सम्पदा प्राप्त होगी जिसके सामने तीन लोक की समस्त मौतिक सम्पदा नाचीज हैं, तुच्छ हैं। कल्याणमस्तु।▲

मोरवी
3–8–38

▲ महाराज मौरवी नरश महाराजा सायला और राजकुमार वीरवर की उपस्थिति मे दिया गया व्याख्यान।

3 : आत्मा और परमात्मा

श्रेयास जिनद सुमर रे ।

यह भगवान् श्रेयासनाथ की प्रार्थना है। आत्मा को परमात्मा के सम्मुख करने के लिए इस प्रार्थना मे प्रबल प्रेरणा करते हुए कहा गया है कि–हे आत्मन्! तू सो क्यो रहा है! अरे तू किस मोह मे पडा है? तू गफलत मे मत रह। परमात्मा का भजन कर।

प्रत्येक आस्तिक मत वाला परमात्मा का भजन करने मे सहमत है। मगर परमात्मा के भजन के परिणाम के विषय में कुछ–कुछ मतभेद भी पाया जाता है। उस मतभेद के कारण अनेक विवादग्रस्त प्रश्न सामने आते हैं। उन सब प्रश्नो पर विस्तारपूर्वक विचार करने और उनका निराकरण करने के लिए बहुत समय की आवश्यकता है। अतएव इस सबध में अधिक न कह कर सक्षेप मे ही विचार किया जायेगा।

कई लोगो की यह कल्पना है कि ससार मे राजा और प्रजा का जो स्थान है वही परमात्मा और आत्मा का स्थान है। प्रजा, राजा की भक्ति और उपासना करके भी प्रजा ही रहेगी, वह स्वय राजा नही बन सकती। इस प्रकार प्रजा प्रजा ही रहती है और राजा राजा ही रहता है। दोनों में जो भिन्नता है वह मिट नही सकती। परमात्मा राजा की तरह है और आत्मा प्रजा की तरह है। आत्मा परमात्मा का कितना ही भजन क्यो न करे वह परमात्मा बनने मे सदैव और सर्वथा असमर्थ है। दोनो का एक रूप होना सम्भव नही। इस विचार से प्रेरित होकर कुछ दर्शनकारो ने ईश्वर को आत्मा की कोटि से अलग ही रखा है। उनका कहना यह है कि जिस प्रकार प्रजा राजा को भजती है, उसी प्रकार जगत के जीवो को परमात्मा का भजन करना चाहिए। लेकिन उस भजन करने वाली प्रजा प्रजा ही रहेगी और जिसका भजन किया

जाता हे वह राजा ही रहेगा उसी प्रकार परमात्मा परमात्मा ही रहेगा और आत्मा आत्मा ही रहेगी।

गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये ओर परमात्मा एव आत्मा के असली स्वाभाविक गुणो पर ध्यान दिया जाये तो प्रतीत होगा कि यह मान्यता वास्तविक नहीं हे। आत्मा का स्वरूप चेतन अर्थात ज्ञान–दर्शन है। परमात्मा भी चेतन–स्वरूप है। परमात्मा 'सच्चिदानन्द कहलाता हे। इस सच्चिदानन्द पद मे तीन गुणो का समावेश होता हे – (1) सत्ता (2) चैतन्य ओर (3) सुख। इन तीनो गुणो मे एक भी ऐसा नहीं जो आत्मा में मौजूद न हो। जव आत्मा हे तो उसमे सत्ता माननी ही पडेगी। आत्मा का चैतन्य गुण अनुभव से सिद्ध हे। अगर आत्मा मे चेतन्यगुण स्वीकार न किया जाये तो वह जड पदार्थ बन जायेगी। फिर उसे जो सवेदन होता हे वह केस हो सकेगा। इसी प्रकार आनन्द गुण भी आत्मा में स्वाभाविक रूप से मोजूद हे। आनन्द गुण आत्मा मे न होता तो उसे सुख की प्रतीति केसे होती?

इस प्रकार हम देखते हें – अनुभव करते हें कि परमात्मा के सभी गुण प्रत्येक आत्मा मे स्वभावत विद्यमान हें। जव दोनो मे समान गुण हैं तो दोनो को मूलत पृथक् केसे किया जा सकता हे? एक वस्तु से दूसरी वस्तु की भिन्नता गुणो मे भेद होने के कारण ही होती हे। जैसे जड ओर आत्मा के गुणो मे भेद हे अत इन दोनो को भिन्न–भिन्न मानना पडता हे। लेकिन आत्मा ओर परमात्मा के गुणों मे ऐसा कोई अन्तर नही हे। ऐसी स्थिति मे दोनो मे मोलिक भेद नही हो सकता।

आत्मा ओर परमात्मा मे अगर जड ओर आत्मा की तरह मोलिक भेद होता तो परमात्मा आत्मा के लिए आराध्य नही होता। जव आत्मा स्वय परमात्मा वन ही नही सकती तो फिर परमात्मा का आदर्श आत्मा को अपने सामने रखने की आवश्यकता ही क्या हे? तव तो परमात्मा का रास्ता जुदा ओर आत्मा का रास्ता जुदा होता।

कहा जा सकता हे कि अगर आत्मा और परमात्मा के गुण समान हे ओर दोनो एक ही कोटि मे हें तो फिर दोनो मे अन्तर नही होना चाहिए। फिर परमात्मा आराध्य ओर आत्मा आराधक क्या? इस प्रश्न का उत्तर में अपने अनेक व्याख्यानो मे दे चुका हू। यहा भी सक्षेप मे कहता हू। वात वास्तव मे यह हे कि आत्मा ओर परमात्मा के गुणो मे मूलत कोई अन्तर न होने पर भी दोनो के गुणो के विकास मे अन्तर हे। परमात्मा वह हे जिसके समस्त स्वाभाविक गुण अपनी पूर्णता पर पहुच गये हें ओर आत्मा के गुण कर्म–विकारो

से आच्छादित है। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा मे वास्तविक अन्तर न होने पर भी उपाधि के कारण अन्तर है। यह अन्तर अस्वाभाविक है, इसीलिये मिटाया जा सकता है और इसी को मिटाने के लिये परमात्मा की उपासना, जप स्वाध्याय सयम आदि का आचरण किया जाता है। जिस प्रकार परमात्मा उपाधि रहित है उसी प्रकार जीव भी उपाधि रहित होने पर परमात्मा बन सकता है। भवरी एक सामान्य जीव है। उसकी सगति से लटकीडा भी भवरी बन जाता है और इसमे भवरी को कोई ऐतराज नहीं होता है। ऐसी स्थिति मे परमात्मा का भजन करने पर परमात्मा का बन जाना क्या असम्भव है। ऐसा होने मे परमात्मा को किसी प्रकार का ऐतराज नही हो सकता। ईश्वर को ऐतराज होने का कोई कारण नही हो अतएव सर्वथा द्वैतवाद के कथनानुसार जीव सदा जीव ही नही रहता है किन्तु उपाधि रहित होते ही जीव परमात्मा बन जाता है।

अलबत्ता परमात्मा बनने के लक्ष्य को सभी जीव एकदम प्राप्त नहीं कर सकते। कोई–कोई महापुरुष ही ऐसा कर सकते हैं। लेकिन लक्ष्य तो सब का वही होना चाहिये। लक्ष्य एक ही होने पर भी सिद्धि तो किसी–किसी को ही प्राप्त होती है। सब को सिद्धि प्राप्त न होने पर भी लक्ष्य को झुकाया नही जा सकता। आदर्श को गिराया नही जा सकता। अगर आदर्श को गिरा दिया जायेगा तो अनेक खराबिया उत्पन्न होगी। उदाहरणार्थ–लडके जब पढने के लिए पाठशाला मे जाते है तब उनके सामने अक्षर बनाने के लिये जो लिपि पुस्तक रखी जाती है उसके अनुसार सभी अक्षर नही बना सकते। वैसे अक्षर तो कोई–कोई ही बना सकता है। लेकिन इसी कारण क्या अक्षरो का आदर्श घटाया जाता है? जिस प्रकार अक्षरो का आदर्श नही घटाया जाता उसी प्रकार परमात्मा बनने का आदर्श भी नही घटाया जा सकता। अतएव आदर्श को अपने सामने रखकर परमात्मा बनने का प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न करने पर कभी न कभी सिद्धि होगी ही। कहा भी है –

अनेकजन्मससिद्धिस्ततो याति परा गतिम।

चाहिए, क्योकि यह आदर्श क्षत्रियों का है और युवराज भी क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय शब्द का अर्थ इस प्रकार किया जाता है –

क्षतात्–नाशात् त्रायते इति क्षत्र, तदस्यास्तीति क्षत्रिय।

जो विपत्ति मे पडे नष्ट हो रहे हैं, उनकी रक्षा करना क्षत्रियधर्म है और जो इस धर्म को धारण करता है उसे क्षत्रिय कहते हैं। क्षत्रिय मे वीरता होती है। वीरता के तीन प्रकार हैं – (1) रजोगुणी वीरता (2) सतोगुणी वीरता और (3) तमोगुणी वीरता। कई लोगो का कहना है कि शराब पीने से वीरता आती है मगर इस तरह आई हुई वीरता तमोगुणी वीरता है। कइयो का कहना है कि हथियार रखना ही चाहिये। जो हथियार न रखे वह कैसा वीर। किन्तु हथियार के सहारे जो वीरता होती है वह रजोगुणी वीरता है। ज्ञानी कहते हैं कि सतोगुणी वीरता इन दोनो वीरताओ से बढकर है। सतोगुणी वीरता के सामने रजोगुणी और तमोगुणी वीरता तुच्छ है। बिजली से भी प्रकाश होता हे और दीपक भी प्रकाश करता है, लेकिन सूर्य के प्रकाश की बराबरी कोई प्रकाश नहीं कर सकता। इसी प्रकार जगत् मे सतोगुणमय वीरता की बराबरी यह दोनो वीरताए नही कर सकती।

कल मैंने मस्तिष्क और हृदय के बल के विषय में कहा था। मस्तिष्क का बल, चाहे वह कैसा भी क्यो न हो हृदयबल का मुकाबला नही कर सकता। मस्तिष्क के बल वाले ऐसे भी हो सकते हैं जो जल को थल और थल को जल भाग के रूप मे पलट दें, लेकिन हृदय बल के बिना क्षण भर भी जगत का काम नही चल सकता। माता मे हृदयबल न होता तो मस्तिष्क के बल वाले व्यक्ति का जन्म कैसे होता? उसका पालन–पोषण कौन करता? अतएव स्पष्ट है कि जगत् के लिए मस्तिष्कबल की अपेक्षा हृदयबल की अधिक आवश्यकता है। मेरे कहने का आशय यह नही हे कि ससार मे मस्तिष्कबल की आवश्यकता ही नही हे। मे यह कहता हू कि मस्तिष्कबल के बल को हृदय के बल के अधीन रखना चाहिये। जेसे माता पुत्र को अपने अधीन रख कर उसकी उन्नति करती है उसी प्रकार मस्तिष्कबल को हृदयबल के अधीन रखकर विकसित करना चाहिये। माता यह कदापि नही चाहती कि मेरे पुत्र की उन्नति न हो। वह उन्नति चाहती है और इसीलिये शिक्षा दिलवाती ह मगर रखना चाहती हे अपनी अधीनता मे। वह अपने बालक का निरकुश होना पसद नहीं करती है। यह बात अलग हे कि आज की शिक्षा का रग बदला हुआ ह। ओर माताए भी इस ढग से प्रभावित हाकर एसी ही शिक्षा दिलवाती हें लकिन जा कुछ भी व करती हें पुत्र की हित कामना स प्रेरित

होकर ही करती हैं। फिर भी माता अपने नियन्त्रण में ही अपने पुत्र को रखना चाहती हैं। इसी प्रकार मस्तिष्कबल को विकसित तो करना चाहिये लेकिन हृदयबल की अधीनता मे ही। उस पर सदैव हृदयबल का नियत्रण रहना चाहिये।

प्रवचन–माता का आपके लिये यह आदेश है कि मस्तिष्क के बल को हृदयबल के नियत्रण मे रखे। हृदयबल वाले मे कैसी उदारता है और हृदयबल के होने पर क्या होता है, समझने के लिये एक उदाहरण लीजिये। यह उदाहरण जगत्–मान्य है। रामचन्द को कौन नहीं जानता? उन्ही का उदाहरण लीजिये –

रामचन्द जब योग्य अवस्था के हो गये तो प्रजा उनका राज्याभिषेक दखने के लिये लालायित हो उठी। लोग सोचने लगे–महाराज इन्हे राज्यसत्ता क्या नही देते? इस तरह की बाते नगर मे हो रही थी कि इतने मे ही एक बात हो गई। महाराज दशरथ को अपने सिर पर सफेद बाल नजर आ गया और वह भी कान के पास। सफेद बाल देखकर दशरथ सोचने लगे–यह बाल क्या सदश दे रहा है? यह बाल मानो कह रहा है कि–राजा राजपाट छोडकर भगवान का भजन करो। अब ससार की प्रवृत्तियो से निवृत्ति लो। यदि तुम निवृत्ति न लोगे तो दूसरे लोग भी यही सोचेगे कि ससार मे कोई आनन्द है, तभी तो राजा से ससार नही छोडा जाता। और इसी कारण राम के योग्य हो जाने पर भी राजपाट उन्हे नही सौपते है।

आप लोग अपनी सन्तान के सामने क्या आदर्श उपस्थित करते हैं? अगर आप सतान के सामने त्याग का आदर्श रखेगे तो सतान भी त्यागशील होगी। इसके विपरीत अगर आप स्वय ससार को ज्यादा पकडे रहे तो सतान का ज्यादा पकडना स्वाभाविक ही है।

राजा ने राज्याभिषेक की तैयारी करने का आदेश दे दिया ओर अगला दिन अभिषेक के लिए नियत कर दिया।

पहले के जमाने मे राज्याभिषेक या विवाह आदि के अवसरो पर आजकल की तरह आडम्बर नहीं होता था। अतएव तैयारी मे अधिक समय भी नही लगता था। प्राय एक ही दिन मे सारा काम निपटा दिया जाता था। इसी कारण राजा दशरथ ने कहा कि सब तेयारी कर ली जाये। और कल सवेरे ही राम को राज्य दे दिया जाये। इधर सूर्य निकलेगा, उधर रामचन्द्र राजसिहासन पर बैठेगे।

रामचन्द्र के राज्याभिषेक का समाचार सारे नगर मे फैल गया। रामचन्द्र के मित्र इस समाचार से फूले न समाये। कोई सोचने लगे—अब हमारी पाचो उगलिया घी मे हैं। कोई कहने लगा—हमारी सात पीढियो की दरिद्रता अब दूर हो जायेगी। स्वार्थी लोग ऐसे—ऐसे कारणो से ही बडो के साथ मित्रता रखते हैं। राम के ऐसे मित्र सोचने लगे—मैं सबसे पहले पहुच कर बधाई दू तो मेरी विशेषता हे।

इस प्रकार सोचकर वे राम के पास पहुचे। उस समय राम किसी गम्भीर चिन्ता मे डूबे थे। वे अपने कर्त्तव्य के विषय मे विचार कर रहे थे। व सोच रहे थे कि आखिर मेरे जीवन का उद्देश्य क्या हे? मैं राजसिहासन को अलकृत करू या जनता की सेवा करू? राजसत्ता द्वारा जनता का काई विशष उपकार नहीं हो सकता। जन साधारण के उपकार के लिए योगसत्ता अपेक्षित हे। लेकिन मुझे कोनसे मार्ग का अवलम्बन करना चाहिये?

रामचन्द्र जब विचारो की तरगो मे बहते—बहते स्थिर न हो पाय ता उन्हे सीता का ध्यान आया। सीता से कहने लगे—सीता तुम मेरी धर्मपत्नी हा और राज्य करते हुए भी आध्यात्मिकज्ञान रखने वाले महाराज जनक की पुत्री हो। अतएव मे तुमसे परामर्श चाहता हू। कहो मेरे जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिय?

सीता क बदल दूसरी कोई होती ता चटपट उत्तर दती—'प्राणनाथ। राजा बन कर आनन्द भागो ओर मेर लिय एस—ऐस जवर बनवा दा। लकिन सीता ता सीता ही थी उसन नम्रतापूर्वक कहा—स्वामिन् मे आपकी दासी हू। मे आपक सम्बन्ध म क्या कह सकती हू? फिर भी इतना निवदन अवश्य करूगी कि आप जैस असाधारण पुरुष के द्वारा काई असाधारण—अलौकिक कार्य हाना ही चाहिय जिसस आपक आदर्श का सम्मुख रखन स जनता का

कल्याणमार्ग सरल हो जाये। जगत मे इस समय अधर्म फैला हुआ है। जनता मे धर्मजागृति उत्पन्न करने योग्य कोई कार्य हो तो अच्छा है।

राम ने अपने जीवन का ध्येय निश्चित करने के लिये सीता से सलाह ली थी। क्या आप भी कभी अपनी पत्नी से इस प्रकार सलाह लिया करते है? अगर आपके विचार राम के समान उदार हो और आपकी पत्नी सीता के समान आपकी सहायिका बने तो इस ससार में सीता और राम के अनेक जोडे दृष्टिगोचर होने लगे।

सीता का विचार सुन लेने के पश्चात् राम ने लक्ष्मण के सामने भी वही समस्या उपस्थित की। लक्ष्मण बोले मैं और कुछ नही जानता सिर्फ आपकी आज्ञा जानना चाहता हू। आपको सलाह देने की योग्यता मुझ मे नही है। फिर भी आपने पूछा है तो यह निवेदन करना चाहता हू कि सासारिक प्रवृत्तियो मे तो सभी फसे रहते हैं। आपके द्वारा कोई प्रधान कार्य ही होना योग्य है। आपके हाथों जगत कल्याण का कार्य न हुआ तो फिर किसके हाथ से होगा?

इस प्रकार सीता और लक्ष्मण की सम्मति लेकर रामचन्द्र ने निश्चय किया कि कल पिताजी से निवेदन कर देना चाहिये कि मैं निवृत्ति मे ही रहना चाहता हू मै राज्य सबधी झझटो मे नही फसना चाहता।

इधर राम ने यह सोचा और उधर उनके मित्र आ धमके। मित्रो ने उन्हे प्रसन्नता के साथ बधाई दी। रामचन्द्र ने बधाई के उत्तर मे कहा—मैं राज्यबल ग्रहण नही करना चाहता। मेरी इच्छा योगबल प्राप्त करने की है। राज्य सभालने के लिये तो मेरे दूसरे भाई हैं ही। मै राज्य लेकर क्या करूगा? आश्चर्य है कि दूसरे भाइयो के होते हुए पिताजी ने मुझे राज्य देने का विचार क्या किया?

अर्थात्–जगत् मे फसे हुए लोग जिसे अधकार कहते हैं, ज्ञानीजन उसे प्रकाश कहते हैं और जगत् के लोग जिसे प्रकाश मानते हैं, योगी उसे अधकार समझते हैं।

इस प्रकार सर्वसाधारण में और ज्ञानियों में भेद है। जब तक मस्तिष्क मे और हृदय मे भिन्नता रहेगी तब तक ज्ञानियो मे और आपमे भिन्नता रहना स्वाभाविक है। जब आप मस्तिष्क को हृदय के अधीन कर लेगे तो बहुतेरे विवाद स्वत शात हो जायेगे।

राम का कथन सुनकर उनके मित्र सोचने लगे– यह अद्भुत बात है। राज्य के अधिकारी आप हैं। छोटे भाई राज्य कैसे पा सकते हैं?

राम ने कहा–यह ठीक है कि मैं बडा हू और इसी कारण यह भी ठीक है कि राज्य मुझे नहीं मिलना चाहिये। बडप्पन लेने मे नही देने मे हैं।

राम के कुछ मित्रो ने समझा, राम मे आज पागलपन आ गया है। इनसे भविष्य मे क्या आशा की जा सकती है। अतएव वे निराश होकर धीरे–धीरे खिसक गये। कुछ सरल हृदय मित्र बैठे रहे। उन्होने कहा–आपके विचार अतिशय उदात्त हैं। मानवीय बुद्धि जिस ऊचाई पर पहुच नही सकती उस पर आप अनायास ही जा पहुचे हैं। निस्सदेह आप असाधारण पुरुष हैं और आपके द्वारा जगत् का महान् कल्याण होगा।

राम ने कहा–मुझे प्रसन्नता है कि मेरे विचार आपकी समझ मे सही है। देखना तो यह है कि मेरे विचार क्रियान्वित होगे या नही।

प्रात काल होने पर रामचन्द्रजी प्रति दिन की भाति पिता को प्रणाम करने गये। वहा देखा कि सारा मामला ही बदल गया हे। रानी केकेयी ने किस प्रकार वरदान मागा यह बात प्रसिद्ध है। महाराज दशरथ को इस माग के कारण ऐसा धक्का लगा कि वे बेहोश हो गये। उसी समय रामचन्द्र वहा पहुचे। पिता को मूर्छित देख राम सोचने लगे–मेरे होते हुए पिता का किसी प्रकार का कष्ट होना मेरे लिये कलक की बात हे। यह सोच कर उन्हाने पिता को आवाज दी। आवाज सुनकर दशरथ ने आखे खोलीं ओर राम को देख कर फिर बन्द कर ली। राम ने सोचा–पिताजी को कोई बहुत बडा आघात लगा जान पडता हे। उन्हाने अपनी दृष्टि पीछे फेरी ता वहा केकेयी वेठी दिखाई दी। राम न उसे प्रणाम किया। वह बोले माता मेंन अभी तक आपका दखा नही था ओर इसी कारण प्रणाम नही किया मेरी भूल क लिय क्षमा कीजिय। मैं यह जानना चाहता हू कि पिताजी आज दु खी क्या हें?

राम का कथन सुनकर कैकेयी ने रुखाई के साथ कहा—राम, तुम मिष्टभाषी हो और तुम्ही क्यो, तुम्हारे पिता और तुम्हारी माता ने भी मीठा बोलना खूब सीखा है परन्तु मै अब मीठी बोली के भुलावे मे आने वाली नही हू।

यह अप्रत्याशित उत्तर सुनकर राम को बहुत दु ख हुआ। वह कहने लगे—माताजी आपने किस आशय से यह बात कही है? मैं अपना अनिष्ट करने वाले के पति भी कटुक भाषण नहीं कर सकता। फिर आप तो मेरी माता है। आपसे कटुक बात कैसे कह सकता हू? आपके कहने से मालूम होता है कि आपके सामने मेरा मीठा बोलना आपको भुलावे मे डालना है। मगर ऐसा समझना भ्रम है। आप किसी भी समय मेरी परीक्षा करके देख लीजिये कि क्या मे आपको भुलावे मे डालने के लिए मीठा बोल रहा हू?

कैकेयी ने कहा—अच्छा, तुम बताओ कि महाराज ने मुझे जो वर दिया था उसे मागने का अधिकार मुझे है या नहीं? और मैं अपनी इच्छा के अनुसार वर माग सकती हू या नहीं?

राम—हा आपको वर मागने का अधिकार है और आप अपनी इच्छा के अनुसार ही वर माग सकती हैं।

कैकेयी—मेरे वर मागने के कारण ही महाराज मूर्छित हो गये हैं। तुम पूछ लो कि इन्होंने मुझे वर मागने के लिए कहा था या नहीं? और इनके कहने से ही मैंने यह वर मागा है या नही? जब इनके कहने से ही वर मागा है तो मै कोई तुच्छ चीज तो क्या मागती? मैने भरत के लिय राज्य मागा है। लेकिन महाराज भरत को शायद इस योग्य नही समझते। सम्भव है कोई दूसरा कारण भी हो। इसी से महाराज मूर्छित भी हो गये हैं। मैंने यह भी कह दिया कि आप कह दीजिये। मैने धर्म छोडा। पर वे ऐसा भी नही कहते और दु ख मान रहे है।

कैकेयी का कथन सुनकर राम ने कहा–

सुन जननी सोई सुत बड भागी, जो पितु–मातु चरण अनुरागी।
तनय मात–पितु पोषनहारा, दुर्लभ जननि यही ससारा।।
भरत प्राणप्रिय पावहि राजू, विधि सब विधि सन्मुख मोहि आजू।
जो न जाउ बन ऐसे हु काजा, प्रथम गनिय मोहि मूढ समाजा।।

राम कहते हैं–माता, यह वर माग कर आपने मुझे भाग्यशाली बनाने का प्रयत्न किया है। माता कौशल्या ने तो मुझे जन्म ही दिया है, लेकिन आप मेरा उत्थान कर रही हैं। माता–पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का धर्म है। जो ऐसा करते हैं वे अवश्य ही सद्भागी हैं। फिर आपकी यह आज्ञा तो मेरी इच्छा के अनुकूल ही है।

क्या आजकल के लडके भी माता–पिता के वचन का पालन करने का ध्यान रखते हैं? उचित तो यही है कि माता पिता अपना धर्म पाले और पुत्र अपने धर्म का पालन करे। कदाचित् माता–पिता अपना धर्म छोड दे तो क्या इसी कारण पुत्र को भी अपना कार्य छोड देना चाहिये? एक ने अपना धर्म त्याग दिया है यह देख कर दूसरे को अपना धर्म नही त्याग देना चाहिये। राम कहते हें कि जो पुण्यवान होगा वही माता–पिता की आज्ञा का पालन करेगा। क्योकि माता–पिता का महत्व भी कुछ कम नही है। जैन शास्त्रा म कहा हे कि माता देव गुरु के समान है। उपनिषदो मे भी कहा है–

मातृदेवो भव पितृदेवोभव आचार्यदेवो भव।

इस प्रकार जेन शास्त्र ओर उपनिषद् दोनो एक ही बात कहत हें। बात कहने का ढग तो अलग हो सकता है लेकिन सच्ची बात तो सभी स्वीकार करते हें।

राम ने केकेयी से कहा–माता आपने जो कुछ किया हे उसमे मेरा हित समाया हुआ हे। कदाचित् आपके वर मागने से मेरा अहित होता तो भी माता–पिता की आज्ञा का पालन करना ही मेरे लिये उचित होता। नीति कहती हे –

आज्ञा गुरूणा खलु धारणीया।

जा अपने से वडे हें उनकी आज्ञा अवश्य ही मानना चाहिय। फिर वह आज्ञा चाह रुचिकर हा चाह अरुचिकर हो। गुरुजन की आज्ञा क ओचत्य–अनौचित्य पर विचार करन का हम अधिकार नहीं हे।

वह सेना कभी विजयी नही हा सकती जो विना सोच समझ अपने सनापति की आज्ञा का पालन नही करती। सना का यह नही देखना चाहिय

कि आज्ञा उचित है या नही? उसका एकमात्र कर्त्तव्य आज्ञा का पालन करना है। खेद है कि आजकल हमारे देश मे उच्च श्रेणी के अनुशासन की बहुत कमी है। अनुशासन के अभाव मे कोई भी देश समाज या वर्ग उन्नति नही कर सकता। अधिकारी का कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि को जागृत रखे और सोचे कि कहा कितने अनुशासन की आवश्यकता है, पर जिन्हे अनुशासन का पालन करना है उन्हे तो पालन करना ही चाहिये। पहले भारत वर्ष मे यह माना जाता था कि जिन्हे हमने बडा माना है उनकी आज्ञा हमारे लिये पालनीय है।

राम कहते है–'माता ससार मे पुत्र तो बहुत होते हैं लेकिन माता–पिता की आज्ञा का पालन करने वाला पुत्र विरला ही होता है।

इस प्रकार का पुत्र उन्ही माता–पिता को प्राप्त होता है जिन्होने पूर्व जन्म मे अच्छा तप किया हो। पुण्य के उदय से ही धार्मिक पुत्र की प्राप्ति होती है। जो माता पिता नीम के समान हैं वे आम के समान पुत्र कैसे पा सकते है? आम सरीखा पुत्र खाने के लिये खुद को आम के समान बनाना चाहिये।

साराश यह है कि पुत्र को माता–पिता की आज्ञा पालनी ही चाहिये, क्योकि उनका पुत्र पर महान् उपकार है। ठाणागसूत्र मे कहा है कि पिता, माता और धर्माचार्य के उपकार से उऋण होना कठिन है।

राम कैकेयी से कहते है– आपने मेरा हित ही किया है। एक बात मुझे अतिशय प्रसन्नता देने वाली है। वह यह है कि मेरे प्राणप्रिय भ्राता भरत को राज्य मिलेगा। मै भरत के राज्य को सब प्रकार से निष्कटक और प्रभाव शाली बनाने के लिये अवध का त्याग करके प्रसन्नतापूर्वक वन–वास करूगा। मै ऐसे काम के लिये भी अगर वन न जाऊगा तो परले सिरे का मूढ गिना जाऊगा।

भेद–भाव आया है वह उत्पन्न तो आपने ही किया है। आपके लिये मैं ओर भरत उसी प्रकार समान हैं जिस प्रकार दोनो नेत्र समान हैं। लेकिन आपके चित्त मे हम दोनो को लेकर भेद–भाव उत्पन्न हुआ। इसी से आपने मुझे राज्य देने का विचार किया। आपके मन के भेद–भाव ने ही माता के मन में भेद–भाव उत्पन्न किया है। खैर, जो हुआ सो अच्छा ही हुआ हे, यह मानकर आप उठिये और चिन्ता न कीजिये। आपको चिन्ता तो मेरे लिये ही है न लेकिन जब मुझे ही चिन्ता नही है तो आपको चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है?

रेडियम धातु बहुत मूल्यवान् मानी जाती है। कहा जाता है कि उसकी एक कणी भी बहुत से रोग मिटा सकती है जिसकी एक कणी भी ऐसी है, उसका पहाड अगर किसी को मिल जाये तो कितनी प्रसन्नता की बात हो? राम का यह अनूठा चरित रेडियम के पहाड के समान है। अगर आप इस सारे पहाड को अपना सके तब तो कहना ही क्या है। अगर यह सभव न हो और इसमे से एक कणी भी ग्रहण कर ले तब भी इहलोकिक और पारलौकिक कल्याण हो सकता है। आपने रामचरित मे से थोडा सा भी अश ग्रहण किया हे इसी बात की साक्षी यह है कि आपको किसी भी प्रकार क झगडे के कारण कचहरी मे न जाना पडे और किसी भी रोग के कारण अस्पताल मे पैर न रखना पडे। साथ ही जब आपके हृदय का मेल दूर हो जाये और आप तप–त्याग को अपनावे तभी यह जाना जा सकता हे कि आपने राम के चरित्र से कोई शिक्षा ली हे।

राम का कथन सुन कर दशरथ चकित रह गये। मन ही मन वह कहने लगे राम के व्यक्तित्व की ऊचाई का पता आज लगा। यह तो वन म जाने मे भी कष्ट नही समझते । आज ही मुझे मालूम हुआ कि राम साधारण मनुष्य नही हे।

राम माता–पिता आदि को समझाकर वन–वास के लिय चल दिये। रावण को जीत लेने के बाद वह अवध मे लोटे। इस बीच राज्य का सचालन भरत करते रहे मगर राम के दास बन कर। भरत अपन को राजा नही समझत थ किन्तु राम का दास मानकर राम का स्मरण करते हुए राम की ओर स राज्य का कार्य चलाते थे। राम न आकर जब प्रजा की कुशल पूछी तो प्रजा कहन लगी–आपक वियोग का दुख तो था ही लेकिन जहा तक राज्य व्यवस्था का प्रश्न हे वहा ता भरत आपस कुछ कम नही निकल। भरतजी ने आपका स्मरण करक राज्य चलाया ह अतएव राज्य की सपदा भी दस गुनी हा गई ह और प्रजा भी सकुशल है।

मैं युवराज से कहता हू कि यह चरित आपके लिये विशेष रूप से उपयोगी है। इसे याद रखिये। राम के चरित को याद रख कर राज्य करने वाला पाप नही करेगा। अतएव सदा राम को स्मरण रखो और अपने धर्म का पालन करो। इसी मे सबका कल्याण है।

4 : विपत्ति बनाम सम्पत्ति

प्रणमू वासुपूज्य जिन नायक, सदा सहायक तू मेरा ।

यह भगवान वासुपूज्य की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे प्रकट किये गये भावो को वही समझ सकता है जो पूरी तरह प्रार्थना करता है या जिसने प्रार्थना की हो। ऐसा ही व्यक्ति प्रार्थना के भावो के विषय मे कुछ कह सकता हे। प्रार्थना के सम्बन्ध मे कहना बहुत चाहता हू मगर इतना समय कहा है? अतएव सक्षेप मे ही अपने विचार प्रदर्शित करता हू।

इस प्रार्थना मे आत्मा की नोध है। साथ ही इसमे यह भी बताया गया है कि आपके पास कौन–कौन सी चीजे हैं? अर्थात आपकी तिजोरी मे जो चीजे हें इस प्रार्थना मे उनकी नोध की गई है। आप अपनी चीजो को देखकर यह विश्वास कर सकते हैं कि यह नोध केसी सच्ची हे। तिजोरी को सभालने पर इस नोध की सच्चाई आपको स्वत विदित हो जायेगी।

इस प्रार्थना मे कहा गया हे कि ससार मे प्रधानत तीन प्रकार के दु ख हे। फिर उनके अन्तर्गत अनेक दु ख हे। जैसे–रोग चोर आग राजा या अन्य कारणो से उत्पन्न होने वाले दु ख नाना प्रकार के हें। लोग भमवश इन दु खो को बाहर से आया हुआ मानते हें, लेकिन ज्ञानी कहते हें कि वास्तव मे इनका बीज आत्मा म ही विद्यमान रहता हे। उसी बीज स दु खा की उत्पत्ति होती हे। दु ख बिना बुलाये कही से नही आये। अतएव दु खा से घबराने की आवश्यकता नही हे। उचित यह हे कि आये हुए दु खा स हम यथा सभव लाभ उठा ले।

किसी व्यापारी दुकानदार के यहा कोई ग्राहक आकर कटुक–कठार भाषण कर फिर भी दुकानदार का अगर ज्ञात हा जाय कि इसक द्वारा मुझ कुछ लाभ हाना सम्भव है ता क्या दुकानदार उस ग्राहक पर क्रुद्ध होगा? क्या वह ग्राहक की बाता का चुप–चाप सहन नही कर लगा? इसका एकमात्र

कारण यही है कि व्यापारी उस ग्राहक के द्वारा अपना लाभ समझता है। इसी कारण व्यापारी अपने ग्राहक के साथ नम्रता का व्यवहार करता है। मुझे अपने बचपन का अनुभव है। भील लोग अशिक्षित होने के कारण कठोर बोलते हैं। और जो लोग समा मे अच्छे प्रतिष्ठापात्र है, श्रीमन्त हैं, उन्हे भी गुलाबचन्दजी के बदले गुलबिया दादा कहते हैं। फिर भी उनकी यह भाषा अप्रिय नही लगती। इसका कारण यह है कि व्यापारियो ने उन भीलो से अपना लाभ मान लिया है। अतएव इस प्रकार बोलने वाले ग्राहक को भी आदर के साथ बुलाया जाता है।

दु खो के विषय मे यही बात कही जा सकती है। अगर आप मान ले कि दु ख मेरा हित करने वाले है और यह दु ख मेरे बुलाने से ही आये हैं, तो फिर दु ख के कारण आपको किसी प्रकार की घबराहट नही होगी। यही नही बल्कि वे प्रिय जान पडेगे।

कहा जा सकता है कि दु खो को कोई नही बुलाना चाहता। दु ख तो बिना बुलाये आप ही गले पड जाते हैं। ऐसा कहने वालो ने गहरा विचार नही किया। अपथ्य का सेवन करने से रोग उत्पन्न होते हैं और रोग दु ख हैं। अगर कोई मनुष्य जान–बूझ कर अपथ्य का सेवन करता हे तो क्या वह दु ख को आमन्त्रण नही देता? ऐसा मनुष्य किस मुह से कह सकता है कि मैंने दु खो को बुलाया नही है? पथ्य का परहेज रखने से जो बीमारी आई है वह बुलाने से ही आई है। इसी बात को जरा और आगे बढाकर देखिये–आध्यात्मिक दृष्टि से जो दु ख के कारण उनका सेवन करना क्या दु ख बुलाना नहीं है?

मे जो कह रहा हू, उस पर आप विचार कीजिये। आपकी समझ मे आ जाये और आपका हृदय उसे स्वीकार करे उसे अमल मे लाइये। आपमे से बहुत–से लोग भक्ति के वश होकर ही मेरा बात मान लेते हैं लेकिन कई लोग जैसे दीवान साहब तो परीक्षा करके ही मानने वाले हैं। भक्ति के अधीन होकर मेरी बात मानने वालो से मैं कहना चाहता हू कि आप लोग भी सिर्फ भक्ति से प्रेरित होकर ही मेरी बात न माने किन्तु सोचे कि जो मैं कह रहा हू उसमे सत्य है या नही? अगर आपको मेरे कथन मे सत्य प्रतीत हो तो आप उसे स्वीकार करे। हा, जब आपको पूर्ण विश्वास हो जाये कि मेरी कही बात सत्य है तो उसका पालन करने के लिये आवश्यकता हो तो सर्वस्व समर्पण कर दो। जहा विश्वास हो जाता है वहा प्राण भी समर्पण कर दिये जाते हैं तो फिर दूसरी वस्तुओ का तो कहना ही क्या है। भक्तो को परमात्मा पर विश्वास हो गया है, इसी कारण वे कहते हैं –

तन धन प्राण समर्पी प्रभु ने। इन पर वेग रिझास्या राज।।
आज म्हारा समव जिनजी रा। हित चित से गुण गास्या राज।।

इस प्रकार विश्वास करके कुर्बानी के लिये तैयार रहना चाहिए।

प्रकृत मे कहना यह है कि जो विपत्ति आती है वह आपकी बुलाई हुई ही आती है, इस तथ्य की नोध इस प्रार्थना मे की गई है ओर साथ ही यह बतलाया गया हे कि जो विपत्ति तुम्हारी बुलाई हुई ही आई हे उस सम्पत्ति बनाओ। विपत्ति को सम्पत्ति बना लेने का उपाय है विपत्ति स नही घबराना। किसी भी क्षण मत भूलो कि यह विपत्ति मेरी ही बुलाई हुई हे। यह याद रख कर विपत्ति मे भी प्रसन्न रहा। ऐसा करने पर आप विपत्ति को सम्पत्ति बना सकेंगे।

मे जो बात कह रहा हू उसे शास्त्र का समर्थन प्राप्त हे। शास्त्रानुसार जब सोमल ब्राह्मण ने गजसुकुमार मुनि के मस्तक पर आग रख दी थी उरा समय क्या गजसुकुमार मुनि यह मानत थ कि सोमल ने, यह आग रख दी हे? नही। वे सोचते थे कि यह आग मेरे आकर्षण ओर आमन्त्रण से आई हे। अगर मे भगवान अरिष्टनेमि का सच्चा शिष्य हू तो इस विपत्ति को सम्पत्ति बना लना मरा कर्त्तव्य हे। एसा करक ही मैं भगवान का राच्चा शिष्य बन सकूगा। इस प्रकार सोचकर उन्हान सोमल को तनिक भी दाप नही दिया। अत विपत्ति उनक लिए सम्पत्ति वन गई। उसी विपत्ति क द्वारा व सिद्धि प्राप्त कर सक।

मित्रो। मैं कहता रहू और आप सुनते रहे, यह पर्याप्त नही है। जो सुना है उसकी सत्यता पर विश्वास जमाकर उसे अमल मे लाना आवश्यक है। सुनते–सुनते तो बहुत दिन हो गये हैं। गजसुकुमार ने एक ही दिन उपदेश सुना था। एक दिन उपदेश सुनते ही वह विरक्त हो गये और दीक्षित हो गये। उन्होने तत्काल भगवान् के उपदेश को क्रियारूप मे परिणत कर लिया। उसी दिन उन्होने विपत्ति को अपनी लोकोत्तर भावना के विशिष्ट मत्र द्वारा सम्पत्ति के रूप मे पलट दिया और अपना परम उद्देश्य सफल कर लिया। मगर आपको सुनते–सुनते बहुत समय हो गया है। फिर भी क्या आप कटुक शब्दो को भी मधुर नही बना सकते? आप सदैव ध्यान रखिये कि परमात्मा सदा सहायक है। हा हम मे विपत्ति को सम्पत्ति बना लेने की शक्ति होनी चाहिये और साथ ही परमात्मा पर विश्वास होना चाहिये।

विपत्ति को सम्पत्ति बनाने के लिये यह आवश्यक है कि विपत्ति आने पर उसे पीठ नही दिखानी चाहिये बल्कि ऑख दिखनी चाहिये और उसका सामना करना चाहिये। मुझे ससार से निकलने का मार्ग दिखलाने वाले और मेरे परमोपकारी मुनि श्री घासीराम जी महाराज ने अपनी ससारावस्था की एक घटना सुनाई थी। वह इस प्रकार है। उन्होने कहा जब मैं ससार मे था तो एक बार जगल मे करौदा खाने गया। वहा एक बाघ से भेट हो गई। मैंने सुन रक्खा था कि बाघ की दृष्टि से अपनी दृष्टि मिला देने पर बाघ आक्रमण नही करता। मैंने ऐसा ही किया। कुछ देर तक तो बाघ मेरे सामने खडा रहा, लेकिन फिर छलाग मार कर चला गया। मेने यह भी सुना था कि बाघ ललकारने पर सामने आता है। यह कथन कहा तक सत्य है यह देखने के

मैं जो कह रहा हू, उस पर आप विचार कीजिये। आपकी समझ मे आ जाये और आपका हृदय उसे स्वीकार करे उसे अमल मे लाइये। आपमे से बहुत–से लोग भक्ति के वश होकर ही मेरा बात मान लेते हैं लेकिन कई लोग जैसे दीवान साहब तो परीक्षा करके ही मानने वाले हैं। भक्ति के अधीन होकर मेरी बात मानने वालो से मैं कहना चाहता हू कि आप लोग भी सिर्फ भक्ति से प्रेरित होकर ही मेरी बात न माने किन्तु सोचे कि जो मैं कह रहा हू उसमे सत्य है या नही? अगर आपको मेरे कथन मे सत्य प्रतीत हो तो आप उसे स्वीकार करे। हा, जब आपको पूर्ण विश्वास हो जाये कि मेरी कही बात सत्य है तो उसका पालन करने के लिये आवश्यकता हो तो सर्वस्व समर्पण कर दो। जहा विश्वास हो जाता है वहा प्राण भी समर्पण कर दिये जाते हैं तो फिर दूसरी वस्तुओ का तो कहना ही क्या है। भक्तो को परमात्मा पर विश्वास हो गया है, इसी कारण वे कहते हैं –

तन धन प्राण समर्पी प्रभु ने। इन पर वेग रिझास्या राज।।
आज म्हारा सभव जिनजी रा। हित चित से गुण गास्या राज।।

इस प्रकार विश्वास करके कुर्बानी के लिये तैयार रहना चाहिए।

प्रकृत मे कहना यह है कि जो विपत्ति आती है वह आपकी बुलाई हुई ही आती है, इस तथ्य की नोध इस प्रार्थना मे की गई है और साथ ही यह बतलाया गया है कि जो विपत्ति तुम्हारी बुलाई हुई ही आई हे उसे सम्पत्ति बनाओ। विपत्ति को सम्पत्ति बना लेने का उपाय है विपत्ति से नही घबराना। किसी भी क्षण मत भूलो कि यह विपत्ति मेरी ही बुलाई हुई है। यह याद रख कर विपत्ति मे भी प्रसन्न रहो। ऐसा करने पर आप विपत्ति को सम्पत्ति बना सकेगे।

में जो बात कह रहा हू उसे शास्त्र का समर्थन प्राप्त है। शास्त्रानुसार जब सोमल ब्राह्मण ने गजसुकुमार मुनि के मस्तक पर आग रख दी थी उस समय क्या गजसुकुमार मुनि यह मानते थे कि सोमल ने, यह आग रख दी है? नही। वे सोचते थे कि यह आग मेरे आकर्षण और आमन्त्रण से आई हे। अगर मे भगवान अरिष्टनेमि का सच्चा शिष्य हू तो इस विपत्ति को सम्पत्ति वना लना मेरा कर्त्तव्य हे। ऐसा करके ही मैं भगवान का सच्चा शिष्य वन सकूगा। इस प्रकार सोचकर उन्हाने सोमल को तनिक भी दोष नही दिया। अत विपत्ति उनक लिए सम्पत्ति वन गई। उसी विपत्ति के द्वारा वे सिद्धि प्राप्त कर सक।

मित्रो। मैं कहता रहू और आप सुनते रहे, यह पर्याप्त नही है। जो सुना है उसकी सत्यता पर विश्वास जमाकर उसे अमल मे लाना आवश्यक है। सुनते–सुनते तो बहुत दिन हो गये हैं। गजसुकुमार ने एक ही दिन उपदेश सुना था। एक दिन उपदेश सुनते ही वह विरक्त हो गये और दीक्षित हो गये। उन्होने तत्काल भगवान् के उपदेश को क्रियारूप मे परिणत कर लिया। उसी दिन उन्होने विपत्ति को अपनी लोकोत्तर भावना के विशिष्ट मत्र द्वारा सम्पत्ति के रूप मे पलट दिया और अपना परम उद्देश्य सफल कर लिया। मगर आपको सुनते–सुनते बहुत समय हो गया है। फिर भी क्या आप कटुक शब्दो को भी मधुर नही बना सकते? आप सदैव ध्यान रखिये कि परमात्मा सदा सहायक है। हा हम मे विपत्ति को सम्पत्ति बना लेने की शक्ति होनी चाहिये और साथ ही परमात्मा पर विश्वास होना चाहिये।

उसका सामना किया जाता है तब वह विपत्ति भी सम्पत्ति बन जाती है अतएव विपत्ति के आने पर उससे घबराओ मत। उसे पीठ मत दिखाओ। उसका धेर्य के साथ, प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए सामना करो। उसके साथ युद्ध करो। अहिसा, धैर्य आदि की सात्विक शक्ति से उस पर आक्रमण करो। निश्चय समझो, ऐसा करने से वह विपत्ति भी आपके लिये सम्पत्ति बन जायेगी।

रामचन्द्र पर भी विपत्ति आई थी मगर कितनी कुशलता, दृढता और धैर्य के साथ उन्होने उस विपत्ति को सम्पत्ति के रूप मे पलट दिया, यह कौन नहीं जानता? उन्होने ऐसा न किया होता और विपत्ति के आने पर कोने मे बैठकर रोने लगे होते तो आज उन्हे कौन याद करता? जितने भी महापुरुष इस भूतल पर हुए हैं, उन्हे महापुरुष बनाने वाली शक्ति विपत्ति ही है। विपत्ति के साथ सघर्ष करके उन्होने अपनी शक्ति को विकसित किया और महापुरुष कहलाये। लोग उन महापुरुषों की प्रशशा तो करने लगते हैं, लेकिन जिन गुणों के कारण उनकी प्रशसा करते हैं, उन्हे अपने जीवन मे लाने का प्रयत्न नही करते।

मान लो, एक सेठ अपने थाल मे अच्छे–अच्छे खाद्य पदार्थ लेकर खाने बैठा है। सामने बैठा हुआ दूसरा आदमी थाल के पदार्थ देखकर उनकी प्रशसा करता है। कहता है– सेठजी, आपके थाल मे बहुत बढिया पदार्थ हैं। ऐसे उत्तम पदार्थो को खाना दूर, मेंने देखा भी नही था। भोजन की इस प्रकार प्रशसा सुनकर सेठ ने कहा—आओ भाई, आ जाओ। तुम भी भोजन कर लो। सेठ के यह कहने पर भी अगर वह आदमी भोजन नही करता तो उसे भाग्यहीन के सिवाय और क्या कहा जा सकता है?

इसी प्रकार लोग महावीर ओर राम आदि के वृत्तान्त सुनते हें ओर प्रशसा करते हैं। लेकिन जब उनसे उसी मार्ग को अपनाने के लिये कहा जाता हे जिसे उन्होंने अपनाया था तो अपनी उपेक्षा प्रकट करने लगते हें। यह भाग्यहीनता नही तो क्या हे?

अतएव केवल बाते सुनने ओर दूसरो की प्रशसा करने मे ही मत रहा वरन् जो कुछ सुनते हो जिसे हृदय से अच्छा ओर कल्याणकारी मानते हो उस क्रियात्मक रूप दो। ऐसा करने म अगर विपत्ति आडी आती हो तो उसस डरा मत। उसका वीरतापूर्वक सामना करो। उसे सम्पत्ति बना कर परास्त कर दा। उस समय यही समझा कि विपत्ति हमारी परीक्षा के लिये ही आई है।

विपत्ति ही सम्पत्ति को बुलाने वाली है। अतएव उसे बुरी न मानो, उससे घबराओ मत। हा एक बात ध्यान रखने योग्य है। विपत्ति सम्पत्ति को तभी लाती है जब उससे भयभीत न हुआ जाये। डाक्टर को रोग ही बुलाता है। अगर डाक्टर रोग पर नाराज होने लगे तो क्या लाभ होगा? असली डाक्टर तो तभी है जब वह रोग को भी सुखद बना डाले। इसी प्रकार दु ख परमात्मा जैसे महावैद्य को बुलाने वाला है। अतएव इससे घबराओ मत। परमात्मा की शरण मे जाकर विपत्ति को सम्पत्ति के रूप मे पलट दो।

5 : पदमं नाणं तओ दया

रे जीवा ! विमल जिनेश्वर सेविए।

यह भगवान् विमलनाथ की प्रार्थना है। मैं प्राय प्रतिदिन प्रार्थना के विषय मे अपने विचार प्रकट करता रहता हू। प्रार्थना का विषय मेरे लिये बहुत प्रिय हो गया है। इस विषय मे थोडा–बहुत कहे बिना मुझे सतोष नही होता। प्रार्थना मे मैं अपने जीवन का महान् कल्याण देखता हू और मानता हू कि आपका कल्याण भी इसी मे छिपा है अतएव आज भी कुछ शब्द परमात्मप्रार्थना के विषय मे कहता हू।

आज व्याख्यान का स्थान बदल गया है। मोरवी–नरेश के धर्मप्रेम के कारण ही आज यहा व्याख्यान हो रहा है मुझे तो नियत स्थान पर व्याख्यान देने मे कोई कठिनाई नही थी, मगर आप सब का वहा समावेश नही हो सकता था। अतएव आजसे इस स्थान की योजना की है। आज हम लोग जब विशिष्ट स्थान पर बैठे हैं तो किसी विशिष्ट विषय पर ही हमे विचार करना चाहिये। मगर पहले तो प्रार्थना के विषय मे ही कुछ कहूगा।

परमात्मा की प्रार्थना करने से क्या लाभ है। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए ज्ञानीजन कहते हैं कि –

तेरी बुध निर्मल हो जाय रे प्राणी ।

अर्थात्–हे प्राणी। अगर तू परमात्मा की प्रार्थना करेगा तो तेरी बुद्धि निर्मल हो जाएगी। तात्पर्य यह हे कि बुद्धि पर जो आवरण आ रहा हे वह परमात्मा की प्रार्थना करने से हट जाता है और इस प्रकार बुद्धि निर्मल बन जाती हे।

भक्त लोग अपनी आत्मा से कहते हें हे आत्मन्। तुझे अपनी बुद्धि को निर्मल बनान की आवश्यकता है। दूसरा के कहने–सुनने मे मत रह किन्तु अपनी बुद्धि निर्मल बना। पहल अपने कपडे ओर अपना घर साफ किया जाता

है और फिर दूसरे से सफाई करने के लिए कहा जाता है। इसके विपरीत करने वाला बुद्धिमान् नही माना जाता। उसी प्रकार हे आत्मन् पहले तू बुद्धि निर्मल बना और इसके लिये भगवान् विमलनाथ की शरण मे जा। बुद्धि को निर्मल बनाने का मार्ग भगवान् विमलनाथ की सेवा करना है।

भगवान विमलनाथ की सेवा करने से बुद्धि विमल होती है यह समझ लेने पर प्रश्न उपस्थित होता है कि विमलनाथ भगवान् की सेवा करने का उपाय क्या है? किस प्रकार विमलनाथ भगवान् की सेवा करनी चाहिये? इस विषय मे ज्ञानियो का कथन है कि वस्तु को प्राप्त करने के दो ही मार्ग है–ज्ञान और दया। यह दोनो मार्ग भी एक दूसरे से निरपेक्ष नहीं होने चाहिये। परस्पर सापेक्ष होकर ही दोनो कार्यसाधक होते हैं। अब हमें यह देखना चाहिये कि हम किस मार्ग पर चल रहे हैं और हमारा मार्ग सही है या उसमे किसी प्रकार की भूल हो रही है?

जैन साधु दयालु होते हैं यह बात प्रसिद्ध है। मगर कुछ लोग जैनो की दया पर आरोप करते हैं कि इस दया से जगत् का नाश हुआ है। लोगो का यह कथन कहा तक ठीक है? और यदि ठीक नही है तो वे क्यो ऐसा आरोप करते हैं? इन प्रश्नो पर विचार करने के बदले में अभी इतना ही कहना चाहता हूं कि आत्मा का हित परमात्मा की शरण मे जाने से ही हो सकता है। किसी के साथ वैर–विरोध या लडाई–झगडा करने से आत्मा का हित नहीं हो सकता।

हत ज्ञान क्रियाहीन हता चाज्ञानिना क्रिया।

ज्ञान और क्रिया एक दूसरे के अभाव मे वृथा हैं– कार्यकारी नहीं हैं। इस प्रकार आवश्यकता दोनो की है मगर पहले ज्ञान होना आवश्यक है। अतएव अगर दया करनी है तो पहले ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान प्राप्त होने पर ही दया हो सकती है। अज्ञानी बेचारा क्या कर सकता हे? प्रत्येक कार्य को सम्यक् प्रकार से सम्पन्न करने के लिये ज्ञान की आवश्यकता होती है। अतएव पहले ज्ञान प्राप्त करो। जिस कार्य का जो कारण है और जिस कारण से कार्य होता है, उसे कभी नहीं भूलना चाहिये। दया का कारण ज्ञान है, अतएव दया के लिए ज्ञान होना ही चाहिये।

सिद्धात के इस वाक्य को सामने रखकर जब हम विचार करते हैं तो मालूम होता है कि हम लोग भूल कर रहे हैं। विचार करने पर आपको भी यही मालूम होगा। हम दया के लिए तो दौडते हैं मगर ज्ञान के लिए वैसा प्रयत्न नही करते। परिणाम यह होता है कि हमारी दया अधी रहती है और इस अधी दया के कारण ही लोग हमारे ऊपर या हमारी दया के ऊपर आक्षेप करते हैं। अगर हमे इस आक्षेप का निवारण करना है तो मैं कहता हू कि हम अपने कर्म पर विचार करे और दया करने के लिये पहले ज्ञान प्राप्त करें। दया के प्रति हमारे हृदय मे बहुत अनुराग है–इतना अनुराग है कि अगर दया के लिये कोई फड होने लगे तो उसमे असहाय विधवाएँ भी कुछ न कुछ देने के लिये तैयार हो जाएगी। इस प्रकार दया की तरफ तो हम लोगो की काफी रुचि है, लेकिन ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि पहले ज्ञान की आवश्यकता है जिससे दया की पहिचान की जा सके।

भलीभाति समझ लेना चाहिये कि दया कार्य है ओर ज्ञान कारण है। पहले कारण होता है और फिर कार्य होता है। कारण के बिना कार्य नही होता। जब कारण होगा तभी कार्य हो सकेगा। अगर कोई आदमी कहने लगे कि सूत के बिना ही कपडा बन गया हे तो क्या आप उसका कहना मानेगे? आप उसका कहना सच नहीं मानेगे ओर यही कहेगे कि ऐसा नही हो सकता। तात्पर्य यह कि जो सिर्फ कार्य पर ही विचार करता हे ओर उसके कारण को भूलता है वह बुद्धिमान् नहीं है। यह बात तो स्त्रिया भी समझती हें कि बिना आटे रोटी नहीं वन सकती। अतएव यह सुनिश्चित हे कि कार्य से पहले कारण को जुटाने का विचार करना चाहिए।

दया का कारण ज्ञान हे। आपम दया है लेकिन जब उसके कारण ज्ञान का आप विस्मृत कर देंग तो स्वाभाविक हे कि आपकी दया उपहासास्पद

बन जाये। जब आपमे ज्ञान होगा और ज्ञानपूर्वक दया करेगे तब कोई भी व्यक्ति आपकी दया के विषय मे उगली नही उठा सकेगा। आपकी दया का आक्षेप करने का साहस किसी को नहीं होगा।

जब आप ज्ञान प्राप्त कर लेगे और ज्ञानपूर्वक दया का आचरण करेंगे तो दया करते समय आपको अवश्य ही यह विचार होगा कि मुझे पहले किसकी दया करनी चाहिए। मान लीजिए कि दो आदमी एक ही स्थिति के कारण दया के पात्र हैं। उनमे एक धर्म का प्रेमी है और दूसरा धर्म का प्रेमी नही है। अब आप पहले किस पर दया करेगे ? दया तो दोनो की ही करनी चाहिए--दोनो की कर सके तो अच्छा ही है लेकिन दया का क्रम क्या रहेगा? आपके लिए यही उचित होगा कि आप पहले धर्मप्रेमी की दया करे। अगर आप ऐसा नही करेगे, धर्मपेमी की उपेक्षा करके जो धर्मप्रेमी नहीं है उसकी दया करेगे तो आपको ज्ञानी कहा जायेगा या अज्ञानी?

आप अपनी दया के विषय मे जिस पर आपका विश्वास हो उससे पूछ देखिए कि दया की प्रवृत्ति के विषय मे अधेर चलता है या नहीं? और अपने से भूल होती है या नही? क्या लोग निराधार ही आक्षेप करते हैं? जैन-धर्म की निन्दा सुनने से दु ख होना स्वाभाविक है। लेकिन दु ख करने और लडने से क्या लाभ है? हमे तो विवेक पूर्वक यही विचार करना चाहिए कि लोगो की इस निन्दा का कारण हमारी भूल तो नही है? अपनी भूल देखे और उसे सुधारे बिना लोगो से लडके और उत्तर-प्रत्युत्तर करने से कोई नतीजा नही निकल सकता। मान लो किसी के सिर पर काली पगडी है। किसी दूसरे ने उससे कहा--तुम्हारी पगडी काली है। अब अगर काली पगड़ी वाला आदमी कहने वाले से झगडने लगे तो क्या यह उचित है? और उस झगडने वाले से क्या कहा जायगा? निष्पक्ष व्यक्ति यही कहेगा कि भाई, झगडते क्यो हो? अपनी पगडी ही क्यो नही देखते? अगर तुम्हे काली पगडी वाला कहलाना पसद नही है तो अपनी पगडी बदल डालो। इसी प्रकार जैनधर्मानुयायियो की दया के विषय मे या किसी अन्य विषय मे लोग जो आक्षेप करते है उस आरोप के सबध मे स्वय विचार न करके और अगर हम भूल करते हैं तो उसे न सुधार करके हम झगडा करे या दु ख मनाए तो इससे क्या लाभ हो सकता है?

है। आपके लिये पहले किसकी रक्षा करना उचित होगा? आप यही कहेंगे कि पहले मनुष्य की रक्षा करना उचित है। गाय पशु है अतएव मनुष्य के बाद उसका नम्बर आता है। मनुष्य सब जीवों मे उत्कृष्ट है। इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप में तो यह बात स्वीकार की जाती है मगर व्यवहार मे क्या होता है? जब मनुष्य सब से श्रेष्ठ प्राणी है ओर अन्य जीवो की अपेक्षा वह दया अथवा रक्षा पाने का प्रथम अधिकारी है तो जिन कारणो से मनुष्य मारे जाते हैं या कष्ट पाते हैं, उन कारणो को या ऐसे कानून–कायदो को रोक देने पर मनुष्य को कितनी दया न होगी? लेकिन इस ओर लोगो का ध्यान नही है। इसका प्रधान कारण ज्ञान की कमी है। आपके अन्त करण से करुणा का झरना तो बहता है मगर उसके बहाव की दिशा बतलाने वाले ज्ञान का प्राय अभाव है। यही कारण है कि अकसर लोग मनुष्यो की उपेक्षा करके पशु–पक्षियो या दूसरे छोटे जीवो की दया के लिये दौड पडते हैं। वे अपने कर्त्तव्य के क्रम का विचार नहीं करते।

जब कारण शुद्ध नहीं होता तो कार्य भी ठीक नहीं होता। दया का कारण ज्ञान है। अतएव ज्ञान के अभाव मे, दया सबधी भूल हो जाना स्वाभाविक है। उचित तो यही है कि जब दया का कारण ज्ञान है तो उसे जीव की रक्षा पहले करनी चाहिये जिसमे विशिष्टज्ञान है। मान लो–एक पशु मारा जा रहा हे और एक मनुष्य मारा जा रहा है। यह देखकर आपका हृदय पहले किसे बचाने की प्रेरणा करेगा? मनुष्य को बचाने के लिये हृदय मे प्रेरणा होगी। इससे स्पष्ट है कि प्रकृति की भी यही प्रेरणा है कि मनुष्यो की दया करो ओर फिर दूसरे जीवों की। लेकिन इस विषय मे भूल होती है ओर इसी कारण अपवाद होता हे कि जैनियो की दया कायरता लाने वाली है।

यदि अहिसा का स्वरूप यही होता जेसे कि आज माना जाना जाता है तो कोई राजा जैन होकर राज्य किस प्रकार चला सकता हे? इसलिये दया के कारण ज्ञान की रक्षा पहले करो ओर ज्ञान के लिये–ज्ञानप्रचार के लिए जितना स्वार्थ त्याग कर सको करो। ज्ञानियो ने स्पष्ट कहा हे – पढम नाण तओ दया। अर्थात् पहले ज्ञान फिर दया। अतएव पहले ज्ञान की उपासना करना चाहिये। जिसके पास जेसे साधन हा वह वेस ही साधनो को ज्ञान के फैलाव मे लगा सकता हे जिसके पास विद्या या शरीर की शक्ति हे वह उसका उपभोग कर सकता है।

आप सर्वज्ञपुत्र हें। फिर भी लाग अगर आपकी निन्दा करते हें तो इसका प्रधान कारण आपका अपन ज्ञान को विस्मृत कर देना हे। आप लोग

आपस मे एक दूसरे को पराजित करने के लिये तो शक्ति लगाते हैं, इसके लिये रुपया पानी की तरह बहाते हैं, लेकिन ज्ञान के विकास और प्रचार की ओर से जो अत्यन्त आवश्यक कार्य है उदासीन रहते हैं। ज्ञान होगा वह अवश्य विचार करेगा कि मैं किसी का और विशेषत अपने भाइयो का चित्त न दुखाऊ। अतएव ज्ञान की उपेक्षा मत करो। सक्षेप मे यह कहता हू कि अपने हृदय मे परिवर्तन करो।

आज यहा काठियावाड जैन गुरुकुल के छात्र दर्शन करने और आशीर्वाद पाप्त करने के लिये आये हैं। इन बालको को मेरा यही सदेश है कि ज्ञान की उन्नति करो। अपना बहुतसा ज्ञान साहित्य मे भरा पडा है और वह साहित्य भडारो मे बद है। उस साहित्य को भडारो मे ही बद मत रहने दो और उस ज्ञान को साहित्य मे ही मत भरा रहने दो। उसका विकास करो। उसे सर्व साधारण के लिये सुलभ बना दो। और ऐसा मार्ग निकालो कि आप म और वृद्धो मे किसी प्रकार का धार्मिक मतभेद न रहे। पहले इस बात को समझो कि वृद्धो के साथ हमारा मतभेद किन-किन बातो मे है? फिर उसे दूर करने का मार्ग निकालो जिससे उनके साथ सघर्ष न हो और मतभेद भी दूर हो जाये। जब ऐसा होगा तभी गुरुकुल का अस्तित्व मे आना सफल होगा। विद्यार्थियो! तुम्हे समझना चाहिये कि सासारिक काम या खाना-पीना आदि जीवन का गौण काम है। ऐसे तुच्छ प्रयोजनो के लिये यह महान् उत्कृष्ट मानव जीवन नही है। इसका प्रधान उद्देश्य बहुत ऊचा है। ज्ञान-विकास और धर्म की उन्नति करने से ही यह जीवन सार्थक हो सकता है। विद्यार्थियो को यह भी समझना चाहिये कि हमारे समाज मे किस चीज की कमी है और वह किस प्रकार दूर हो सकती है। विद्यार्थियो तुम लोग धर्म की और सहधर्मियो की उन्नति करना और अपने जीवन को विशिष्ट ध्येय की पूर्ति के लिये अर्पित करो।

मानना ही उचित है। जैनसिद्धात भी यही मानता है। मगर आजकल स्याद्वाद का यह सिद्धात उसी तरह कायरों की गोद मे जा पडा है जिस प्रकार कायर के हाथ मे तलवार हो। कायर के हाथ मे तलवार होने से तलवार की भी हसी होती है और कायर की भी। इसी प्रकार आज यह आपके पास होने के कारण इस सिद्धात की हसी हो रही है। अतएव मेरी प्रेरणा है कि कायरता त्यागो और वीर बनो। जागृत होओ। अपने महत्वपूर्ण सिद्धातो के ज्ञान को प्रकाशित करो। वह ज्ञान ऐसा हो कि उसकी सहायता से कार्य पूर्ण हो सके और लोगो को मालूम हो जाए कि जैनियो की दया ही सच्ची दया है। आज ऐसे सच्चे ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है।

सच्चा ज्ञान कैसा होता है यह बताने के लिये मैंने पहले हृदय और मस्तिष्क का भेद बताया है। हृदय के सच्चे विचार को या हृदय के बल को ही सच्चा ज्ञान समझना चाहिये। दूसरे ग्रन्थकार भी इस बात को स्वीकार करते हैं। मगर आजकल मस्तिष्कबल के सामने हृदयबल को तुच्छ समझा जाता है और मष्तिष्कबल को ही सर्वत्र प्रधानता दी जाती है। मगर विश्वास रखो कि हृदयबल के समान कोई बल या ज्ञान नही है। यह ज्ञान भारत मे ही जन्मा है, भारत मे ही उन्नत हुआ है और भारत मे ही इसका रूप देखने को मिलता है। मैंने किसी पत्रिका के एक लेख मे सुना था कि विदेशो के अनेक पादरियो के प्रधान ने कहा था कि इस समय ससार मे सबसे महान् पुरुष मोहनदास करमचन्द गाधी हैं। विचार करो कि गाधीजी को महापुरुष क्यो कहा गया है? हृदयबल के कारण ही उन्हे इतना गौरव मिला है। हृदयबल होने के कारण ही उन्होने मौज मजे का जीवन त्याग दिया है। अन्यथा वे बैरिस्टर थे। उन्हे किस चीज की कमी थी? राजकोट मे गाधीजी से मेरी मुलाकात हुई थी। उस समय मैंने उन्हे देखा कि उनके शरीर पर उतने भी वस्त्र नहीं थे जितने हमारे शरीर पर हैं। उनका शरीर भी सूखे गन्ने की तरह था। ऐसा होते हुए भी वे जगत् के सर्वश्रेष्ठ पुरुष माने गये हे। इसका कारण यही है कि उनमे हृदयबल हे। जैनधर्म भी ऐसे ही हृदयबल का समर्थन करता हे। अर्थात् ज्ञानपूर्वक दया का विधान करता हे। मगर आजकल क्या ज्ञानपूर्वक दया की जाती है? अगर की जाती हे तो कितन आदमी मिलेगे जिनके शरीर पर चर्बी लगे हुए वस्त्र नहीं हैं।

घाटकापर म दवीदास भाई घेबरिया ने मुझे एक घटना सुनाई। वह कहन लग– में रल मे सफर कर रहा था। मेरे ही पास बगल म एक आदमी और बैठा था। बातचीत के सिलसिल म मैंने दयाधर्म की प्रशसा की। तब वह

आदमी मुझसे कहने लगा–बस, रहने दो। दयाधर्म की ज्यादा तारीफ मत करो। दो भैंसो का चमडा लेकर तो बैठे हो और दयाधर्म का बखान करते हो।' उस आदमी की यह बात सुनकर मैं लज्जित हो गया क्योकि मेरे पास चमडे के दो सन्दूक थे। उन्ही सन्दूको को लक्ष्य करके उसने कहा था कि दो भैंसो का चमडा लेकर बैठे हो और फिर भी दया–धर्म का गुणगान कर रहे हो।

इसी तरह कई लोग दया की बाते तो करते हैं लेकिन शरीर पर से चर्बी लगे हुए वस्त्र तक नहीं उतार सकते। ऐसी दशा मे कैसे कहा जा सकता है कि उनकी दया ज्ञान–पूर्वक है? जो पाप सहज ही टल सकता है उसे भी न टालना क्या दया है? अगर आपको दया से प्रेम है तो आपका कर्त्तव्य हो जाता है कि आप ऐसा कोई कार्य न करे जिससे दूसरो को दु ख उपजता हो।

चर्बी के लगे हुए वस्त्र पहनने वाले लोग चर्बी के लिए होने वाली पशुओ की हिसा मे ही सहायक नही होते किन्तु किसी न किसी रूप मे अपने भाइयो की रोटी छीनने मे भी सहायक होते हैं। इस तरह की बातो पर विचार करो और हृदय को निर्मल करके पहले अपने घर के लोगो से ही दया शुरू करो। विचारो तो सही कि चर्बी लगे वस्त्रों को आप पहनते हैं उनके एक–एक तार के लिये कैसी–कैसी हिसा होती है। यह विचार कर ज्ञान का विकास करो और जो कुछ भी करो त्याग के लिए करो।

आज आपका मस्तिष्क–बल आपके हृदय–बल को दबाता जा रहा है। जैसे अपनी माता को अपनी पत्नी के पैरो मे गिरने को बाध्य करना उचित नही है उसी प्रकार हृदयबल को मस्तिष्कबल के आगे झुकाना उचित नही है उस हृदयबल को कुचलना ऐसा ही काम है। जिस हृदयबल के होने के कारण ही माता ने आपका पालन–पोषण किया है अब उसी हृदय की उपेक्षा करना क्या उचित है? जिस प्रकार जन्म देने वाली माता की इज्जत जाने देना ठीक नही है। अतएव हृदयबल को विकसित करो और मस्तिष्क–बल को उसके अधीन करो। ऐसा करने से ही आपका कल्याण होगा।

क्रिया की। इन दोनो से ही धर्म की प्राप्ति होती है अतएव पहले ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

अपनी माता को भूलकर पत्नी के गुलाम बन जाना ज्ञान नहीं हे। अर्थात् हृदयबल को भूलकर मस्तिष्कबल को पकड कर बैठे रहना ज्ञान नहीं है। जो एकान्त मस्तिष्कबल पर निर्भर रहता है वह धर्म का आचरण नही कर सकता। क्योकि मस्तक आराम चाहता। उसका दृष्टिकोण तो यही रहता है–

किस किसको याद कीजिए किस किसको रोइए।
आराम बडी चीज है, मुँह ढँक के सोइए।।

मस्तिष्कबल वाला सोचता है–दुनिया मे दरिद्रता और दुर्भाग्य से सताये हुए अनगिनत प्राणी हैं। हम उनकी चिन्ता करते फिरे तो जीवत रहना कठिन हो जाए। जिसने जैसा बीज बोया है वह वैसा ही काटेगा। पाप करने वाला सुखी कैसे हो सकता है। अतएव हमे दूसरो की चिन्ता अपने माथे नही लेनी चाहिये और जिस प्रकार समव हो अपने जीवन को सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। अगर हमारे सुख के कारण दूसरों को दु खी होना पडता है तो हम लाचार हैं हमे अपना ध्येय सुख को प्राप्त करना है। मुझे क्या आवश्यकता पडी है कि किन्ही दूसरो के लिये मैं कष्ट सहन करता फिरू।

मगर हृदयबल ऐसा नही कहता। हृदयबल क्या कहता है यह जानने के लिये हरिश्चन्द्र के चरित्र का विचार करो। हरिश्चन्द्र ने किसी से कोई कर्ज नही लिया था, सिर्फ मौखिक दान दिया था ओर वह भी जागृत अवस्था मे नही। फिर भी उन्होने वह ऋण चुकाने के लिए अपने आपको बेच दिया और अपनी पत्नी को भी। आजकल के बुद्धिवादी लोग भले ही राजा हरिश्चन्द्र के विष्य मे कुछ भी कहे– हरिश्चन्द्र की कथा के विषय मे गाधीजी लिखते हें कि इस कथा मे असमव जैसी कोई बात नही हे। यह कोई नवीन गढी हुई कथा नही है। पुराने समय से ही चली आ रही हे। इस कथा को अगर कल्पना मान लिया जाए तो ऐसी कल्पना भारत के लोग ही कर सकते हें और भारत के लोग ही उसे मान सकते हैं। दूसरे लोगों मे तो ऐसी कल्पना का होना भी कठिन है।

आज की स्थिति तो यह हे कि जो कर्ज लिया हे ओर जिसके लिय लिखापढी भी कर दी हे उससे बचने के लिए भी दिवाला निकाल दिया जाता हे। कवल दुकान का नाम पलटने की आवश्यकता समझी जाती हे और लिए हुए कर्ज का चुकान से इन्कार कर दिया जाता है। मगर राजा हरिश्चन्द्र न मुख से दिय गये दान का भी अपन पर कर्ज समझा। यह हृदयवल का ही

पताप है। रानी तारा मे भी हृदयबल था। इसी कारण वह पति के सिर का कर्ज उतारने के लिये स्वय बिकी राजा भी अपने कर्ज को चुकाने के लिये भगी के हाथ बिका।

क्या राजा हरिश्चन्द का भगी के हाथ बिकना और उसके यहा जाकर रहना उचित है? अगर ठीक है तो क्या आप भगियो को व्याख्यान सुनाने के लिये आने दे सकते हैं? आप भले ही उनसे घृणा करते हो मगर जैनधर्म उनसे घृणा नहीं करता। शास्त्र मे कहा है कि हरिकेशी मुनि चाण्डाल–कुलोत्पन्न ही थे। यह कहकर भी उनकी प्रशसा की गई है और बतलाया गया है कि जैनधर्म के समीप जाति–पाति का कोई महत्त्व नहीं है। महत्त्व तप का है। आप भी विचार कर देखो कि जिन भगियो से घृणा की जाती है वे ऐसा क्या करते हैं, जिसके कारण उन्हे घृणा का पात्र समझा जाता है? आप लोग अपने–अपने घरो मे टट्टी जाते हैं, और घर को अशुद्ध बनाते हैं। भगी आकर घर की सफाई करता है– उसे पवित्र बनाता है। क्या यही उसका अपराध है? घर को अपवित्र करने वाला पवित्र है और पवित्र करने वाला अपवित्र है? यह कहा का न्याय है । यह कैसा धर्म है। इस प्रकार पक्षपातपूर्ण और अधर्ममय विचार ज्ञान न होने के कारण ही होते हैं। जिसमे ज्ञान होगा और ज्ञानपूर्वक दया करता होगा वह भगी से घृणा नही करेगा। जहा काम नही चलता वहा आप भी घृणा नही करते, जैसे रेल मे। मगर वह भगी अगर यहा व्याख्यान सुनने आये तो आप उनसे घृणा करने लगेगे यह अनुचित है। अतएव सत्य को समझने के लिए ज्ञान प्राप्त करो। अगर आपसे ज्यादा कुछ न बन सके तो कम से कम हरिश्चन्द्र के आदर्श की, उसके चाण्डाल के हाथ बिकने के आदर्श की–निन्दा मत करो। अगर आपने आज इतना किया तो आगे भी कुछ कर सकोगे।

6 : अपना आप सहायक

अनन्त जिनेश्वर नित नमू।

यह भगवान अनन्तनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे प्रार्थी ने परमात्मा से अपने हृदय मे वास करने की कामना की है।

भक्त कहते हैं– हे प्रभो! यद्यपि मेरी भी आत्मा अनन्त है लेकिन मैं अभी शान्ति मे निमग्न होकर अपने स्वरूप को भूल रहा हू। आत्मा को शान्त अवस्था से निकाल कर अनन्त अवस्था में लाना कोई सरल कार्य नहीं है फिर भी असभव तो नही है। अतएव इस ओर जितने पैर भरे जा सके अच्छा ही है।

कहा जा सकता है कि आत्मा को शान्त दशा से निकाल कर अन्तदशा मे लाने की प्रार्थना करना तो ठीक है मगर जिसकी प्रार्थना की जाती हे उस परमात्मा का कही ठिकाना भी तो हो! जिसका पता–ठिकाना भी नही है उसकी ओर कदम बढावे भी तो किस प्रकार? इस कथन के उत्तर मे ज्ञानियो का कहना है कि परमात्मा दूर नहीं है। वह समीप से समीपतर है। मगर उस समीप के परमात्मा को समझने मे भूल हो रही है। अगर हम उस भूल को दुरुस्त कर ले तो परमात्मा को समझ सकते हैं। ऐसा करने के लिये सर्वप्रथम चित्त को शात करना चाहिये। शात और स्वच्छ जल मे ही मुँह दिखता है। जो पानी शात ओर स्वच्छ नहीं हे उसमे मुँह नही दिखता। अतएव सर्वप्रथम चित्त को शात करने की अनिवार्य आवश्यकता है।

परमात्मा को जानन के लिए ही योग क्रिया वतलाई गई हे। योग क्या है इस सम्बन्ध म कहा गया हे –

योगश्चित्तवृत्तिनिरोध

अर्थात– चित्त की वृत्तिया को निराध करना ही योग कहलाता है। दूसरे शव्दा म कहा जा सकता हे कि चित्त का तल्लीन करने को ही याग

कहते हैं। प्रश्न होगा कि चित्त तो अनेक अयोग्य काम मे तल्लीन होता है। वेश्यागामी अपने काम मे चित्त तल्लीन रखता है। जुआरी अपने काम मे तन्मय रहता है और शराबी शराब मे ही तल्लीन बना रहता है। इस प्रकार बुरे कामो मे भी चित्त की तल्लीनता देखी जाती है। यह तल्लीनता भी क्या योग कहला सकती है ? चित्त बुरे कामो मे तल्लीन हो जाता है, यह सिद्ध करने के लिए अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। रावण का मन सीता मे तल्लीन था। क्या उसे सीता के सिवाय कुछ नजर आता था? नहीं। उसका मन तल्लीन था और तल्लीनता ही यदि योग है तो फिर रावण की निन्दा करने का क्या कारण है?

इस प्रकार योग की व्याख्या तल्लीनता कही गई है, उसमे अतिव्याप्ति दोष आता है। अतएव यह लक्षण अपूर्ण है। इस अपूर्णता को मिटाने के लिए कहा गया कि चित्त की वृत्ति का दूसरे कामो में तल्लीन होना ही योग नही है वरन्–

तदा द्रष्टा स्वरूपावसानम्।

अर्थात् – चित्त को एकाग्र करके दृष्टा का अपने ही स्वरूप को देखना योग है। काम क्रोध आदि में चित्त को तल्लीन करना योग नहीं है। विषय मे चित्त की तल्लीनता द्रष्टा का अपने स्वरूप मे रहना नही है। अतएव ऐसी तल्लीनता योग के अन्तर्गत नहीं है।

योग की यह व्याख्या है। इस व्याख्या को समझकर आप अपने विषय मे विचार कीजिये कि हमारा चित्त आत्मस्वरूप देखने मे तल्लीन होता है या नही। अगर होता है तब वह छोटा या मोटा योग ही है जो परमात्मा के जानने का ही मार्ग है। अगर चित्त की वृत्ति विषयो से निकलकर आत्मा या परमात्मा के रूप मे एकाग्र नही होती तो समझ लीजिये कि आप परमात्मा को जानने के मार्ग पर नही चल रहे है चाहे ऊपरी दिखावा कैसा भी हो, कोई साधु का वेष ही धारण क्यो न कर ले या ध्यान लगाकर ही क्यों न बैठा रहे। इस तथ्य को समझाने के लिए शास्त्र मे आई हुई एक घटना लीजिये

राजा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने कहा— अगर वे इस समय काल करे तो सातवे नरक मे जाए।

यह उत्तर सुनकर श्रेणिक के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने पूछा—भगवन्, ऐसा क्यों? और जब ऐसे ध्यानी महात्मा सातवे नरक में जाएगे तो मुझ जैसे पापी की क्या गति होगी? प्रभो! स्पष्ट रूप से समझाइए कि सबसे अधिक वेदना वाले सातवे नरक में वे महात्मा क्यो जाएगे?

भगवान् ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—राजन् अब उनकी भाव—स्थिति बदली है। अतएव इस समय काल करे तो सवार्थसिद्ध विमान मे उत्पन्न हो!

भगवान् की वाणी पर अटल श्रद्धा रखता हुआ भी श्रेणिक राजा गडबड मे पड गया। उसने सोचा— कहा सवार्थसिद्ध विमान और कहा सातवा नरक! दोनो परस्पर विरोधी दो सिरो पर हैं। एक सासारिक सुख का सर्वोत्तम स्थान है और दूसरा दु ख का सर्वोत्तम स्थान है! एक का जीवन अगले भव मे मोक्ष जाना ही है और दूसरे से निकलने वाला अगले भव मे मोक्ष जा ही नही सकता! क्षणभर मे इतना बडा भारी परिवर्तन! यह कैसे सम्भव है? इस प्रकार सोचकर श्रेणिक ने फिर प्रश्न किया—प्रभो अभी—अभी तो आपने सातवे नरक के लिये कहा था और अब आप सर्वार्थसिद्ध विमान मे उत्पन्न होने की बात कहते हैं आखिर इसका कारण क्या है?

राजा श्रेणिक इस प्रकार प्रश्न कर ही रहा था कि उसी समय देवदुदुभि का श्रुतिमधुर निर्घोष राजा के कानो मे सुनाई दिया। राजा ने पूछा—प्रभो! यह दुदुभी कहा और क्यो बज रही है?

भगवान ने कहा— प्रसन्नचन्द्र ऋषि सर्वज्ञ हो गये हैं।

राजा श्रेणिक चकित रह गया! उसने कहा— देवाधि देव! कुछ समझ मे नही आया! अभी आपने कहा था कि अभी काल करे तो सातवे नरक म जाए फिर कहा कि सर्वार्थसिद्ध विमान मे जाए और अब आप कहते हैं कि वे सर्वज्ञ हो गये हैं । मैं इसका मर्म समझना चाहता हू और उनका चरित सुनने की इच्छा करता हू। मुझ अज्ञ प्राणी पर अनुग्रह कीजिये।

भगवान न कहा—राजन्! प्रसन्नचन्द्र ऋषि पोतनपुर के राजा थे। उन्हे ससार से वेराग्य हा गया ओर व सयम ग्रहण करने के लिये उद्यत हुए। मगर उनक सामन एक समस्या खडी हुई कि लडका अभी छोटा है। इस किसके सहार छाडा जाय? इस विचार क कारण सयम ग्रहण करन म विलम्ब हा रहा था। परन्तु उनक किसी हितेपी न अथवा उनक अन्तरात्मा ने कहा कि धर्मकार्य म ढील नही करना चाहिय। शुभस्य शीघ्रम हाना चाहिय।

राजा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर म भगवान् ने कहा– अगर व इस समय काल करे तो सातवे नरक मे जाए।

यह उत्तर सुनकर श्रेणिक के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने पूछा–भगवन्, ऐसा क्यों? और जब ऐसे ध्यानी महात्मा सातव नरक म जाएग तो मुझ जेसे पापी की क्या गति होगी? प्रभो! स्पष्ट रूप से समझाइए कि सबसे अधिक वेदना वाले सातवे नरक मे वे महात्मा क्यो जाएगे?

भगवान् ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया–राजन्, अब उनकी भाव–स्थिति बदली हे। अतएव इस समय काल करे तो सवार्थसिद्ध विमान मे उत्पन्न हा।

भगवान् की वाणी पर अटल श्रद्धा रखता हुआ भी श्रेणिक राजा गड़बड़ मे पड गया। उसने सोचा– कहा सवार्थसिद्ध विमान और कहा सातवा नरक! दोनो परस्पर विरोधी दो सिरो पर हें। एक सासारिक सुख का सर्वोत्तम स्थान हे और दूसरा दु ख का सर्वोत्तम स्थान हे। एक का जीवन अगले भव मे मोक्ष जाना ही हे और दूसरे से निकलने वाला अगले भव म मोक्ष जा ही नही सकता। क्षणभर मे इतना बडा भारी परिवर्तन! यह केसे सम्भव हे? इस प्रकार सोचकर श्रेणिक ने फिर प्रश्न किया–प्रभो अभी–अभी ता आपन सातवे नरक के लिये कहा था और अब आप सर्वार्थसिद्ध विमान म उत्पन्न हान की बात कहते हें आखिर इसका कारण क्या हे?

राजा श्रेणिक इस प्रकार प्रश्न कर ही रहा था कि उसी समय देवदुदुभि का श्रुतिमधुर निर्घोष राजा के काना म सुनाई दिया। राजा न पूछा–प्रभा! यह दुदुभी कहा और क्यो बज रही हे?

भगवान् ने कहा– प्रसन्नचन्द्र ऋषि सर्वज्ञ हा गय हें।

राजा श्रेणिक चकित रह गया। उसन कहा– दवाधि दव! कुछ समझ मे नही आया। अभी आपने कहा था कि अभी काल कर ता सातव नरक म जाए फिर कहा कि सर्वार्थसिद्ध विमान म जाए आर अब आप कहत हें कि वे सर्वज्ञ हा गय हें। मे इसका मर्म समझना चाहता हू और उनका चरित सुनन की इच्छा करता हू। मुझ अज्ञ प्राणी पर अनुग्रह कीजिय।

भगवान न कहा–राजन! प्रसन्नचन्द्र ऋषि पातनपुर क राजा थ। उन्हं ससार स वेराग्य हा गया ओर व सयम ग्रहण करन क लिय उद्यत हुए। मगर उनक सामन एक समस्या खडी हुई कि लडका अभी छाटा हे। इस किसक सहार छाडा जाय? इस विचार क कारण सयम ग्रहण करन म विलम्ब हा रहा था। परन्तु उनक किसी हितषी न अथवा उनक अन्तरात्मा न कहा कि धर्मकार्य म ढील नही करना चाहिय। शुभस्य शीघ्रम हाना चाहिय।

प्रसन्नचन्द ने कहा– तुम्हारा कहना ठीक है। मुझे ससार से विरक्ति हो गई है और वह विरक्ति ऊपरी नही, भीतरी हैं क्षणिक नही, स्थायी है, मगर विलम्ब का कारण यह है कि पुत्र छोटा है। उसे किसके भरोसे छोडा जाये।

प्रसनचन्द्र के इस कथन का उन्हे उत्तर मिला– अगर आज ही तुम्हे मृत्यु आ घेरे तो छोटे बालक की रक्षा कौन करेगा? वैराग्य के साथ मोह–ममता के यह विचार शोभा नही देते। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को यह कथन ठीक मालूम हुआ और उन्होने सयम लेने की तैयारी की। सयम लेने से पहले उन्होने अपने पाच सौ कार्यकर्त्ताओ को बुला कर उनसे कहा–यह बालक छोटा है। यह तुम्हारे सहारे है। जब तक यह बडा न हो जाये, इसकी सभाल रखना। कर्मचारियो ने आश्वासन देते हुए कहा आपकी आज्ञा प्रमाण है। हम राजकुमार की सभाल करेगे और प्राण भले ही दे देगे मगर इन्हे किसी प्रकार का कष्ट नही होने देगे।

प्रसन्नचन्द्र ने पूर्ण वैराग्य के साथ सयम ग्रहण किया। मगर ऐसे उत्कट वैरागी को भावना मे भी दूषण लग गया था। अतएव तुम्हारे पूछने पर मैने यह कहा था कि यदि वे इस समय काल करे तो सातवे नरक मे जावे।

राजा श्रेणिक ने फिर प्रश्न किया–प्रभो! उनकी भावना किस प्रकार दूषित हुई?

भगवान– जिस समय तुम सेना लेकर यहा आ रहे थे, उस समय प्रसन्नचन्द्र ऋषि ध्यान मे बैठे थे। तुम अपने सेना के आगे–आगे दो आदमियो को इसलिए चला रहे थे कि वे भूमि देखते रहे और कोई जीव कुचल न जाये। दोनो आदमी मार्ग साफ करते जाते। उन दोनो ने भी प्रसन्नचन्द्र ऋषि को देखा। उनम से एक ने कहा–यह महात्मा कितने त्यागी और कैसे तपस्वी हैं? देखो किस तरह ध्यान मे डूबे हुए है! इनके लिये जगत् की सम्पदा तुच्छ है।

एक आदमी के इस प्रकार कहने पर दूसरे ने कहा– तू भूल रहा है। यह महान पापी और ढोगी है। इसके समान पापी और ढोगी शायद ही कोई दूसरा होगा।

करना जेस मूर्खता हे उसी प्रकार राजकुमार का कर्मचारिया के भरास छाडना मूर्खता हे। इसकी मूर्खता के कारण ही अज्ञानी बालक को अपने प्राणा की आहुति देनी पडेगी ओर यह मरकर नरक म जाएगा।

श्रेणिक तुम्हारे दोना आदमिया की आपस की बात ऋषि प्रसन्नचन्द्र न सुनी। यह बात सुनकर उनके वेराग्य की भावना बदल गई। वह साचने लगे–दुष्ट कृतघ्न लोग मेरे पुत्र की हत्या करना चाहत हें। में ऐसा कदापि नहीं हाने दूगा। मुझम बल की कमी नही हे। अब तक मुझ राज्यबल ही प्राप्त था, पर अब में योगबल का भी अधिकारी हू। इन दोना बला द्वारा उन दुष्टा का बुरी तरह कुचल दूगा।

प्रसन्नचन्द्र ऋषि के चित्त मे इस प्रकार अहकार का उदय हुआ ओर प्रतिशाध की भावना भी उत्पन्न हुई। वे अपने मन मे अनक प्रकार के सकल्प–विकल्प करने लगे। यहा तक कि वे मन ही मन घार युद्ध करन लग ओर अपन शत्रुआ का सहार करन लग। जब व एसा कर रहे थे तभी तुमन प्रश्न किया कि वे काल कर तो कहा जाव? तुम उन्ह ध्यान म समझत थे ओर में दखता था कि व घार युद्ध म प्रवृत्त हें। इसी कारण मेंन कहा था कि अगर व इस समय काल कर ता सातव नरक म जाव।

राजा श्रेणिक की उत्कण्ठा ओर बढी। उसन प्रश्न किया– भगवन! फिर आपन सर्वार्थसिद्ध विमान म जान क लिए केस कहा?

भगवान् न उत्तर दिया–प्रसन्नचन्द्र ध्यान–मुद्रा म वेठ–वेठ भी क्राध क आवश म आकर युद्ध करन म लग थ। उसी क्राधावश स उनका हाथ अपन मस्तिक पर जा पहुचा। उन्हान अपन सिर पर हाथ फेरा ता उन्ह विदित हुआ कि मर सिर पर कश नही हें। यह साचत ही उन्ह सुध आई कि–अर म ता त्यागी हू। फिर भी एस प्रपच म पडा हू। मेंन जिस त्याग दिया ह उसी क लिए फिर ससार म जान की या चिन्ता करन की क्या आवश्यकता ह? जिस वमन कर दिया ह उस फिर अपनान का विचार ही अशाभनीय ह।

भगवान न जा कुछ कहा ह ओर मेंन आपका जा सुनाया ह वह सिर्फ प्रसन्नचन्द्र ऋषि क सम्बन्ध म ही न समझिय। इस कथन का सबध अगर उन्ही क साथ हाता आर आपक साथ न हाता ता आपक स क्ष यह कथा रखी ही क्या जाती? इस कथा क आधार पर आपका अपना सबध म विचार करन की आवश्यकता ह आप अपन मन की गति पर विचार कीजिय। आप यहा बेठ ह पर आपका मन कहा जा रहा ह? प्रसन्नचद्र राजर्षि ध्यान म बेठ थ परन्तु उनका मन कहा स कहा चला गया था। ओर उसका परिणाम।

क्या हुआ? इसी प्रकार आप बैठे तो यहा हैं मगर आपका मन अन्यत्र चला गया तो उसका परिणाम क्या होगा? आपका मन स्वतन्त्र है, क्या आप उपयोग करने मे भी स्वतन्त्र हैं। जैसा आप चाहे अपने मन का उपयोग कर सकते हैं। जब यह सत्य है तो आप ऐसी जगह बैठकर भी अपने मन को बुरी जगह क्यो जाने देते है? आपको सोचना चाहिये कि आप क्या लेने के लिये यहा आये हैं? जो कुछ आप लेने आये हैं, वह वस्तु मन को एकाग्र करके आत्मा का स्वरूप देखने से और इस प्रकार आत्मबल प्राप्त करने से ही मिल सकती है। कहा भी है–

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य ।

आत्मा मे चित्त की एकाग्रता से ही आत्मा का दर्शन होता है। यही ऐसा बल है जिसके द्वारा परमात्मा को जान सकते हो। अतएव चित्त को परमात्मा के स्वरूप मे स्थिर करो–एकाग्र करो और इस बात का सदैव ध्यान रखो कि जिस वस्तु का त्याग कर दिया है कभी उसकी ओर मन न जाये। त्यागी हुई वस्तु की ओर मन के आकर्षित होने का फल क्या होता है, यह बात प्रसन्नचन्द्र ऋषि का वर्णन करते हुए भगवान् ने बतला दी है कि इस दशा मे काल करे तो सातवे नरक मे जाये। इसी से कहा भी है –

चतुराया रीझे नही, महा विचक्षण राम।
रीझे सच्चे प्रेम से, कला न आवे काम।।

परमात्मा दिखावे से नही रीझता। ढोग परमात्मा को प्रसन्न नही कर सकता। परमात्मा की प्रसन्नता अन्त करण की शुद्धि पर अवलम्बित है। अत पूजा या ध्यान मे बैठकर भी यह देखना चाहिए कि मै वास्तव मे परमात्मा की शरण मे हू अथवा विषयो की शरण मे हू?

भगवान् ने राजा श्रेणिक से कहा–प्रसन्नचन्द्र ऋषि ने जब अपने सिर पर हाथ फेरा और जब उन्होने अपनी स्थिति का विचार किया तब वे सोचने लगे- अरे! मैने यह क्या किया? ससार का त्याग कर चुकने के पश्चात् फिर सग्राम क्या? और जब सग्राम से रक्षा हो सकती हे तो क्या एकान्त धर्म [illegible] रक्षा नही होगी? मैन जिसे त्याग दिया उसके लिये सग्राम करने [illegible] जाना मेरा घोर अध पतन हे। मुझे धिक्कार हे।

इस प्रकार की जागृति आते ही उनके परिणामो मे सहसा परिवर्तन [illegible] बध परिणाम के अनुसार ही होता हे। कहा भी हे–

मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो ।

अर्थात् मन ही बन्धन ओर मोक्ष का प्रधान कारण हे। सत्सग आदि मन को शुद्ध रखने के कारण तो हैं लेकिन फल तो मन क परिणामा के अनुसार ही होता हे। जब पानी बरसता है तो नीम को नीम क अनुसार गुण हाता हे और आम को आम के अनुसार। अब आप सोच दखिये कि आपको क्या बनना है–आम बनना है या नीम बनना है। याद रखो, अपने मनोभावा को विशुद्ध रखोगे तो अच्छा फल पाओगे और यदि मनोभाव कलुषित हुए तो फल भी कलुषित ही प्राप्त होगा। यह एक ऐसी निर्विवाद बात हे जो सभी को मान्य हे। शास्त्र भी यही कहते हैं ग्रन्थ भी यही कहते हें और कुरान म भी यही कहा हे कि–हे मुहम्मद, जो खुद से नहीं बिगडता है उसे में नही बिगाडता ओर जो स्वय से नही सुधरता उसे मैं नही सुधारता। इस प्रकार अन्तिम वात अपने ही हाथ मे हैं। जब कोई व्यक्ति अपनी रक्षा आप करने को उद्यत हाता हे तमी उसको दूसरे की सहायता भी मिल सकती हे। जो अपनी रक्षा आप नही करता उसको दूसरे की सहायत्ता भी नही मिलती। इसक लिए श्रीकृष्ण का उदाहरण लीजिये –

श्रीकृष्ण न सब यादवा को एकत्रित करके कहा–अगर तुम मरी वतलाई हुई तीन वात माना तो में तुम्हारी रक्षा कर सकता हू, अन्यथा तुम्हारी रक्षा करन म में असमर्थ हू। यादवों न पूछा–वे तीन बात कोनसी हें ? तब कृष्ण न कहा–पहली बात यह हे कि तुम जुआ न खेलो। जुआ खलन स कितनी हानि हाती हे यह दखना हा ता धर्मराज का दखा। धर्मराज न अपन भाइया का आर यहा तक कि द्रोपदी को भी दाव पर लगा दिया था। तुम लाग कैसे भी क्या न हाओ धर्मराज की वराबरी नहीं कर सकत। एसी दशा म धर्मराज का भी जब घार विपति सहनी पडी तो तुम जुआ खल कर विपति स कैसे वच सकत हा? अतएव जुआ खलन का त्याग करा।

आज विदशिया की सगति स दोड आदि क नाम पर जुआ खला जाता ह। नाम चाह कुछ भी रख लिया गया हा लकिन दोड आदि क नाम पर लगाई जान वाली हारजीत जुए क अन्तर्गत हे। जुए स हान वाली हानि प्रसिद्ध ह। राजाआ का कर्त्तव्य हे कि अपन–अपन राज्य म जुए का निषध कर–उस राक। सुना ह यहा (मारवी म) या ता जुआ खलना निषिद्ध ह परतु जन्माष्टमी क अवसर पर जुआ खलन की छूट दी जाती ह। जो श्रीकृष्ण जुआ न खलन का उपदश दत थ उन्हीं क जन्म दिन क अवसर पर जुआ खलना आर राज्य की आर स इसकी छूट हाना कितना अनुचित है ? मेरा ख्याल ह कि महाराज स्वय ता जुआ खलन क समर्थक नहीं होंग मगर

आप लोगो की आदत देखकर या आपकी खुशामद मे पडकर ही जुआ खेलने की छूट देते होगे। अगर ऐसा नहीं है तो आप लोग महाराजा साहब से जुआ बन्द कर देने की प्रार्थना करे तब क्या महाराजा साहब जुआ बन्द नही करेगे?

(पूज्यश्री के यह फरमाने पर महाराजा मोरवी ने कहा मैं तो जुआ बन्द कर दूगा और उसके लिए आज्ञा जारी कर दूगा, लेकिन आप इन लोगो से कहिये कि यह छिपकर जुआ न खेले। जाहिरा खेलने वालो को तो रोका जा सकता है मगर छिपकर खेलने वालो का क्या किया जाये? उन्हे तो आप ही रोक सकते हैं।)

मराराजा साहब के यह कहने पर पूज्यश्री ने फरमाया–प्रसन्नता की बात है कि आप लोगो के कल्याण के लिये महाराजा साहब ने जुआ बद कर देना स्वीकार किया है। अब आपका कर्त्तव्य है कि आप छिप कर जुआ न खेले। अच्छा यह होगा कि आप जुआ खेलने का ही त्याग कर ले।

(पूज्यश्री की इस हार्दिक प्रेरणा से व्याख्यान सभा मे उपस्थित समस्त नर–नारियो ने जुआ खेलने का त्याग कर दिया।)

महाराजा साहब ने एक अच्छा उदाहरण उपस्थित किया है। इस उदाहरण को सामने रख कर दूसरी जगह भी जुए का खेल बन्द कराया जा सकता है। अलबत्ता प्रयत्न करने वाले चाहिये।

सम्भव है महाराजा साहब की जुआबन्दी की आज्ञा सुनकर कुछ जुआप्रेमियो को कष्ट पहुचे। वे सोच सकते हैं कि एक–दो दिन मौज–मजा करने के थे सो उनमे भी अडगा लगा दिया गया। लेकिन इस मौज–मजे से कैसी–कैसी हानिया होती है इस बात पर विचार करके देखो। जुए से होने वाली हानियो के लिये एक उदाहरण धर्मराज युधिष्ठिर का दिया जा चुका है। जब धर्मराज जैसे सामर्थ्यशाली पुरुष भी जुए से होने वाली विपदा से न बच सके तो आप किस गिनती मे हैं? आप विपदा से कैसे बच सकते हैं?

महाराजा साहब आपका कल्याण चाहते हैं। इस कल्याण–कामना से प्रेरित होकर ही उन्होंने द्यूत–प्रतिबधक आज्ञा जारी करना स्वीकार किया है। अगर आपके कल्याण की भावना न होती तो महाराजा का क्या बिगडता था? आप जुआ खेलते थे ओर महाराजा साहब को लाभ होता था। वे उस लाभ को क्यो त्यागते? आपका जुआ खेलना बद करके महाराजा ने आपके ऊपर अनुग्रह किया हे ओर साथ ही स्वार्थत्याग भी किया हे। ऐसी स्थिति मे आपका कर्त्तव्य हे कि आप महाराजा की इस आज्ञा के पालन मे सहयोग दे ओर न स्वय लुक–छिप कर जुआ खेले ओर न दूसरो को खेलने दे।

कृष्ण ने यादवो से कहा–प्रथम तो आप लोग जुआ न खले ओर दूसरी बात यह हे कि आप मदिरा पान न करे।

बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्य मदकारि तदुच्यते।

जिससे बुद्धि नष्ट होती हे वह सब मद्य कहलाता हे। मद्य के सेवन से महान् अनर्थ होते हैं। आज की सरकार भी इस बात को समझ गई हे। इसी कारण बबई आदि की कई प्रान्तीय सरकारा ने शराबबदी की योजना बनाई है। मगर ऐसी चीजो का सत्ता के द्वारा बद होना और बात हे तथा धर्म से बद होना और बात है कोई भी धर्म मदिरा के सेवन का समर्थन नहीं करता। इस्लाम मजहब मे भी नशा करना हराम हे। ऐसी स्थिति मे भी अगर कोई आदमी छिपकर पाप करता हे तो उसे क्या कहा जाये? मैंने किसी बोहरे के लडके को बीडी पीते नहीं देखा लेकिन आपके लडको का क्या हाल हे? आप मरे शिष्य कहलाते हैं और आपके लडके बीड़ी पीते हैं, यह कितनी बुरी बात हे? मगर जब आप स्वय बीडी पीएगे तो आपके लडको के सस्कार किस प्रकार अच्छे रह सकते हें? आप अपने लडको को व्यसनहीन और सुसस्कारी बनाना चाहते हें ता आप स्वय ऐसे बन जाइए। बालक अपन बुजुर्गो का अनुकरण करता हे। जब कोई बुजुर्ग बिगडता हे तो वह स्वय ही नही बिगडता बल्कि अपने बाल–बच्चो को भी बिगाडता हे क्योकि छोटे सदा बडा का अनुकरण करते हें। सुना हे कि स्कूलो म कई अध्यापक बीडी पीकर फेक दत हे ओर लडक उन टुकडो को उठा कर पीत हें। लडक सोचते हें बीडी म कुछ मजा होगा तभी मास्टर साहब पीते हें। मैं जब बहुत छाटा था तब बला क सूख डठला का तमाखू क रूप म पीता था और ऐसा मुह बनाता माना बडा आनन्द आया हो। तमाखू से क्या हानि–लाभ हे यह ता जानता नहीं था कवल अनुकरण किया करता था गाधीजी न लिखा हे कि अनुकरण क कारण उनम भी बीडी पीन का पाप आ गया था। इस पाप क कारण व घर म चारी करन लग आर जब चारी स काम न चला ता मरन क लिए तेयार हा गय। इस तरह बीडी क कारण अनक अवाछनीय परिस्थितिया उत्पन्न हा जाती हैं।

बीडी की तरह चाय का भी प्रचार बहुत हा गया हे। चाय का प्रबल । हा भल गया हा मगर समझदार लागा का कहना हे कि चाय हानि करन वाली चीज ह। अतएव इस पाप का भी त्यागन की आवश्यकता हे। यह मत दखा कि इसका प्रचार बहुत लागा म हा गया हे। यह भी मत साचा कि सभ्य कहलान वाल लाग इसका सवन करत हैं। जब यह निश्चित हे कि चाय हानिकारक ह ता फिर काई भी उसका सवन क्या न कर वह हानिकारक हो

रहेगी। जिस हानि करने वाली चीज का प्रचार हो जाता है, उसी का निषेध किया जाता है। कहा जाता है कि उबलते हुए पानी मे दूध डालने से दूध का सत्व नष्ट हो जाता है। सुना है कि मोरवी मे चाय के लिये अस्सी मन दूध आता है। कई स्थानो पर चाय का व्यवहार बद करने के लिये होटलो पर टैक्स बढा दिया गया लेकिन इसका कोई अभीष्ट परिणाम नही आया। होटल वाले पैसे बचाने के लिये दूध के बदले भ्रष्ट चीजे डाल देते हैं और इस प्रकार वे तो अपने टैक्स की पूर्ति कर लेते हैं परन्तु ग्राहको को मूर्ख बनना पडा है।

सरकारी आदेश से ऐसी चीजो के बन्द होने की अपेक्षा प्रजा स्वय समझ कर बन्द कर दे तो कितना अच्छा हो। अगर आप लोग विचार करे तो राज्यसत्ता की भी सहायता मिल सकती है और चाय के पाप से आपका छुटकारा हो सकता है।

आपके यहा चाय का इतना अधिक प्रचलन हो गया है, बहिने भी चाय पीने लगी है और यह कोई बुरा काम नही समझा जाता है। मैंने तो यहा तक सुना है कि उपवास करने वाली बाइया पारणा करते समय पहले चाय लेती है। यह बडी भयकर बात समझिये। जब स्त्री और पुरुष दोनो ही चाय के शोकीन हो जाए तो फिर चाय को डर ही किसका रहा। घर मे उसका स्वच्छन्द विहार होगा और वह बाल–बच्चो के प्राणो को भी चूसे बिना नही रहेगी। अतएव इस दुर्व्यसन का त्याग करने के सम्बन्ध मे भी विचार करना चाहिये।

श्रीकृष्ण ने यादवो से कहा–तीसरी बात यह है कि तुम लोग व्यभिचार का सेवन मत करो।

इस प्रकार कृष्णजी ने यादवो के कल्याण का विचार करके उन्हे तीन बाते बतलाई मगर यादवो ने कृष्ण का कहना नही माना। उन्होने इन तीनो का त्याग नही किया। परिणाम क्या निकला? दुर्व्यसनो के कारण वे आपस मे मूसल से एक दूसर का सिर फोड कर मर गये।

इसके उत्तर मे कृष्णजी बोले मैं रोने के लिये नहीं हू। मैंने समझा दिया था कि तुम लोग दुर्व्यसनो का त्याग कर दो, अन्यथा तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। मगर ये लोग नहीं माने। अब इनकी रक्षा हो तो कैसे हो? प्रत्येक व्यक्ति स्वय ही अपनी रक्षा कर सकता है और स्वय ही अपना विनाश कर सकता है। एक की रक्षा या विनाश दूसरे के हाथ मे नहीं है। आचारागसूत्र मे कहा –

पुरिसा! तुममेव तुम मित्त।

हे पुरुष! तू अपना मित्र आप ही है।

श्रीकृष्ण ने भी यही कहा है कि अपना उद्धार आप करो। अतएव मन, वचन ओर काम से शुद्ध होकर चित्त की वृत्तियो को आत्मा के स्वरूप दर्शन मे एकाग्र करो। ऐसा करने पर आप परमात्मा को जान सकेगे, सब प्रकार के सकटा से मुक्त हो जाएगे और शातिलाम कर सकेगे।

गुरुकुल के जो छात्र मुझसे आशीर्वाद लेने आये हैं उनसे मैं यही कहना चाहता हू कि वे अपने आपको सब प्रकार के दुर्व्यसना से बचाते रह ओर अपने जीवन को आदर्श बना कर सब पर छाया करे। वृक्ष जब तक छोटा रहता हे तब तक उसकी रक्षा करने की आवश्यकता रहती हे। बडा हो जाने पर वह स्वय दूसरा की रक्षा करता हे–शात पथिको को छाया देता हे फल–फूल देता हे। आज विद्यार्थियो को भी ऐसा ही बनना है। ससार नाना प्रकार के सतापो से सतप्त हे, विविध प्रकार की व्याधिया स व्याकुल हे। उसे शाति पहुचाने की आवश्यकता हे ओर यह निश्चित हे कि ससार म शान्ति क साम्राज्य का प्रसार वही कर सकता हे जिसकी बुद्धि अभ्रान्त हागी, जिसक सस्कार उत्तम हागे जा विवेक को आगे करके पेर बढाएगा। आज क विद्यार्थी भविष्यकाल के पथप्रदर्शक बने ओर ससार का कल्याण कर यही मरा शुमाशीर्वाद ओर शुभकामना हे।

7 : श्रीकृष्ण

श्री महावीर नमू वर नाणी।

यही भगवान् महावीर की प्रार्थना है। भगवान् महावीर ने इस ससार को शाति का उपदेश दिया है। जिस समय भारत मे दार्शनिक कलह हो रहा था उस समय भगवान् महावीर ने स्याद्वाद का प्रचार करके जगत् को यह सदेश सुनाया था—परस्पर मे क्यो लडते हो? पारस्परिक मतभेद और तज्जन्य कलह का कारण है अपूर्ण दृष्टि से विचार करना। अगर तुम्हारी दृष्टि मे पूर्णता आ जाए तो कलह के लिए अवकाश ही नहीं रह सकता। विरोध का मूल एकातवाद है। दृष्टि जब सकीर्ण होती है, तब मनुष्य मानने लगता है कि बस, सत्य उतना ही है जितना मैं जानता हू और वही है जिसे मैं कहता हू। मेरे विचार के विरुद्ध जितने भी विचार हैं सब असार हैं, भ्रम हैं, मिथ्या हैं, इसी प्रकार की विचारधारा दार्शनिक जगत् मे कलह का बीजारोपण करती है और धर्म के क्षेत्र मे अभिनिवेश उत्पन्न करके अशाति का आह्वान करती है।

भगवान् महावीर ने कहा—अभिनिवेश त्यागो। दृष्टि की सकीर्णता को हटाओ। सत्य इतना तुच्छ नही है कि वह पूरा का पूरा तुम्हारे सकुचित मस्तिष्क की परिधि मे समा जाये। उसकी पूर्णता समझने के लिये मस्तिष्क को विशाल बनाना पड़ता है। अनेक दृष्टिकोणो से उसे देखना पडता है तब कही वह समझ मे आ सकता है। सम्पूर्ण सत्य विविध नयो—दृष्टिकोणो के बिना समझ मे नही आता। अपेक्षावाद से विचार करो। ऐसा करने पर तुम वास्तविकता को भी समझ जाओगे और आपस की कलह से बच जाओगे।

वस्तु तत्त्व को विविध नयो से देखना ही सत्य का दर्शन करना है। यही जैन दृष्टि है। यही भगवान् महावीर की दृष्टि है। यह पूर्ण दृष्टि है। इस दृष्टि से विचार करने पर किसी प्रकार का दार्शनिक मतभेद नही रहता। वादी या प्रतिवादी तो अपने—अपने पक्ष का ही समर्थन करते हैं, लेकिन न्यायाधीश

वादी ओर प्रतिवादी दोनो की बात सुनकर तथा दोनो के पक्ष पर विचार करके सत्य की खोज करता है और अपना निर्णय देता हे। न्यायाधीश किसी एक पक्ष को लेकर वाद–विवद मे नही पडता। इसी प्रकार जिसे जैन–दृष्टि प्राप्त है वह भी किसी तरह के वाद–विवाद म नहीं पडता। वह सब का कथन सुनकर सत्य की खोज करके उसे अपनाता हे।

यो तो प्रत्येक दर्शन पूर्ण होने का दावा करता हे पर प्रत्येक दर्शन दूसरे दर्शन को अपूर्ण ओर भ्रात कहने मे सकोच नही करता। मगर जैन दर्शन इन से निराला है यह विविध नयो की अपेक्षा से सभी दर्शनो को आशिक रूप से सत्य स्वीकार करता है। पर सग्रहनय की अपेक्षा से वह वेदान्तदर्शन के अद्वेतवाद की सत्यता को स्वीकार करता हे। द्रव्यार्थिकनय से साख्यमत क नित्यता वाद का अगीकार करता है। वैशेषिकदर्शन के परमाणु वाद को उसम स्थान हे ओर पतजलि के योग–दर्शन को भी वह अस्वीकृत नही करता। लेकिन जेनदर्शन का कथन हे कि इन सब दृष्टियो म से जब एक दृष्टि को ग्रहण करके दूसरी दृष्टियो का तिरस्कार किया जाता हे, तब वह दृष्टि मिथ्या हा जाती हे। कारण यह है कि प्रत्येक वस्तु मे परस्पर विरोधी सरीखे प्रतीत होने वाले अनन्तधर्म हें ओर उनमे से एक को अगीकार करके शेष का अस्वीकार करना असत्य हे। अपेक्षावाद सबके विरोध का मथन करने वाला हे। कहा भी हे –

विरोधमथन हि स्याद्वाद ।

अर्थात् एक दर्शन का दूसरे दर्शन के साथ अथवा एक धर्म का दूसर धर्म क साथ जो विरोध प्रतीत हाता हे उसका अत स्याद्वाददर्शन से हाता है। इस प्रकार जेन दृष्टि पूर्ण हे वह नयवाद या अपक्षावाद स सब क कलह मिटाती हे। अतएव इस पूर्ण का अपनाना योग्य हे। भगवान् महावीर का कथन ह कि कवल अपनी ही बात न पकड बेठो किन्तु दूसर का भी पक्ष सुना आर अपना पक्ष दूसर का समझाआ। अपनी दृष्टि विशाल रखा। एसी सकीर्ण दृष्टि मत रखा कि मर सिवाय दूसर सब गलत कहत हें। में जा कहता हू वह सही ह। दूसरा की बात सुननी ही नही चाहिय।

यद्यपि भगवान महावीर यही कह गय हें परन्तु भगवान की कही हुइ बात आज ग्रथा म ही रह गई हे। आज उदारता का व्यवहार कम दखा जाता ह। सामान्य लाग किसी धम क सिद्धान्ता का न दख कर उस धम क अनुयायिया क व्यवहार का दखकर धर्म क सिद्धान्ता का अनुमान लगात हें। अतएव हम याद रखना चाहिय कि हमार व्यवहार स ही लाग हमार सिद्धान्ता

के विषय मे निर्णय कर लेते हैं। हमारी सकुचितता से लोग जैनदृष्टि को भी सकुचित समझ लेते हैं। जो लोग केवल व्यवहार को नही वरन् जैनशास्त्र को देखेगे उन्हे मालूम होगा कि जैनदृष्टि कितनी विशाल है। जैनशास्त्रो से जैनदृष्टि की विशालता को समझो और यदि आपको यह ठीक मालूम हो तो उसे अपनाओ।

आज कृष्णजन्म के विषय मे कुछ कहना चाहता हू। इस सम्बन्ध मे भी भगवान् महावीर की दृष्टि से विचार करूगा अगर किसी को बात उचित न मालूम हो या ठीक तरह समझ मे न आये तो वह स्पष्ट कह सकता है। न्यायसगत विचार का मैं सदा स्वागत करूगा।

भगवान् महावीर की दृष्टि से कृष्ण का चरित्र शास्त्रो और कथाग्रन्थो मे पाया जाता है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में भी कृष्ण का चरित्र वर्णन किया गया है और समवायागसूत्र मे दशार्ह के वर्ण के आधार पर कुछ कहता हू। अपने को श्रीकृष्ण के चरित्र पर भी भगवान् महावीर द्वारा बताई गई पूर्ण दृष्टि के आधार पर विचार करना चाहिये।

श्रीकृष्ण को जैन अपनी दृष्टि से मानते हैं, वैष्णव अपनी दृष्टि से मानते है और राष्ट्रवादी अपनी दृष्टि से मानते हैं। इस प्रकार भिन्न–भिन्न लोग विभिन्न दृष्टियो से कृष्ण को मानते हैं। कृष्ण सभी के हितैषी भी थे। आप भी अगर पूर्ण दृष्टि से विचार करे तो आपको मालूम होगा कि कृष्ण सबके हितैषी थे। जैनदृष्टि नाम के भेद को वस्तु का भेद नहीं मानती और तत्त्व को देखती है। उसका कहना है –

राम कहो रहमान कहो कोई कान्हा कहो महादेव री।

श्री हेमचन्द्राचार्य ने भी यही कहा है –

यत्र तत्र समये तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
वीतदोषकलुष स चेत् भवान् एक एव भगवन्नमोऽस्तु ते।।

किसी भी परम्परा मे हो कुछ भी नाम हो, जो निर्दोष है और निष्कलुष है उसे नमस्कार हो।

निजगुण रमे राम सो कहिए, रहम करे रहमान री।

जो अपने आत्म–गुणो मे रमण करता है वही राम हे और जो रहम करता है वह रहीम या रहमान कहलाता हे। ऐसा होने पर भी अगर कोई आदमी राम या रहीम का नाम लेकर बेईमानी करता है तो उसके लिये यही कहा जाएगा कि वह झूठा है। ऐसा करना राम या रहीम का सच्चा मार्ग नही कहा जा सकता। जो ऐसा करता है उसने केवल नाम ही देखा है, गुण नही देखे।

मतलब यह है कि नाम कुछ भी हो, महापुरुषो के काम जगत् के हित के लिये ही होते हैं और इसी कारण सब लोग उन्हे अपना–अपना मानते हैं। अतएव कृष्णजी के चरित्र पर विशाल दृष्टि से विचार करना चाहिये। यह नही समझना चाहिये कि कृष्ण सिर्फ वैष्णवो के ही थे। यह भी नही सोचना चाहिय कि हमे कृष्ण का चरित्र सुनने की क्या आवश्यकता है। अगर हमारी दृष्टि तत्त्व पर न पहुची तो यही कहा जाएगा कि अभी हमारी दृष्टि म विशालता नही हे। अगर आप नाम के बदले काम देखेगे तो तत्त्व पर पहुच जाएगे।

महापुरुषा के नाम उनके गुणा को दृष्टि मे रखकर ही लिये जाते हैं। मगर आजकल प्राय नाम ही लिया जाता है महापुरुषा क गुण नही दखे जात। उन महापुरुषा न अपन जीवन म कैसे–कैसे काम किय हैं और हम क्या करना चाहिए यह बात लाग भूल रह हैं। महापुरुषा के काम का न दखन क कारण ही आज भेद दिखाई द रहा हे। महापुरुषा का जीवन जगत्–हित म रत रहता ह या या कहना चाहिय कि जा अपन जीवन को जगत् क हित क अर्थ उत्सर्ग कर दता हे वह महापुरुष कहलाता हे। अतएव किसी भी महापुरुष का वास्तविक जीवन समझन क लिए उनक कर्त्तव्या का समझना आवश्यक हे। जब आपका ध्यान कर्त्तव्या की आर जायगा तब आप उनक जीवन का महत्व समझ पाएग।

आज कृष्ण का जन्म दिन हे। कृष्ण न किसी स अपना जन्म–दिन मनान क लिए नही कहा। फिर भी उनकी जयन्ती मनाई जाती है। अगर उन्हॉन अपन जीवन म जगत हित क कार्य न किय हात ता आज कोन उनकी जयन्ती मनाता? मगर उन्हान जगत का हित किया ओर ससार म आनन्द बरसाया। इसी कारण उनका जनमदिन मनाया जाता।

जगत का हित करन क लिय कृष्ण का यह चरित आपक सामा काच की तरह ह। इस काच म आप अपना चरित्र दखा ओर साचा कि कृष्ण न क्या किया था आर आप क्या कर रह हैं? कृष्ण–चरित्र सुनकर भी अगर

आपने जगत् के हित के काम न किये वरन् अपनी ही स्वार्थ साधना मे रचे–पचे रहे तो उस दशा मे आप श्रीकृष्ण का चरित सुनने के योग्य भी नही रह सकते।

कोई कह सकता है कि आजकल ससार बडी तेजी के साथ बदलता जा रहा है। हमे कल की बात भी आज पसन्द नही आती। ऐसी स्थिति मे हजारो वर्ष पुरानी बात कैसे पसन्द आ सकती है? इन बीच के हजारो वर्षो मे दुनिया बहुत बदल गई है। सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याए कुछ की कुछ हो गई है। लोगो की भावनाए भी परिवर्तित हो गई हैं। तब हजारो वर्षो पहले के विधि–विधान आज किस प्रकार लागू हो सकते हैं?

ऐसा कहने वालों को समझना चाहिये कि जिनमे जीवन है, वे कृष्ण की जयन्ती को पुरानी समझकर उसकी उपेक्षा नही कर सकते। हा, जिनमे जीवन ही नही है वे भले ही ऐसा कहे। बालक माता का दूध पीता है। क्या वह कहता है कि यह दूध तो वही है जो मैंने कल पीया था? ऐसा कहकर क्या वह माता के दूध की उपेक्षा करता है? बालक अपनी माता के स्तन की, यह कहकर अवज्ञा नही करता कि यह स्तन पुराना है। माता का स्तन उसे सदा नया–नया ही लगता है। लेकिन बालक ऐसा तमी मानता है जबकि वह जीवित हो। यदि वह जीवित है तो उसे अपनी माता नित्य नई ही लगती है और वह यही सोचता है कि मेरी माता उन्नति मेरी चाहती है, मुझे नित्य अमृत–सा दूध पिलाती है, मुझे दीन–हीन नहीं बनाना चाहती और न मुझे अवनत ही होने देना चाहती है।

इसी प्रकार आप सोचे कि यह कृष्ण चरित आपको जीवन देने वाला है हमारी उन्नति करने वाला है, तो आपको भी यह पुराना नही लगेगा। उस दशा मे आप यह नही कहेगे कि कृष्ण की जयन्ती बहुत पुरानी है। अतएव हमें अच्छी नही लग सकती। बल्कि आप यह कहेगे कि कृष्ण के चरित्र से हम अपने विषय मे जान सकते हैं कि हम उन्नत हुए हैं या अवनत? उस समय कृष्ण की यह उक्ति आपके कानो मे गूजने लगेगी –

न हि कल्याणकर कश्चित् दुर्गति तात। गच्छति।

बशी बजाई थी या ज्ञान की बशी बजाई थी? अच्छे कार्य का आप चाहे धर्म कहे, पुण्य कहे या और कुछ कहे लेकिन कृष्ण ने कहा है कि जो अच्छे काम मे लगा रहता है, उस व्यक्ति का कभी अकल्याण नही होता। कृष्ण ने जनता के सामने इसी उपदेश की बशी बजाई थी। ऐसे ही कारणो से आज हजारो वर्ष बीत जाने पर भी उनकी जयन्ती मनाई जा रही है।

कहा जा सकता है कि धर्म की बात रहने दीजिये। धर्म की आवश्यकता व्यक्ति के लिये भले हो लेकिन समष्टि के लिए धर्म की क्या आवश्यकता है? राजा, महाराजा या सार्वजनिक जीवन बिताने वाले के लिए धर्म अनावश्यक है। लेकिन जब लोगो मे धर्म के प्रति इस तरह की भावना फैलती है और धर्म की उपेक्षा होने लगती हे तब कोई न कोई महापुरुष यह समझाने के लिये आता ही हे कि धर्म की जरूरत व्यक्ति के लिये ही नही किन्तु समष्टि के लिए भी है। धर्म की बदौलत ससार मे थोडी–बहुत शाति दिखाई देती है। जब धर्म नही होगा या सार्वजनिक जीवन व्यतीत करने वालो के लिये धर्म की आवश्यकता नहीं समझी जायेगी तो निस्सदेह कहा जा सकता हे कि ससार मे हाहाकार मच जाएगा। कृष्ण ने जन्म लेकर लोगो को यही समझाया था।

यद्यपि ससार म शाति के लिए धर्म की आवश्यकता हे लेकिन आज धर्म की इस तरह उपेक्षा की जाती हे जेसे बिना बाप के बेटे की। जेसे बिना बाप के बेटे की कद्र नही होती उसी प्रकार धर्म की बेकद्री हो रही हे। कई लोग कहने लगते हैं–हम धर्म के मामले म स्वतन्त्र हे। धर्म का मानना या न मानना हमारी इच्छा पर निर्भर हे। लेकिन ज्ञानियो का कथन हे कि–याद रखो धर्म की उपेक्षा मत करो। धर्म पर शक्ति–विशेष का सरक्षण हे यह बात कहने भर के लिये नही हे किन्तु जब भी धर्म की उपेक्षा होने लगती हे तभी वह शक्ति किसी न किसी रूप म जन्म लेती हे। ओर बतला देती हे कि ससार म धर्म की आवश्यकता हे। ससार की शाति के लिये धर्म का अस्तित्व अनिवार्य हे। धर्म की अवहेलना नही की जा सकती।

शक्ति एक गुण हे ओर गुण गुणी के आधार पर ही रह सकता हे। अतएव धर्म की शक्ति भी किसी व्यक्ति के रूप म ही जन्म लेती हे। इसीलिये महापुरुषो के लिये कहा जाता हे –

परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।

अर्थात्–महापुरुष धर्म का परित्राण करने ओर पापो का नाश करने के लिये ही जन्म लेते हैं। इस दृष्टि से कहा जा सकता हे कि कृष्ण के रूप म धर्म की शक्ति का जन्म हुआ।

जब आप यह मानेगे कि धर्म ही परमात्मा है या धर्म का रक्षक परमात्मा है तभी आप अलौकिक काम करने मे समर्थ हो सकते हैं। वस्तुत अपनी उन्नति और अवनति अथवा शाति और अशाति अपने ही हाथ मे हे।

इस प्रकार सब बात आपके ही हाथ है। आप अच्छे काम करेगे तो आपका अकल्याण कदापि नही हो सकता।

बहुत बार लोग अच्छे काम के विषय मे यह सोचने लगते हैं कि लोगो की निगाह मे मेरे अच्छे काम की कद्र होगी या नहीं? लोग मेरे काम की पूछ करेंगे या नहीं? इस प्रकार अच्छे कामो के लिये दूसरो का मुह देखने लगते हैं। मगर ज्ञानीजनो का कथन है कि अच्छे कामो के लिए दूसरे का मुह देखने की क्या आवश्यकता है? परमात्मा को ही पकड कर दूसरो का मुह मत ताको। जब तुम सत्कार्य मे लगे हो तो दूसरो की तरफ क्यो देखते हो। सत्कार्य करके तुम जो सतोष पाओगे उसे बढकर तुम्हारे कार्य की ओर क्या कद्र होगी? अतएव दूसरो की तरफ से अपनी दृष्टि हटाकर अपनी ही ओर लगाओ और अधर्म से बचे रहकर धर्म मे प्रवृत्त होओ।

प्रश्न होता है। धर्म क्या है? और अधर्म क्या है? इन छोटे प्रश्नो का उत्तर बहुत विशाल है। यहाँ विस्तार मे न जाकर इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि–

महाजनो येन गत स पन्था।

सर्वसाधारण को यही समझ लेना चाहिये कि जिस मार्ग पर महापुरुष गये है उसी मार्ग को पकड़ कर मैं चलू, यह धर्म हे। ऐसा सोचकर धर्म के मार्ग पर चलो। ऐसा कहने पर आपका कदापि अकल्याण नही होगा।

कृष्णजन्म के विषय मे जो कुछ कहना है, उसकी यह पीठिका है। कृष्ण का जन्म कब और किस प्रकार हुआ अब इस विषय मे कुछ कहना है। यह पहले ही बतला दिया गया है कि इस सम्बन्ध मे जो कुछ कहूगा, जैनदृष्टि से कहूगा। इसके अनुसार कृष्ण का जन्म मथुरा मे हुआ था। कस बडा अभिमानी था। वह सोचता था कि मेरे सामने सारा ससार तुच्छ है, जो कुछ हू मै ही हू। मुझे धर्म का अनुचर होकर नही रहना है बल्कि धर्म मेरा अनुचर है। मै जो कुछ करू वही धर्म है। मेरे सामने मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई धर्म नही चल सकता। इस प्रकार की उद्धतता की भावना सिर्फ कस की ही नहीं, उस समय के अन्याय राजाओ की भी हो रही थी।

साधारण आदमी की बात अलग है लेकिन जब राजा–महाराजा और देश के बडे प्रमुख समझे जाने वाले लोग धर्म से पतित हो जाते हैं तब

उनकी देखादेखी दूसरे बहुत–से लोग भी पतित होने लगते हैं और जब राजा महाराजा धर्म पर दृढ रहते हैं तब दूसरे भी बहुत–से लोग धर्म पर दृढ रहते हैं। लेकिन उस समय अनेक राजाओ की यह भावना हो रही थी कि हमारा कहना ही धर्म है। कस ऐसे राजाओ मे मुख्य था। दूसरी ओर मगधाधिप जरासघ भी यही मानता था। दिल्लीश्वर दुर्योधन भी कहता था कि हमारी शक्ति के सिवाय धर्म नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। हमारी शक्ति के सामने धर्म और ईश्वर की शक्ति, उसी प्रकार नही ठहर सकती, जिस प्रकार सूर्य के सामने तारो का प्रकाश नही ठहर सकता। इस तरह दुर्योधन घमड मे चूर था। कालीनाग, जो नाग जाति का या दूसरी हल्की जाति का व्यक्ति था, समझता था कि जब तक हम मे जहर भरा है, कोई हमारा क्या बिगाड़ सकता है? जरासघ का पुत्र काली कुमार दूसरो को चूसना ही अपना परम धर्म समझता था। बलवान् के दो भाग' इस कहावत के अनुसार वह दूसरो का शोषण करना अपना अधिकार मानता था।

उस समय के राजा–महाराओ की प्राय यह स्थिति थी। जब राजाओ की मनोदशा ऐसी हो तो जगत् पर कैसा सकट हो सकता है, इस बात की कल्पना करना कठिन नही है। इन राजाओ को उस समय कोई समझाने वाला नही था। यद्यपि समझाने की योग्यता रखने वाले पुरुष उस समय मोजूद थे ओर वे शास्त्रा का सार निकाल कर उनके सामने रखते भी थे ओर यह भी बतलाते थे कि कर्त्तव्य एव धर्म यह हे, मगर राजाओ पर उनका कुछ भी प्रभाव नही पड़ता था। राजा कहते थे – यह चीज हमारे काम की नही हे किसी दूसरे को समझाओ। हमारे लिए तो हमारी शक्ति ही धर्म हे। इस मनादशा के कारण सारे भारत म अन्धाधुन्धी मची हुई थी। परिणाम यह हुआ कि जा राजा दु खी की सहायता करके दु ख मिटाने वाले हाने चाहिये थे वही गरीबा का हजम करने लग। इस कारण जगत् म त्राहि–त्राहि मच गई।

धर्मात्मा का दखकर धर्म ता सीखना चाहिये लकिन अधर्मी का दख कर अधर्म सीख लना उचित नही हे।

मथुरा क राजा कस न सावा कि राजकाल म मरा बाप उग्रसान बाधक हा रहा ह। इस किसी प्रकार रास्त स अलग कर दना चाहिय। यह साचकर अपना रास्ता साफ करन क लिय उसन अपन पिता का कारागार म बद कर दिया। उसन विचार किया– मै राजा हू सर्वशक्ति–सम्पन्न हू मेर काम न जा बाधक हा उस कारागार क अतिरिक्त दूसरा काई स्थान उपयुक्त नहीं

हो सकता। इस प्रकार उग्रसेन को कारागार के हवाले करके आप निर्विघ्नराज्य करने लगा और मनमानी करने लगा।

अपने पिता को जेल मे डालने के उदाहरण इतिहास मे भी मिलते हैं। औरगजेब ने भी अपने पिता को जेलखाने मे कैद कर दिया था। उसने ऐसा किया सही मगर परिणाम क्या निकला? उसी परिणाम के आधार पर धर्म और अधर्म का पता लगाना चाहिये।

इसी प्रकार कस ने अपने पिता उग्रसेन को कारागार के पींजरे मे डाल दिया। जगत मे यह बात प्रसिद्ध हो गई कि कस ने अपने पिता को कैद कर लिया है। जिसने सुना उसी ने कस की इस करतूत को अन्यायपूर्ण कहकर उसकी निन्दा की। कस के एक छोटे भाई का नाम अतिमुक्तक था। उन्हे एवन्ता' भी कहते हैं। वह कस की तरह क्रूर और अन्यायी नही थे। वह अतिशय धर्मपरायण और नीतिनिष्ठ थे। अपने पिता को कारागार में कैद हुआ देखकर उन्हे बहुत बुरा मालूम हुआ। मगर वह क्या कर सकते थे सारी सत्ता कस के हाथ मे भी। अतएव उन्होने विचार किया कि कस अपने अन्यायपूर्ण कृत्यो से विरत हो जाए तो अच्छा है, अन्यथा इस घर मे मेरा रहना ठीक नही है। यह सोचकर अतिमुक्तक ने कस को समझाने का भरसक प्रयत्न किया। खूब अनुनय–विनय करके अन्याय और अधर्म के परिणाम की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया मगर कस पर उसका कुछ भी प्रभाव नही पडा। जैसे बालू से तेल निकालने का प्रयत्न असफल ही रहता है, उसी प्रकार कस को समझाने का प्रयत्न भी सफल नही हुआ। अन्तत अतिमुक्तक कुमार ने कस के साथ असहकार करना ही उचित समझा। वह दीक्षा लेकर मुनि हो गये। अतिमुक्तक मुनि उग्र–विहारी होकर शरीर को सुखाते रहते और यह सोचकर अपनी आत्मा को उन्नत करते रहते कि ससार जघन्य स्वार्थसाधना का धाम है। ससार की भूल–भुलैया अजब है। जिन्होने जनम दिया, जन्मोत्सव मनाया, पाल–पोसकर बडा किया उन्ही पिता को जेल मे डाल देने से बढकर और क्या स्वार्थपरायणता हो सकती है। ससारी प्राणी इतता अधम हो सकता है।

भाई प्रतापशाली राजा ओर तुम भिखारी। यह कितनी बुरी बात हे। तुमन तो लाज छोड दी है मगर हमे लज्जित होना पडता है।

कस की पत्नी जीवयशा ने इस प्रकार की जली–कटी बात सुनाकर मुनि की भर्त्सना की। मुनि ने सोचा–यह वर्त्तमान मे भूली हुई है ओर भविष्य का इसे ज्ञान नही है। इसका अभिमान बेहद बढ गया है। इसे भविष्य की सूचना दे दी जाये तो सम्भव है कि इसकी बुद्धि ठिकाने आ जाये। यह सोचकर मुनि ने जीवयशा से कहा देवी, धीमी रहो। इतना अभिमान मत करो। जरा अपने पति का चरित्र तो देखो। तुम्हारा पति अपने पिता को केद करके राजा बना हुआ है, क्या यह अच्छा है? वह नीति और धर्म को भूल रहा हे अन्याय ओर अधर्म मे सलग्न हे, घोर अत्याचार कर रहा है। यह सब देख कर तुम्ह लज्जा नही आती और मैंने जगत् के कल्याण का मार्ग अपनाया हे महापुरुषो के महापथ का अनुसरण किया है, यह देखकर तुम्हे लाज लगती हे। तुम राज्य के गर्व मे चूर होकर अपनी बुद्धि ओर हृदय को कुचल चुकी हो। इसी कारण तुम्ह विपरीत सूझ रहा है। लेकिन याद रखना यह स्थिति सदा नही रहेगी। राजधानी हाने के नाते तुम अपना कर्त्तव्य समझाो ओर पति का प्रशस्त पथ पर लाओ। मरे कार्यों से नही वरन् अपने पति के कार्यो से लज्जित होआ।

जीवयशा–राजपुत्र हाकर भीख मागना क्या लज्जास्पद वात नही हे?

मुनि–क्या राजपुत्र क लिय अपन बाप का कारागार म वन्द कर दना लज्जा की वात नही ह? में कहता हू कि अभिमान मत करा। तुम्हारा अभिमान ज्यादा दिन रहन वाला नहीं हे। तुमन जिस दवकी का दासी की तरह वना रखा ह उसी दवकी का सातवा पुत्र तर पति का वध करगा ओर तुझ विधवा वनाएगा।

इतना कहकर मुनि अपनी धीमी चाल स चल दिय। जीवयशा मुनि की भविष्यवाणी सुनकर मूर्छित हा गई। आखिर ता स्त्री ही ठहरी। स्त्रिया म इतना वज्र आर साहस कहा कि व इतनी कठार वात सुनकर धीरज रख सकॆ।

पण्डित ने अपनी पढाई का वर्णन करते हुए बतलाया कि मैंने ज्योतिष का भी अध्ययन किया है। ज्योतिष–विद्या के आधार पर मे भूत, भविष्य और वर्त्तमान की बाते बतला सकता हू।

ज्योतिषशास्त्र ईश्वर का नेत्र कहलाता है। ज्योतिषी विद्वान् सात तह मे बैठ कर भी जो ग्रहण बतलाते हैं वह बता सकता हू।

कस ने कहा–अगर आप भूत भविष्य की बात बतला सकते हैं तो यह बतलाइये कि मेरी मृत्यु किस प्रकार होगी? किसके हाथ से मैं मारा जाऊगा? या स्वाभाविक मौत से मरूगा?

राजा का प्रश्न सुनकर पण्डित असमजस मे पड गया। लेकिन उसने सोचा–मुझे अपनी विद्या का अपमान नही होने देना चाहिये और गणित से जो बात निर्णीत हो राजा से स्पष्ट कह देना चाहिये।

इस प्रकार निर्णय करके ज्योतिषी ने कस से कहा–ससार की सभी वस्तुए अनित्य है। सब मे सदेव परिवर्तन होता रहता है।

परिवर्तिति ससारे मृत को वा न जायते।

जन्म होना ही मृत्यु का अटल प्रमाण है। जिसने शरीर धारण किया है वह एक न एक दिन अवश्य ही शरीर का त्याग करेगा। अनादि काल से चले आने वाले ससार मे कोई भी प्राणी सदा जीवित नही रहा और न रहने वाला है। बडे–बडे सम्राट और चक्रवर्ती आये और चले गये। यहा किसी का प्रताप स्थायी नही रहा। काल की चक्की मे सभी का अभिमान पिस कर चूर–चूर हो जाता है। वास्तव मे ससार मे कोई भी वस्तु ऐसी नही है जिस पर अभिमान किया जा सके। अतएव राजन्, मेरी धृष्टता के लिये क्षमा कीजिये। आप अभिमान का त्याग करे और जितना सम्भव हो उतना सुकृत कर ले।

कस–स्पष्ट कहिये मुझे मारने वाला कोई है या नही।

पण्डित–हा आपकी बहिन देवकी का सातवा पुत्र आपका वध करेगा। आप उसका मारने के लिये जितने भी प्रयत्न करेगे वह सब निष्फल सिद्ध होगे। यही नही बल्कि वे उसक लिये अनुकूल होगे। वह पुरुष साधुओ की रक्षा और दुष्टो का विनाश करने के लिए ही जन्म लेगा।

पण्डित, तुमने भविष्य की बात का पता देकर बहुत अच्छा किया हे लेकिन मुझे तुम्हारे कथन पर विश्वास नही हे। अतएव अभी मैं तुम्हे केद मे रखूगा। अगर तुम्हारा भविष्यकथन सत्य हुआ तब तो तुम मुक्त हो ही जाओगे अन्यथा कारागार मे ही रह कर अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करना।

कस ने पडित को केद कर लिया। इसके बाद वह अभिमान करने लगा कि मेरा भाग्य कितना अच्छा है जो पहल से ही सब बात का पता लग गया। अब पण्डित को ज्ञात होगा कि ज्योतिष के पोथे कितने थोथे हैं।

इस प्रकार अकडता हुआ कस अपने महल मे आया। महल म आने पर उसने रानी जीवयशा को उदास देखा। उसने रानी से पूछा—देवी उदास क्यो।

जीवयशा अत्यन्त कातर होकर कहने लगी—आज अभी देवर आये थे। उनके साथ मरी बातचीत हुई। उन्होने बतलाया हे कि तुम्हारे पति को देवकी का सातवा लडका मारेगा। उनके मुख स यह अशुभ और अनिष्ट बात सुनकर अत्यन्त दु ख हो रहा हे।

पण्डित ओर अतिमुक्तक मुनि की एक सरीखी भविष्य वाणी सुनकर कस को होश म आ जाना चाहिय था। मगर नीतिकार ठीक ही कहत हैं —

भावी चेन्न तदन्यथा।

अर्थात— हानहार हाकर ही रहता हे।

इसी कारण कस ठीक रास्त पर न आकर उल्टा ही विचार करन लगा। उसन साचा—जब मुझ मालूम हा चुका हे कि दवकी का सातवा पुत्र मरा वध करगा तब मे दवकी का ही क्या न मार डालू? न रहगा बास न बजगी बासुरी। जब दवकी ही जीवित नहीं रहगी ता उसका पुत्र कहा स आएगा? आर मरा वध कान करगा? दवकी का पुत्र मरा वध करगा यह मालूम हा जान पर भी दवकी को जीवित रहन दना नीतिसगत नही हे।

जीवयशा न कस का समझान का प्रयत्न किया। उसन कहा—प्राणनाथ आप अब शान्त हा। अनीति ओर अधम का त्याग द। श्वसुर का कारागार स मुक्त कर द आर प्रजा का आनन्दित कर। पर कस न जीवयशा की बात भी नहीं सुनी। वह कहन लगा—अगर स्त्रिया की बात मानन लगू ता गजब हो जाए। स्त्रिया स्वभावत भीरु होती ह। जरा—सी बात स डर जाती हैं। लेकिन हम पुरुष ह आर हमे सत्ता का बल प्राप्त है। इस सत्ता—बल का कैसे त्याग कर द?

कस ने पहले तो वसुदेव और देवकी को यमलोक पहुचाने का विचार किया मगर होनहार की प्रबलता के कारण उसे ऐसी बुद्धि सूझी कि उसने अपना यह विचार बदल दिया। फिर भी दोनो को कारागार मे बद तो कर ही दिया।

कस के इतना करने पर भी जो शक्ति प्रकट होनी थी, वह कारागार मे भी प्रकट होकर ही रही। वह वहा भी न रुकी। वास्तव मे धर्म की शक्ति को रोकने मे कोई भी समर्थ नही है। कस अधर्म करके उसके फल से बचना चाहता था। उसके सामने देवकी तथा वसुदेव थे। देवकी स्त्री थी और वसुदेव पुरुष होने पर भी उसके कारागार मे कैद थे। कस का प्रकट रूप से सामना करने वाला कोई नही था। फिर भी उसका मनोरथ पूर्ण न हो सका। वस्तुत अधर्म का मनोरथ पूरा नही हो सकता।

देवकी कैद मे पड़ी हुई भी यही सोचती थी कि मुझे धर्म का पालन करना चाहिये और सन्तान उत्पन्न होने पर कस को सौंप देने का पति ने जो वचन दिया है उसका भी पालन करना चाहिये। इस विचार के कारण देवकी न अपने अनमोल पुत्रो को जन्म दे–देकर वसुदेव के हाथो मे सौंप दिया कि वे अपने वचन का पालन करने के लिए उन्हे कस को दे दे। लेकिन ऐसे धर्मात्मा के पुत्र किस प्रकार मारे जा सकते हैं? इस सबध मे अन्तकृद्दशागसूत्र मे कहा है –

सुलसा नाम की एक सेठानी ने देव का स्मरण किया सुलसा के बच्चे मर जाते थे। देव ने सुलसा से कहा–मृत बालक को पुन जीवित कर देने की शक्ति ता मुझमे नही हे अलबत्ता तुम्हारे मृत बालक के बदले जीवित बालक लाकर तुम्हे दे दूगा। सुलसा ने यह स्वीकार कर लिया।

है, यह सभी जानते हैं। उस सन्तान को मरने के लिए दे देना कितनी कठिन बात है। लेकिन देवकी सोचती थी कि पति का धर्म जाना उचित नहीं हे। कुछ भी हो पति ने कस को सतान सौंप देने का वचन दिया है ओर उसका पालन होना ही चाहिये।

देवकी की तरह वसुदेव भी धर्म पालने वाले थे। इसलिए वे भी पुत्र का मुह देखे बिना ही सन्तान को ले जाकर कस के सुपुर्द कर देते थे। कस उस मरे हुए बालक को देख कर कहता–देखो मेरा प्रताप। मेरे प्रचण्ड प्रताप से शत्रु जन्मते ही मौत के शिकार बन जाते हैं। फिर भी शत्रु से वैर तो लेना ही चाहिये। इस प्रकार कहकर वह उन मृतक बालको को भी पैर पकड कर पछाड़ देता।

क्या कस का यह कार्य उचित था? जिन्हे वह पछाड देता था वे बालक तो मरे हुए थे। कदाचित् जीवत होते तो भी उनका क्या अपराध था? किन्तु उसे ऐसी बातो का भान नही था। आज भी ऐसे लोग ससार मे मोजूद हें जो बाप से वेर न भजा सकने के कारण बेटे से वैर का बदला लेते हैं।

देवकी क छह पुत्रो का यही हाल हुआ। वास्तव मे वे छहा सकुशल सुलसा सेठानी के घर पहुच गये ओर सुलसा के छह मृतक पुत्रा को मार कर कस अत्यन्त सतुष्ट हुआ।

सातवीं बार कृष्ण का जन्म हुआ। उस समय देवलीला का प्रादुर्भाव हुआ। कस का कठार प्रबन्ध ओर समस्त प्रयत्न निष्फल हुआ। कृष्ण का जन्म दकर दवकी न वासुदव स कहा–आप इसकी रक्षा का प्रयत्न कीजिय। इसकी रक्षा नन्द राजा की रानी यशोदा ही कर सकती हैं। उसक साथ मरी बातचीत भी हा चुकी ह। अतएव आप इस गाकुल ल जाइय।

नन्द गापा क स्वामी थ। राजा ता व अब कहलात हैं परन्तु वास्तव म व उन ग्वाला म स एक थ जिन्ह आज लाग बुद्धिहीन कहत हैं। फिर भी कृष्ण उनक घर गय थ। प्रश्न किया जा सकता हे कि कृष्ण की रक्षा करन वाला काई राजा–महाराजा नही था कि कृष्ण का ग्वाल क घर जाना पडा? लकिन व ग्वाल क घर जान क कारण ही दीनानाथ कहलाए। दीना क प्रति सद्भाव रखन वाला ही दीनानाथ कहलाता ह। इसक अतिरिक्त जा सच्चा दीन ह परमात्मा भी उसक अधीन रहता ह। इसक विपरीत जा दीन न हा कर अभिमान करता ह उसस परमात्मा दूर रहता ह।

को अन्धकारमयी रात्रि और सघन मेघो से आच्छादित आकाश। ऐसे समय मे पृथ्वी पर पैर रखकर कौन चल सकता था? फिर राजा या राज घराने के सुकुमार व्यक्तियो के लिये चलना और भी कठिन था। किन्तु पुत्रवात्सल्य एव भवितव्य की प्रेरणा से पेरित होकर वसुदेव चल दिये।

देवकी ने रुँधे कठ से कहा—नाथ, जाइये। हम लोग तो निमित्तमात्र है। इस महापुरुष की रक्षा तो इसकी शक्ति ही करेगी, हम क्या रक्षा कर सकते है? लेकिन अपने कर्त्तव्य का पालन करना प्रत्येक के लिए आवश्यक है।

कई बार लोग विषम परिस्थिति देख कर पुरुषार्थहीन हो जाते हैं और निराश होकर प्रयत्न करना छोड देते हैं। थोडी कठिनाई के सामने सिर झुका देने वाले लोग कभी महान् कार्यो मे सफलता नही पाते। महत्त्वपूर्ण कार्यो ने विघ्नो का आना स्वामाविक है। विघ्नो के आने पर जो पुरुष अधिक दृढता धारण करता है और विघ्नो को चुनौती देकर साहस के साथ अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता ही चला जाता है उसे सफलता अवश्य मिलती है। वीर पुरुषो को पुरुषार्थ करते जाना चाहिये। कहावत है—हिम्मते मरदा मदद दे खुदा।

पसुदेव के सामने कितने विघ्न थे? वे हिम्मत हार सकते थे। मगर उन्होने दृढता और धैर्य से काम लिया और सोचा कि मुझे पुरुषार्थ करना ही चाहिये। यह सोचकर ऐसे विकराल समय मे भी वे कृष्ण को लेकर चले। वासुदेव का वृत्तात सुनकर आपको भी पुरुषार्थ करने और धीरज न गवाने की शिक्षा लेनी चाहिये।

मूसलाधार वर्षा हो रही थी। उसी वर्षा मे कृष्ण को लेकर चले। देवो ने बालक कृष्ण पर छत्र किया। जेल के फाटक खुले हुए थे और पहरेदार निद्रा मे बेहोश पडे थे। देवकी का सातवा गर्भ जानकर कस ने बहुत कडा प्रबन्ध किया था। उसने नगर के द्वारो पर भी बडे—बडे ताले डाल दिये थे। नगर के द्वार बन्द थे। फिर भी वासुदेव ने सोचा—बीच से ही लोट जाना उचित नही है। द्वार तक पहुचना चाहिये। जब जेल के फाटक खुल गये तो नगर [illegible] फाटक भी शायद खुल जाए। यह सोचकर वासुदेव फाटक के पास पहुचे। वहा पहुचकर वे कहने लगे—प्रभो। मेने यथाशक्ति अपना कर्त्तव्य पालन [illegible] कोई कसर नही रहने दी। अब मेरी शक्ति जवाब दे रही हे।

बीच से ही नही लौट पडा। यहा तक न आता तो मेरी भयकर भूल होती। वास्तव मे अत तक पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। कायर बनकर पुरुषार्थ त्याग देना उचित नहीं है।

राजा उग्रसेन उस समय जाग रहे थे। किवाड़ो की आवाज सुनकर उन्होने सोचा यह कौन है? मगर उस समय अधिक बातचीत करने का अवकाश ही कहा था? अतएव –

उग्रसेन कहे--कोई? तुम बन्धन काटे सोई।
ये सुने वचन सुमदाई,कहा वेग सिधाया भाई।

उग्रसेन ने पूछा–'कौन है? इस प्रश्न के उत्तर मे वसुदेव ने कहा 'अरे कोई नही, तुम्हारे बन्धन काटने वाला ही है। यह सुनकर उग्रसेन प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा–मेरे बन्धन काटने वाले का जन्म हो गया है। अच्छा जल्दी ले जाओ।

वसुदेव आगे चले। यमुना के पास पहुचे तो देखा कि यमुना मे पूर आ रहा हे ऐसे समय म नवजात बालक को लेकर यमुना को पार करना कठिन हे, फिर भी मुझ अपना काम करना चाहिये। चाह बह जाऊ फिर भी जहा तक जा सकता हू वहा तक तो जाना ही चाहिए। कार्यं वा साधयामि शरीर वा पातयामि।

इस प्रकार हिम्मत करक वसुदव जमुना म धसे। घुटना तक पानी आ गया। इतन म ही कृष्ण का अगूठा पानी म लगा ओर जमना का पूर उतर गया। वसुदव सकुशल अपने अभीष्ट स्थान पर जा पहुच। वहा उन्हान कृष्ण का यशादा के पास रख दिया ओर लोट आय। इतनी कार्रवाई तक कस क पक्ष का काई भी आदमी नही जागा। वसुदव जब सकुशल दवकी क पारा लाटे ता दवकी क हर्ष का पार न रहा। उसन अत्यन्त उत्कठा क साथ पूछा। सब काम हा गया?

वसुदव– उसी की शक्ति स कार्य सिद्ध हुआ हे।

दवकी– आर यह क्या लाय हा?

वसुदव यह कन्या हे।

दवकी पुत्र की रक्षा क लिय क्या इसकी हत्या करवानी हागी?

वसुदव– इसकी रक्षा करन वाला भी दूसरा ही हे।

यह सब कुछ हा जान क पश्चात पहरदारा की नींद खुली। व कन्या को लेकर कस क पास गय। कस लडकी को दखकर अटटहास करके बोला–क्या यही छोकरी मेरा वध करगी? वाह रे ज्योतिषशास्त्र।

कस ने कन्या का वध नही किया। सोचा—यह कन्या मेरा कुछ बिगाड नही सकती। इसे मारना वृथा है।

आखिर कस को किसी प्रकार मालूम हो गया कि उसे मारने वाला अर्थात् देवकी का पुत्र नन्द के घर पहुच गया है। यह जानकर वह पहरेदारो पर अत्यन्त कुपित हुआ। वह कहने लगा—तुम लोग असावधान कैसे रहे? तुम्हारे पहरे मे से शत्रु किस प्रकार चला गया?

पहरेदारो ने कहा—हम क्या कर सकते हैं? भवितव्य के आगे किसकी चलती है ? जो आपको मारने के लिये ही जनमा है वह कैसे मारा जा सकता है?

कस को ये सब बाते देख सुनकर चेतना चाहिये था, पर वह अभिमान मे डूबा था। उसने सोचा मेरा शत्रु उत्पन्न हो गया है तो क्या हुआ। है तो वह नजदीक ही और अभी बालक है। उसका काम तमाम करना कौन बडा काम है। मेरे पास बहुत शक्ति है। मैं उस दुष्ट बालक को समाप्त किये बिना नही रहूगा।

आखिर कस ने कृष्ण को मारने के प्रयत्न किये। किन्तु सभी प्रयत्न कृष्ण के अनुकूल और कस के प्रतिकूल सिद्ध हुए। कृष्ण धर्मभावना से जन्मे थे इसलिये सभी प्रयत्न निष्फल हुए।

कृष्ण कुछ बडे हुए। वह बशी लेकर ग्वालो के साथ गाये चराने जाते। उन्होने गाये चराकर मानो यह उपदेश दिया है कि अगर गायो की रक्षा करोगे तो तुम्हारी रक्षा होगी नहीं तो तुम्हारी भी रक्षा नही होगी।

कृष्ण ने तो ऐसा उपदेश दिया है मगर आज कितने लोग ऐसे मिलेगे, जो अपने घर मे गाये रखते हो? अगर लोग अपने—अपने घरो मे गाये रक्खे और माल का दूध न खावे तो बहुत कुछ उन्नति हो सकती है। कृष्ण ने गाये चराकर गोरक्षा का महत्व प्रकट किया था। इसी से उनका नाम 'गोपाल' पडा। उन्होने अपना यह छोटा और सादा नाम रख कर लोगो को सावधान किया कि यदि तुम बडे—बडे कामो के लिये दौडोगे और छोटे कामो की उपेक्षा [illegible] नही करोगे—तो तुम्हारी उन्नति नही हो सकती। गो की रक्षा [illegible] शक्ति की रक्षा करना है। मेरे न रहने पर भी अगर तुम लोग मेरे [illegible] कर रहोगे तो तुम्हारी रक्षा होगी अन्यथा नही।

भली–भाति जानते थे। यही कारण हे कि उन्होने गाये चरा कर ससार को गोरक्षा की महिमा दिखाई।

गाये चराते समय कृष्ण कितनी सादगी के साथ रहे होगे? आज तो लोगो को सादगी पसद ही नही है। ऐसी दशा मे गायो का पालन भी कैसे कर सकते हैं? मगर यह निश्चित है कि जो परोपकार के साथ अपनी रक्षा की भावना रखता है उसे गोरक्षा करनी होगी। आज अधिकाश लोग सीधा घी–दूध खाने मे आराम मान रहे हैं। जो घर मे गाय भैंस या बकरी रखेगा वह उसके कष्टो को नहीं देख सकेगा। जो सीधा घी–दूध खरीदकर खाता–पीता है, उसका ध्यान उनके कष्टो की ओर आकृष्ट नही होता। परिणाम यह होता है कि दुधारू जानवरो की स्थिति दिनो–दिन खराब होती जाती है और घी–दूध भी दुर्लभ होता जाता है। इस स्थिति से बचने के लिए कृष्ण के जीवन का अनुसरण करने के अतिरिक्त कोई और उपाय नही हे।

कृष्ण ने कबली ओढ कर और हाथ मे बशी लेकर भारत की शक्ति की रक्षा की थी। यह बात समझने वाले ही समझ सकते हे। साधारण लोगा का इस आर लक्ष्य नही जाता।

कृष्ण का मारन के सभी उपाय जब निष्फल हुए ता कस ने सोचा–कृष्ण को किसी बहान अपन स्थान पर मथुरा म बुलाकर मार डालना चाहिय। नन्द मेर अधीन हे ओर उस अपन लडक का भजना ही पडगा। इस तरह निर्णय करक उसने कृष्ण का बुलाआ भजा। नन्द का भली–भाति मालूम था कि कस कितना क्रूर हे। व कृष्ण का स्वय नही भजना चाहत थ ओर गापिया न भी उन्ह राकने की बहुत काशिश की। मगर कृष्ण नही मान। वह कस का निमन्त्रण पाकर मथुरा पहुच। मार्ग म भी उन्हान बड–बड काम किय। कृष्ण का दखकर कस कहन लगा– बस इसी लडक का नाश करना ह। यही मरा वध करन वाला कहा जाता हे। एसा कहता हुआ वह कृष्ण का मारन क लिए दोडा। लाग घबरा उठ ओर हाहाकार करन लग लकिन कृष्ण न उस पटककर यमधाम पहुचा दिया।

कृष्ण का यह अद्भुत बल दखकर सज्जन प्रसन्न हुए ओर दुजन भयभीत हुए। सज्जना न कृष्ण का सम्मान किया ओर उनकी प्रशसा की। उन्हान कहा–अच्छा हुआ जा कस का आपन मार डाला। अब आप ही मथुरा क राजा बन जाइय। मगर कृष्ण न उत्तर दिया मैं राजा नहीं बन सकता। राजा बनान क लिय उग्रसन का बुलाआ।

कृष्ण चाहते तो स्वय राजा बन सकते थे। उग्रसेन ने बहुत कहा कि यह राज्य आपको ही स्वीकार करना चाहिये। आपके पुरुषार्थ से ही इसकी प्राप्ति हुई है अत आप ही इसके अधिकारी हैं। मगर निस्पृह कृष्ण ने यही उत्तर दिया यह राज्य आपके ही अधिकार का है और आपको ही इसे स्वीकार करना चाहिये।

आखिर उग्रसेन राजा हुए। जीवयशा लालपीली होकर कुछ बोलने लगी लेकिन उग्रसेन की डाट–फटकार से क्रुद्ध होकर वह अपने बाप जरासध के घर चली गई। जरासध ने कसवध का वृत्तात सुना तो बहुत कुपित हुआ। यद्यपि उसे समझना चाहिये था कि जिन्होने कस जैसे प्रचण्ड राजा को अनायास ही मार डाला है, उसका सामना करना भयानक है, लेकिन वह नही समझा और उसने कृष्ण पर चढाई कर दी। फलस्वरूप उसे भी प्राणो से हाथ धोना पडा। शिशुपाल भी बडा अहकारी था। वह समझता था कि हम ही रत्नभोक्ता है और हमारे सामने दूसरा कोई कुछ नही है। उसका भी विनाश हुआ। दुर्योधन भी द्रौपदी की आग मे भस्म हुआ। कालीकुवर भी काल का ग्रास बना। काली–नाग भी नाथा गया। इस प्रकार अधर्म का प्रतिनिधित्व करने वाली तमाम प्रधान शक्तियो का अन्त हो गया। कृष्ण ने सब राजाओ का सगठन करके भारत को एक राष्ट्र बनाने का प्रशस्त प्रयत्न किया। जब राष्ट्र के टुकडे–टुकडे हो जाते हैं तो शक्ति के भी टुकडे–टुकडे हो जाते हैं और फल स्वरूप निर्बलता बढ जाती है। ऐसा सोचकर कृष्ण ने सब छोटे–छोटे राष्ट्रो का सगठन कर डाला।

राजनीतिज्ञ लोग अपना स्वार्थ साधने के लिए और अपने विरोधियो को विनष्ट करने के लिए भी गुट बना लेते हे तो धर्म–कार्य के लिए सगठन की आवश्यकता क्यो न होगी? मैने अजमेर साधु–सम्मेलन मे कहा था कि सम्प्रदाए अलग–अलग रह कर धर्म और समाज का हित नही कर सकती। इसलिए अभिमान छोडकर सब मिल जाओ। ऐसा करने पर ही धर्म की उन्नति हो सकती है।

कृष्ण ने अधर्म की शक्ति नष्ट कर दी और प्रजा को कष्ट से मुक्त कर दिया। समस्त प्रजा सुख और शक्ति का अनुभव करने लगी। सबने अपने आपको सुरक्षित समझा।

की शक्ति के विकास को रोकने वाले दुर्गुण हैं। यह अधर्म की शक्तिया हैं। जिस प्रकार कृष्ण ने अधर्म की शक्तियो का नाश किया था, उसी प्रकार आपको भी अपने अन्तरात्मा मे विद्यमान पूर्वोक्त अधर्म शक्तियो का विनाश करना चाहिए। कृष्ण मथुरा मे जन्मे और गोकुल मे बडे हुए इस आशय के गीत गा लेने मात्र से कल्याण नही हो सकता। कल्याण तभी होगा जब आप आत्मा के शत्रुओ का विनाश करके दूसरो की भलाई मे अपनी भलाई समझेगे। इसी अर्थ मे आप कृष्ण चरित को आदर्श मानेगे तो आपका कल्याण हुए बिना नही रहेगा।

8 . आदिनाथ

श्री आदीश्वर स्वामी हो,
प्रणमू सिर नामी तुम भणी।

यह भगवान् ऋषभदेव की प्रार्थना है। आज अनायास ही यह सुयोग आ गया है कि आज ही पर्युषण पर्व का प्रारभ हुआ है और आज ही भगवान् ऋषभदेव की प्रार्थना बोलने का क्रम आया है।

भारत के शास्त्रो और धर्मो मे भगवान् ऋषभदेव का स्थान बहुत ऊचा है। क्या जैन और क्या हिन्दू, सभी भगवान् ऋषभदेव को आदर की दृष्टि से देखते है। अगर कदाचित् समस्त हिन्दू जाति एक ही झण्डे के नीचे आना चाहे और यह निर्णय होने लगे कि किस देव को माने तो निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि भगवान् ऋषभदेव को ही अपना आराध्यदेव मानने के पक्ष मे निर्णय होगा।

भगवान् ऋषभदेव धर्म के आदि सस्थापक और जगत् को शाति देने वाले सर्वप्रथम तीर्थंकर हुए हैं। इस कारण आर्य देश मे भगवान् ऋषभदेव का स्थान सबसे ऊचा है। यद्यपि भगवान् ऋषभदेव का स्थान सर्वोच्च होने के और भी कारण हैं लेकिन एक कारण यह भी है कि जैनशास्त्र भगवान् ऋषभदेव को धर्म को आदि करने वाले मानते हैं। जैनशास्त्रो का कथन है कि जब अठारह कोटा-कोटि सागर से धर्म का विरह हो रहा था और यह पृथ्वी जब धर्म रहित हो रही थी उस समय भगवान् ऋषभदेव ने धर्म का उद्धार किया था। यो तो धर्म अनादि है परन्तु जब वह अप्रसिद्ध हो जाता है तब कोई न कोई महापुरुष धर्म को प्रसिद्धि मे लाते हैं और जो महापुरुष ऐसा करते हैं वे तीर्थंकर कहलाते है। भगवान् ऋषभदेव इस अवसर्पिणी युग के ऐसे प्रथम तीर्थंकर थे।

सक्षेप मे यहा भगवान् ऋषभदेव का चरित समझना उपयागी होगा। जिस समय यह आर्य क्षेत्र धर्म के विरह के कारण धर्मशून्य हा रहा था कर्म–भूमि न रह कर भोग–भूमि हो गया था यहा युगलिको का निवास था और कल्वृक्षो से उन्हे आवश्यक सामग्री मिलती थी, उस समय भगवान् ऋषभदेव ने जगत् की रक्षा की थी। मगर भगवान के समय म ही भोगभूमि का युग समाप्त होने लगा। अत कल्पवृक्षो से जो कुछ मिलता था उसका मिलना बद हो गया। उस समय की जनता जीवन–निर्वाह का दूसरा कोई उपाय नही जानती थी। अतएव लोग बडे सकट मे पड गये थे। जिनसे मिलना हो उससे मिलना बन्द हो जाए और स्वय कुछ करना न आता हो ता ऐसे समय मे स्थिति गम्भीर हो जाना स्वाभाविक है। तदनुसार उस युग के लोग गम्भीर सकट मे पड गये। क्या करे और कहा जाए किसी को सूझता नही था। सब मानो भूल–भूलेया मे पड गये थे।

आखिर घबराकर लोग तत्कालीन कलगुरु राजा नाभि के पास पहुचे। नाभि वास्तव मे राजा नही थे। उस समय राज्यव्यवस्था का जन्म ही नही हुआ था। फिर भी वे उस समय की प्रजा के महान पुरुष थे। वही लागा के झगडा का निपटारा किया करते थे। समस्त प्रजा उनकी आज्ञा शिराधार्य मानती थी। अतएव इस सकट क समय लाग उन्ही क पास पहुचे। उन्हान पुकार की–इस समय हम सब अपूर्व ओर भयकर सकटा म पड है। आप ही इस सकट स बचन का मार्ग दिखाइय ओर वस्तुआ की बात ता दूर रही भाजन आर वस्त्र भी हम पूरा नही मिल पाता। जान पडता है कल्पवृक्ष कजूस हा गय हैं। व बहुत थाडी वस्तु दत हैं। लने वाल बहुत हैं। एसी दशा म सभी का कष्ट हाता ह आर फिर आपस म झगडा भी हाता हे। कृपा कर किसी भी उपाय स हमारा कष्ट दूर कीजिय।

ग्रन्था म कहा गया हे कि लागा की यह पुकार सुनकर नाभि राजा भी विचार म पड गय कि इस समय मैं इन्ह क्या मार्ग बतलाऊ? अन्त म इन्हान लागा का ऋषभदव क पास जान का परामर्श दिया। उन्हान कहा–वह तुम्हार कष्ट का मिटान का काई उपाय सुझा सकग।

सब लाग ऋषभदव क पास पहुच। उन्हान फिर अपनी कष्ट–कथा दाहराई। लागा का कथन सुनकर भगवान न उत्तर दिया– पिताजी की आज्ञा क बिना म कुछ नही कह सकता।

लागा न कहा! पिताजी आपक पास भजत ह आर आप पिताजी क पास भज रह ह। एसी दशा म हम लाग कहा जाए? क्या कर? या प्राण द द?

भगवान्–क्या पिताजी ने तुम्हे मेरे पास आने के लिए कहा हे?

लोग–जी हा। हम पिता को अपना राजा और नियामक मानते हैं। ऐसी दशा मे हम उनके पास कैसे न जाते? हम लोग पहले उन्ही के पास गये थे। उन्होने आपके पास जाने के लिए कहा। अत आपके पास आये हैं।

आप लोग ऋषभदेव को भगवान् और अपना नियामक मानते हैं। लेकिन जिस मर्यादा का पालन भगवान् ने किया उस मर्यादा का पालन क्या आपको नही करना चाहिए? व्यावहारिक कार्य मे भगवान् ने भी अपने पिता को आगे रखा तो क्या आपके लिए यह उचित नही है कि आप भी व्यावहारिक कार्यो मे अपने पिता को आगे रक्खे। आपके लिए यह शिक्षा दी गई है –

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव।

पिता ने आपको जन्म दिया है और पिता आपका नियामक है इसलिए व्यावहारिक कार्यो मे पिता को आगे रखना ही उचित है, फिर आप मे कैसी भी शक्ति या बुद्धि क्यो न हो?

मगर आजकल उल्टी हवा बह रही है। आज के बहुतेरे नवयुवक अपनी युवावस्था के जोश मे आकर पिता की अवज्ञा करने से भी नही चूकते। वे कहने लगते हे– तुम क्या जानो। तुम पुराने ढच्चर हो। हम पढेलिखे हैं।' पुत्र का पिता को इस प्रकार कहना कितना अनुचित है।

पिता ने जन्म देकर स्वार्थ त्याग कर तुम्हारी रक्षा की है, पालन–पोषण किया है। तुम्हारे लिये उनके अन्त करण मे सदैव शुभ कामना रहती है। सभी ग्रन्थ इस बात का समर्थन करते है। सभी को वह बात स्वीकार है कि माता पिता की अवज्ञा नही करना चाहिए।

दूसरी ओर पिता को भी यह विचार रखना चाहिये कि जो काम हम स्वय नही कर सकते और पुत्र कर सकता है उस काम मे सिरपच्ची करना योग्य नही है। वह काम पुत्र को ही सोप देना उचित है। ऐसा न करने से कार्य की हानि होती है। कभी–कभी पिता अपने पुत्र को एकदम बुद्धिहीन या सुकुमार मान कर उससे कोई काम नही लेते। ऐसा करना भी योग्य नही। [illegible] पुत्र का काम करने का ढग आता हे। उससे काम नही लिया जायगा तो उसमे कार्यकुशलता किस प्रकार उत्पन्न होगी?

समझकर उसका पालन करे। लेकिन दोनो मे से अगर कोई भी एक अपने कर्त्तव्य से च्युत होता हो तो उसका अनुकरण दूसरे को नही करना चाहिये। अनुकरण गुण का होना चाहिये दोष का नही।

जिस प्रकार कल्पवृक्ष सब को फल देता है, उसी प्रकार भगवान ऋषभदेव का चरित सबको शिक्षा देता है।

भगवान् ने आये हुए लोगो से कहा– जब पिता ने तुम लोगो से कहा है तो तुम्हारा दु ख मुझे मिटाना ही चाहिए। इस विषय मे मेरा यह कहना है अब भोग भूमि नही रही, कर्मभूमि हो गई है। अब परावलम्बी न रहकर स्वावलम्बी बनना होगा और स्वावलम्बी बनने के लिए कर्म करना होगा।

भगवान् इतना कहकर ही नही रह गए। उन्होने सोचा कि कोई भी कला शब्दो द्वारा नही सिखाई जा सकती है न सीखी जा सकती है। कला को सीखने और सिखाने के लिये प्रयोग की आवश्यकता होती है। अतएव जीवन–निर्वाह के लिए जिन कलाओ का शिक्षण लोगो को देना है उन्हे स्वय करके दिखाना उचित होगा। ऐसा सोचकर भगवान् पहले कृषक बने।

आज बहुत से लोग कृषि को हल्का धधा मानते हैं और कृषका को भी तुच्छ समझते हें। उन्ह अपनी श्रेणी से भिन्न हल्की श्रेणी के मानते हैं। लेकिन सबस पहल तो भगवान् ऋषभ ही कृषक बने थ। क्या आप उन्ह हल्की श्रणी का कह सकत हैं? कोन विवेकशील एसा नही कहेगा कि भगवान को लोगा पर अपूर्व करुणा थी। जा लाग कृषका को हल्का कहत हे क्या वे उनक द्वारा पेदा किय हुए अन्न का खाना छाड सकत हे? कृषका का हल्का कहना या मानना वेसा ही अज्ञान हे जेसा जिस पड की छाया म बेठ हो उसी का काटना। यह कितना तुच्छ कार्य हे। कितनी कृतघ्नता हे।

सब लागा का जीवन कृषि क सहार ही टिका हुआ हे। इसलिये सब का मार्ग बतलान वाल गाधीजी नगर छाडकर ग्राम म रह हें ओर कृषि करत रह ह। भगवान ऋषभदव न कृषि करन का उपदश ही नही दिया वरन् स्वय हल हाका आर लागा का खती करना सिखलाया। जेनशास्त्रानुसार सबस पहल भगवान ऋषभदव न ही हाथ म हल लकर चलाया था ओर भूमि म बीज बाया था। उसक पश्चात भगवान का दखकर दूसर लागा न भी यह कार्य किया आर इस प्रकार कृषिकला का जन्म हुआ।

हल हाकना काई बुरा काम नही ह। कुरुक्षत्र क विषय म कहा जाता ह कि वहा राजा कुरु क क्षत्र (खत) हान क कारण उसका नाम कुरुक्षत्र पडा ह। जब राजा–महाराजा भी खती करत थ तब दूसरा क लिए ता कहना ही

क्या है? मगर आज अज्ञान के कारण लोग इसे हल्का धन्धा मानते हैं और कृषक को तुच्छ निगाह से देखते हैं।

भगवान् ऋषभदेव ने लोगो को खेती करना सिखलाया, अन्न–सग्रह करना सिखलाया अन्न की रक्षा करने की विधि बतलाई और उसे पकाकर खाने की तरकीब सिखलाई। भगवान् ने कहा–इस कला के सहारे रहने वाला स्वतन्त्र जीवन बिता सकते हैं। दूसरे के सहारे रहने वाला स्वतन्त्र नही, परतन्त्र होता है। इस तरह भगवान् ने पुरुषो की बहत्तर कलाओ का, स्त्रियो की चौसठ कलाओ का और सब तरह के विज्ञान का आविष्कार किया। उन्होने अपनी ब्राह्मी और सुन्दर नामक दो कन्याओ मे से एक को अक्षर ज्ञान सिखलाया और दूसरी को अकज्ञान की शिक्षा दी। यह दोनो विद्याए भगवान् की कन्याओ के नाम से ही प्रसिद्ध हुई। लिपि ब्राह्मी के नाम से प्रसिद्ध हुई और गणित सुन्दरी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। लिपि आदि मे समय–समय पर परिवर्तन होता रहा है लेकिन उसके मूल आविष्कारक भगवान् ऋषभदेव ही है।

भगवान् ने जो आविष्कार किये, उनके सहारे लोग स्वावलम्बी बनकर रहने लगे। अब आप विचार करे कि भगवान् ने जनता के लिए यह अच्छा काम किया या बुरा किया? भगवान् महान् और गम्भीर आशय वाले थे। उनकी यह कामना नही थी कि आप बडे रह कर दूसरो को छोटा रखे या आप अच्छे रहकर दूसरो को बुरा रखे। भगवान् सभी की आत्मा का कल्याण चाहते थे। घर बनाने से पहले नीव को मजबूत बनाने की आवश्यकता होती है इसी प्रकार आत्मा के कल्याण के लिये पहले नैतिकता की आवश्यकता होती है। अतएव भगवान ने पहले लोगो का नैतिक पाया मजबूत किया। नैतिक पाया मजबूत करके भगवान् ने विचार किया–अगर जनता को यही तक रहने दिया जाएगा और उसे आत्मकल्याण का मार्ग नही बतलाया जाएगा तो ठीक न होगा। अतएव उन्होने जनता को जड और चेतन को भी बोध प्रदान करना और वास्तविक–वर्तमान जीवन से परे की शाति का मार्ग बतलाने का निश्चय किया। भगवान ने ससार को तत्त्वज्ञान देने की इच्छा की। तत्त्वज्ञान की शिक्षा उसी समय ठीक तौर से दी जा सकती है जब जीवन मे और शाति हो। इस शाति का प्रसार नैतिक शिक्षा के द्वारा भगवान् कर ही चुके थे।

जनता को बहुत शाति दी है। अब जन–कल्याण के लिए जो कुछ करना शष रहा हो, प्रसन्नता के साथ करो।

भगवान ने माता–पिता से कहा–यह आपकी कृपा हे जो आप एसा कहते हैं। जो कुछ हुआ है, आपकी ही कृपा से हुआ है। अब भी आपकी कृपा है तो मैं आगे भी कुछ करूगा।

इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव ने भी माता–पिता की कृपा चाही थी। इस बात का विचार करके आप अपने विषय मे सोचिये–आप कितने भी पढे–गुने क्यो न हो, आपका बुद्धि–वैभव कितना ही विशाल क्यो न हो समाज मे आपकी कितनी ही प्रतिष्ठा क्यो न हो, फिर माता–पिता के समक्ष विनम्रता धारण करना आपका कर्त्तव्य है। माता पिता के प्रति अगर आप विनीत हैं तो आपके सद्‌गुणो का विकास ही होगा। ऐसा करने से आपकी प्रतिष्ठा मे वृद्धि ही होगी, ह्रास होने की तो सम्भावना ही नही की जा सकती। अगर आप माता–पिता का आदर करेगे तो निश्चय समझो कि लोग आपका भी आदर करेगे।

जा अविनीत हे जो माता–पिता की अवज्ञा करता हे ओर जो माता–पिता की इच्छा एव आज्ञा क विरुद्ध चलता हे वह कुल क लिए अगार हे। इसीलिए वह अविनीत कहलाता हे। इसक विरुद्ध विनीत का अर्थ पुरुषात्तम या विष्णु हे। जा कुल समाज धर्म ओर माता–पिता क प्रति विनीत हाकर रहता हे उन्ह पूजनीय मानता हे उनक वचना का आदरणीय समझता ह वह वास्तव म पुरुषात्तम हे।

कहा जा सकता हे कि किसी प्रकार सामाजिक सुधार करना आवश्यक हा ओर बड–बूढ लाग अपन पुरान सस्कारा क कारण उस सुधार क विराधी हा ता एसी दशा म क्या करना चाहिय? इस प्रश्न क उत्तर म यह प्रश्न पूछा जा सकता हे कि आपका जा सुधार करना हे वह विनयपूर्वक करना ह या अविनयपूर्वक करना हे? आप जा सुधार करना चाहत हैं उसस बड–बूढ अगर सहमत न हा सकत हा ता समझ लना चाहिए कि अभी सुधार का उपयुक्त समय नही आया ह अतएव इस कारण अविनीत हाकर उनकी अवज्ञा करना उचित नही ह। किसी आम क वृक्ष म अगर जल्दी फल नही लगत ता क्या उस काट डाला जाता ह? उसक विषय म यह साचकर धेय रखा जाता ह कि आज नही ता फिर कभी न कभी फल लगग ही अतएव सुधार क लिए सहमति न मिलन पर धैर्य रखना चाहिए। अविनीत नही हाना चाहिए।

भगवान के माता–पिता ने कहा–पुत्र, तुम बुद्धिमान और सब लोगो के नियामक हो। जैसे चाहो वैसा करो। यह तुम्हारी विनीतता है कि तुम हम लोगो से पूछते हो।

महापुरुष का चरित्र ऐसा है कि प्रत्येक व्यक्ति उनका आचरण कर सकता है। वह ऐसा नही हो सकता कि कल्पना मे ही न आ सकता हो। कुछ लोगो ने उनको आध्यात्मिकता के मार्ग मे साधारण जनता से भिन्न बतला दिया है और उनके चरित्र मे अत्युक्ति कर दी है। लेकिन वास्तव मे महापुरुष का चरित्र इतना सरल और सादा होता है कि जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति आचरण कर सकता है।

भगवान ऋषभदेव ने माता–पिता की आज्ञा लेकर दीक्षा लेने की तैयारी की। उनके साथ चार हजार राजपुत्र दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए। भगवान ने भरत को विनीता नगरी का और बाहुबली को तक्षशिला का राज्य सोपा। शेष पुत्रो को भी यथोचित राज्य दिया। यह करके भगवान् ने पुत्रो को उपदेश दिया कि तुम लोग न्याय नीति–से राज्य करना। यह न हो कि विपरीत मार्ग पकड लो।

प्रत्येक प्रारम्भिक कार्य मे कष्ट होता ही है। श्री हेमचन्द भाई ने उदयपुर मे अपने भाषण मे कहा था कि अब तो इजिन बनाना सरल हो गया है लकिन जब पहले पहल बनाया गया था तब बडी कठिनाई हुई थी। जुती हुई जमीन मे खेती करना कठिन नही है। भगवान् सबसे पहले सयम लेने को तैयार हुए थे। उनसे पहले किसी ने सयम धारण नही किया था। ऐसी स्थिति मे सयम के मार्ग मे कठिनाई होना स्वाभाविक ही था। इस बात को दृष्टि मे रखकर भरत ने सयम लेने को तैयार हुए चार हजार राजपुत्रो से कहा–सयम धारण करने का कार्य अभी प्रारम्भिक है। अतएव आप लोगो को इससे बडा कष्ट होगा। भगवान जब सयम का मार्ग साफ कर दे तब आप दीक्षा लेना। भरत के इस प्रकार समझाने पर भी वे लोग नही माने। उन्होने कहा ‘जब [illegible] कष्ट उठाएगे तो हम लोग क्यो न उठाएगे? अतएव हम भगवान् के [illegible]। आपकी इच्छा हे तो आप घर पर ही रहिये।

माता के यह कहने पर भी भगवान् मोन रहे। तब इन्द्र ने माता से कहा—अब भगवान् घर नही लौट सकते। वे लोगो को तत्त्वज्ञान सिखाएगे। सयम का मार्ग ऐसा ही हे।

माता ने प्रश्न किया तो यह कब घर लौटेगे?

इन्द्र ने उत्तर दिया एक हजार वर्ष बाद।

माता को सख्या का पता नहीं था। उन्होने सोचा उह! एक हजार वर्ष का क्या है। फिर माता ने प्रश्न किया—ऋषभदेव बोलते नही?

इन्द्र ने कहा— तत्व ज्ञान सिखाने का मार्ग है।

मता— इनके बिना तो घर सूना—सूना लगेगा।

इन्द्र— आपकी आज्ञा लेकर ही तो भगवान् निकले हैं।

माता— मुझे क्या पता था कि यह घर त्याग कर जाएगे? लेकिन मुझे विश्वास है कि ऋषभ वही करेगा जिससे सबका कल्याण होता होगा। मैं इनके काम मे विघ्न नही डालना चाहती।

भगवान् चल दिये। माता घर लौट तो आई पर उन्हे सारा घर सूना दिखाई देने लगा। ऋषभ के बिना उनके लिए सारा ससार सूना था। माता की यह अवस्था अत्यन्त गहरे स्नेह से परिपूर्ण थी। उस अवस्था के आधार पर भक्ति का ज्ञान लिया जा सकता हे। यद्यपि माता की सवा करन क लिए भरत जेसा पोत्र उनक पास मोजूद था ओर भरत की रानिया भी उनकी सवा करती थी फिर भी ऋषभ क बिना सर्वत्र सुनसान दिखाई दता था। अतएव रात—दिन ऋषभ का ही स्मरण आता रहता था। उनकी आखा क आग ऋषभदेव की आकृति झूला करती थी। उन्हे कही कुछ भी अच्छा न लगता। भक्ति का मार्ग एसा ही हाता हे।

आप लोग दु ख क समय ता परमात्मा का याद करत हैं मगर सुख क समय भूल जाते हैं। अगर आप सुख ओर दु ख दाना क समय परमात्मा का स्मरण कर ता क्या परमात्मा की प्राप्ति न हो?

उधर भगवान मोन पूर्वक भिक्षा क लिए घर—घर घूमत। लागा क घर अन्न की कमी नही थी आर हृदय म भक्ति की भी कमी नहीं थी लकिन लागा का भाजन दन की विधि मालूम नही थी। भगवान् मुख स कुछ भाषत नहीं थ आर लाग दन की विधि जानत नही थ। अतएव भगवान आर उनक साथिया क दिन भूख ही भूख म निकलन लग। दिन बीता दो दिन बीत आर इसी प्रकार ज्यादा दिन बीतत गय। भगवान क चार हजार साथी भूख क दु ख स बुरी तरह घबरा उठ। व लाग आपस म सोचन लग— हे। लाग भूखे

के मारे मर रहे हैं और भगवान् कुछ बोलते नही हैं। लौटकर घर चलते हैं तो भरत कहेगे कि मैंने पहले ही रोका था इस तरह उनका उपालम्भ सुनना पडेगा। यह तो बडा ही कष्ट आ पडा है।

अन वै प्राणा । अन्न के बिना मनुष्य घबरा जाता है। यही कारण है कि नौ पुण्यो मे अन्नपुण्य को पहला स्थान दिया गया है।

भगवान के चार हजार साथियो ने घबरा कर यह निश्चय किया कि हम लोगो को न तो भगवान् के साथ रहना चाहिये और न घर ही लौटना चाहिये। हमे बीच का कोई भी मार्ग अख्तियार करना चाहिये। इस तरह निश्चय करके उन्होने भगवान् का साथ छोड दिया और जिसे जो अनुकूल लगा उसने वही रास्ता पकड लिया। ग्रन्थो मे कहा है कि उसी समय से नाना मत–मतान्तरो का आविर्भाव हुआ। भगवान् के साथी भगवान् से अलग होकर कन्द मूल फल फूल आदि खाकर अपने–अपने मार्ग के प्रवर्त्तक बने।

उधर भगवान घर–घर घूमते थे। भगवान के पहुचने पर कोई कहता–प्रभो हम हाथी पर बैठे और आप पैदल चले, यह ठीक नही है। अतएव कृपा कर आप यह हाथी लीजिये और हमे अनुग्रहित कीजिये। इस तरह कोई कुछ देना चाहता था और कोई कुछ देना चाहता था। भगवान लोगो की श्रद्धा देखकर मौनभाव से मुस्करा कर आगे चल देते थे। तब लोग अदाज लगाते–हम ने भूल की है। भगवान् इतना बडा हाथी लेकर क्या करते? उसे कहा रखते और क्या खिलाते? उन्हे हाथी की आवश्यकता होती तो घर से ही हाथी लेकर क्यो न निकलते? मालूम होता है कि भगवान् ने हाथी का त्याग कर दिया है।

दूसरा कोई भगवान् के सामने उत्तम घोडा पेश करता। विनय पूर्वक व कहते–नाथ! यह बहुत उत्तम घोडा है। इसे स्वीकार कीजिये। आप को इसकी सार सभाल नही करनी पडेगी। हम साईस बन कर आपकी सेवा मे [illegible]। लेकिन भगवान् घोडा छोड कर जब आगे चल देते तो लोग समझते कि भगवान ने घोडा भी त्याग दिया हे।

है कि तुझे भगवान् की सेवा करना होगा' कौन कन्या भगवान् की सेवा के लिये तैयार न हो जाती? अतएव लोग अपनी कन्या को समझाकर तेयार रखत और जब भगवान् भिक्षा के लिए आते तो वे कन्या को आगे करके– प्रभो! यह कन्या आपकी सेवा मे समर्पित हे। आप इसे स्वीकार कीजिये। यह आपकी भली–भाति सेवा करेगी। कोई कष्ट आपका नहीं होने देगी। यह नम्र और सुलक्षण है। इसके भरण–पोषण की चिन्ता आपको नहीं करनी पडेगी।' मगर भगवान् क्या कन्या ले सकते थे? वे मन्द स्मित के साथ आगे चल देते। तब लोग सोचते–हम भूल कर रहे हैं। भगवान् को सेविका की आवश्यकता होती तो वे सुनन्दा और सुमगला को ही क्यो छोडते?

लोगो के घर मे पर्याप्त अन्न था। मगर लोग सोचते–भगवान का अन्न जैसी साधारण वस्तु क्या देना! अतएव कोई–कोई हीरा पन्ना सोना आदि देने को तैयार होते। पर भगवान् जब ऐसी कोई भी चीज ग्रहण न करत तो लोग समझ जाते कि भगवान इन सब चीजो के त्यागी हैं।

इस प्रकार निराहार रहते भगवान को एक वर्ष बीत गया। यद्यपि भगवान् का शरीर सुदृढ और बलिष्ठ था। फिर भी अन्न क अभाव म शरीर का कुम्हला जाना स्वाभाविक था। सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध हो गई कि भगवान् कुम्हला रह हें। सभी लाग इस बात स चिन्तित हुए। मगर आहार दन की बात किसी को न सूझी।

एक बार विचरत–विचरत भगवान् तक्षशिला पहुच। वहा ध्यान लगाकर खडे रह। बाहुबली का भगवान् क पदार्पण का वृत्तान्त विदित हुआ। उस समय सध्या हा चली थी उन्हान साचा–अब शाम हा गई। प्रात काल हात ही पूरी तेयारी क साथ भगवान् के दर्शन करना ठीक हागा। लकिन प्रात काल उन्ह मालूम हुआ कि भगवान् अन्यत्र विहार कर गय हें। यह जानकर बाहुबली पश्चात्ताप करन लगे कि में धूमधाम और प्रसिद्धि चाहता था। मर हृदय म सच्ची भावना न हान क कारण ही भगवान विहार कर गय आर मै उनक दर्शन स वचित रह गया।

आज भी धूमधाम ता बहुत की जाती हे लकिन भगवान का हार्दिक सत्कार कम किया जाता ह।

विहार करत करत भगवान गजपुर पधार। वहा भगवान क प्रपात्र आर बाहुबली क पात्र राजा श्रयासकुमार राज्य करत थ। उनक पिता राज्यकार्य स निवृत हा गय थ। पिता जब त्याग का आदश रखता हे ता पुत्र भी त्याग सीखता ह आर जब पिता ही काक–कामिनी क लिए हाय–हाय

करता हुआ मरता है तो सतान भी यही शिक्षा लेती है। ऐसी स्थिति मे सतान मे त्याग भावना आना बहुत कठिन है।

श्रेयासकुमार ने स्वप्न मे देखा सुमेरु पर काठ लगा था सो श्रेयास ने दुग्ध से धोकर साफ कर दिया। कल्पवृक्ष सूखा जा रहा है और मैंने उसे सीचा है। दूसरी ओर श्रेयासकुमार के पिता ने यह स्वप्न देखा कि एक महापुरुष को शत्रुओ ने घेर लिया है, लेकिन श्रेयासकुमार ने उन्हे भगाकर महापुरुष की रक्षा की है। तीसरे वहा के नगर सेठ को स्वप्न आया। उसने स्वप्न मे देखा कि सूर्य की सब किरणे गिर पडी हैं और श्रेयासकुमार ने उन्हे फिर सूर्य मे लगा दिया। प्रात काल तीनो एक जगह बैठे और सोचने लगे कि इन स्वप्नो का क्या अर्थ है? स्पष्टरूप से तो कोई बात समझ मे नही आई, मगर अन्त मे सब लोग इस निर्णय पर आये कि श्रेयासकुमार के हाथ से कोई महान् और श्रेष्ठ कार्य होगा।

श्रेयासकुमार गोखडे (गवाक्ष) मे बैठे थे। उसी समय उन्होने भगवान को आते देखा। भगवान को आते देखकर वह सोचने लगे–स्वप्न का यही फल जान पडता है। भगवान् किस प्रकार सूख रहे हैं इनका शरीर तप से कितना दुर्बल हो गया है।

भगवान को देख कर श्रेयासकुमार आनन्दित हुए। उसी समय जाति स्मरण–ज्ञान उत्पन्न हो गया। उन्हे मालूम हुआ कि पूर्वभवो मे मैं इनकी पत्नी, इनका मित्र और इनका सारथी रह चुका हू। इस भव मे यह मेरे प्रपितामह है। लोग जानते नही कि इन्हे क्या और किस विधि से देना चाहिये। इसी कारण भगवान इतने दुर्बल हो गये हैं।

श्रेयासकुमार महल से नीचे उतरे। उन्होने भगवान् से कहा–प्रभो! मै जानता हू कि आपको और कुछ नही चाहिये केवल आहार चाहिये। आप मेरे घर पधारे मेरे यहा आपके योग्य जो निर्दोष आहार होगा वह मैं आपको दूगा।

है कि तुझे भगवान् की सेवा करना होगा कोन कन्या भगवान् की सेवा के लिये तैयार न हो जाती? अतएव लोग अपनी कन्या को समझाकर तेयार रखते और जब भगवान् भिक्षा के लिए आते तो वे कन्या को आगे करके– प्रभो! यह कन्या आपकी सेवा मे समर्पित हे। आप इसे स्वीकार कीजिये। यह आपकी भली–भाति सेवा करेगी। कोई कष्ट आपको नहीं होने देगी। यह नम्र और सुलक्षण है। इसके भरण–पोषण की चिन्ता आपको नहीं करनी पडेगी।' मगर भगवान् क्या कन्या ले सकते थे? वे मन्द स्मित के साथ आगे चल देते। तब लोग सोचते–हम भूल कर रहे हें। भगवान् को सेविका की आवश्यकता होती तो वे सुनन्दा और सुमगला को ही क्यो छोडते?

लोगो के घर मे पर्याप्त अन्न था। मगर लोग सोचते–भगवान् को अन्न जैसी साधारण वस्तु क्या देना! अतएव कोई–कोई हीरा, पन्ना सोना आदि देने को तैयार होते। पर भगवान् जब ऐसी कोई भी चीज ग्रहण न करते तो लोग समझ जाते कि भगवान् इन सब चीजो के त्यागी हैं।

इस प्रकार निराहार रहते भगवान् को एक वर्ष बीत गया। यद्यपि भगवान् का शरीर सुदृढ और बलिष्ठ था। फिर भी अन्न के अभाव मे शरीर का कुम्हला जाना स्वाभाविक था। सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध हो गई कि भगवान् कुम्हला रहे हें। सभी लोग इस बात से चिन्तित हुए। मगर आहार देने की बात किसी को न सूझी।

एक बार विचरते–विचरते भगवान् तक्षशिला पहुचे। वहा ध्यान लगाकर खड़े रहे। बाहुबली को भगवान् के पदार्पण का वृत्तान्त विदित हुआ। उस समय सध्या हो चली थी उन्होने सोचा–अब शाम हो गई। प्रात काल होते ही पूरी तेयारी के साथ भगवान के दर्शन करना ठीक होगा। लेकिन प्रात काल उन्हे मालूम हुआ कि भगवान् अन्यत्र विहार कर गय हें। यह जानकर बाहुबली पश्चात्ताप करने लगे कि में धूमधाम ओर प्रसिद्धि चाहता था। मेरे हृदय भ सच्ची भावना न होने के कारण ही भगवान् विहार कर गये ओर में उनके दर्शन से वचित रह गया।

आज भी धूमधाम ता बहुत की जाती हे, लेकिन भगवान् का हार्दिक सत्कार कम किया जाता हे।

विहार करत करत भगवान् गजपुर पधारे। वहा भगवान् क प्रपोत्र ओर बाहुबली क पात्र राजा श्रयासकुमार राज्य करत थ। उनक पिता राज्यकार्य से निवृत हा गय थ। पिता जब त्याग का आदर्श रखता हे ता पुत्र भी त्याग सीखता ह ओर जब पिता ही कनक–कामिनी क लिए हाय–हाय

करता हुआ मरता है तो सतान भी यही शिक्षा लेती है। ऐसी स्थिति मे सतान मे त्याग भावना आना बहुत कठिन है।

श्रेयासकुमार ने स्वप्न मे देखा सुमेरु पर काठ लगा था सो श्रेयास ने दुग्ध से धोकर साफ कर दिया। कल्पवृक्ष सूखा जा रहा है और मैंने उसे सीचा है। दूसरी ओर श्रेयासकुमार के पिता ने यह स्वप्न देखा कि एक महापुरुष को शत्रुओ ने घेर लिया है, लेकिन श्रेयासकुमार ने उन्हे भगाकर महापुरुष की रक्षा की है। तीसरे वहा के नगर सेठ को स्वप्न आया। उसने स्वप्न मे देखा कि सूर्य की सब किरणे गिर पडी हैं और श्रेयासकुमार ने उन्हे फिर सूर्य मे लगा दिया। प्रात काल तीनो एक जगह बैठे और सोचने लगे कि इन स्वप्नो का क्या अर्थ है? स्पष्टरूप से तो कोई बात समझ मे नही आई, मगर अन्त मे सब लोग इस निर्णय पर आये कि श्रेयासकुमार के हाथ से कोई महान् और श्रेष्ठ कार्य होगा।

श्रेयासकुमार गोखडे (गवाक्ष) मे बैठे थे। उसी समय उन्होने भगवान को आते देखा। भगवान् को आते देखकर वह सोचने लगे—स्वप्न का यही फल जान पडता है। भगवान् किस प्रकार सूख रहे हैं इनका शरीर तप से कितना दुर्बल हा गया है।

भगवान को देख कर श्रेयासकुमार आनन्दित हुए। उसी समय जाति स्मरण–ज्ञान उत्पन्न हो गया। उन्हे मालूम हुआ कि पूर्वभवो मे मैं इनकी पत्नी, इनका मित्र और इनका सारथी रह चुका हू। इस भव मे यह मेरे प्रपितामह है। लाग जानते नही कि इन्हे क्या और किस विधि से देना चाहिये। इसी कारण भगवान इतने दुर्बल हो गये हें।

श्रेयासकुमार महल से नीचे उतरे। उन्होने भगवान् से कहा—प्रभो ! मै जानता हू कि आपको और कुछ नही चाहिये केवल आहार चाहिये। आप [illegible] पधारे मेरे यहा आपके योग्य जो निर्दोष आहार होगा वह में आपको [illegible]।

कुछ असमजस मे पड गये। उसी समय उन्होने देखा कि भेंट मे आये हुये इक्षु रस के 108 घडे रक्खे हैं। यह विचार आते ही उन्हे सतोष हुआ। उन्होंने कहा प्रभो । यह रस आपके योग्य है। इस ग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजिये।

भगवान् ने सोचा–यह रस शुद्ध, सात्त्विक और मेरे लेने योग्य हे। भगवान् ने यह सोचकर श्रेयासकुमार के सामने–कर पात्र कर दिया। भगवान के पाणि पात्र मे श्रयासकुमार ने रस की धारा छोडी। यह देखकर देव–दवियो की प्रसन्नता का पार नही रहा। सभी को चिन्ता हो रही थी कि भगवान् रूपी कल्पवृक्ष सूखा जा रहा हे। और इस बात की प्रतीक्षा मे थे कि किसके हाथ से यह सीचा जायगा। राजा श्रेयासकुमार के हाथ से सीचा जाते देख देवा को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। देव जय–जय कार करते हुए रत्न आदि की वर्षा करने लगे। वह मानो कहने लगे–हे मनुष्यो! तुम कितने भाग्यशाली हो कि सुपात्र को दान दे सकते हो! हम तो दान की महिमा का बखान ही कर सकते हैं, दान नही दे सकते। तुम्हारा सोभाग्य असाधारण हे।

मनुष्य भव इतना उत्तम हे। फिर भी बहुत से लोग देवो की लालसा करते हैं और सोचते हैं कि एक देव कही मिल जाय तो उसकी सहायता से सब लोगो को लूटकर अपना घर भर लू। लेकिन देव इस तरह नही मिला करते। आप मे धर्म होगा तो देव आप ही आपकी सेवा करेगे। कहा भी हे –

देवा वि त नमसति जस्स धम्मे सया मणो।

अगर आपके अन्त करण मे धर्म का वास है तो देव आपके दास हें। मगर आप धर्म की उपेक्षा करते हें ओर देवो के गुलाम हो रहे हें वह गुलामी भी पेसो के लिये करते हें। देव आपके हृदय को जानते हैं। वे आपक पास केसे आ सकते हें? आपके हृदय म शुद्ध धर्म होगा तो देव बिना बुलाये ही आपके पास दोडे आएँगे।

भगवान् ऋषभदेव का पारण श्रेयासकुमार के हाथ स हुआ। दवगण दुन्दुभी बजाकर श्रेयासकुमार का यशोगान करने लगे। तप ता भगवान ने किया था ओर यश श्रेयासकुमार का गाया जाने लगा। ऐसी बात का ध्यान मे रखकर ही आगम म कहा गया हे –

दुल्हा उ मुहादाई मुहाजीवी वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी दोवि गच्छन्ति सुगग्ई।

अर्थात्–निष्काम तप करन वाल ओर निस्पृह जीवनयापन करन वाल पात्र दुर्लभ हें ओर निस्पृह भाव स उनकी सवा करन वाल दाता भी दुर्लभ हैं। जहा दाना का सयाग हाता हे वहा दाना का ही सद्गति हाती हे।

धन्य है भगवान सरीखे तपस्वी और धन्य है श्रेयासकुमार जैसे दाता।

राज्य करते हुए लोगो की भावना कैसी रहती है और श्रेयासकुमार की भावना कैसी रही? ऐसी भावना जिनकी होती है उनका कल्याण होने मे देर नही लगती। आपके पास राज्य तो नही है लेकिन घर है। घर के काम करते हुए भी आपकी भावना दूसरो का कल्याण करने की रही तो आपका भी यश गाया जायेगा। आप गृहस्थ लोग कदाचित् इस बात की उपेक्षा भी कर सकते हैं मगर हम लोगो–साधुओ को तो क्षण भर भी उपेक्षा नही करना चाहिये। हमने यदि भगवान् ऋषभदेव की शरण मे जाने के लिये ही सयम लिया है तो हमे भगवान ऋषभदेव को और उनके महान् कार्यो को ही देखना चाहिये। हमे ससार के झझटो मे नही पड़ना चाहिये। मैं चाहू आप और हम दोनो ही भगवान् ऋषभदेव के मार्ग पर चल कर आत्मा का कल्याण करे।

भगवान् ऋषभदेव को जैनशास्त्र मे भी महापुरुष माना गया है और वैदिक सम्प्रदाय के साहित्य मे भी। भागवत मे भी कहा है –

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्ण,
श्रेयस्य तद्रचयना चिरसुप्तबुद्धे ।
लोकस्य य करुणया ऽ भयमात्मलोक–
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै।

(भागवत स्क 5 अ 6)

वेदव्यासजी कहते हैं–मैं उन ऋषभदेव को प्रणाम करता हू जिन्होने नित्य आत्म तत्त्व का चिन्तन किया और इस कारण जिनकी चिन्ता नष्ट हो गई है। चिन्ता का नाश हो जाने पर भी जिन्होंने जगत के कल्याण के कार्य नही त्यागे है। जिन्होने बहुत काल से प्रमाद मे पडे हुए लोगो को आत्मतत्त्व समझाया और ऐसा मार्ग बतलाया जिससे आत्मा पूर्ण अभय–पद प्राप्त कर सके।

इस कथन के आधार पर समझा जा सकता है कि भगवान् ऋषभदेव को वेदव्यासजी किस दृष्टि से देखते हैं और वैदिक ग्रन्थो मे भी भगवान का स्थान कितना उच्चतर है? वेदव्यासजी भगवान ऋषभदेव को तृष्णा का नाश कर डालने के कारण नमस्कार करते हे। वे अभय देने वाले को नमस्कार करते है तो क्या हम लोग भय देने वाले को नमस्कार करते हैं? नही। इस तरह जिन्हे वे मानते है उन्ही को हम मानते हे और जिन्हे हम मानते हें उन्हीं को वे भी मानते हे। हमारे और उनके ऋषभदेव मे कोई अन्तर नही हे।

दूसरे को अभय वही दे सकता है जो स्वय निर्भय हो। जो स्वय भयभीत होगा वह दूसरे को निर्भय कैसे करेगा? अतएव अभय देने के लिए निर्भय बनना आवश्यक है। लेकिन निर्भय वही बन सकता हे जो आत्मा ओर शरीर को भिन्न-भिन्न मानता है और समझता हे कि आत्मा अमृत हे। एसी श्रद्धा प्राप्त करके आप भी निर्भय बन सकते हैं। अभी तक आपने आत्मा को बहुत भय दिया है। अब आत्मा का भय मिटाओ। आप आत्मा को अमृत समझने लगेगे तो भय आपसे भयभीत होगा। आप पूर्णरूप से निर्भय बन जाएगे।

मित्रो ! आत्मविश्वास रखो। आपको धन आदि पर जेसा विश्वास है वैसा विश्वास अपनी आत्मा पर नही है। पर यह मत भूल जाओ कि जिन्ह धनादि बाह्य पदार्थो का ही विश्वास था वे लोग नष्ट हो गये। जिन्हे आत्मविश्वास था उनके विषय मे कहा भी है –

न हि कल्याणकर कश्चिद् दुर्गति तात! गच्छति।

अगर आप आत्म-बल पर भरोसा रखे तो आपका अकल्याण कदापि नही हो सकता। अतएव आत्मकल्याण करने और उसके लिये अभय पद प्राप्त करने को तैयार हो जाओ। पुर्यषण पर्व के आठ दिन इसी प्रयोजन के लिये हैं। दूसरे पर्वो पर घर-बाहर का कचरा साफ किया जाता है लेकिन इस पर्व पर आत्मा का कचरा साफ किया जाता है आत्मा मे जमे हुए कचरे को निकाल कर आत्मा को पवित्र बनाने के लिये ही यह पर्व हे। अगर आत्मा का मेल हटाने के लिए अधिक कुछ न कर सको तो इस कविता मे जो कुछ कहा हे उसका ही पालन करो। कवि कहता है –

दुखी दर्दी के कोई भुलेला मार्गवाला ने
विसामो आपवा धरनी उघाडी राखजो बारी।
गरीबोनी दाझ सॉभलवा अवरना दु ख जोवाने,
तमारा कर्ण नेत्रोनी उघाडी राखजो बारी।
प्रणयनो वायरो वावा कुछन्दी दुष्ट वाजावा
तमारा शुद्ध ह्रदयोनी उगाडी राखजो बारी।
थयेला दुष्ट कर्मोना छटा जजीर थी थावा।
जरा सा कर्म नीनोनी उघाडी राखजो बारी।

शास्त्र म श्रावक क लिए जा कुछ कहा हे इस कविता का उसका अनुवाद ही कहा जा सकता ह। भगवती सूत्र म श्रावक का वर्णन करत हुए उस अभगुअदुवार कहा हे। अर्थात श्रावका क द्वार सदा खुल रहत थ। व

कृपण नही होते थे कृपणता और श्रावकपन का साथ नही निभ सकता। अतएव वे श्रावक अपने द्वार सदा खुले रखते थे।

द्वार किसके लिए खुले रखने की आवश्यकता है? आपके लिए तो आपका द्वार खुला ही रहता है फिर खुला किस के लिए रखना चाहिये ? मैंने घाटकोपर मे एक घर के द्वार पर एक पाटिया लगा देखा था। उस पर लिखा था– बिना इजाजत कोई अन्दर न आवे' जिस द्वार पर ऐसी सूचना लिखी हो उसमे मै कैसे प्रवेश कर सकता हूं? आप अपने घर पर तो ऐसा पाटिया नही लगाते? अगर लगाते हैं तो यह भी समझ लीजिये कि जो आपसे जबर्दस्त है वह तो आपकी ऐसी सूचना की परवाह नही करेगा। लेकिन मुझ जैसे भिखारी को तो घर मे घुसने से रुकना ही पडेगा। अतएव यह सोचने की आवश्यकता है कि आपको अपने घर का द्वार किसके लिये खुला रखना चाहिये? जब शास्त्र मे श्रावक को अभगुयदुवारे' कहा है तो स्पष्ट है कि श्रावक के घर का द्वार सबके लिये खुला रहना चाहिये। क्या आपका द्वार सबके लिये खुला रहता है। आपके घर से कोई निराश नही लौटता? गृहस्थ के विषय मे नीतिकार कहते है। –

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्त्तते।
स तस्मै दुष्कृत दत्वा पुण्यमादाय गच्छति।।

अर्थात जिसके घर से अतिथि निराश लौटता है उस घर के स्वामी को वह अपना पाप दे जाता है और उसका पुण्य आप ले जाता है।

कहा जा सकता है कि ऐसा किस प्रकार हो सकता है? पुण्य–पाप का आदान–प्रदान होना सभव नही है। इस कथन का समाधान यह है कि आपके यहा जो आता हे वह आपको महान समझ कर ही आता है। लेकिन आपके यहा से उसे गाली मिलती है। तो वह क्या समझता हे? वह यही सोचता है कि मै कैसे तुच्छ आदमी के घर आ पहुचा। इस तरह पहले आपकी पुण्याई मानी जाती थी वह समाप्त हो गई। इसके अतिरिक्त भिखारी मीठा बोलता हुआ आपके घर आता हे। आप इसके विपरीत ही अगर व्यवहार [illegible] खरी–खोटी सुनावे और वह नम्र होकर ही बोलता रहे तो यह [illegible] लेना–देना हुआ या नही? इसी कारण भगवान् ने श्रावक को

नही दे सकता। फिर भी उसमे अगर प्रत्येक आने वाले को दवा दी जाती है तो वह सार्वजनिक कहलाता है। इस प्रकार आप भी सबकी सेवा नही कर सकते। लेकिन जो आपके पास आता है उसकी सेवा यथाशक्ति ता करनी चाहिये।

इसी भावना के लिये सवत्सरी आती है। सवत्सरी के दिन ऐसी ही उदार भावना जागृत करने की साधना करना चाहिए। इस भावना में अगर कोई त्रुटि नजर आती हो तो उसे निकाल डालो और जो दुखी–दर्दी आवे उसे विश्राम देने के लिए अपने घर का द्वार खुला रखो।

हाथी के भव मे मेघकुमार ने अपने लिये मडल बनाया था। लेकिन वन में दावानल सुलगने पर जब दूसरे जीव उस मडल मे आ घुसे तो क्या उसने अपने मडल मे से निकाल दिया था? वह मडल तो हाथी ने स्वय परिश्रम करके बनाया था और आपने अपना मकान बनाने मे शायद ही परिश्रम किया हो। फिर भी अगर आप दीन दु खी के विश्राम के लिये अपने घर का द्वार खुला नहीं रखते तो क्या कहा जाये? हाथी पशु है। मनुष्य को उससे गया–बीता नही होना चाहिये।

बड़े आदमियो की बात सुनने के लिये आप अपने कान खुले रखते हैं। किन्तु अगर आपने दुखियो की कराह सुनने के लिये कान खुले न रखे तो आपके कान सॉप के बिल के समान ही हैं। जिन शब्दो को सुनने से हृदय मे करुणा उत्पन्न होती हे, उन्हे न सुनना अनुचित हे। भगवान् नेमिनाथ ने तो तोरणद्वार पर भी पशुओ की पुकार सुनी थी। आप अपने भाई की भी पुकार न सुने–उसका भी दुख न मिटावे, यह कितना अनुचित है।

अब तक जो भूल हुई हे उसका सुधार करो। अब दूसरो का दुख–दर्द दूर करने की भावना रखो। जब आपका राजा भी दूसरो का दु ख–दर्द सुनता हे तो आप क्या अपनी जाति के गरीब भाइयो का भी दु ख सुन सकेगे? और उस दर्द को नही मिटाएगे? आपके कान खोटे गीत ओर रिकार्ड सुनने के लिए खुले रहते हें तो क्या दुखिया का दु ख–दर्द सुनने के लिए नही खुले रहने चाहिये? भगवान् कहते हें–उन गद गीता स तो श्रगार की भावना उत्पन्न होगी ओर दु खियो की कष्ट कथा सुनने से करुणारस का उद्रेक होगा। तुम करुणारस जागृत करने वाली वात सुनो। शास्त्र म कहा हे–

ज सोच्चा पडिवज्जति तव खतिमहिसय।

जिस वात का सुनन स अहिसा क्षमा, तप आदि की भावना उत्पन्न हो उसके लिए यही माना कि हमन शास्त्र सुना हे। क्याकि शास्त्र सुनन स

जिस भावना की जागृति होनी चाहिये उसी भावना की जागृति उस बात के सुनने से भी होती है।

कान की भाति हृदय की भी बारी खुली रखो। अर्थात् हृदय मे सद्भावना आने दो। जिस घर के किवाड खुले नही रहते और हवा का आवागमन जिस घर मे नही हो पाता, उस घर की हवा खराब हो जाती है। ऐसी कई घटनाएँ सुनी गई हैं कि घर बन्द करके सोये, हवा का आवागमन नही रहा और इस कारण मृत्यु हो गई। अतएव जैसे घर मे हवा आने का मार्ग खुला रखा जाता है, उसी प्रकार अपने हृदय मे करुणा, दया आदि आने के लिए मार्ग खुला रहने दो।

यह ससार समुद्र है। कहते हैं, जब समुद्र मथा गया था तो उसमे अमृत भी निकला था और विष भी निकला था। इसी तरह इस ससार मे भी विष और अमृत दोनो निकलते हैं। विचारणीय यही है कि दोनो मे से क्या लेना हे? समुद मथन से निकलने वाले विष और अमृत के विषय मे कहा जाता है कि जो लोग मोहिनी पर ललचा गये उन्हे विष मिला और वे असुर कहलाए। अमृत नही मिला। जो नही ललचाया उन्हे अमृत मिला और वे देव कहलाए। इस पौराणिक आख्यान मे से तथ्य निकालो। आप इस ससार–समुद्र से विष मत ग्रहण करो अमृत लो।

आपके लिये यह अपूर्व अवसर है। ऐसा सुअवसर पाकर भी अगर आप अपनी–अपनी आत्मा की उन्नति न करेगे तो फिर कब करेगे ? अतएव जिस प्रकार श्रेयासकुमार ने सहज आया हुआ इक्षु–रस भगवान् ऋषभदेव को देकर अपूर्व लाभ लिया था उसी प्रकार आपको सहजरूप से जो शक्ति मिली है उसके द्वारा परोपकार करो। निश्चित समझो कि 'परोपकार' शब्द का प्रयोग करना तो प्रचलित भाषा है। वस्तुत परोपकार शब्द 'स्वोपकार' ही है।

9 : तल्लीनता

श्रीजिन अजित नमू जयकारी, तू देवन को देवजी।

यह भगवान् अजितनाथ की प्रार्थना है। भक्त परमात्मा से कहते हैं — हे नाथ ! तू देवाधिदेव होकर अजित हुआ। जो अजित होता है वह दूसरो से पराजित नही होता। वही देवाधिदेव होता है। इस प्रकार भक्तो ने पूर्ण पुरुष का लक्षण बतला दिया है। पूर्णता प्राप्त हुए बिना सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त करके अजित नही बना जा सकता।

स्थूल दृष्टि से इस जगत् का व्यवहार बहुत लम्बा है। कोई भी शक्तिशाली पुरुष तीन लोक मे नही जा सकता। अतएव प्रश्न हो सकता है कि भगवान् ने तीनो लोको पर कैसे विजय प्राप्त की और किस प्रकार वे अजित' पद के अधिकारी हुए? इस प्रश्न के उत्तर मे ज्ञानीजन कहते हैं कि भगवान् ने जो विजय प्राप्त की हे वह बाहरी विजय नही है। आतरिक विजय हे। पिण्ड मे ब्रह्माण्ड' की नीति से भगवान् ने सब पर विजय प्राप्त की हे। जो अपनी आत्मा के दुर्गणो पर विजय पा लेता है वह सम्पूर्ण त्रिलोकी पर विजय पा लेता हे। अतएव आप अपनी आत्मा के दुर्गुणो को जीत कर अजित बनने का प्रयत्न कर सकते हें।

आप अपने हृदय को देखो ससार को न देखो। जब आपका मन प्रसन्न होता हे तब चाहे ससार केसा भी क्यो न हो पर आपको केसा लगता हे? ओर जब मन प्रसन्न नही होता तब ससार चाहे कितना ही अच्छा हो आपको अच्छा नहीं लगता। यह बात ध्यान म रखकर ही कहा गया हे —

तणसथारनिसण्णो गुणिवर भट्ठरायमयदोसी।
ज पावइ मुत्तिमुह कत्तो त चच्कवट्टीए?

अर्थात्—जिनका राग द्वष ओर मद नष्ट हा गया हे व मुनि घास क आसन पर वठ या लट हुए भी मुक्ति का जा आनन्द प्राप्त करत हें वह आनन्द चक्रवर्ती का भी नसीब नही हा सकता।

मुनि को इतना आनन्द क्यो प्राप्त होता है? मन के प्रसन्न रहने पर ही सब वस्तुए आनन्दप्रद होती हैं और जब मन प्रसन्न नही होता तो कोई भी वस्तु आनन्द दायक नही जान पडती। कल्पना कीजिए, किसी मनुष्य को सब प्रकार की सम्पत्ति और सब प्रकार वैभव प्राप्त है। उसकी सेवा करने के लिए सुन्दर स्त्री भी प्रस्तुत है। उसे एकाएक समाचार मिला कि तुम्हारा इकलौता लडका विदेश मे मर गया है। यह समाचार मिलने के बाद उसे वह सम्पत्ति और वैभव कैसा जान पडेगा? उसके वैभव मे किसी प्रकार की न्यूनता नही हुई है न धन ही कम हुआ है, न स्त्री कही चली गई है, फिर भी उसे कोई भी वस्तु अच्छी नही लगेगी। इसका कारण यही है कि उसका मन प्रसन्न नही है। इसके विरुद्ध मानसिक प्रसन्नता की स्थिति मे यह सब वस्तुए न हो तो भी मन आनन्दित रहता है। इस तरह यह बात सभी के अनुभव की है कि मन की प्रसन्नता से ही सब कुछ अच्छा लगता है और जब मन प्रसन्न नही होता तो कुछ भी अच्छा नही लगता।

विज्ञान सामान्य से विशेष का पता लगाता है। इसी आधार पर महापुरुषो ने ऐसी बात देख कर आध्यात्मिक क्षेत्र मे यह खोज की है कि जिनका मन पूर्ण शात हो जाता है अथवा जिसका मन पूरी तरह आनन्दित रहता है उसको किसी आनन्द की कमी नही रहती और ससार की सम्पदा के अभाव मे भी वह आनन्दित रहता है। ऐसा ही व्यक्ति त्रिलोक पर विजय प्राप्त करके अजित बन सकता है। इसी कारण भक्तजन भगवान् अजितनाथ की प्रार्थना करते हुए कहते है–हे प्रभो! तूने अपने मन को पूरी तरह शान्त करके सारे जगत पर विजय पाई। मै तेरी शरण मे आता हू, जिससे मैं भी मन को पूरी तरह शात करके अजीत बन सकू। इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए [illegible] अनेक देवो की सेवा की। लेकिन शाति नही मिली। मैंने जिनकी सेवा की वे स्वय राग–द्वेष से भरे थे और उन्हे स्वय ही दूसरे की शरण मे जाने की आवश्यकता थी। ऐसी स्थिति मे उनके द्वारा शाति कैसे मिलती? अन्त मे मैंने [illegible] से श्रवण करके और स्वय विचार करके निश्चय किया कि अब और [illegible] भटक–कर उन अजितनाथ भगवान् की ही शरण मे जाना उचित है [illegible] राग–द्वेष को पूरी तरह जीत चुके है और मन पूर्ण शात हो जाने से जो [illegible] पद के अधिकारी हो गए है। इस तरह सोचकर हे प्रभो! अब मे तेरी [illegible] आया हू।

दूसरी जगह कुछ और सुनते हैं। जो सच्ची हे, उसे आप कहीं भी सुने उसम तो भेद रहेगा ही और इस तरह के भेद का नाम ही ससार हे। अतएव आप किसी प्रकार की गडबड़ में न पड कर भगवान अजितनाथ की शरण मे जाइये।

भगवान् अजितनाथ की शरण मे जान स आत्मा दासत्व से मुक्त हो जाता हे ओर स्वामित्व को प्राप्त करता हे।

प्रश्न हो सकता हे, अगर भगवान् वीतराग हैं, तो किसी पर वे दया क्यो करने लगे और ऐसी हालत मे उनकी प्रार्थना करने या उनकी शरण म जाने से क्या लाभ हे? अगर भगवान् वीतराग होते हुए भी करुणा करते हैं तो बिना प्रार्थना किये या बिना ही उनकी शरण मे गये भी वे दया क्या नहीं करेगे?

इस प्रश्न का उत्तर यह हे कि आत्मा मे दासत्व से मुक्त होकर स्वामित्व प्राप्त करने की शक्ति हे। तमी आत्मा दासत्व से मुक्त होकर स्वामी बन सकता हे। आत्मा मे यह शक्ति हो ही नही तो परमात्मा अपने पास से ऐसी शक्ति नही देता। फिर मी आत्मा को कुछ करने की आवश्यकता रहती हे। उदाहरणार्थ–मिट्टी घडा बनती है। उसमे घडा बन जाने की शक्ति हे। लेकिन वह आप ही घड़ा नहीं बन जाती। घडा बनाने वाले कर्त्ता के हाथ म जाने पर ही वह घडा बनती हे। कुम्हार, चाक आदि की सहायता मिलने पर ही वह घडा बन सकती हे। रोटी आटे से बनती हे। लेकिन जब बनान वाला हो तमी रोटी बनेगी। इसी प्रकार ओर भी बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। मगर स्थालीपुलाक न्याय से अर्थात्–एक चावल को टटोलने से जेसे हडी के सब चावलो के पक्के या कच्चे होने का निर्णय कर लिया जाता हे उसी प्रकार इन दो उदाहरणो के आधार से ही यह कहा जा सकता हे कि आत्मा म परमात्मा बनने की शक्ति हे, फिर भी सामग्री अर्थात् कर्त्ता क्रिया करण आदि क मिलन पर ही काम होता हे। इनके बिना काम नही हा सकता। आत्मा म परमात्मा के गुण विद्यमान हैं लकिन जब तक आत्मा कर्त्ता बन कर निमित्त कारण रूप परमात्मा की सेवा नही करता हे तब तक उनक गुण प्रकट नहीं हा सकते। प्रत्युत आनादिकाल से जिस प्रकार भटकता आ रहा हे उसी प्रकार भटकता फिरेगा। अतएव इस विषय म प्रयत्न करन की आवश्यकता ह।

कुम्हार मिट्टी लकर बेठता हे। लकिन वह उस मिट्टी ही नहीं रहन दता किन्तु घडा बनाता ह। स्त्रियाँ आटा लकर बठती हैं मगर उस आटा ही

नही रहने देती किन्तु रोटी बनाती हैं। यद्यपि मिट्टी मे घडा और आटे मे रोटी बनने की शक्ति है, मगर उस शक्ति का आविर्भाव तभी होता है जब निमित्त रूप से किसी की सहायता प्राप्त हो। इसी प्रकार आत्मा को भी अपनी शक्ति का आविर्भाव करने के लिए परमात्मा की सहायता की आवश्यकता है। बिना परमात्मा की सहायता के आत्मा परमात्मा नही बन सकता। इसीलिये तो परमात्मा की शरण ग्रहण करने की आवश्यकता है।

आत्मा मे परमात्मा बनने की शक्ति है, लेकिन आत्मा से एक बडी भूल यह होती है कि जिन कार्यो के करने से आत्मिक शक्ति का विकास होता है उन कामो को भूलकर आत्मा दूसरे कामो मे तन्मय बना रहता है। इसीलिए कहा गया है –

उपादान आतम सही पुण्टालम्बन देव।
उपादान कारणपणे प्रकट करे प्रभु सेव।

यानी आत्मा के परमात्मा बनने मे उपादान कारण स्वय आत्मा है। परमात्मा निमित्त कारण है। मगर निमित्त कारण के अभाव मे अकेला उपादान कारण कार्य नही कर सकता। अतएव जैसे घडे की उपादान कारण मिट्टी, कुम्हार रूप निमित्त कारण के अभाव मे घडा नही बन सकती, उसी प्रकार परमात्मा रूप निमित्त कारण के सेवन किये बिना आत्मा स्वय परमात्मा नही बन सकता। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक कार्य को निष्पन्न करने के लिये उपादान ओर निमित्त दोनो कारणो की अनिवार्य आवश्यकता होती है। दोनो [illegible] से किसी भी एक के अभाव मे कार्य नही हो सकता। आत्मा का परमात्मा बनना भी एक कार्य है। उसके लिए भी उपादान और निमित्त कारणो की आवश्यकता है। उपादान कारण स्वय आत्मा है और निमित्त कारण परमात्मा है। अतएव परमात्मा बनने के लिए परमात्मा की सेवा अनिवार्य है। परमात्मा की सेवा करते ही आत्मा परमात्मा बनता है।

जैसे सूर्य किसी भी प्रकार का भेदभाव किये बिना सब को समान रूप से प्रकाश देता है उसी प्रकार ज्ञानियो के समीप भी किसी प्रकार का [illegible] नही रहता। इसलिये वे प्ररणा करते है कि–हे आत्मन्! तू अपने मे [illegible] करने के लिये परमात्मा की शरण मे जा। परमात्मा की [illegible] करने मे किसी प्रकार का सकोच मत कर। यह मत सोचो कि [illegible] की शरण न [illegible]। जिस तरह भी परमात्मा की शरण मे जा [illegible] उसी तरह जा। साध्य एक होता है साधन अनेक होते हैं। अतएव [illegible] मे किसी प्रकार का व्यामोह न लाकर जिस किसी साधन

से परमात्मा की शरण मे जा सको उसी साधन से जाओ, ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप, यह मुक्ति के चार साधन हैं। इनमे से सच्चे भाव से किसी भी साधन को अपनाने पर शेष स्वय उसमे अन्तर्गत हो जाते हैं। अतएव इन चार साधनो मे से जिसे अपनाने की अपने मे शक्ति हो उसी साधन को मुख्यरूप से अपना कर और दूसरे साधनो की निन्दा न करके, दूसरे साधनो का विरोध न करके, मुक्ति प्राप्त कर सकते हो। अतएव साधन के विषय मे किसी प्रकार का व्यामोह उत्पन्न करने की आवश्यकता नही है। जिस साधन को अपनाने की क्षमता तुम अपने मे पाओ, उसी को अपनाओ। फिर सब साधन एक रूप ही बन जाएँगे। चारो मे भेद ही प्रतीत नही होगा।

एक कार्य की सिद्धि के अनेक साधनो मे से किसी एक को पकड लेने और दूसरे साधनो का विरोध करने पर कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। उदाहरण के लिये स्त्री रसोई बनाती है तो उसके लिये आटा, पानी आग आदि सब साधनो के सहयोग की आवश्यकता होती है। सब का सहयोग होने पर ही रसोई बन सकती है। यह बात दूसरी है कि किसी वस्तु का निमित्त रूप से सहयोग होता है और किसी का उपादान रूप से। लेकिन सहयोग सभी का अपेक्षित रहता है। अब अगर कोई स्त्री यह सोचे कि रोटी तो आटे की बनती है, मुझे आग पानी आदि की कोई आवश्यकता नहीं है तो क्या वह रसोई बनाने मे सफल होगी? दूसरे साधनो की निन्दा या उपेक्षा करके वह रसोई नही बना सकती। इसी प्रकार मोक्ष प्राप्त करने मे भी अनेक साधनो की आवश्यकता होती हे। उनमे से किसी एक का विरोध हुआ तो मोक्ष–प्राप्ति मे बाधा होगी। इसी कारण कहा गया हे –

मिती मे सव्वभूएसु।

यानि सभी जीव मेरे मित्र हैं। यदि किसी एक जीव के प्रति भी अन्त करण मे वेर भाव रह जाता हे तो मोक्ष प्राप्त नही हो सकता।

जब आत्मा उच्च स्थिति मे होता हे तब सभी साधन अनुकूल हो जात हे। कोई भी साधन प्रतिकूल नही रहता हे। कृष्ण के विषय म में कह ही चुका हू। कस ने उन्ह मार डालने के लिये अनेक प्रयत्न किये लेकिन वे सव प्रतिकूल प्रयत्न कृष्ण के लिय अनुकूल हो गये। इस प्रकार आत्मा जव ऊची स्थिति म पहुच जाता हे ता प्रतिकूल प्रकृति भी उसक अनुकूल हा जाती हे। अतएव आत्मा का परमात्मा की शरण म ल जान की आवश्यकता हे। इस सम्वन्ध म नाम का भद दखन की आवश्यकता नही हे। तत्त्व पर ही दृष्टि रहनी चाहिय। नाम कुछ हा तत्त्व यदि एक हे ता काफी हे। कहा भी हे –

य शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो –
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटव कर्त्तेति नैयायिका ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता कर्मेति गीमासका,
सोऽय वो विदधातु वाछितफल त्रैलोक्यनाथो हरि ।

जो दु खो को हरण करता है– नष्ट करता है वह हरि कहलाता है। उस हरि को कोई शिव भी कहते हैं। शिव का अर्थ भी यही है, अर्थात् जो कल्याण–सुख रूप है वह शिव है। अगर कोई शिव का नाम लेकर किसी के घर मे आग लगाता है तो क्या उसने शिव का स्वरूप समझा है? नही। शिव तो वही है जो सुख उत्पन्न करे। उसे वेदान्ती लोग ब्रह्म कहते हैं। लेकिन ब्रह्म को जानने वाले का क्या कर्त्तव्य है? जो सबके सुख दु ख को अपना ही मानता है ओर प्राणीमात्र को ब्रह्मरूप देखता है, वही सच्चा वेदान्ती है। जो इसके विपरीत करता हे क्या उसने ब्रह्म को पहचाना है? जो –

अत्तसमे मन्निज्जा छप्पि काये।

इस कथन के अनुसार सब मे ब्रह्म मानता है वही वेदान्ती है और उसी ने ब्रह्म को जाना है।

बोद्ध उसे 'बुद्ध' कहते हैं। लेकिन बुद्ध को शान्ति के लिए माना जाता है या अशान्ति के लिये? बुद्ध का नाम लेकर आग लगाने का कोई समर्थन नही करता। सभी लोग शाति की हिमायत करते हें। ऐसी दशा मे बुद्ध, शिव या ब्रह्म म क्या अन्तर रहा?

अव नैयायिको की बात पर आइये। प्रमाण देने मे पटु–नैयायिक जिसे कर्त्ता कहते है वह कर्त्ता शान्ति देता हे या अशान्ति देता हैं? अगर वह अशान्ति देता है तो उसे यमराज कहा जायगा। अगर ईश्वर यमराज नही है तो उसे शाति दाता ही कहा जायगा ओर तब बुद्ध मे, शिव मे ब्रह्म मे या इसमें क्या अन्तर है?

साधारण लोक-व्यवहार मे अर्हन्त के उपासकों मे दूसरे मतानुयायिया की अपेक्षा कोई खास विशेषता क्यो नजर नही आती? पाप करते समय लोग परमात्मा से मानो यही कहते हैं कि तू यहा से हट जा। 'अरह' वह कहलाता है जिससे कोई बात गुप्त न रहे जो सभी कुछ जानता और देखता हे। जब परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है तो आप उससे अपने पाप को कैसे छिपा सकते हैं? अगर आप मे यह भावना रही कि– हे प्रभो! मेरे द्वारा पाप न हो और मैं तुझे सभी जगह व्यापक मानू, तब तो आपने अर्हन्त को जाना है। नही तो क्या जाना है ।

इसलिये मैं यह कहता हू कि परमात्मा का नाम लेकर ही मत रह जाओ। यह मानो कि प्रभु सर्वज्ञ हैं और सर्वदर्शी हैं। वे सभी कुछ जानते-देखते हैं हमारा पाप उनसे छिपा नही रह सकता। अगर आपके अन्त करण मे यह श्रद्धा बद्धमूल हो गई है तो क्या आप अपराध करने का साहस करेंगे? आप राजा से डरते हैं मगर पाप करते समय परमात्मा का भय नही रखते यही माया है। प्रकट मे कुछ करना और अप्रकट मे कुछ करना ही तो माया का लक्षण है। हम आपके सामने उपदेश देने बैठे तो सन्त बन कर बैठे और उपदेश सुनावे लेकिन अकेले होने पर यह विचार करे कि यहा कौन देखता है तो क्या हम सचमुच साधु हैं? और क्या हमने सचमुच परमात्मा को सर्वज्ञ माना हे? क्या हमने लोगो को दिखाने के लिए ही साधुता अगीकार की हे? हमारे लिये शास्त्र मे कहा हे–

से गामे वा नयरे वा रण्णे एगओ वा परिसागओ वा, सुत्ते वा जागरमाणे वा।

अर्थात्– साधु चाहे ग्राम मे हो, चाहे नगर मे हो, चाहे वन मे हो, चाहे अकेला हो, चाहे समूह मे हो, चाहे सोता हो, चाहे जागता हो, उसे सदा एकसा रहना चाहिये। वह किसी भी समय परमात्मा को न भूले। ऐसा करने पर ही हम सच्चे साधु हैं। अगर हमम यह बात न हो किन्तु प्रकट मे कुछ और अप्रकट मे कुछ करने लगें तो हमारे पास कौन फटकेगा?

आप हमार पास आये हैं। लेकिन क्या लने आय हे? इस बात पर आपका भी विचार करना चाहिए। हमारी सेवा करने क लिय आप हमार पाटल ता उठात नही हे। हमारी सेवा यही हे कि आप समभाव रख। आपन समभाव रखा तब ता हमारी सवा हे। नही ता सवा का नाम ही नाम हे। हम आपस कोई मिहनताना तो लत नही हे। समभाव रखन का उपदश आपका

मुफ्त ही मिल रहा है। इसलिए उसकी उपेक्षा मत करो और यहा आना तथा अर्हन्त के भक्त कहलाना सार्थक करो।

मतलब यह है कि जैन लोग जिसे अर्हन् कहते हैं, वह भी तो शाति करने वाला ही है। फिर अन्तर क्या है?

कवि आगे कहता है, मीमासक उसे कर्म कहते हैं। वह कर्म क्या है? सभी लोग अच्छे कर्म करने को ही कहते हैं। जैनशास्त्र कब कहते हैं कि बुरे काम करो। जैनशास्त्र अच्छे काम करने की ही प्रेरणा करता है।

थोडी देर सामायिक मे बैठकर अच्छे काम किये तो क्या हुआ ! जब आप व्यवहार मे भी बुरे काम न करे किन्तु अच्छे काम करे, तभी समझना कि हम जैन के मार्ग पर हैं।

साराश यह है कि नाम कुछ भी हो, काम देखो। अच्छे काम द्वारा परमात्मा की शरण मे जाओ। साथ ही जो कुछ भी करो, परमात्मा की शरण के लिये करो। इस लोक या परलोक सम्बन्धी सासारिक सुखो की अभिलाषा से मत करो। शास्त्र मे कहा भी है –

न इह लोवट्ठियाए तवमहिट्ठिज्जा, न परलोगट्ठयाए तव अहिट्ठिज्जा नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तव अहिट्ठज्जा।

शास्त्र कहते है–हे भाइयो ! तुम्हारी क्रिया तुम्हे काम, क्रोध आदि की तरफ न ले जाये इस बात का ध्यान रखो। तुम तपस्या आदि कोई भी करणी करो पर वह इसलोक या परलोक की या और किसी वस्तु की लालसा से मत करो किन्तु निर्जरा के लिए करो। परमात्मा की शरण मे जाने के एकमात्र उद्देश्य से ही करो।

जो लोग तपस्या करते हे उनसे मेरा यही कहना है कि तुम्हारा तप निर्जरा के लिए ही हो और तपस्वी को देखकर आपको भी सोचना चाहिये कि जब तपस्वी ऐसा कठोर तप करते हे तो हमे क्या झूठ दुराचार आदि जो व्यवहार दृष्टि से भी त्याज्य हे नही त्याग देना चाहिए? इस प्रकार सोचकर जो बाते त्याज्य है उन्हे त्यागकर नीति मान् बनो। नीतिमान् बनते ही धर्मात्मा [illegible]। यह सोचकर कि हम गृहस्थ हैं पाप मत करो। पाप त्याग कर [illegible] के अनुसार अच्छे काम करो और जो कुछ करो परमात्मा के लिए करो।

मे न पड कर ईश्वर के गुणो पर विचार करे। मूल तत्व देखे ओर कल्याण का मार्ग अपनाए।

भगवान् ऋषभदेव का श्रेयासकुमार के हाथ से पारणा हुआ हे। सारे जगत् मे यह बात प्रसिद्ध हो गई। देखना चाहिये कि भगवान् का पारणा तो श्रेयासकुमार के हाथ से हुआ, मगर जो लोग भगवान् को हाथी घोडा, कन्या आदि देने को उद्यत होते थे, उन्हे कोई फल हुआ होगा या नही? जब उन लोगो ने यह सुना है कि भगवान् ने श्रेयास कुमार के घर इक्षु-रस लिया है तब वे लोग सोचने लगे और पश्चात्ताप करने लगे कि हम लोग भ्रम मे थे कि भगवान् को आहार के बदले हाथी घोडा आदि देने को तैयार होते थे। भगवान् को हाथी-घोडे की आवश्यकता ही क्या है? हमारे घर मे खाने-पीने की वस्तुए भी पडी थी, फिर भी हमने भगवान् के सामने वह वस्तुए पेश नहीं कीं। यह हमारा कितना अज्ञान है। हाय। अज्ञान कितना अनर्थकारी होता है।

लोग इस प्रकार पश्चात्ताप करने लगे और श्रेयासकुमार के पैरो मे पडने लगे। सभी ओर श्रेयासकुमार की प्रशसा होने लगी। इस तरह उन लोगो को भी लाभ ही हुआ। कई लोग कहने लगते हैं कि हमारे पास धन नहीं है। हम परमात्मा का भजन किस प्रकार करे? मगर इस वृत्तात से यह समझ लेना चाहिये कि परमात्मा को धन की आवश्यकता नही है। भक्ति धन से ही नही होती।

भगवान् मोन थे लेकिन लोग तो दाता का ही गुण-गान करते थे। इससे प्रकट है कि भगवान् ने जब मोक्षधर्म प्रकट किया, उससे पहले ही श्रेयासकुमार ने दान-धर्म प्रकट किया था जो मोक्ष का पाया है। मोक्ष का पाया ही न हो तो मोक्ष कैसे मिल सकता है?

यद्यपि मोक्ष के लिए दान आवश्यक हे लेकिन आज लोगो म दान की वृत्ति कम हो रही हे। लोग जो कुछ भी देते हें उसके बदले अखबारा म नाम चाहते हें। मगर दान केसा होना चाहिए इस सबध म गीता म कहा हे-

दातव्यमिति यद्दान दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्विक विदु ।।

अर्थात्-जो दान दश-काल पात्र देखकर बिना किसी प्रत्युपकार की भावना के दिया जाता हे वही दान सात्विक हे।

जिसका जिस समय जिस वस्तु की आवश्यकता हे उसका उस समय वही वस्तु दना विवकयुक्त हे। दूसर का उस चीज की जरूरत हे ओर अपने पास वह चीज हे ता उस दूसर का द दन की उदारता रखना ही दान

है। दान मे देश काल, पात्र आदि रखने की आवश्यकता है। इन बातो का विवेक होना ही चाहिये। ऐसा न हो कि प्यास के मारे जिसका कठ सूख रहा हो उसे भोजन लेने को कहा जाय और जो भूख का मारा छटपटा रहा है उसे पानी बतलाया जाए। ऐसा हुआ तो क्या यह काल और पात्र का विवेक कहलाया? दान देकर फिर इस बात की भी चिन्ता करनी चाहिये कि जिसे हमने दान दिया था, उसका क्या हुआ? आप कुत्ते को रोटी डाल देते हैं लेकिन फिर यह भी देखते हैं कि उनका क्या होता है? बहुत से लोग तत्काल आवेश मे आकर कुछ कर डालते हैं या दे देते हैं लेकिन देश, काल और पात्र का ध्यान न रखा तो वह दान भी पूरी तरह सफल नही होता।

प्रत्येक कार्य मे ज्ञान की आवश्यकता है। भगवान् ऋषभदेव कष्ट सहते हुए घर–घर इसीलिये घूमे थे कि कौन ज्ञानवान् होकर इस बात को समझे कि मुनि को किस प्रकार दान देना चाहिये? भगवान् दूसरो को विवेक देने के लिये घर–घर घूमे और निराहार रहे तो क्या आप अपनी भलाई का विवेक नही कर सकते और घर वालो को भी विवेक नही सिखा सकते?

सत् और असत् को पहचानना ही विवेक कहलाता है। सत् असत् के विवेचन को ही विवेक कहा गया है। अर्थात् अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की पहचान होना विवेक या ज्ञान है।

भगवान ने सबको ज्ञान के सम्बन्ध मे विवेक सिखलाया। उस समय दान लेने वाले केवल भगवान् ही थे और दान देने वालो की कमी नही थी। फिर भी भगवान् ने सब को विवेक सिखलाना आवश्यक समझा।

भगवान् एक बार विनीता नगरी की तरफ चले। विनीता नगरी मे मरुदेवी माता 'हाय ऋषभ, हाय ऋषभ' कहकर भगवान् का ही स्मरण किया करती थी। भगवान् ने तो कष्ट सहन करके तत्त्वज्ञान प्रकट किया था और माता भगवान को ही स्मरण किया करती थी। फिर भी दोनो को एक ही गति प्राप्त हुई। इस आधार पर सोचना चाहिये कि भगवान् की भक्ति की कैसी महिमा है।

माता मरुदेवी को भगवान के विछोह मे खाना–पीना आदि कुछ भी नही सुहाता था। कहा भी है –

क्लेशैर्युतो मनसि चेन्नहि किंचिदस्ति।

सभी वस्तुए सामने मौजूद होने पर भी अगर चित्त मे शाति न हो तो वे वस्तुए अच्छी नही लगती। लेकिन चित्त मे शाति न होने या वस्तु अच्छी

न लगने के मुख्य दो कारण होते हैं– एक तो ससार से विरक्ति ओर दूसरा किसी परिजन का वियोग।

माता को किसी चीज की कमी नही थी। उनकी सेवा करने वाले भरत ओर बाहुबली जैसे पौत्र थे। उनकी रानिया भी माता की आज्ञा पालने मे अपना अहोभाग्य मानती थी। उनके पास हाथी थे, घोडे थे सभी कुछ था। जिस ओर वे दृष्टि घुमाती, आनन्द ही आनन्द था। सब लोग हाथ जोडकर उनकी सेवा मे उपस्थित रहते थे। फिर भी ऋषभदेव के बिना उनके लिये सभी कुछ सूना था। वे रात–दिन ऋषभदेव को ही याद किया करती। भक्ति के मार्ग का यह अनोखा उदाहरण है। आप भी जब यह मानने लग कि हमे चाहे कितनी ही चीजे क्यो न मिल जाए, अगर परमात्मा नहीं मिला हे तो कुछ भी नही मिला है तभी समझना कि हमारे चित्त मे भगवान् की भक्ति हे।

माता मरुदेवी रात के समय, अचानक सोने से उठकर कहने लगती–क्या ऋषभ आया है? ऋषभ! ऋषभ कहा हे?

तब सुनन्दा और सुमगला कहती–माता! पागल क्यो हुई जा रही हो? तुम्हारी आज्ञा पाकर ही तो वह गये हैं। अब जल्दी लोट आएगे।

माता व्याकुल होकर कहती–वह आयेगा, कब आएगा? तुम मुझे फुसला तो नहीं रही हो? क्या वह सचमुच आएगा?

भरत की रानिया कहती–माता, धीरज रखो। हम आपके पौत्र से कहेगी कि आप राजपाट मे ही भूल रहे हैं और यह जानने का प्रयत्न नही करते कि भगवान् कहा हैं?

भरत की रानियो के इस प्रकार कहने पर माता कहती–बहुओ तुम सुलक्षणा हो। लेकिन ऋषभ कब आएगा?

माता को इस प्रकार बहुत तरह से सतोष देने का प्रयत्न किया जाता मगर थोडी ही देर मे फिर वही रट लगाती–ऋषभ! कहा हें? तू कब आएगा?

कभी–कभी सान्त्वना देने पर वह कहती–में जब तक ऋषभ को आखो स न देख लू, ओर उसक शब्द काना स न सुन लूँ, तब तक मुझ सतोष नही हान का।

जब भरत माता के पास जात तो माता उन्ह मीठासा उलहना दती– भरत! तू राजपाट पाकर मेरे ऋषभ का बिलकुल भूल गया हे! घर म में उस किस प्रकार रखती! अब कान जान वह केस रहता हागा? इस समय उसकी क्या दशा हागी?

माता की व्यथा से सनी वाणी सुनकर भरत काप उठते। वह सोचने लगते–माता का हृदय कैसा होता है। माता के हृदय को माता के सिवाय और कौन जान सकता है?

भक्त का हृदय जब माता के हृदय के समान बन जाता है, तभी उसकी परमात्मा से भेट होती है।

माता की उत्कठा और व्यथा देखकर भरत सोच–विचार में पड जाते। उनकी समझ मे ही न आता कि क्या कह कर माता को धीरज बधाऊ। भगवान् ज्ञानी हैं। वे स्वय माता की यह दशा जानते हैं। मैं माता को क्या समझाऊ।

पुरिमताल नगर मे आते–आते भगवान् को अनन्तज्ञान और अनन्तदर्शन की प्राप्ति हुई। अयोध्या मे भगवान् का समवसरण हुआ। भरत को खबर लगी कि भगवान् केवलज्ञान और केवल दर्शन की लक्ष्मी लेकर पधारे हैं। वे भगवान् की सराहना करके अपने आप को राजपाट उलझे रहने के कारण धिक्कारने लगे। उन्होने सोचा–भगवान् के पधारने से माता की अभिलाषा पूर्ण हो गई।

भरत माता मरुदेवी के पास पहुचे। माता ने पूछा भरत। आज तू इतना प्रसन्न क्यो दिखाई दे रहा है?

भरत ने मुस्करा कर कहा–माता, आज बडे आनन्द का समाचार मिला है। आप रात–दिन जिनके लिये चिन्ता करती रहती थी और जिनका नाम रटा करती थी वे भगवान् पधार गये हैं।

यह सुनते ही माता की प्रसन्न का पार न रहा। उन्होने कहा–ऋषभ आ गया? पर वह घर पर क्यो नही आया? खैर, नही आया तो न सही। बहुत दिनो मे लौटा है। मै जाकर बुला आती हू।

भी उनका हृदय शुद्ध है। इसी से वह कहती है कि ऋषभ को में ही क्यो न बुला लाऊँ।

माता का कथन भरत ने भी सुना। उन्हाने सोचा माता इस समय हर्ष की चरम सीमा मे हैं। भगवान् घर पर नही पधारेगे, यह कहकर उनक हर्ष को एकाएक आघात पहुचाना उचित नही है। गीता मे कहा हे –

न बुद्धिभेद जनयेदज्ञाना कर्मसगिनाम्।

अर्थात्–जो अच्छे काम मे लगा हे उसकी बुद्धि मे गडबड पेदा कर देना उचित नहीं है।

एवन्ताकुमार से गौतम स्वामी क्या अपना हाथ नही छुडा सकते थे? लेकिन ऐसा करके उन्होने एवन्ताकुमार के हर्ष का छेदन नही किया।

पूज्य श्रीलाल जी महाराज कहा करते थे–मेरा विवाह हुआ ओर में वापस लौटा तब तपस्वी पन्नालालजी महाराज वहा विराजमान थे। उन्हे देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई और मैं उनके पैर पकडने के लिये दौडा। मुझे यह भी याद नही रहा कि मेरे पास सगठा (सचित्त–स्पर्श) होने योग्य कोई वस्तु हे । मुझे महाराज का पैर पकडने के लिये जाते देखकर लोग कहने लगे–सगठा होगा, सगठा होगा। हल्ला–सा मच गया। लेकिन तपस्वी जी महाराज ने कहा–इस तरह किसी के हर्ष का छेदन नही करना चाहिये। इस हर्ष मे इस बात का ध्यान नहीं रहा।

भरत ने माता से कहा–माताजी हम लोग भगवान् के पास चलत ही हैं। फिर जैसा आपको उचित लगे, करना।

माता–ठीक हे। जल्दी करो। फिर उन्होने बहुओ से कहा–अरी तुम सब भी जल्दी तेयार हो जाओ। आज अपनी चिरकाल की साध पूरी हा रही हे आज मेरा ऋषभ आया हे। चलो सब मिलकर उसे घर ले आए।

भरत ने अपनी सेना सजायी। हाथी सजाये। घोडे सजाये। उधर भरत की रानिया तेयार होकर माता के पास आ पहुची। सबको देखकर माता विचारने लगी–ऋषभ के आने से मुझे ही नही सभी को हर्ष हे। वास्तव म ऋषभ सभी का हे। वह सारे जगत् का रक्षक हे।

माता हाथी पर सवार होकर भगवान् के पास चली। भरत ओर बाहुबली उन पर चवर ढार रह थे। उनक पुण्य का क्या कहना हे? यद्यपि उनके लिय सभी चीज प्रस्तुत थी मगर उनका मन ता भगवान म ही लगा था। वास्तव म जा माता मरुदवी की तरह ससार की सब वस्तुआ का एक

किनारे रख परमात्मा के चरणो मे ही मन लगाता है, वही सच्चा पुण्यवान् है और वही अपना शाश्वत कल्याण कर सकता है।

माता हाथी पर सवार थी और भरत एव बाहुबली जैसे महापुरुष उन पर चवर ढोर रहे थे, फिर भी मानो उन्हे इस गौरव का ध्यान ही नही था। जिनका मन तो प्रभु मे ही लीन था। आज जरा–सा ऐश्वर्य पाकर लोग जमीन पर पाव नही रखते। नया जूता पहनकर ही अभिमान करते हैं। सोचने लगते है–ओह! मेरे जैसा दूसरा कौन है? उन्हे यह नहीं मालूम कि वे जिस सम्पदा पर अभिमान करते हैं वह कितनी तुच्छ है। ऐसी नगण्य सम्पदा पर क्या अभिमान।

माता को भगवान् के पास पहुचने की उतावली थी। वह सोच रही थी कि मै कब ऋषम को देखू! इस कारण कहने लगी–'यह हाथी चलता क्यो नही है। क्या आज इसे खाने को नही मिला?'

आखिर जिस हाथी पर माता सवार थीं वह भगवान् के समीप जा पहुचा। भरत ने माता से कहा–माता, देखो, भगवान् वे सामने विराजमान हैं।

माता–कहा? मुझे तो नही दिखाई दिया।

भरत ने भगवान् की ओर उँगली बताकर कहा–देखो, वे रहे।

भगवान् को देखकर माता कहने लगी–ऋषम ऐसा वैभवशाली हो गया है। अपने वैभव मे वह मुझे भी भूल गया है क्या? इसमे आश्चर्य ही क्या है। अरे इसके सामने इन्द्र, इन्द्रानी देव और देविया हाथ जोड़े हैं। ऐसी सम्पदा पाकर मुझे भूल जाना कोई आश्चर्य की बात नही है। देखो न, मुझे देखकर वह न सामने आया और न उठा ही।

भरत वास्तविक परिस्थिति से परिचित थे। वे अपनी भोली दादी को क्या उत्तर देते? उनकी समझ मे ही नही आता था कि मैं इन्हें किस प्रकार समझाऊ? समझा देने मे माता के दिल को चोट लगने की आशका भी थी। अतएव उन्होने टालते हुए कहा–माताजी आप उन्ही से पूछना कि वे क्यो नहीं

जब हाथी और भी सन्निकट आ गया, तब वह कहने लगीं–अरे ऋषभ तो अब भी नही उठा? वास्तव मे इस पर मेरा राग है। मुझे इस राग के घेरे से बाहर निकलना चाहिये। यद्यपि अप्रशस्त राग से प्रशस्त राग अच्छा है, लेकिन उससे भी आत्मा को विलग होना चाहिये। जब ऋषभ ने मुझे और इस ससार को त्यागा है तभी उसे यह सम्पदा मिली है। इससे स्पष्ट है कि त्याग से ही सब कुछ मिलता है। ऋषभ का मोन मानो कानो से टकरा कर कहता है–माता, जागो और मोह त्यागो। मोह त्यागने से ही इसे यह ऋद्धि मिली है। मैं मोह त्याग दूगी तो क्या मुझे यह ऋद्धि नही मिलेगी?

इस प्रकार सोचकर माता ने भरत से कहा हे भरत! जगत् जजाल है।

एगो मे सासओ अप्पा नाणदसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे सजोगलक्खणा।।

भरत! यह सारा ससार जजाल है। केवल आत्मा ही शाश्वत है। ससार की किसी भी वस्तु के साथ आत्मा का लगाव नहीं है। यह सब कल्पना का ही खेल है। आत्मा सब से भिन्न है। जब मैं यह बात जान गई हू तो ससार के जाल मे क्यो पडूं?

इस प्रकार कहकर माता ने अपने आत्मा को राग से पृथक् किया। आत्मा के लिये अप्रशस्त राग को जीतना उतना कठिन नही जितना प्रशस्त राग को जीतना कठिन होता है! मगर माता ने प्रशस्त राग को भी जीत कर दिखा दिया कि इस राग को भी जीतना चाहिये।

माता ने आत्मा को राग से खीचकर मोह नष्ट कर दिया। बारहवे गुणस्थान की अवस्था प्राप्त की। फिर तेरहवे गुणस्थान की स्थिति भोगकर सिद्धि प्राप्त की।

माता को देखकर भरत सोचने लगे–माता यह क्या कर रही है! उन्होने प्रकट मे कहा–माता, आप अपने पुत्र को देखिए न! लेकिन माता तो सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो चुकी थी। माता का शरीर देखकर वे जान गये कि माता ने सिद्धि प्राप्त कर ली है। वह सोचने लगे–जिस प्रयोजन के लिये मानव शरीर की प्राप्त होती है माता का वह प्रयोजन पूर्ण हो गया माता का उद्देश्य सफल हो गया ! जिस काम के लिये दीपक हाथ मे लिया जाता है। वह काम हो जाने के बाद दीपक त्याग दिया जाता है इसी प्रकार महापुरुष काम होने तक ही व्यवहार रखते हैं और काम हो जाने पर व्यवहार त्याग देते हैं। माता ने भी शरीर का काम हो जाने पर शरीर त्याग दिया है।

मोह के कारण भरत और बाहुबली माता के लिये शोक करने लगे। उस समय इन्द्र ने आकर उनसे कहा–माता के लिए शोक मनाना वृथा है। वह प्रथम केवली हुई है। भगवान् ने इतने कष्ट सह कर जो दिव्य ज्ञान प्राप्त किया है उसे माता ने सहज ही प्राप्त कर लिया है। उन्होने मानव–जीवन की चरम सिद्धि प्राप्त की है। उनके लिए दुख न करो। शोक न मनाओ।

इस प्रकार सब को समझा कर इन्द्र ने माता के शरीर का अन्तिम सस्कार किया। माता के शरीर को देखकर भरत आदि सबके मन मे यह भावना हुई कि माता के हृदय मे भगवान् के प्रति इतनी उत्कट तल्लीनता थी कि उन्होने हाथी के हौदे पर बैठे–बैठे ही मोक्ष प्राप्त कर लिया। यह क्या कुछ साधारण बात है! भगवान् के प्रति ऐसा प्रेम हमे कब प्राप्त होगा?

आत्मा का परम कल्याण एक ही जन्म में नही होता। उसके लिये अनेक जन्मो की साधना के सस्कारो की आवश्यकता रहती है।

माता के हृदय में भगवान् के प्रति जो प्रेम था, उसे आदर्श मानकर आप भी भगवान् के प्रति प्रेम करेगे तो आपका भी कल्याण होगा।

जामनगर के व्याख्यान

1 : आत्मा और परमात्मा

श्री सुबुद्धि जिनेश्वर वन्दिये रे, प्राणी।

परमात्मा की प्रार्थना करने का रहस्य गहरा है। उस रहस्य तक मनोभाव की पहुच भी कठिनाई से ही होती है तो शब्दो की पहुच सरलता से कैसे हो सकती है? फिर भी शब्दो का प्रयोग किये बिना काम नही चलता। ससार मे शब्दो को छोडकर और क्या साधन है कि कोई अपने मन के भावो का प्रकट करे? अतएव इतना कहता हू कि आत्मा पर चढे हुवे आवरणो को हटाने के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना की जाती है। आत्मा के मौलिक स्वरूप पर विचार करने से विदित होता है कि वास्तव मे आत्मा और परमात्मा के स्वरूप मे कुछ भी अन्तर नही है। जो अन्तर आज मालूम हो रहा है वह औपाधिक है। यह बाह्य कारणो से उत्पन्न हुआ है वह बाह्य कारण आठ कर्म है। आठ कर्म आत्मा के वेरी है। उन्होने आत्मा के असली स्वरूप को ढक दिया है। आत्मा को राजा से रक बना दिया हे। साधारण लोग दूसरे व्यक्तियो को अपना दुश्मन समझते हे मगर उन्हे वास्तविकता का पता नही है। जिसे वास्तविकता का भान हो जाता हे उसके मन मे तनिक भी सदेह नही रहता कि कर्म–आवरण के सिवाय आत्मा का शत्रु और कोई नही है। इन्ही वैरियो को हटाने के लिए ही परमात्मा की स्तुति की जाती हे।

लोक व्यवहार मे अकसर ऐसा होता हे। फिर मी पोराणिक उदाहरण देखना हो तो कोरवो ओर पाण्डवो का उदाहरण देख सकते हैं। जब कोरव–पाण्डव युद्ध होना निश्चित हो गया ओर दोना ही विजय प्राप्त करने की अपनी–अपनी शक्ति को टटोलने लगे तो उन्ह प्रतीत हुआ कि हमारी विजय सिर्फ हमारी शक्ति स नही होगी। अतएव दाना ही श्री कृष्णजी की शरण म गये। दोनो ने कृष्णजी को अपने–अपन पक्ष म शामिल करन का विचार किया। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को पसन्द किया ओर दुर्योधन न उनकी सना पसन्द की। मगर विजय उसी पक्ष की हुई जिस पक्ष म अकल श्रीकृष्ण थ। श्रीकृष्ण की बलवती सेना मी कोरवा को विजयी न बना सकी ओर अकेले निशस्त्र श्रीकृष्ण ने पाडवो को विजयी बना दिया।

अर्जुन ने विशाल ओर सुशिक्षित यादव सना न लकर कृष्ण को ही लेना उचित समझा था। अर्जुन जानते थे कि कृष्ण की विवकयुक्त बुद्धि क सामने शस्त्र क्या कर सकते हैं? नीति मे कहा हे –

बुद्धिर्यस्य बल तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ?

अर्थात्–जिसमे बुद्धि हे उसमे बल हे। बुद्धिहीन म बल कहा?

दुर्योधन के पक्ष मे विशाल सेना थी ओर शस्त्रास्त्र की कमी नही थी मगर उसकी बुद्धि खराब थी। इस कारण उसकी हार हुई। अर्जुन बुद्धिमान थे इसलिए उन्होंने सेना न लेकर श्रीकृष्ण को ही लिया। इसी तरह अगर आपकी बुद्धि अच्छी हे ओर आप विजय चाहते हैं कर्मरूपी शत्रुआ का भगाना चाहते हैं तो आप भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण लीजिए। लकिन यह ध्यान रखना कि भगवान सुबुद्धिनाथ को प्राप्त करने के लिए निर्मल बुद्धि हानी चाहिए। अगर आपकी बुद्धि मे विकार हुआ ता भगवान सुबुद्धिनाथ आपका प्राप्त नही हागे। अपनी बुद्धि का निर्मल बनाकर जब आप सुबुद्धिनाथ प्रभु की शरण ग्रहगे तो आपकी आत्मा क शत्रु आप ही भाग जाएग। आत्मा क सच्च शत्रु आत्मा म ही रहते हैं। व भगवान की सहायता क बिना नही भाग सकत। इसलिए जसे अर्जुन क मन म यह निश्चय था कि कृष्ण क बिना मरी जीत नही हा सकती उसी प्रकार आप भी अपन मन म निश्चय कर लीजिए कि भगवान सुबुद्धिनाथ की सहायता के विना में अपन आतरिक शत्रुआ पर विजय प्राप्त नही कर सकता। इस प्रकार की दृढ आस्था हान पर ही आप भगवान की शरण ल सकग। श्रीकृष्ण क पास सना भी थी आर हथियार भी थ। लकिन भगवान सुबुद्धिनाथ क पास हथियार नही हैं। फिर भी क्या आप उनकी सहायता लना पसन्द करग? आपकी समझ म यह बात आ जानी

चाहिए कि हथियारो मे जहर भरा हुआ है। हथियार दूसरो का गला काटने के सिवाय ओर कुछ भी काम नही दे सकते। उनसे शत्रुओ की हानि नही वृद्धि ही होती है। हानि अगर होती है तो शस्त्र का उपयोग करने वाले की ही होती हे। शस्त्रो के द्वारा शत्रुता भी मिटने के बदले बढती ही है। अगर आप इस तथ्य को भलीभाति समझ लेगे तो शस्त्रहीन भगवान् सुबुद्धिनाथ को उसी पकार ग्रहण करेगे जैसे वीर अर्जुन ने निश्शस्त्र श्रीकृष्ण को गहण किया था। आप विश्वास रखिये जब आपके हृदय मे वीतराग भगवान् विराजमान होगे तो राग–द्वेष आदि विकार उसी प्रकार विलीन हो जाएगे, जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार विलीन हो जाता है।

बाह्य दृष्टि से न देखकर अन्तर्दृष्टि से देखोगे तो पता चलेगा कि आपके आन्तरिक शत्रु वही हैं जिन्हे वीतराग भगवान् ने जीता है। उन्ही शत्रुओ ने आपके ऊपर अपना आधिपत्य जमा रक्खा है। भक्तजन कहते हैं–

जे तुम जीत्या ते मुझ जीतिया,
पुरुष किसो मुझ नाम .. ।

अतएव अगर आप शत्रुविहीन बनना चाहते हैं तो भगवान् को अपने हृदयमन्दिर मे विराजमान कीजिये। भगवान् ने उन वैरियो को जीत लिया है अतएव उनके भीतर प्रवेश करते ही वैरी भाग जाएगे। इसमे सदेह की आवश्यकता नही है। णमोकारमत्र का पहला पद हे– नमो अरिहताण। अर्थात वैरियो का नाश करने वालो को नमस्कार हो। इस पर आशका हो सकती है कि जिसने अपने वैरियो का नाश किया है वह वीतराग कैसे कहला सकता है? मगर उन्होने किसी बाह्य शत्रु को नष्ट नही किया है। कर्म–शत्रु का नाश करने के कारण ही वे अरिहत कहलाते हैं।

बिगडी वस्तु लेकर अपनी शक्ति से उसे सुधारती हे। फिर उसका फल आप ग्रहण करते हैं। अब अगर आप सुधरी हुई वस्तु लेकर उसे बिगाड दें तो वनस्पति की अपेक्षा भी गये–बीते कहलाएगे या नही?

प्रश्न किया जा सकता हे कि पृथ्वी, पानी आदि को 'दीर्घलोक' न कह कर सिर्फ वनस्पति को ही 'दीर्घलोक' क्यो कहा हे? इस प्रश्न के उत्तर मे आचार्य का कहना हे कि वनस्पति के आधार पर ही ससार का टिकाव हे। इसी कारण वनस्पति को 'दीर्घलोक' कहते हैं।

पानी बरसने पर जगल म हरियाली ही हरियाली दिखाई पडती हे। पानी बरसने पर वनस्पति हरी हो जाती हे, लेकिन साधु क वचनरूपी जल की वर्षा होने पर भी अगर आपके अन्त करण मे धर्म की जागृति नही हो ता आपको क्या कहा जाय?

अपने यहा पन्नवणसूत्र मे वनस्पति के सम्बन्ध म बहुत विचार किया गया है। आजकल के वैज्ञानिको ने भी वनस्पति शास्त्र की रचना की हे। वनस्पति के विषय मे गाधीजी ने अपने एक लेख म लिखा हे कि–वनस्पति की शोध म अभी तक बहुत कमी हे। इतनी अधिक कमी हे कि अगर यह कहा जाये कि अभी तक पृथ्वी ही नही जोती गई हे ता भी कुछ अनुचित नही होगा। अगर वनस्पति की विशिष्ट खोज की जाये ता लागा कि भ्रष्ट दवा खान की आवश्यकता न पडे। आयुर्वेद म कहा हे कि जा प्राणी जहा उत्पन्न होता हे उसके लिए उसी प्रदेश की दवा उपयोगी होती हे। एसा होत हुए भी आजकल के लोग भ्रष्ट चीजे खाना पसन्द करते हें ओर भारतवर्ष म उत्पन्न होकर भी इग्लेण्ड की ओषधि खाते हें वह दवा कितनी ही अपावन क्या न हो। बिना विचार किए उसे निगल जात हें या डकार जात हें। अगर वनस्पति क सम्बन्ध म अधिक खोज की जाय ता इस देश क निवासिया का प्रकृति क विरुद्ध ओर अपवित्र दवाइया खान का अवसर ही न आवे।

मतलब यह हे कि क्रियाजनित सस्कार किस प्रकार आत्मा का शुभाशुभ फल दता ह इस बात की खाज वनस्पति के आधार पर की जा सकती ह। इसक लिए वटवृक्ष का दखिय। वटवृक्ष हवा–पानी आदि क सयाग स अपना विस्तार करता ह। उसकी डालिया आर पता का फेलाव हाता हे आर उनम फल लगत ह वट की इस प्रकट क्रिया क साथ ही साथ उसम एक गुप्त क्रिया भी हाती रहती ह। उसी गुप्त क्रिया क आधार पर यह विचार किया जा सकता ह कि शुभ–अशुभ क्रियाआ स उत्पन्न हान वाल सस्कार किस प्रकार आत्मा का फल प्रदान करत ह?

बड के फल मे छोटे–छोटे बीज होते हैं। उन बीजों मे बड अपना सरीखा वृक्ष भर देता है। फल या बीज में अगर बड–वृक्ष को देखने का प्रयत्न किया जाये तो दिखाई नही देता मगर बुद्धि द्वारा समझा जा सकता है कि बीज मे सम्पूर्ण वृक्ष छिपा हुआ है। छोटे से बीज में अगर वृक्ष न छिपा होता तो पृथ्वी पानी ताप आदि का अनुकूल सयोग मिलने पर वह कैसे प्रकट हो सकता था? आशय यह है कि वट–वृक्ष के सस्कार जैसे उसके बीज में मौजूद रहते है उसी प्रकार आत्मा द्वारा की हुई क्रियाओ के सस्कार आत्मा में मौजूद रहते है और वे सस्कार क्रिया के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा को शुभ या अशुभ फल प्रदान करते है।

पानी बरसने से पहले जगल मे जब हरियाली नहीं होती, उस समय अगर हरियाली के बीजो को देखा जाये तो उनमे वैसी विचित्रता नजर नही आएगी। मगर पानी बरसने पर जब नाना प्रकार की हरियाली उगती है तो मानना ही पडेगा कि बीज भी नाना प्रकार के थे। बीज न होते तो हरियाली कहा स आती? और अगर बीजो मे विचित्रता न होती हरियाली मे विचित्रता कैसे होती? बीज के अभाव मे हरियाली नही होती, पानी चाहे कितना ही बरस। इस प्रकार कार्य को देखकर कारण का पता लगा लिया जाता है। हरियाली को देखकर जाना जा सकता है कि यहा बीज मौजूद थे और जैसे बीज थे पानी आदि का सयोग मिलने पर वैसा ही वृक्ष उगा है।

बस यही बात कर्म के सम्बन्ध मे भी समझ लेना चाहिए। यो तो कर्म के बहुत से भेद है मगर मध्यम रूप से आठ भेद किये गये हैं। जैनो का कर्मसाहित्य बहुत विशाल है और उसमे कर्म के विषय मे बहुत विचार किया गया है। श्वेताम्बर–दिगम्बर आदि सम्प्रदायो मे अनेक छोटी–मोटी बातो मे मतभेद है मगर कर्म के आठ भेदो मे तथा उनके कार्य के विषय मे किसी प्रकार का मतभेद नही है।

जो भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, उसका कारण आवरण ही है। आवरणा क हट जाने पर आत्मा सुबुद्धिनाथ ही है। इसलिये कहा गया है –

द्वैत कल्पना मेटो।

वेदान्त भी 'तत्वमसि' कह कर इसी सिद्धान्त का निरूपण करता है। साराश यह है कि कर्म के कारण आत्मा ओर परमात्मा म भिन्नता पड रही है। जब वह भिन्नता हट जाती हे तो दोना में लशमात्र भी अन्तर नही रहता। इस भिन्नता को हटाने के लिए ही भगवान् सुबुद्धिनाथ को हृदय मे बसाने की आवश्यकता है। भगवान् सुबुद्धिनाथ ने कर्मो का नष्ट कर डाला हे अतएव जिसके हृदय मे वे बसेगे, उसमे भी कर्मो का अस्तित्व नही रह सकेगा। काम क्रोध, मोह आदि विकार कर्म के कारण हें और जिस हृदय म भगवान बसत हैं उसमे इन विकारो की पैठ नहीं हो पाती। अतएव आत्मा निष्कर्म होकर पूर्ण परमात्मा बन जाता है।

मकान, ईट–चूने का बना होता हे फिर भी आप उसे अपना मानत हें। लडकी दूसरे की होने पर भी जब उसका सम्बन्ध आपके लडके के साथ हो जाता है तो उस पर आपकी आत्मीयता नहीं हो जाती? इस प्रकार जब बाहर की चीज पर भी मोह होता हे तब जो कर्म शरीर से सम्बन्ध रखते हें उनके प्रति मोह होना स्वाभाविक ही हे और उसके प्रति मोह होने क कारण ही आत्मा ओर परमात्मा मे अन्तर पडा हुआ हे। कर्म की उपाधि न हा ता आत्मा ओर परमात्मा मे किसी प्रकार का अन्तर नहीं रहता। इसलिए कहा हे–

तू जिस्म जिगर ओर जहा नही जानता,
फिर क्यो नही कहता खुदा जो तू हे दाना।

क्या तू यह जानता हे कि में जिस्म नही हू, जिगर नही हू ओर जहान भी नही हूँ? अगर जानता हे तो फिर क्या नही कहता कि मे खुदा हू? कदाचित् यह कहा जाय कि एसा कहना अहकार होगा ता यह कहना ठीक नही। अहकार की बात तो तब होगी जब तुम अपन को जिस्म जिगर ओर जहान मानागे। अपन का जिस्म या जिगर समझना अहकार हे। जब जिस्म जिगर आर जहान अलग हा जाता हे ता शुद्ध आत्मा क सिवाय ओर बचता ही क्या ह? आर उस अवस्था म उस परमात्मा कहना अभिमान की बात केस हा सकती हे। अभिमान तभी तक रहता ह जब तक ससार क प्रति माह बना रहता ह। ज्ञानी पुरुष माह का नाश करन क लिए कहत हें कि –

बज्झिज्जत्ति तिउट्टिज्जा बधण परिजाणिया।
किमाह बधण वीरो, कि वा जाण तिउट्टइ?।। सूत्र श्रु 1,1
चित्तमत मचित्त वा परिगिज्झ किसामवि।
अण्ण वा अणुजाणाहि एव दुक्खाण मुच्चइ।। सूत्र श्रु 1,2
जस्सि कुले समुप्पण्णे जेहि वा सवसे नरे।
ममाइ लुप्पइ बाले अण्णे अण्णेहि मुच्छिये।। सूत्र श्रु 1,4

इस प्रकार आत्मा मोह–ममता के चक्कर मे पडा हुआ है, अन्यथा उसे पुत्र आदि से क्या सरोकार है? केवल ममता के कारण ही वह पुत्र को अपना मान रहा है। मित्रो! इस प्रकार के मोह को जीत लो तो तुम्ही परमात्मा हो। अगर तुम इस मोह को नही जीत पाये हो तो परमात्मा नही हो। अगर परमात्मा को वन्दन करना है तो बन्धन के स्वरूप को समझो और विचार करो– अरे आत्मन! तू कर्म के साथ कब तक बधा रहेगा? तेरा और परमात्मा का स्वरूप एक ही है। लेकिन मोह के चक्कर मे पडकर तू अपने असली स्वरूप को भूला हुआ हे। मगर कब तक भूला रहेगा? अनादिकाल से भूल मे पडा है! अब तो चेत।

अगर आपसे आज ही गृह का त्याग नही हो सकता तो भी माया, ममता और तृष्णा का त्याग कर दो। इतना करने से ही आपको बहुत लाभ होगा। उस अवस्था मे आपको सन्तोष शाति और समता की अपूर्व सुधा का सुख मिलेगा। परलोक की बात थोडी देर के लिए जाने भी दो तो इसी लोक मे आप अपने जीवन को सुखमय और सन्तोषमय बना सकेगे।

एक आदमी अज्ञानपूर्वक साप को पकडता हे ओर दूसरा ज्ञानपूर्वक। दोनो के पकडने मे क्या अन्तर है? अज्ञान से साप को पकड़ने वाला जब जानता है कि यह साप है तो डरकर भागता है। मगर जान–बूझकर साप को पकडने वाले के लिए साप खिलौना रहता है। अतएव आप ससार का स्वरूप समझो और अज्ञान त्यागो। भगवान् सुबुद्धिनाथ को हृदय मे धारण करो। ऐसा करने पर ससार आपके लिए खिलौने के समान हो जायेगा।

इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण लेना ही सुगम और उत्तम साधन है। आप अपना कल्याण चाहते हैं तो सुबुद्धिनाथ की शरण रहो।

2. अन्तिम विजय

श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणमू सिर नामी तुम भणी।

यह भगवान् ऋषभदेव की प्रार्थना हे। भारत के सोभाग्य से यहा की प्रजा मे परम्परा से ऐसे सत्सस्कार चले आ रहे हें कि वह परमात्मा के प्रति आस्था रखती है। भले ही विभिन्न सम्प्रदायो मे परमात्मा के स्वरूप म किंचित भेद माना गया हो फिर भी परमात्मा की प्रार्थना सभी सम्प्रदाय वाल करते हें। पश्चिमी देशो के प्रभाव से अलबत्ता कुछ नवयुवक परमात्मा या ईश्वर के विरुद्ध बाते कहते हें ओर धर्म के बहिष्कार तक की ध्वनि सुनाई दन लगी हे परन्तु में मानता हू कि भारतवर्ष की जलवायु में भी परमात्मा का प्रभाव भरा हे और उसे नेस्तनाबूद करना किसी के लिए सम्भव नही हे। आज भी ऐस बहुत से भद्र भावी व्यक्ति हें जो परमात्मा को अपने अन्त करण म स्थापित रखते हें ओर धर्म को अपने प्राणो की तरह चाहते हें।

कुछ मार्ग भूले हुए व्यक्तियो की बात छोड़ दी जाय तो यह कहा जा सकता हे कि परमात्मा की प्रार्थना करना सभी को मान्य हे। परमात्मा की प्रार्थना करने मे किसी सम्प्रदाय का मतभेद नही हे। परमात्मा क विषय म अभेद–विचार करना भक्ता के अधीन हे। अतएव इस विषय म जिस बात पर पूर्ण विश्वास हो ओर जिसक लिए अन्त करण साक्षी दे, उस बात का प्रकट करना सबका कर्त्तव्य हे।

यहा भगवान् ऋषभदव की प्रार्थना की गई हे। भगवान ऋषभदव वदिक परम्परा म अवतार मान गय हें ओर जेन परम्परा म तीर्थकर मान गय हें। इस तरह शाब्दिक भद होत हुए भी दखना हे कि भगवान् ऋषभदव का जन किस दृष्टि स मानत हं आर दूसर किस दृष्टि स मानत हें। समस्त आर्यावर्त्त आर हिन्दू जाति भगवान ऋषभदव क प्रति सन्मान ओर श्रद्धा का भाव रखती ह। वास्तविक रूप स दखा जाय ता विदित हागा कि उनम एस

गुण थे और उनका कर्त्तव्य इतना महान् था कि वे प्राणीमात्र के लिए मान्य होने ही चाहिए थे और इसी कारण वे मान्य हुए भी हैं। प्रश्न हो सकता है कि भगवान् ऋषभदेव का आर्यावर्त्त पर कौनसा ऐसा महान् उपकार हैं? उन्होने प्राणीमात्र की किस आवश्यकता की पूर्ति की थी, जिसके कारण वे सभी को मान्य हो सकते हैं? माननीय या इष्ट वही माना जाता है जो आवश्यकता की पूर्ति करता है। जो छोटी आवश्यकता की पूर्ति करता है वह थोडा इष्ट होता है और जो बडी आवश्यकता पूर्ण करता है वह अधिक इष्ट होता है। जब कोई व्यक्ति अपने आपको किसी कार्य की सिद्धि के लिए असमर्थ समझता है, तब वह दूसरो की सहायता मागता है और उस सहायता की न्यूनता एव अधिकता के अनुसार ही वह सहायता देने वाले का आदर करता है। तो भगवान् ऋषभदेव ने ऐसी कौनसी सहायता की थी जिसके कारण वे प्राणीमात्र के लिए मान्य हो सके?

आज हमे भगवान ऋषभदेव दिखाई नहीं देते। उन्हे इस भूतल पर आये युगयुगान्तर बीत गये हैं। उनका जीवनकाल इतना पुराना है कि वहा तक इतिहास भी अभी तक ठीक तरह नहीं पहुच पाया है। फिर भी प्रामाणिक आगमो मे भगवान ऋषभदेव का विशद वर्णन मिलता है और उनसे भगवान् के कार्यो की महत्ता जानी जा सकती है। जगत् के जीवो का भगवान् ने किस प्रकार उपकार किया है यह उज्ज्वल कथा आगमो के पृष्ठों पर लिखी पाई जाती है। कारीगर के प्रत्यक्ष दिखाई न देने पर भी उसकी कलाकृति को देखकर उसके कौशल का अनुमान किया जा सकता है। इस नियम के अनुसार आगमो से भगवान् ऋषभदेव की महिमा समझी जा सकती है। आगमो मे कितना गूढ रहस्य भरा है, इस बात का विचार तो कोई पूर्ण पुरुष ही कर सकता है मगर हमे भी अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करना चाहिए। पक्षी को विमान प्राप्त नही है तो वह अपने पखो की शक्ति के अनुसार ही उडता है।

उसके बाद बीज बोता हे। ऐसा करने से ही उसका प्रयोजन सिद्ध हाता हे। खेत को जोते विना अगर बीज बो दिया जाये तो गाठ का बीज ही चला जाये पर हासिल कुछ नही होता। सुनते हैं सिहनी का दूध सुवर्ण के पात्र म ही ठहरता हे। धर्म के लिए भी इसी प्रकार की पात्रता की आवश्यकता हाती हे। अपात्र मे धर्म नही ठहर सकता। अतएव भगवान् ने पहले–पहल जनता का धर्म का पात्र बनाने का प्रयत्न किया ओर अपने सुदीर्घ जीवन क 83 भाग इसी प्राथमिक कार्य मे लगाये। धर्मोपदेश देने म सिर्फ एक भाग व्यतीत किया। जब भगवान ने देखा कि जनता अब परावलम्बी नहीं रही हे अपन जीवन की आवश्यकताओ को पूर्ण करने के लिए स्वाधीन हा गई हे आत्मनिर्भर बन गई हे ओर इस ओर का दु ख उसका मिट गया हे, तब उन्होंने धर्म का उपदेश देना आरम्भ किया। जो व्यक्ति रोग ओर दु ख स घिरा हे उसे धर्म नही रुच सकता। इसीलिए शास्त्र म कहा हे –

अह पचहि ठाणेहि जेहि सिक्खा ण लब्मइ।

थमा कोहा पमाएण रोगणालस्सएण य।। उत्त 11/3

इस प्रकार दुख ओर रोग स ग्रस्त मनुष्य धर्म के पात्र नही बन सकते। अतएव सबसे पहले भगवान् ऋषभदेव ने सासारिक आवश्यकताआ सम्बन्धी दु ख को मिटाया ओर उसके पश्चात धर्मोपदेश दिया। भगवान न विचार किया कि लोग आलसी और परावलम्बी हो रह हैं। जव तक काई व्यक्ति अपने जीवन की आवश्यकताओं की ओर से स्वावलम्वी नही हा जाता हे तब तक वह धर्म का पात्र भी नहीं हो सकता। अतएव पहले इन्ह जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं की ओर से स्वतन्त्र बनाना चाहिय। जा अपन लिए भोजन ओर वस्त्र आदि भी नही बना सकता ओर इस प्रकार अपनी अनिवार्य आवश्यकताआ की पूर्ति नही कर सकता उसे तब तक धर्म का उपदश नही लग सकता। यह सोचकर भगवान् ने जीवन सम्बन्धी आवश्यकताआ की पूर्ति का मार्ग बतलाया। इसक लिए उन्होने मोखिक उपदश दना ही काफी नही समझा वरन् रचनात्मक कार्य करक सबक सामन आदर्श रक्खा। जीवन की आवश्यकता पूर्ति क लिए आदर्श उपस्थित करन क लिए भगवान सब स पहल कृषक बन। उन्हान अपन हाथा हल चलाया ओर लागा का खती करना सिखलाया।

आज कुछ नागरिका की दृष्टि म किसान खराव समझ जात हैं। लकिन यदि किसाना का खराब समझा जायगा ता भगवान ऋषभदव का सबस पहल खराब कहना पडगा क्याकि व सबस पहल किसान थ। यदि

भगवान अच्छे हैं तो किसान बुरे कैसे कहे जा सकते हैं? ऐसी स्थिति मे किसानो को हीन दृष्टि से देखना एक बडी भूल है। सफेद झक कपडे पहिनने वाले चाहे जैसा धोखा दे, चाहे जैसा विश्वासघात करे फिर भी वे अच्छे हैं, और खेती करने के कारण किसान बुरे हैं ऐसा मानना घोर पक्षपात है, अत्यन्त कृतघ्नता है और अन्याय है। व्यापार करने की दृष्टि से ही अगर देखा जाये तो भी आप बडे नही हैं। किसान आपसे बडा है।

भगवान ऋषभदेव ने अन्न पैदा करने, उसे पकाने, बनाने, खाने और पचाने की कला स्वय ही सबको बतलाई थी। उन्होने बहत्तर कला पुरुषो की और चौसठ स्त्रियो की कलाओ की शिक्षा दी थी। इस प्रकार जब स्त्री और पुरुष अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार स्वावलम्बी बन गये और मर्यादा के अनुसार जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति करने लगे तब भगवान् ने उन्हे धर्म का उपदेश दिया।

भगवान ऋषभदेव से पहले सामाजिक व्यवस्था की स्थापना नही हुई थी। उस समय की जनता सामाजिक सगठन मे गुथी नही थी। सब अपने मे सीमित थे। भगवान ऋषभदेव ने लोगो को समाज–सगठन के एक सूत्र मे बाधा समाज का निर्माण हुआ। समाज–निर्माण के साथ ही साथ सामाजिक कर्तव्यो को जन्म दिया। भगवान ने जिस व्यक्ति को जिस कार्य के योग्य देखा उसे वही कार्य सौपा। वास्तव मे योग्यता के अनुकूल कार्य सौंपने से कार्य भी समुचित रूप से सम्पन्न होता है और कार्य करने वाले व्यक्ति का भी विकास होता है। इससे विपरीत जो जिस कार्य के लिए आयोग्य है उसके सिर वह कार्य थोप देने से कार्य की भी हानि होती है और उस व्यक्ति की भी हानि होती है।

किया तभी देवगण भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए ओर उन्होने धर्म की प्रवृत्ति करने की प्रार्थना की। भगवान् ने राजपाट तजकर सयम ग्रहण किया। उन्होने देखा–जनता जीवन निर्वाह की दृष्टि से तो स्वाधीन हो गई परन्तु इस स्वाधीनता से मोक्ष नही हो सकता। मोक्ष की प्राप्ति तो इन सब प्राप्त पदार्थो का त्याग करने पर ही सम्भव है और त्याग का आदर्श उपस्थित करने के लिये सर्वप्रथम मुझे ही त्याग को अपनाना चाहिए। इस विचार से प्रेरित होकर ससार के कल्याण के लिए भगवान् ने सयम स्वीकार किया। सयम स्वीकार करने से पहले उन्होने अपने पुत्रो की और राज्य की भी समुचित व्यवस्था कर दी। अपने सबसे बडे लडके भरत को उन्होने अयोध्या का राज्य दिया ओर दूसरे लड़के बाहुबली को तक्षशिला का राज्य सोंपा। इसी प्रकार शेष 98 पुत्रो को भिन्न–भिन्न प्रदेशो का राज्य सोंप दिया। सबको राजनीति सिखला दी और राज्य–व्यवस्था का उद्देश्य भी बता दिया। भगवान् ने कहा कि राज्य स्वीकार करना प्रजा की विशिष्ट सेवा स्वीकार करना है। भोग– विलास के लिए राजा नही होता। प्रजा की रक्षा के लिए राजा होता हे। यह सब करने के पश्चात् भगवान ने सयम लिया।

भगवान् के सबसे बडे पुत्र भरत के यहा चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। भरत समस्त भारतवर्ष को एक ही शासन के अन्तर्गत करना चाहते थे। अतएव उन्होने अन्यान्य राजाओ पर अपना शासन स्थापित कर लिया। उनका विचार अपने भाइयो पर शासन चलाने का नहीं था, किन्तु अपने प्रधान के कहने से और आयुधशाला मे चक्ररत्न के न घुसने से भरत को विवश होकर अपने भाइयो पर भी शासन करने का विचार करना पडा। तदनुसार भरत ने अपने 98 भाइयो के पास शासन स्वीकार करने के लिए सन्देश भेजा। सदेश पाकर वे लोग सोचने लगे कि इस परिस्थिति मे हमारा कर्त्तव्य क्या होना चाहिए? भरत का शासन स्वीकार करना उचित है या युद्ध करना उचित हे ? जब विचार करके भी वे किसी अन्तिम निर्णय पर न पहुच पाये तो भगवान् से सलाह लेने का उन्होने निर्णय किया। उन्होने सोचा–अगर भगवान् युद्ध करने की सलाह दे तो युद्ध करना चाहिए। उस अवस्था मे अपनी हार कदापि नही हा सकती। अगर भगवान् कहे कि भरत तुम्हारा बड़ा भाई हे ओर समग्र दश का एक सूत्र मे बाधने क लिए ही वह तुम्हारे ऊपर शासन चलाना चाहता हे ता हम भरत के शासन को स्वीकार कर लेने म भी कोई आपत्ति नहीं हानी चाहिय।

इस प्रकार सोचकर 98 भाई मिलकर भगवान् के पास पहुचे। उस समय भगवान् ने अपने पुत्रो को जो उपदेश दिया था, उस का वर्णन सूयगडागसूत्र मे भी है और भागवतपुराण के रचयिता ने भी उसका मार्मिक वर्णन किया है। इस समय इस उपदेश के सबध मे ही कुछ कहना चाहता हू, क्योकि यह क्षत्रियोचित उपदेश है। क्षत्रियो के सामने क्षत्रियोचित उपदेश देना ही उचित है। आप लोग आज ढीली धोती वाले बनिया बन रहे हैं, मगर आपके पूर्वज बनिया नही क्षत्रिय थे और वही खून आपकी नसो मे दौड रहा है। हम चाहते हैं कि आप अपनी असलियत को पहचाने और उसी क्षात्र तेज को फिर अपनावे जो तेज आपके वीर पूर्वजो मे चमकता था।

भगवान ऋषभदेव क्षत्रिय थे और उनके पुत्र भी क्षत्रिय थे। भगवान् अपने 98 पुत्रो को भरत की अधीनता स्वीकार करने की सलाह दे सकते थे। मगर क्षत्रिय लोग अधीनता कब स्वीकार करते हैं। वे स्वतन्त्रता के सामने अपने प्राणो को भी तुच्छ समझते हैं। लेकिन उस स्वतन्त्रता का असली स्वरूप क्या है? वह कैसी होती है? यह बात भगवान् ऋषभदेव के उपदेश से ही जानी जा सकती है।

भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रो से कहा यदि मैंने तुम्हें पूर्ण स्वाधीन राज्य दिया होता तो भरत तुम्हारे ऊपर कदापि शासन नहीं चला सकता था। मगर तुम्हे जो राज्य मिला है वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं हैं। उसमे एकदेशीय स्वतन्त्रता है। इसी कारण भरत तुम्हारे उपर शासन करना चाहता है। तुम लोग मुझसे सलाह लेने आये यह अच्छा ही हुआ। मैं तुम्हें सलाह देता हू कि तुम ऐसा स्वतन्त्र राज्य प्राप्त करो कि जिस पर कोई भी दूसरा शासन न चला सके।

सबुज्झह कि न बुज्झह सबोही खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हुवणमति राइओ, नो सुलभ पुणरावि जीविय।।

—सूत्र श्रु 1/2/1

अर्थात हे पुत्रो! समझो। बोध पाओ। बोधि बहुत दुर्लभ है। जो समय अतीत हो जाता है वह फिर लौटकर नही आता। मनुष्य—जीवन बार—बार सुलभ नही है।

नाय देहो देहभाजा नृलोके कष्टान् करगानर्हते विड्भुजाय।
तपो दिव्य पुत्र कायेन सत्त्व शुद्धेयेद्यस्माद् ब्रह्मसौख्य त्वनन्तम्।

—भागवत

हम इन दोनो जगह क उपदेशा की मोलिक एकता पर विचार करना चाहिये। अगर कोई समझता हे कि भगवान ऋषभदव जेना क ही भगवान हे तो उसका ऐसा समझना भूल हे। महापुरुष किसी विशिष्ट वर्ग जाति या समूह के नही होते। महापुरुषो के समक्ष सभी न अपना मस्तक झुकाया हे। चाहे राम हो, या ऋषभदेव हा व सभी के लिए मान्य हें। फिर भी धर्म भावना की कमी ओर साम्प्रदायिकता की भावना म बुद्धि होन स लोग आपस म लडते–झगडते हैं। जब तक मनुष्य पूर्ण धर्म नहीं जानता ओर धर्म के नाम स अधर्म को पकडे रहता हे तब तक क्लेश और कलह हाना स्वाभाविक हे। जब किसी महापुरुष की शरण मे जाने पर धर्म की प्राप्ति हाती हे तब सब प्रकार के क्लेश और कलह का अन्त हो जाता हे।

भागवत के अनुसार भगवान् ऋषभदव ने अपने लडका स कहा–"यह शरीर भोग के लिए नही है।" इस कथन को सुनकर कोई यह कह सकता है कि आप त्यागियो को त्याग पसन्द है इसी कारण आप भगवान के इस कथन को ठीक कहते हें। मगर भोगो को अगर हम ही न भोगेगे तो फिर कौन भोगेगा? और फिर बेचारे भोगो की क्या दशा होगी? ऐसा कहन वाल लाग मानो भोगो पर दया करते हैं ओर उनकी रक्षा के लिए ही भोग भागते हें। लेकिन भगवान् कहते हें–यह देह कष्टदायी भोग भोगने के लिए नही हे।

देखना चाहिए कि उक्त दोनो प्रकार के कथनो मे से कौनसा कथन ठीक हे? ध्यान रखना चाहिए कि कभी–कभी सिह मनुष्य को खा जाता हे। अगर सिह को व्यक्ति भाषा प्राप्त हो ओर वह कहने लगे कि मनुष्य मर खान के लिए ही बने हें तो क्या आप उसका कहना स्वीकार करेगे? ओर यदि सिह ने मनुष्यो को खाना छोड दिया तो क्या मनुष्य निरर्थक–निरुपयागी हा जाएगें? अगर सिहो की एक सभा हो ओर सर्वसम्मति से यह बात स्वीकृत हो जाए कि मनुष्य का मास मीठा होता हे सुस्वादु हाता हे अतएव निश्चित किया जाता हे कि सिह मनुष्या को ही खाया कर ओर मान कि विधाता न मनुष्य को सिहा के भाजन क लिए बनाए हें। ता इस निर्णय का आप स्वीकार कर लेगे? आप इसे स्वीकार करेग या नही करग इस क्रूरता कहग। मनुष्य सर्वोत्तम प्राणी हे। ईश्वरत्व का प्रतिनिधि हे। धर्म ओर कायदा–कानून म भी उसका दर्जा ऊचा हे तथा पशुआ का मारन पर जितना दण्ड नही दिया जाता उतना मनुष्य की हत्या करन पर दिया जाता हे। एसी स्थिति म सिहा का यह सर्वसम्मत निर्णय भी सही केस हा सकता हे कि मनुष्य सिहा की खुराक क लिए वनाय गय हे?

इस प्रकार का तर्क उपस्थित करके आप सिहो के प्रस्ताव को अनुचित बतला सकते हैं। किन्तु ऐसी ही युक्तियो के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि यह मनुष्य शरीर भोग के लिए नही है।

फिर प्रश्न किया जा सकता है–अगर मानव शरीर भोग भोगने के लिए नही है तो फिर किसलिए है? इस शरीर की सार्थकता किसमे है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ससार मे एक चीज दूसरे के काम मे तो आती है, परन्तु इसी कारण यह मान लेना कि हमारे लिए ही बनी है, भूल है। ऐसा मानने से बडी गडबडी होगी। इसके अतिरिक्त यह बात किसी युक्ति या तर्क से सिद्ध भी नही की जा सकती। उदाहरण के लिए कल्पना कीजिए, कोई कहता है कि अन्न मनुष्य के खाने के लिए ही बना है। अब उससे पूछना चाहिए कि अगर तुम्हारा कहना एकान्तत सत्य है तो अन्न के होते हुए भी ससार मे लाखो मनुष्य भूखे क्यो मरते हैं? इसी प्रकार अगर कपडा मनुष्यो के लिए बना है तो मनुष्य नगे क्यो रहते हैं? यह चीजे मनुष्यो के लिए ही बनी है इस कथन मे अगर एकान्त रूप से सच्चाई है तो वे मनुष्यो के पास दौडकर क्यो नही पहुच जाती? मनुष्य अगर उनका उपयोग नही करेगा तो वे निरर्थक हो जानी चाहिये। ऐसी दशा मे उन चीजो को चाहिये कि वे अपने को सार्थक बनाने के लिए मनुष्य के पास भागी आवे और जब तक कोई मनुष्य उन्हे न भोग ले तब तक नष्ट न हो। लेकिन ऐसा नही देखा जाता। अतएव यही कहा जा सकता है कि उपर्युक्त मान्यता भूलभरी है। इस भ्रमपूर्ण मान्यता को हटाने के लिए ही यह उपदेश दिया गया है कि–हे मनुष्य। तू धर्म का विचार करके काम कर। तूने जो यह मान लिया है कि ससार की वस्तुए मेरे ही भोग के लिए बनी है यह तेरी भूल है। इसी से तू दुखी हो रहा हे।

वास्तव मे देखा जाये तो ससार की वस्तुओ को अपने भोग के लिए [illegible] उसके अधीन हो जाने मे सच्चा सुख नही है। सच्चा सुख स्वतन्त्रता [illegible]। यह बात दृष्टि [illegible] रखकर ही भगवान ने कहा हे–हे पुत्रो। यह शरीर [illegible] लिए ही है तो इसका उत्तर यह हे कि भोग तो विष्ठा खाने वाले शूकर [illegible] सकते है। ऐसी हालत मे यह कैसे कहा जा सकता हे कि मनुष्य शरीर [illegible] लिए ही है? यह बात दूसरी है कि किसी की रुचि भोगो मे अधिक [illegible] ही शरीर की सार्थकता समझ ले पर ससार मे कुछ [illegible] जो भोगो को भुजग के समान मानकर उनसे विमुख [illegible] उनकी रुचि नही जाती। अतएव सिर्फ रुचि के [illegible] सकता कि मानव शरीर भोग के निमित्त है। फिर

भी यदि ऐसा मान लिया जाय तो रुचि की भिन्नता के कारण प्रत्येक चीज भिन्न–भिन्न कामो के लिए मानी जायगी। उदाहरण के लिए विष्ठा को ही देखो। विष्ठा को सुअर जिस दृष्टि से देखता है क्या मनुष्य उसे उसी दृष्टि से देखता है? नही। इस प्रकार रुचि की भिन्नता के कारण पदार्थ के विषय मे दृष्टिभेद रखता है या नही? एक सुन्दरी को उसका लडका किस दृष्टि से देखता है? पति किस दृष्टि से देखता है। कामी पुरुष किस दृष्टि से देखता है? और योगी किस दृष्टि से देखता है? लडका उसे अपनी जननी के रूप मे देखता है। पति पत्नी के रूप मे देखता है। कामी आदमी कामना की पूर्ति का साधन समझता है और योगी उसे अपने योग मे सहायिका मानता है। अब देखना चाहिए कि वह सुन्दरी वास्तव मे है किसके लिए? वास्तव मे तो वह अपना शुभ–अशुभ परिपाक भोगने के लिए है। मगर लोग दृष्टिभेद के कारण उसे अपने–अपने लिये मानते हैं।

जिन चीजो को आप अपने लिए मानते हैं उन्हीं को पशु अपने लिये मानते हैं। आप जिन पदार्थो का उपयोग करते हैं वे अगर पशुओ को मिले तो क्या पशु उनका उपयोग नही करेगे? बल्कि पशु, पक्षी और कीटाणु जिन वस्तुओ को भोगते हैं, स्वतन्त्र रूप से भोगते हैं, आप उनकी तरह स्वतन्त्र रूप से नही भोग सकते। इसके लिये शहद की मक्खियो का ही उदाहरण ले लीजिए। वैज्ञानिको के कथनानुसार वे कैसा छत्ता बनाती हैं? उसमे किस प्रकार न्यून से न्यून मोम लगाती हैं? किस प्रकार शहद भरती हैं? एव किस प्रकार सफाई रखती हैं? किस प्रकार वस्तु का सग्रह रखती हें? और किस प्रकार पानी आदि लाती हें? इत्यादि बाते जानने योग्य हैं। वे सब काम व्यवस्थापूर्वक करती हैं ओर स्वतन्त्र रूप से वस्तु का उपयोग करती हें। लेकिन क्या इसी कारण वे मक्खिया मनुष्य बन जाती हें? मनुष्यो से अधिक स्वतन्त्र होने पर भी मक्खिया मनुष्य नही हें। फिर भी आप उनका जूठा शहद खाकर क्यो अभिमान करते हें? मक्खियो की जूठन खाने वाला मनुष्य अगर अभिमान करता हे तो क्या इससे उसकी पराधीनता ओर नीचता ही नही सूचित होती?

साराश यह हे कि भगवान् ने अपने पुत्रा स कहा कि यह मनुष्य शरीर भोग के लिये नही हे किन्तु दिव्य काम करने के लिये हे। वह दिव्य काम क्या हें जिनक लिय यह शरीर हे? इसके उत्तर म कहा गया हे कि मनुष्य शरीर दिव्य तप करन के लिये हे। दिव्य तप करन क कारण ही मनुष्य का शरीर सर्वोत्तम शरीर माना जाता हे।

भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रो को इस प्रकार का उपदेश दिया था। ऐसा उपदेश देने के कारण ही भगवान् ऋषभदेव माननीय और पूजनीय हुए। उन्होने जैसा उपदेश सारे ससार को दिया वैसा ही अपने पुत्रो को दिया। भगवान् के लिये उनके पुत्र और ससार के दूसरे जीव समान ही थे। इसी कारण भगवान् का वह उपदेश जो उन्होने अपने पुत्रो को दिया था शास्त्र मे लिखा गया है। भगवान् के इस उपदेश को अपने सामने रखकर आप विचार कीजिए कि आपका यह शरीर किसलिए है? इसे भोग–भोगने मे नष्ट करना है या तप करके सफल बनाना है?

इस ससार मे मनुष्यो की दो श्रेणिया की जा सकती हैं। पहली श्रेणी मे वे हैं जो अपना जन्म भोग के लिए ही मान रहे हैं और दूसरी श्रेणी उनकी है जो जीवन का उद्देश्य तप समझते हैं। इन दोनो श्रेणियो के लोग पहले भी थे और आज भी है। इन दोनो मे कितना अन्तर है और अन्त मे किसके लिए क्या परिणाम निकलता है यह बात एक कथा द्वारा बतला देना उचित होगा।

अयोध्या मे अवध–नरेश राज्य करते थे और काशी मे काशी–नरेश राज्य करते थे। अवध–नरेश सोचते थे कि हम प्रजा की रक्षा एव सेवा करने के लिये राज्य करते है और हमारा यह शरीर दिव्य तप करने के लिए है। दूसरी ओर काशीनरेश का यह विचार था कि हम उच्च श्रेणी के भोग भोगने के लिए राजा हुए है। इसलिए सब अच्छे–अच्छे रत्न हमारे पास ही होने चाहिए। इस प्रकार दोनो राजा दो प्रकार की श्रद्धा के थे। यह तो नियम ही है कि जिसकी जेसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बन जाता है। कहा भी है–

श्रद्धामयोऽय पुरुष यो यच्छ्रद्ध स एव स ।

अर्थात्–मनुष्य अपनी श्रद्धा के अनुरूप ही हो जाता है। जिसकी श्रद्धा जेसी होती है वैसा ही वह बन जाता है।

थे कि–इस राजा का सुधार कैसे हो? कौन इसे ठीक रास्ते पर लावे? हे प्रभो! अगर राजा का सुधार न हुआ तो देश मे हाहाकार मच जायगा।

एक बार अवधराज का जन्मदिन आया। काशी के लोगो को भी पता चला कि आज अवध के महाराज का जन्म–दिवस है। यह जानकर काशीवासी प्रजा को बडी प्रसन्नता हुई। सबका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया। वहा के लोगो ने उत्साह के साथ उनका जन्मदिन मनाने का निश्चय किया। स्थान–स्थान दीपमालाए लगाकर स्त्री–पुरुष एकत्रित होकर आनन्द मनाने लगे। सर्वत्र अवधेश की जय–जयकार होने लगी। प्रजा अवध के महाराज के जन्म–दिन के उपलक्ष्य मे हर्ष विभोर होकर आनन्द मना रही थी कि काशी नरेश भी अपने प्रधान के साथ उसी समय उस ओर से निकले। लोगो को उत्सव मनाते देखकर प्रधान से राजा ने पूछा–आज यह उत्साह और उमग किसलिए है? क्या किसी उत्सव का दिन है? प्रजा मे बडी चहल–पहल नजर आती है? मुझे तो पता ही नही कि आज कोई उत्सव दिवस है।

प्रधान–महाराज! आज अवध के महाराज का जन्मदिन है। प्रजा इसी उपलक्ष्य मे आनन्द मना रही है।

प्रधान की बात सुनते ही काशीनरेश की त्योरिया चढ गई। क्रुद्ध स्वर मे वे कहने लगा– मेरे राज्य मे अवधराज का जन्म–दिवस मनाया जाता है। प्रधान तुम क्या व्यवस्था करते हो?

प्रधान–महाराज! पृथ्वी के राज्य की सीमा होती है प्रेम के राज्य की सीमा नही होती। ऐसी स्थिति मे प्रजा को अवधेश का जन्मदिवस मनाने से किस प्रकार रोका जा सकता है? अगर मेरी बात पर आपको भरोसा न हो तो परीक्षा करके देख लीजिये। आप स्वय प्रजा को रोककर देखिए। आपको विदित हो जायेगा कि आपकी प्रजा अवधेश से कितना प्रेम करती है?

प्रधान की बात सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। मगर प्रजा से कोई बात पूछने का साहस उसे नही हुआ। उसने सोचा–इस समय लोग हर्ष मे विभोर हैं। छेडछाड करना उचित नही होगा।

राजा किंचित आश्चर्य और चिन्ता के साथ महल की ओर लौट गया। उसके हृदय मे यह बात काटे की तरह चुभ रही थी कि मेरे राज्य मे अवध–नरेश का जन्मदिवस मनाया जाता है। इस विचार से उसके अन्तःकरण मे ईर्ष्या की आग धधक उठी। अपनी सुलगाई आग मे वह आप ही ईंधन बनने लगा। उस रात मे नीद नही आई। इधर–उधर करवट बदलने लगा। रानी से उसकी मानसिक व्यग्रता छिपी नही रही। रानी ने पास जाकर और राजा के

शरीर पर अपना कोमल हाथ फेरकर पूछा—स्वामिन्! आज क्या कारण है कि आपको नीद नही आ रही? आप इधर से उधर करवटे बदल रहे हैं और अशान्त मालूम होते है।

राजा अभिमान के नशे मे था और यथार्थ बात कहने से उसके अभिमान को ठेस लगती थी। अतएव उसने रानी से कहा—'तुम स्त्री हो। तुम्हे कोई बात बतला भी दी जाये तो उससे क्या लाभ होगा?'

रानी—यदि मुझ से कहने से कुछ नही हो सकता तो इस प्रकार करवट बदलने से भी कुछ नही हो सकता। आप मुझे अपने सुख—दुख की बात सुनने योग्य समझते है तो कहिए।

राजा ने कुछ नरम पडकर कहा—मैंने ऐसा कह कर गलती की है। तुम ही मेरे हृदय की बात सुनने योग्य न होओगी तो कौन होगा? बात यह है कि आज अपने राज्य मे अवध के राजा का जन्मदिन मनाया गया है। प्रजा ने उत्साह पूर्वक उत्सव किया है। मेरे राज्य मे किसी दूसरे राजा का जन्मदिन मनाया जाना मेरे लिए असह्य है। इसी कारण मैं चिन्तित हू।

रानी—वास्तव मे यह बात चिन्ता के ही योग्य है। लेकिन चिन्ता करना किसी बीमारी का इलाज नही है। चिन्ता से दुख घटता नही, बढ ही जाता है। जब हमारे सामने कोई चिन्ताजनक घटना हो तो चित को स्वस्थ रखकर उसके कारणो पर विचार करना चाहिए। अगर कारण समझ मे आ गये तो उस घटना का प्रतिकार करना सहज हो जाता है। चिन्ता तो स्थिति को अधिक खराब कर देती है।

राजा—समझ मे नही आता कि अवध के राजा ने हमारी प्रजा पर क्या जादू कर दिया है?

रानी ने बावन तोले, पाव रत्ती बात कही थी। मगर राजा का यह सलाह पसन्द नहीं आई। उसने कहा–आखिर तो तुम स्त्री ही ठहरी ना। तुमने स्त्रियो के योग्य ही बात कही हे। तुम नहीं समझती कि मे अवधनरेश की तरह कायर नहीं हू और प्रजा का गुलाम बनकर नही रह सकता। वह खाना–पीना भूलकर और ऐश–आराम भूलकर प्रजा के पीछे ऐसा लगा रहता हे जेसे उसका नोकर हो और उसका अन्न खाता हो। मुझसे यह नही बन सकता। कदाचित् मैं ऐसा ही करू तो भी यहा अवधराज का जन्मदिन मनाया जाना कैसे रुक सकता है ? मे तो कोई ओर ही उपाय सोचूगा।

राजा का यह कथन सुनकर बेचारी रानी चुप हो गई। उधर राजा ने सेनापति को बुलाया ओर सेना तैयार करने का आदेश देते हुए कहा–किसी को खबर न होने पावे। सेना का सचालन में स्वय ही करूगा ओर अयाध्या पर अपना झडा फहराऊगा।

जैसे अग्रेज सरकार दमन करके काग्रेस की कीर्ति ओर शक्ति को नष्ट करने का प्रयत्न कर रही थी उसी प्रकार काशीराज दमन का सहारा लेकर अवधनरेश की प्रतिष्ठा नष्ट करना चाहता है।

सेनापति ने सेना तेयार की ओर काशीनरेश के नेतृत्व म रात्रि के समय उसने अयोध्या पर हमला कर देने का विचार किया। काशीनरेश की सेना अवध की सीमा पर पहुची। अवध के सीमा रक्षको ने राजा का समाचार दिया कि काशीनरेश सेना लेकर चढ आये हैं। अवधनरेश यह समाचार पाकर सोचने लगे – काशीनरेश के साथ मेरी कोई अनबन नही हे। इस समय कोई ऐसा कारण भी उपस्थित नही हुआ कि उन्हे मेरे राज्य पर चढाई करने का अवसर मिले। फिर उनके चढाई करने का क्या कारण हे?

मन्त्री ने अवधराज से कहा–महाराज मे ता पहले ही कहता था कि सीमाओ पर पर्याप्त सेना रखनी चाहिये। सेना के बिना राज्य की रक्षा नही हाती। मगर आपने मरी बात अनसुनी कर दी। उसका परिणाम आज दिखाई दे रहा हे।

अवधनरेश – यह ता ठीक हे मगर काशीराज न चढाई क्या की हे? हमारी ओर स कोई ऐसा कारण नही हुआ कि उन्हे चढाई करनी पडी।

मन्त्री– चढाई का काई खास कारण नही हुआ करता। जा महत्वाकक्षी आर वलवान् हाता ह वह निष्कारण ही दूसर राज्य पर हमला करक अपन राज्य का विस्तार कार लता हे। अव अगर आपकी आज्ञा हा ता जा सना तेयार ह उसी का लकर काशीनरश का सामना करन की याजना करू।

अवधराज—नही, ऐसा करने की आवश्यकता नही है। काशीनरेश की सना के पवाह मे अपने थोडे—से लोगो को बहा देना अनुचित है। एक बार मे स्वयमेव काशीनरेश से मिलकर बाते करना चाहता हू। इस वार्तालाप का परिणाम देख लेने के पश्चात जो उचित होगा किया जायेगा।

अवध नरेश घोडे पर सवार होकर अकेले ही काशी— नरेश से मिलने क लिये रवाना हुए। लोग कहने लगे—अकेले शत्रु की सेना मे जाना उचित नही। मन्त्री ने भी समझाया—महाराज! ऐसा करना राजनीति से विरुद्ध हे। मगर अवधनरेश का हृदय काच की तरह स्वच्छ था। अतएव उन्होने कहा—इस राजनीति से हमे अपना पिड छुडाना हे। मैं तो एक नवीन राजनीति की नीव डालना चाहता हू।

अवधनरेश अकेले घोडे पर सवार होकर काशीराज की छावनी मे पहुचे। जब काशीराज को उनके आने की सूचना मिली तो उसकी प्रसन्नता का पार न रहा। उसने कहा— अवधनरेश भयभीत होकर मेरे सामने आया है। देखा मेरा तेज और सामर्थ्य। यह कहकर उसने अवधनरेश को ले आने की स्वीकृति दी।

अवधनरेश ने जाकर काशीराज से कहा—आपने इस प्रकार निष्कारण ही चढाई करने का कष्ट क्यो किया? कृपया बतलाइये कि मेरे राज्य मे प्रजा को कुछ कष्ट है? मेरी पजा की आपके पास कोई शिकायत पहुची है? अथवा कोई अन्य कारण हे?

काशीराज के पास इन प्रश्नो का कोई उत्तर नही था। वास्तव मे कोई उचित कारण नही था। अतएव उसने कहा—तुम कायर हो जो इस प्रकार का प्रश्न करने आये हो। मं ऐसे प्रश्नो का यहा कोई उत्तर नही दिया जाता। मुझे जो उत्तर देना है रणभूमि मे ही दूगा और मुख से नही, तलवार से दूगा। अगर तुम मे बल ह तो तलवार का सामना करो। नही हे तो [illegible] जाओ।

मैंने प्रजा का पालन किया है उसी प्रकार आप करे ओर प्रजा को कष्ट न होने दे। राज्य प्रजा की सुख–शाति के लिए है। राज्य पाकर राजा को अपनी प्रजा के प्रति एक पवित्र कर्त्तव्य पालना पडता है। जब आप मेरा कर्त्तव्य अपने माथे ले रहे हैं तो मेरा बोझ हल्का हो रहा हे। इसके लिये युद्ध क्यो किया जाये? प्रजा का रक्त क्यो बहाया जाये?

अवधनरेश इतना कहकर ओर थोडी देर उत्तर की प्रतीक्षा करके उत्तर न मिलने पर रवाना होने लगे। चलते–चलते उन्होने फिर दुहराया–ठीक है, मैं जाता हू। प्रजा का ध्यान रखियेगा।

इतना कहकर अवधनरेश जगल की ओर चल दिये। काशीराज यह देखकर प्रसन्न हुआ और सोचने लगा–में कितना बहादुर हू। मेरे भय से अवध का राजा जगल मे भाग गया। वह मेरा सामना नही कर सका। युद्ध किये बिना ही मेरी जीत हो गई।

काशीराज ने अयोध्या पहुचकर अपना झडा फहरा दिया। अपने कर्मचारियो को वहा शासन सम्मलाकर वह काशी लौट आया। उसे आशा थी कि काशी की प्रजा इस विजय के उपलक्ष्य मे मेरा स्वागत करेगी और अवध के राजा को भूल जायेगी। प्रजा अवधराज की कायरता देखकर अवश्य ही उससे घृणा करेगी ओर मेरे प्रताप और पराक्रम की सराहना करेगी। मगर काशी पहुचने पर उसकी आशा पर पानी फिर गया। काशी की प्रजा को जब पता चला कि हमारे महाराज ने अवध पर आक्रमण किया था और अवध के राजा अपना राज्य इन्हे देकर जगल मे चले गये हैं तो घृणा और तिरस्कार की भावना प्रजा के हृदय मे उत्पन्न हो गई। जगह–जगह आलोचना हाने लगी। किसी ने कहा–काशीराज अपने राज्य मे तो सुधार कर ही नही सकते ओर न्यायनीति के साथ राज्य करने वाले अवधराज पर चढाई करके उन्हाने उसका राज्य छीन लिया। दूसरा कहने लगा–अवधराज का अपराध क्या था? प्रजा से प्रेम करना ही उनका एक मात्र अपराध था ओर इसी अपराध का उन्हे दण्ड दिया गया हे। इस प्रकार काशी की समस्त प्रजा अपने राजा स असन्तुष्ट ओर रुष्ट हा गई। राजा के आने पर प्रजा न काल झड दिखला कर अपना असन्तोष प्रकट किया।

प्रजा का असन्ताष दखकर काशीराज चकित हा गया। उसन विचार किया मरी विजय का परिणाम उल्टा ही निकला। इस प्रकार साचत–विचारत वह अपन महल म पहुचा। उस आशा थी कि मरी विजय स प्रसन्न हाकर रानी मुस्कराती हुई मरे स्वागत क लिए आग बढ आएगी मगर उसन जा कुछ देखा उसस उसकी निराशा ओर विषाद की सीमा न रही। उसन दखा–रानी

काले कपडे पहने बेठी है। वह देखकर राजा ने कहा मेरे जीवित रहते काले कपडे क्यो पहिने है?

रानी ने तमक कर कहा—आपका जीवित रहना और न रहना एक समान हो गया है। बल्कि मेरी समझ मे अपयशमय जीवन की अपेक्षा यशोमय मृत्यु अधिक श्रेयस्कर होती है। आप अपनी प्रजा को तो सुख दे नही सके और अवध की प्रजा को सुख देने वाले राजा को आपने छीन लिया। अवध की प्रजा का सुख नष्ट करके और उसे दु खी करके आपने क्या पा लिया? आज कोई भी समझदार व्यक्ति आपके इस कार्य की सराहना नही करता। सभी लोग एक स्वर से इस अन्याय अत्याचार की निन्दा कर रहे हैं।

रानी की बात सुनकर राजा को सद्‌बुद्धि आनी चाहिये थी मगर उसे सद्‌बुद्धि नही आई। वह उल्टा यह सोचने लगा— मैंने भूल की कि अवधनरेश को जीवित जाने दिया। यह बहुत बुरा हुआ। वह जीवित है, यह जानकर ही प्रजा का रुख उसकी ओर है क्योकि अभी लोगो को उसकी तरफ से आशा है। ऐसी स्थिति मे उसे मरवा डालना ही उचित होगा। फिर न रहेगा बास न बजेगी बासुरी। इस प्रकार निश्चय करके उसने घोषणा कर दी कि जो कोई अवधेश का मस्तक काट कर लाएगा उसे सवा मन सोना दिया जायेगा।

राजा की घोषणा सुनकर प्रजा दग रह गई। राजा की और अधिक निन्दा होने लगी। उधर अवधनरेश तप करता हुआ जगल मे घूमा करता था। वह अपनी स्थिति के प्रति असतुष्ट नही था। राज्य त्यागने का उसे दु ख नही था। बल्कि वह सोचा करता था— परमात्मा की कृपा से मुझे अच्छा अवसर मिल गया। या आत्म—कल्याण के लिए मैं नही निकल पाता, लेकिन काशीनरेश ने मेरा भार अपने सिर पर ले लिया। मुझे उन्होने हल्का कर दिया और आत्मकल्याण करने का अवसर दिया। मै उनका भी अनुग्रह मानता हू।

इस प्रकार सोच–विचार मे डूबे हुए उस वणिक को अवधनरेश का ख्याल आया। उसने सोचा–अवधनरेश के पास चलना चाहिए। सभव है उनसे मुझे कुछ सहायता मिल सके। वह अवधनरेश के पास जाने के लिए रवाना हुआ। चलते–चलते वह उसी जगल मे आया, जहा राजा रहता था। साधारण जगली के भेष मे उसे अवधनरेश मिल भी गया। मगर वह उसे पहिचान नही सका। उसने और जगलियो की तरह उसे भी एक जगली समझ लिया उसने उसे आवाज देकर पूछा– अरे भाई। अयोध्या का रास्ता कौन–सा है?'

अवधनरेश–अयोध्या क्यो जा रहे हो?

वाणिक्–मेरा जहाज डूब गया है। मेरे सिर पर कर्ज चढा हुआ है। चाहता हू, किसी उपाय से कर्ज उतर जाये तो अच्छा है। लेकिन मेरे पास पूजी नही है। पूजी हो तो अपनी बुद्धि से रुपया कमा कर कर्ज चुका सकता हू। अयोध्या के महाराज के पास इसी प्रयोजन से जा रहा हू। आशा है वे मेरा दु ख दूर करेगे।

अवधनरेश सोचने लगे–लोग अभी तक अवध और अवधनरेश को भूले नही हैं। प्रकट मे उन्होने कहा–भाई अयोध्या का राजा तो काशीनरेश को अपना राज्य देकर जगल मे चला गया है। इस समय अयोध्या मे काशीनरेश का ही राज्य हे।

यह दु सवाद सुनकर वणिक को बडा दु ख हुआ। अवधनरेश ने उसके मन के भाव को समझ लिया। जिसके अन्त करण मे दया का वास होता हैं, वह किसी को दु खी नही देख सकता। दुखी को देखते ही उसका हृदय पिघल जाता हे और अपने सर्वस्व को त्याग कर भी वह दूसरे का दु ख दूर करने की भरसक चेष्टा करता है।

अवधनरेश ने कहा– भाई, अगर तेरा काम सवा मन साने से चल सकता हे तो मे दिला सकता हू।

वणिक् को पहले तो विश्वास नही हुआ। वह आख फाड कर अवधश की ओर देखने लगा ओर मन ही मन पता लगाने लगा कि इसकी बात कहा तक सच हे? फिर बोला–अगर सवा मन सोना मिल जाये तो उसस मे बहुत कुछ कर सकता हू ओर अपन सिर का बोझा–ऋण उतार सकता हू।

अवधनरेश ने साचा–अपन सिर का बोझ उतारन क लिए इस द्रव्य की आवश्यकता हे। काशीनरेश न घाषणा कर ही रक्खी हे कि वह मर सिर क बदल सवा मन साना दगा। आज नही ता कल एक दिन मैं मर ही

जाऊगा। उस दिन यह सिर वृथा चला जायेगा। ऐसी हालत मे आज अगर मेरे सिर से दूसरे के सिर का बोझ उतरता है और किसी की भलाई होती है तो अपने सिर को दे देने मे क्या हर्ज है? यह उपकार का काम करना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।

अवधनरेश ने वणिक् से कहा—तुम मेरे साथ चलो। वणिक् साथ हो लिया। अवधनरेश चलते—चलते काशी आये। राजमहल के द्वार पर पहुचकर उन्होने भीतर सूचना भिजवाई—एक आदमी अवधनरेश का सिर लेकर आया है।

यह समाचार पाकर काशीनरेश को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने सिर लाने वाले आदमी को अपने सामने उपस्थित करने का आदेश दिया। अवधनरेश काशीराज के सामने, वणिक् को साथ लेकर पहुचे। उन्होने कहा—मेरा सिर ले लो और अपनी घोषणा के अनुसार सवा मन सोना इस वणिक को दे दो।

काशीनरेश को जान पडा, जैसे वह सपना देख रहा हो। उसे अपनी आखो और अपने कानो पर विश्वास नही हुआ। चकित भाव से उसने पूछा—क्या अवधनरेश तुम्ही हो?

अवधनरेश—अभी बहुत दिन नही हुए, तब मैं आपसे मिला था। क्या आप इतनी जल्दी मुझे भूल गये? उस दिन मैं अकेला आपके पास आया था। मेने आपसे कहा था आपको अवध का राज्य चाहिये तो ले लीजिए। लेकिन मेरी प्रजा का पालन उसी प्रकार कीजिए जैसे में कर रहा हू! याद तो होगा ही आपको। आप राजा है। आपको कोई बात इतनी जल्दी नही भूल जानी चाहिए।

वाला पुरुष कायर नही कहा जा सकता। ऐसा करने के लिये असाधारण वीरता और निस्पृहता की आवश्यकता हे। इस कारण में जानना चाहता हू कि आप किस प्रयोजन से इस व्यक्ति के लिए अपना सिर देना चाहते हें?

अवधनरेश– इस प्रपच मे आप पडते ही क्यो हैं? आपको अवध के राजा का सिर चाहिये और वह सामने ही मोजूद हे। आप अपनी तलवार सभालिए और अपनी अभीष्ट वस्तु लीजिए।

काशीराज– नही, अब ऐसा नही हो सकता। पहले कारण जान लूगा तभी सिर लेने का विचार करूगा। आप पूरा विवरण मुझे कह सुनाइए।

अवधनरेश– मुझे सदेह है कि कारण जानने के पश्चात आप तलवार चला सकेगे? उस समय आपकी तलवार चलेगी नही। इसलिए अपना काम अभी कर लीजिए।

काशीराज– नही चलेगी तो न सही। कारण तो जानना ही है कि दूसरे के लिये आप अपना सिर क्यो दे रहे हैं?

अवधनरेश–हे राजन्। अगर मेरा यश–शरीर बना रहे और भौतिक शरीर न भी रहे तो कोई हर्ज नही। इन दोनो मे मुझे यश–शरीर की रक्षा करना अधिक प्रिय है। भौतिक शरीर तो जाने वाला ही है। रक्षा करने की लाख चेष्टा करने पर भी वह रक्षित नही रह सकता। अतएव अपने यश–शरीर की रक्षा के लिये ही में अपना भोतिक शरीर दे रहा हू। इस बेचारे वणिक् का जहाज डूब गया। यह दूसरो का ऋणी हे। इसे धन की आवश्यकता हे। में साचता हू, एक दिन यह सिर वृथा ही जायगा। आज इससे एक व्यक्ति को धन मिलता हे ओर उसका दु ख दूर होता हे तो इसे आज ही देने म क्या हर्ज हे? जब मरना ही हे तो किसी का दु ख मिटा कर ही क्यो न मरू?

दया ओर परोपकार का यह कितना उत्कृष्ट ओर उज्ज्वल उदाहरण हें। अवधनरेश दूसरे का दु ख मिटाने के लिए अपना सिर भी निछावर करन को तेयार हें। आप लागो म कोई एसा तो नही हे जो चार–आठ आन क लिए झूठ बोलता हो ओर धर्म का धोखा दता हो? आज अधिकाश लोग ऊपरी भभका दिखलाते हें धार्मिकता का प्रदर्शन करत हें लकिन कोन कह सकता ह कि व सच्ची धार्मिकता का पालन कितना करत हें? जिस धर्म का वास्तविक ज्ञान होगा आर जो उसका पालन करना चाहगा उस यह शरीर ता मिट्टी का दिखाई देगा। वह इस शरीर का सदा नाशवान् समझगा। धर्म का वह सजीव ओर अमर मानगा।

अवधनरेश ने काशीराज को अपना सिर देने का प्रयोजन समझा दिया। अवधनरेश की बात सुनकर काशीराज सिहासन से नीचे उत्तर आया। उसने अपने हाथो अपने सिर का मुकुट उतारा और अवधनरेश के मस्तक पर रख दिया। वह बोला अवधनरेश की जय हो।'

नगर मे यह बात फैल गई कि अवध के राजा अपना मस्तक देने आये है और सीधे राजा के पास गये हैं। यह बात सुनते ही लोग आपस मे कहने लगे–वह दुष्ट फौरन अवधनरेश का सिर धड से जुदा कर देगा। इस भयानक आशका से चिन्तित लोग राजमहल की ओर दौडे आये। वे यह जानने के लिये अतिशय व्यग्र थे कि अवधनरेश के विषय मे क्या निर्णय किया गया है? उन्हे उसी समय ज्ञात हुआ कि स्वय काशीराज अवधनरेश की जय बोल रहे हैं। यह जयकार सुनकर लोगो को कितना हर्ष हुआ कहना मुश्किल है। पर उस जयकार के उत्तर मे राजमहल के बाहर से गगनभेदी ध्वनि गूज उठी– जय हो मस्तक देने वाले की और जय हो मस्तक लेने वाले की।

अवधनरेश और काशीराज–दोनो एक ही सिहासन पर गुरु–शिष्य की भाति बैठे। अगर काशीराज अवधेश का सिर काट लेता तो उसे क्या मिलता? क्या वह प्रजा की ओर से सम्मान प्राप्त कर सकता था? नही। जो सुनता वही घृणा करता और उसकी क्रूरता पर थूकता। इसके अतिरिक्त काशीराज का सुधार होना शक्य न होता। मगर अवधनरेश के दैवी बल से वह सुधर गया। उस देवी बल को अपना लेने से काशीराज भी प्रजावत्सल राजा बन गया। ससार मे आसुरी बल भी हे और देवी बल भी हे। आसुरी बल आसुरी प्रकृति को बढाता है और देवी बल देवी प्रकृति को उत्तेजित करता है। विचार करने पर विदित होगा कि इन दोनो मे दैवी बल ही महान है, कल्याणकारी है। मानव समाज के कल्याण के लिए उसकी बहुत आवश्यकता है। दैवी-प्रकृति किस कहते हे इस सम्बन्ध मे कहा हे –

अभय सत्वसशुद्धिर्ज्ञानियोग व्यवस्थिति ।
दान दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।1।।
अहिसा सत्यमक्रोधस्त्याग शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्व मार्दव हीरचापलम्।।2।।
तेज क्षमा धृति शोचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पद दैवीमभिजातस्य भारत।। गीता अ 16

दिया था। यह सम्पत्ति व्यक्ति को सुखी समृद्ध ओर भाग्यशाली बनाती हे। अगर आप अपने जीवन को सफल बनाना चाहत हें तो इस सम्पत्ति को ही प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए। कम से कम इतना तो अवश्य ध्यान रखिए कि इस सम्पत्ति का घात होने पर अगर भोतिक सम्पति मिलती हा तो भी इस सम्पत्ति का घात मत होने दीजिए ओर उस भोतिक सम्पत्ति का ठुकरा दीजिए। निश्चयपूर्वक समझ लीजिए कि देवी–सम्पत्ति ससार म अनुपम ओर असाधारण बल हे। जिसे यह बल प्राप्त हो जाता हे उसके लिए ससार मे कोई भी शक्ति ऐसी नही रह जाती जो अजेय हो। इसी शक्ति से आत्मा ऊर्ध्वगामी बनता है और अनन्त कल्याण के धाम को प्राप्त करता हे।

आपको जो कथा अभी सुनाई है, उस पर विचार कीजिए ओर सोचिये कि आप अवधनरेश की तरह अन्तिम विजय चाहते हें या कल्पित ओर क्षणिक विजय के आभास को पाकर ही सतुष्ट हो जाना चाहत हैं? अगर आप आखिरी विजय चाहते हें तो सादगी को अपनाइये ओर दैवी बल प्राप्त कीजिए। कभी मनुष्यत्त्व से नीचे मत गिरिये। निरन्तर प्रयत्न कीजिए कि आपकी आत्मा उन्नत उज्ज्वल ओर निर्विकार बनती जाय। ऐसा करने से आपका कल्याण होगा।

3. कठिन कर्म

चन्द्रप्रभो । जग जीवन अन्तर्यामी।

यह भगवान् चन्द्रप्रभ की प्रार्थना है, प्रार्थना करते हुए भक्त कहता है –

जय जय जगतशिरोमणि

हे जगत् शिरोमणि । हे जगदुत्कृष्ट ? तेरा जय जयकार हो। इस कथन पर से विचार उत्पन्न होता है कि भक्त के ह्रदय मे यह विचार क्यों आया ओर जो जगत् का शिरोमणि है, उसका जय–जयकार करने से क्या लाभ है? इसके अतिरिक्त जो परमात्मा पूर्ण वीतराग हो चुके हैं कृतकृत्य हो चुके हैं, समस्त प्रकृति को जीतकर जगत् शिरोमणि बन चुके हैं उन्हे क्या करना शेष रह गया है किसे जीतना बाकी रहा है? जिसके लिए उनका जय–जयकार किया जाता है।

इस प्रश्न के उत्तर मे भक्तजनो का कहना है कि जिन्होने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है जिन्होने पूर्णता प्राप्त कर ली है उन्ही की जय मनानी चाहिये। उन्ही की जय मे ससार का कल्याण हो सकता है। बल्कि उन्ही की जय मे ससार का कल्याण छिपा हुआ हे। घडा जब तक कच्चा है तब तक उससे किसी का लाभ नही होता। वह जल को धारण नही कर सकता और किसी की प्यास नही बुझा सकता। रसोई जब तक कच्ची हे, तब तक किसी की भूख नही मिटा सकती पक जाने पर वह भूख मिटाती हे और इस प्रकार दूसरो का कल्याण करती हे।

हुआ है ओर इसी कारण उसके निमित्त स दूसरो का कल्याण होता हे। अतएव भक्तजन परमात्मा क विषय म कहते हें– हे जगत शिरामणि। तेरी जय हो।

जो पूर्णता पर पहुच जाता हे वह दूसरा का कल्याण किस प्रकार कर सकता हे यह जानने के लिए अक्षर का देखो। सामने किसी अक्षर का आदर्श रखकर उसे देख–देख कर उसी सरीखा अक्षर बनाने का प्रयत्न किया जाता है। यद्यपि दूसरा अक्षर बनाने म उस पहल अक्षर ने कुछ नही किया है फिर भी उस देखकर–उस आदर्श मानकर ही दूसरा अक्षर वनाया गया हे। इस प्रकार यह समझना कठिन नही हे कि जेस आदर्श अक्षर को देखकर दूसरा वैसा ही अक्षर बनाया जा सकता है इसी प्रकार जो पूर्ण हे वही दूसर को पूर्ण बना सकता है। जिस प्रकार पूर्ण अक्षर दूसरा पूर्ण अक्षर बनाने म सहायक होकर उपकार करता हे उसी प्रकार परमात्मा भी पूर्णता पर पहुच चुका है ओर वह हम पूर्ण पुरुष बनाने मे समर्थ हे। यद्यपि आदर्श अक्षर का दूसरे बनाने वाले अक्षर से कुछ भी लेना–देना नही हे उसी प्रकार परमात्मा को भी ससार से कुछ लेना देना नही हे। ससार से उसका कोई सरोकार नही हे। फिर भी वह पूर्ण पुरुष ससार के जीवा को पूर्णता दिलान म समर्थ हे। वह पूर्णता प्राप्त करने मे सहायक होता हे। इसी कारण उसका जय जयकार किया जाता हे। इसीलिए भक्तजन कहत हें–

जय जय जगत – शिरोमणि ।

परमात्मा कृतकृत्य हो चुके हैं। उन्होने चरम विजय प्राप्त कर ली हे। हमारे जयजयकार करन से परमात्मा की जय नही होती हे। फिर भी परमात्मा की जय चाहना अपनी नम्रता प्रकट करना हे। इसी प्रकार कहकर भक्त लाग आगे कहत हें–प्रभो। यद्यपि तू पूर्ण हे। तूने सर्वोत्कृष्ट विजय प्राप्त कर ली हे। लकिन अभी तक तुझसे दूर पडा हू। इसका कारण मरा भ्रम ही हे। में सोचता हू कि परमात्मा क्या करता हे। में स्वय कमाता हू ओर स्वय खाता हू। इसम परमात्मा का क्या उपकार हे? इस प्रकार क भ्रमपूर्ण विचार क कारण ही में तुझसे दूर पडा हू। लकिन अव मुझ यह विचार आ रहा हे कि जिन विषयभागा क भ्रमजाल म पडकर में परमात्मा का भूल रहा हू उन विपया स मुझे कभी तृप्ति नही हा सकती। उदाहरणार्थ कल पट भर भाजन किया था लकिन आज फिर भाजन करना पडेगा। ससार क अन्य पदार्थो क विपय म भी एसी ही वात ह। ससार म काई पदार्थ एसा नही जिस आत्मा न न भागा हा। प्रत्यक पदार्थ का अनत–अनत वार आत्मा भाग चुका हे। अनादिकाल स भाग भागत–भागत भी अभी तक आत्मा तृप्त नही हुआ। अगर आत्मा की

भोग भोगने से तृप्ति सभव होती तो वह कभी की हो गई होती। लेकिन तृप्ति का एक अश भी कही दृष्टिगोचर नही होता। दिन दूनी–रात चोगुनी तृष्णा बढती ही दिखाई देती है। इस तृष्णा का कही ओर–छोर नही हे। वह आकाश की तरह असीम और काल की तरह अनत है। तृष्णा अनत हे और पदार्थ परिमित है। यह परिमित पदार्थ अनन्त तृष्णा को किस प्रकार शात कर सकते है? इसके अतिरिक्त एक बडी कठिनाई यह भी है कि जो भोग भोगे जाते हें व तृष्णा को कम करने के बदले बढाते हैं। जैसे आग मे ईन्धन डालने से वह बढती है उसी प्रकार भोग भोगने से तृष्णा बढती ही चली जाती हे।

हा इस अनन्त तृष्णा से एक बात अवश्य मालूम पडी। यह अनन्त तृष्णा जब आत्मा की ही है तो आत्मा भी अनन्त होना चाहिए। तृष्णा अनन्त है तो जिसकी तृष्णा है, वह तृष्णा का आधारभूत आत्मा भी अनन्त अवश्य होगा। इस प्रकार तृष्णा की अनन्तता से आत्मा की अनन्तता का पता चला है। यह विष मे से भी अमृत का निकालना समझिए।

हे प्रभो! यह भान होने पर मैने अपनी आत्मा से कहा–हे आत्मन् ! जब तू अनन्त है तो अनन्त (परमात्मा) के साथ ही अपना सम्बन्ध क्यो नही जोडता? तू परिमित के साथ क्यो चिपटा हुआ है?

कल्पना करो एक आदमी को भूख लगी हे। उसे आप कितने ही प्रलोभन दे, सतुष्ट करने का कितना ही प्रयत्न करे फिर भी भोजन किये बिना उसे सन्तोष नही होगा। भूख मिटने पर ही उसे सन्तोष होगा ओर भूख भोजन से ही मिट सकेगी। आप अपने शरीर पर लाखो के आभूषण भले ही पहन ले मगर भूख लगने पर वे आभूषण किस काम आएगे? यह बात दूसरी हे कि परम्परा से आभूषणो द्वारा भोजन प्राप्त किया जा सकता हे। लेकिन साक्षात् रूप से उनके द्वारा भूख नही मिट सकती। इस प्रकार भूख लगने पर आभूषण बेकार हैं और इसी कारण भूखा आदमी आभूषण पाकर सतुष्ट नहीं हो सकता। आभूषण पाने पर भी उसकी भूख ज्यो की त्यो बनी रहेगी और वह भोजन पाने का ही प्रयत्न करेगा।

इसी प्रकार जिस भक्त के अन्त करण मे परमात्मा को प्राप्त करने की इच्छा है, वह सासारिक भोग–विलास के प्रलोभन मे पडकर सतुष्ट नही हो सकता। बल्कि वह इस प्रलोभन मे पडेगा ही नहीं। उसे एकमात्र परमात्मा को प्राप्त करने की ही इच्छा रहेगी। परमात्मा–विषयक उसकी भूख किसी भी दूसरे उपाय से नही मिटाई जा सकती।

आपके अन्त करण मे जब परमात्मा को पाने की ऐसी बलवती इच्छा जागृत हो और आपका मन भोगविलास की तरफ न जावे और परमात्मा को ही प्राप्त करना चाहे तब समझना चाहिये कि हमारे भीतर परमात्मा की सच्ची लगन लगी है। जिसके हृदय मे ऐसी लगन होगी उसे परमात्मा प्राप्त होगा ही।

जब तक अन्त करण मे परमात्मा को प्राप्त करने की बलवती इच्छा उत्पन्न नही हुई हे तब तक निरन्तर प्रयत्न करते रहने की आवश्यकता हे। प्रयत्न से ऐसी इच्छा अवश्य उत्पन्न होगी ओर आत्मा सही मार्ग पर आ जायेगा। घडी बिगड जाती हे या लडका बिगड जाता हे तो उस सुधारने का प्रयत्न किया जाता हे ओर सुधार हो भी जाता हे। इसी आधार पर यह भी मानो कि आत्मा भी सुधर सकता हे कवल प्रयत्न करने की आवश्यकता हे। सासारिक पदार्थो का सुधार कर लेना ही काफी नही हे। अपनी आत्मा का सुधार करा। आत्मा का सुधार ही सच्चा सुधार हे। जब आत्मा सुधर जायगा तो उसे परमात्मा की प्राप्ति किये बिना किसी भी प्रकार सताष नही हागा। वह पूर्ण प्रयत्न करक परमात्मा का प्राप्त करके ही दम लगा।

आजकल क लागा की आत्मा क सुधार क लिए किसी कठिन क्रिया क करने म घबराहट हाती हे। व जरासी कठिनाई सामन आन पर हिम्मत

हारने लगते हैं। मगर कठिनाई मे पडने की अनिवार्य आवश्यकता ही कहा है? ज्ञानियो ने इसके लिए बहुत ही सरल उपाय बतलाये हैं। उनके बतलाये उपाय करने से कठिनाई नही झेलनी पडती और आत्मा का सुधार भी हो जाता है। ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि तुम्हे जो कठिनाई दिखलाई पडती है वह अज्ञान के कारण ही है। अज्ञान को दूर कर दो तो कुछ भी कठिनाई नही रहेगी। शास्त्र मे जो उपदेश दिया गया है वह अज्ञान मिटाने के लिए ही दिया गया है। उस उपदेश को सुनकर अज्ञान हटाओ। फिर देखोगे कि तुम्हारे आगे की सभी कठिनाइया समाप्त हो गई हैं ओर तुम्हारा मार्ग एकदम साफ और सुगम बन गया है।

अज्ञान के कारण अकेले बाल जीव ही नही किन्तु कभी–कभी महापुरुष भी चक्कर मे पड जाते हैं और फिर कोई दूसरे महापुरुष ही उन्हे ठीक रास्ते पर लाते हे। बडे–बडे भी किस प्रकार चक्कर मे पड जाते हैं, यह बात इतिहास से मालूम हो सकती है।

पाण्डवो को कौरवो की ओर से बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास दिया गया था। कौरवो का यह कार्य किसे पसन्द आ सकता था? उस समय के ओर आजकल के सुनने वालो को भी कौरवो का यह कार्य पसन्द नही आता तो जिनको स्वय वनवास का कष्ट भुगतना पडा, उन्हे वह कैसे पसन्द आता? पाण्डवो मे सिर्फ युधिष्ठर ही ऐसे थे जिन्हे धर्म पर पूरा विश्वास था ओर इस कारण वे वनवास से नही घबराये थे। उनके चारो भाई और द्रौपदी घबरा उठी थी। इनका कहना था कि हम मे शक्ति मौजूद है, फिर वनवास का दुख भोगने की क्या आवश्यकता है? अर्जुन कहते थे– दुर्योधन तो एक ही बाण का हे। भीम गरज कर कहता था–‘दुर्योधन किस गिनती मे है? मैं अपनी गदा से उसकी चटनी बना सकता हू। सच पूछो तो अर्जुन और भीम सरीखे वीरो का सामना करना कोई मामूली बात नही थी। दुर्योधन की क्या मजाल थी कि वह इनका सामना करके विजयी होता? इस प्रकार शक्तिशाली होते हुए भी वनवास का कष्ट भोगना उनकी समझ मे उचित नही [illegible] प्रकार समझाने ओर कहने पर भी युधिष्टर वनवास भोगना क्यों [illegible] वनवास भोगने मे क्या रहस्य था? गहरा विचार करने [illegible] पता लग सकता हे।

के वृद्धजन रोकर कहने लगे—पाडवो पर बडी कडी मुसीबत आ पडी हे ओर वे वनवास भोग रहे हैं। सरल हृदय पाडव ऐसी विपदा मे हें कि कुछ कहा नही जा सकता। वे वीर हें ओर सज्जन हें। लकिन दुष्ट कौरवा ने उन पर भीषण अत्याचार किया है। यहा तक कि द्रोपदी को भरी सभा म नग्न करने का भी उन्होने प्रयत्न किया। भले ही उनका प्रयत्न सफल नही हुआ फिर भी इससे उनकी दुर्भावना कम नही हो सकती। पाडवो को वनवास स्वीकार करना पडा है।

कृष्ण ने पाडवो के वन जाने का समाचार सुनकर पूछा—पाण्डवा का ऐसा क्या अपराध था, जिसके कारण उन्हे वन जाना पडा ओर द्रोपदी की दुर्गति हुई? वृद्धजनो ने उत्तर दिया— अन्याय के सामने अपराध होने या न होने का प्रश्न ही कहा उठता है? जिसे अन्याय करना है, अपना स्वार्थ साधना है, वह यह कब देखता है इसने अन्याय किया या नही किया हे?

कृष्ण ने पूछा—इस समय वे कहा हैं?

वृद्धजन—वन मे वनवासी लोगो की तरह भटकते फिरते हें।

यह कथन सुनकर कृष्णजी कुछ मुसकाराये। वृद्धजनो को समझ मे नही आया कि कृष्ण जी दु खी होने के बदले मुसकराते क्यो है? उन्हाने कहा—क्या कारण है कि आप पाण्डवो की दुर्दशा की कथा सुनकर मुस्करा रहे हें?

कृष्ण—मेरी मुस्कराहट का कारण आप लोग नही जानते। मगर आप समय आने पर जान जायेगे। इस समय मैं पाण्डवो से मिलना चाहता हू। सुख के समय चाहे न भी मिलता लेकिन दु ख के समय मिलना ही चाहिए।

कृष्ण रथ पर सवार होकर खाडव वन गये। वहा द्रोपदी सहित पाडव पर्णकुटी बना कर रहते थे। कृष्ण पहुचे। पाडवा के पास उस समय स्वागत के योग्य कोई विशिष्ट सामग्री नही थी तथापि स्नेह ओर श्रद्धा स परिपूर्ण हृदय उनके पास था ओर उदार आशय वाल पुरुषा क लिए यही पर्याप्त होता हे। विवेकशील पुरुष द्रव्य की अपक्षा भाव का ही प्रधानता दत हें। कृष्ण जी प्रेम के साथ बिछाई गई चटाई पर आसीन हुए। कृष्ण जी क बेठ जाने पर आस—पास पाण्डव भी बेठ गय ओर तनिक दूरी पर द्रापदी भी बेठी।

कृष्णजी बडे कुशल थ। उन्हान पाण्डवा ओर द्रापदी क चहर पर एक उडती निगाह डाली ओर समझ गय कि द्रापदी की दृष्टि म उग्रता हे।

यह देखकर उन्होने सर्वप्रथम दोपदी से ही प्रश्न किया– 'कृष्णा! आनन्द मे तो हो?

दोपदी राजकुमारी थी। बाल्यकाल से ही वह सुखो मे रही और उसने कभी नही जाना था कि दु ख किस चिडिया का नाम है। वह राजसी भोग भोगती थी और राजसी भोजन मे भी रुचि रखती थी मगर दुर्योधन के पपच मे पडकर इन दिनो वह बहुत परेशान हो उठी थी। आज वह नगर छोड कर जगल मे और महल छोडकर झोपडी मे रहती है। षट्रस व्यजन के बदले उसे जगल के फल–फूलो पर निर्वाह करना पडता है। आज उसे किसी भी प्रकार की सुख– सुविधा नही है। उसे लगता है, मानो उसके जीते जी ही जीवन बदल गया है। यह सब जानते हुए भी कृष्णजी उससे पूछ रहे है– कृष्णा आनन्द मे तो हो? आखिर इस प्रश्न का रहस्य क्या है? इस रहस्य का पता उन्ही से लग सकता है।

मेरे प्रश्न को सुनकर दुर्योधन कुछ समय के लिए हतप्रभ हो गया था। वह न्याययुक्त तरीके से उसका प्रतिकार करने म असमर्थ था। अतएव वह और क्रुद्ध हो गया ओर दुश्शासन से कहने लगा—इस कानून बधारन वाली का मुख बद कर दे। अब आप बतलाइये, किसी का इस प्रकार बलात मुख बन्द कर देना क्या उचित कहा जा सकता हे? दुश्शासन मेरा वस्त्र खीचने लगा। मैंने वहा उपस्थित सब लोगो से उस भयकर अन्याय को रोकने की प्रार्थना की। मगर किसी के कान पर जू न रेगी। सभी कानों म तेल डाले, प्रतिमा की तरह चुपचाप बेठे रहे।

अन्याय, अत्याचार और उपेक्षा का यह दृश्य देखकर मुझे बडी निराशा हुई। तब मेंने विचार किया—दूसरे लोग चुप हें तो रहे यह पाचो भाई क्या कम हैं? अगर इन्हे तो आवेश आवेगा ही। यह सोचकर मैंने अत्यन्त करुण शब्दो मे इन सब से कहा—यह मेरी नही तुम्हारी लाज जा रही हे। इस कारण मेरी रक्षा करो। मेरी करुण पुकार सुन कर भीम और अर्जुन उठे भी मगर धर्मराज ने बाह पकड कर दोनो को फिर बैठा दिया। तब मेंन सोचा—वास्तव मे कोई किसी का नही है।

हे कृष्ण! मैं सोचती हू, आप वहा होते तो मेरी रक्षा अवश्य करते। परन्तु दुर्दैव से आप वहा मौजूद नही थे। अतएव मेंने परमात्मा का स्मरण करक कहा— प्रभो! में तेरी शरण मे हू। इस प्रकार मन ही मन प्रार्थना करक मैंने अपना मन परमात्मा मे लगा दिया। उस समय शरीर पर से भी मैंने ममता हटा ली। में अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर चुकी थी। पितामह भीष्म जेसे आदर्श पुरुष भी वहा मौजूद थे ओर पतिदेव भी चुपचाप वहा मोजूद बेठे थे। तब अकेली मैं क्या कर सकती थी? इस प्रकार सोचकर मेंने शरीर का ममत्व त्याग दिया। शरीर पर से ममत्व त्याग देने के पश्चात् क्या हुआ, यह मुझे मालूम नही लेकिन मेंने सुना हे कि उस समय मेरे शरीर के वस्त्र इतने बढ गय थ कि दुश्शासन खीचते—खीचते थक गया था, पर वह मुझे नग्न नही कर सका। साथ ही सभा म बहुत क्रान्ति हुई। उस समय मेंने अन्धराज को यह कहत सुना—हे कुलवधू! क्षमा करो। यह आवाज सुनकर में अपन आप म आई। उस समय मेंन देखा कि सभा म कवल धृतराष्ट्र ही हें और कोई नही हे। व कह रहे हें— हे कुलवधू! मर पापी पुत्रा का क्षमा करो। में तुमस क्षमा मागता हू। मेंन उनस कहा—आप मर पूज्य हें। में ही आपस क्षमा मागती हू।

इतना कहकर द्रोपदी न एक लम्बी सास ली। फिर उसन कहा—ह भाई! मर लिए वह समय कितन कष्ट का था। मुझ कितना कष्ट सहन करना

पड़ा है किस प्रकार घोर अपमान सहना पड़ा है। क्या यह आपके लिए भी लज्जा की बात नही है?

दोपदी की यह बात सुनकर कृष्ण हस पडे। द्रोपदी के विषाद का पार न रहा। वह समझती थी कि मेरी कष्ट–कथा सुनकर कृष्णजी सहानुभूति प्रकट करेगे और दु ख के आसू बहाएगे। मगर कृष्णजी की हसी ने उसकी धारणा को नष्ट कर दिया। वह तिलमिला उठा। बोली–मेरे दारूण दु ख की कहानी क्या आपने अपने मनोरजन के लिए ही सुनी है?

कृष्णजी ने कहा–बहिन। तुझे नही मालूम कि मैं क्यो हसा हू। तुझे यह भी पता नही कि इतने कष्ट आने का कारण क्या है।

दोपदी– क्या इसमे भी कोई रहस्य है?

कृष्ण– हा ।

द्रौपदी–आह! क्या आप भी मेरा घोर अपमान बैठे–बैठे देखते रहते?

कृष्ण–बहिन, जिसे तुम अपमान कहती हो उसे अगर मैं भी अपमान समझता तो हर्गिज चुपचाप सहन न करता। तुम जानती नही हो, इसी कारण उन घटनाओ को अपना अपमान समझती हो ओर दु ख मानती हो। जब रहस्य को जान जाओगी तो वे घटनाए न अपमान जान पडेगी और न उनके कारण दु ख ही मनाओगी।

मित्रो! दु ख तो कभी–कभी आपके माथे पर भी आ पडता होगा मगर मनुष्य को उससे घबराना नही चाहिए। दु ख अगर बीमारी है तो घबराहट उसकी दवा हर्गिज नही है। घबराहट दु ख को कई गुना बढा सकती है, घटा नही सकती। अतएव दु ख आने पर धीरज और हिम्मत के साथ उसका सामना करना चाहिए। हिम्मत के साथ उसे पचा लेना चाहिये। गरिष्ठ भोजन, पचाने की शक्ति रखने वालो को बल प्रदान करता है और जिनमे पचाने की शक्ति नहीं है, उन्हे अधिक निर्बल बनाता है। यही बात दु ख के सम्बन्ध मे है। दु ख किसी को सबल बनाता है, किसी को निर्बल बनाता है। धैर्य रखकर जो दु ख को पचा लेता है वह सबल बन जाता है। जो दु ख पड़ने पर हिम्मत हार बैठता है, रोता–झीकता है और दीनता धारण कर लेता है, वह और अधिक दुर्बल बन जाता हे।

दु ख आने पर विचार करो कि मैं कोन हू? में उन भगवान् महावीर का शिष्य हू, जो इन्द्रो द्वारा पूजनीय थे, फिर भी जिनके कानो मे कीले ठोके गये थे, जिनके ऊपर कुत्ते छोडे गये थे। लेकिन भगवान् ने इन दु खा की तनिक भी परवा नही की थी। में उन महाप्रभु महावीर का शिष्य होकर भी क्या दु खों के समय रोने बैठू ? इस प्रकार सोचकर फिर विचारना चाहिये–मुझ दु ख क्यो हो रहा है, यह में नही जानता। इसके पीछे क्या रहस्य छिपा हे यह भी मुझे नही मालूम। लेकिन यह निश्चित हे कि इसम रहस्य हे। मुझे दु ख से घबराना नहीं चाहिये–धेर्यपूर्वक उसे सहन करना चाहिए। इस प्रकार विचार कर जो पुरुष दु ख के समय दृढता रखता हे ओर विषाद नही करता उसकी आत्मा का कल्याण होता हे।

जब श्रीकृष्ण द्रोपदी से इस प्रकार कह रहे थे, तब भीम न बीच म टोक कर उनसे कहा–आपका कथन यथार्थ हे पर उन अधे क कपूता का उस समय जरा भी आचित्य का ध्यान नहीं रहा! क्या यह विचारणीय बात नही हे ? उस घटना क लिए हम लोगा का लज्जित नहीं होना चाहिय?

भीम की क्रोध से भरी बात सुनकर श्रीकृष्ण उसकी ओर मुड़े और कहने लगे—भीम, द्रौपदी की अपेक्षा तुम्हे समझाना कठिन है। तुम्हे अपने बल का अभिमान है और जिसे अभिमान होता है उसे समझाना कठिन होता है। तुम जो कह रहे हो अपने स्वभाव के अनुसार कह रहे हो। पर यह तो सोचो कि दुर्योधन ने सबके सामने द्रौपदी को क्यो नग्न करना चाहा था? इसका कारण यही था कि उसके पापो का घड़ा भर चुका था और अब उसका भडा—फोड होना लाजिमी था। उसका पाप इतना बढ गया था कि वह प्रकट हुए बिना रह ही नही सकता था। उसने पहले जो कुछ किया था वह छिप कर और प्रकट मे हितैषी बनकर किया था। लेकिन इस कृत्य ने उसके पापो को प्रकट कर दिया है। अब सभी जान गये हैं कि दुर्योधन कितना अन्यायी और पापी है। द्रोपदी को नग्न करने की घटना को सुनकर कौरवो के शत्रुओ को तो घृणा हुई ही है साथ मे उनके मित्रो को भी कम घृणा नही हुई है। दुर्योधन के हितैषी भी उसके इस अपराध के कारण उस पर रुष्ट हो गये हैं। इस प्रकार उसका पाप चरम सीमा पर पहुच गया है और उसकी स्थिति बहुत कमजोर हो गई है। इस घटना ने तुम्हारा महत्व बढाया है और कौरवो का पाप बढाया है। लाखो उपाय करने पर भी जगत् से जो सत्कार तुम्हे नहीं मिल सकता था वह सत्कार इस घटना से मिल गया है। भले ही दुर्योधन तुम लोगो की निन्दा और अपनी प्रशसा करता फिरे, मगर अब उसका प्रयत्न निष्फल ही होगा। इस घटना के कारण वह तुम्हारी निदा फैलाने मे असमर्थ हो गया है। इस प्रकार जो कुछ हुआ है उसके लिए शोक और परिताप मत करो। तुम्हारे हक मे अच्छा ही हुआ है। तुम्हे प्रसन्न रहना चाहिये।

तुम यह सोचकर लज्जित होते हो कि हम लोग द्रोपदी का अपमान चुपचाप देखते रहे और कुछ बोले नही। पर तुम्हारा यह सोचना उचित नही है। तुम्हारी क्षमा ने ही इस घटना का मूल्य बढाया है। मैं मानता हू कि तुम वीर हो और तुम्हारी भुजाओ मे असीम बल है, फिर भी उस समय होने वाले अपमान को तुम रोक नही सकते थे। कदाचित् रोक देते तो भी आज तुम्हारी स्थिति जितनी मजबूत है उतनी न होती। द्रौपदी की लाज तो रह ही गई, मगर तुम्हारी शाति ने घटना के स्वरूप को एकदम बदल दिया है। जिन [illegible] के कारण तुम दुख मना रहे हो उनके पीछे क्या रहस्य है यह तुम्हे नही मालूम। अदृष्ट पर्दे की ओट मे क्या खेल खेल रहा है दैव का क्या विधान है और किस योजना से उसकी पूर्ति होती है यह समझना सर्वसाधारण के [illegible] है। इस घटना के रहस्य को मैं जानता हू या युधिष्ठिर जानते है।'

कृष्णजी के इस कथन का भाव स्पष्ट हे। इस कथानक का विस्तार न करते हुए सिर्फ इतना ही कहना चाहता हू कि जब किसी प्रकार का दु ख या सकट आ पडे तो उसे शान्तिपूर्वक सहन करना ही योग्य हे। ऐसे विकट समय मे आत्मविस्मृत हो जाना उचित नहीं हे। कष्ट जीवन की कसोटी हे। माथे पर चढे हुए ऋण का बोझ हे। मगर वह बोझ उतर जाने पर आत्मा उसी समय हल्का होता है जब सममाव से, शान्त चित्त से, कष्ट सहन किये जाते हें। चित्त मे शान्ति और समता न रही तो कषाय का उद्रेक होगा ओर उस अवस्था मे बोझ घटने के बदले बढ जायेगा। जरा विचार कर देखोगे तो स्पष्ट मालूम होगा कि रोने–चिल्लाने से कुछ भी तो लाम नही होता। ऐसा करने से कष्ट कुछ कम तो हो नही जाते, उलटे असह्य मालूम होने लगते हें ओर भविष्य भी बिगड जाता है। कष्ट ओर सकट आने पर अगर दृढता और वीरता के साथ उन्हे सहन किया जाये तो दु ख का अनुमव होगा ही नही। सकट आने पर दीन–दुखी बन जाना सकट से पराजित होना है ओर दृढता रखना सकट पर विजय पाना है वीर ओर विवेकी पुरुषो को दीनता धारण करना शोभा नही देता। जिसने धर्म का श्रवण और मनन किया हे वह सकटो से नही घबराता। वह सकटो को चुनोती देकर कहता हे– आ तू अपनी शक्ति आजमाकर देख। अन्त मे तुझे पराजित होना पडेगा। आत्मा की शक्ति के सामने तू नाचीज हे। इस प्रकार की दृढता धारण करते ही सकट आधा रह जाता हे।

कातर मनोवृत्ति के लोग जरा–सा सकट आते ही घबरा जाते हें। उन बेचारो को मालूम ही नही है कि उनकी कातर मनोवृत्ति ही सकट को कई गुना बढा रही हे। ऐसे लोग धर्म पर ही अश्रद्धा करने लगते हें। इस प्रकार की दुर्बल मनोवृत्ति वालो का साहस नष्ट हो जाता हे। यहा तक कि उन्हे एसी वस्तुए त्यागना भी कठिन हो जाता हे, जिनका सेवन करने से महान् पाप हाता हे। उदाहरणार्थ आपसे विदेशी शक्कर ओर मिल के चर्बी वाले वस्त्र त्यागन के लिए कहा जाता हे लेकिन आप मे से कितनो ने त्याग किया हे? यह मनोवृत्ति की दुर्बलता ही हे।

अन्त मे द्रोपदी न कहा था–कुछ भी हा यह ता स्पष्ट हे कि दुर्योधन महल म मोज करता हे ओर हम लोग यहा वन म कष्ट भाग रह हें।

तब श्री कृष्ण न उत्तर दिया तुम फिर भूल कर रही हा। दुर्योधन राजमहल की रगड से क्षीण हो रहा हे आर पाण्डव वन म विकसित हा रह हें ओर वलवान वन रह हें। इस वात का तुम क्या भूल रही हा? या में तुम्हारी

सहायता कर सकता हू। तुम सब को वन मे से द्वारका ले जा सकता हू। द्वारका के राजमहलो मे तुम्हारे योग्य पर्याप्त स्थान है। लेकिन ऐसा करना मै उचित नही समझता। पाण्डवो के इस वनवास को मैं कष्ट नही समझता वरन तप समझता हू। अतएव उचित यही है कि तुम सब वन मे रहकर धैर्य पूर्वक तप करो। इसका परिणाम निश्चित रूप से अच्छा ही होगा।

खादी पहनने मे भले ही कष्ट प्रतीत होता हो, मगर ऐसा कष्ट सहना भी एक प्रकार का तप है। इसे समझो और चर्बी के वस्त्र त्यागो। सत्य को समझकर भी आख–मिचौनी करना ठीक नही है। जिसे धर्म प्यारा होगा वह निश्चय करेगा ही कि जिस भोजन और वस्त्र से आत्मा का पतन होता है वह भोजन और वस्त्र मेरे काम का नही है। इस प्रकार अपनी श्रद्धा को व्यवहार मे लाने वाला ही सच्चा धर्मात्मा कहलाता है। जिसकी धर्ममय श्रद्धा और जिसका आचार एक रूप हो जाता है वह पुरुष भाग्यशाली है। वही परमात्मा का प्यारा है। वही सच्चा भक्त है और उसी की परमात्म–प्रार्थना वास्तविक है। वही पुरुष कल्याण का वरण करता है।

4. सच्ची दया

जीव रे ! पार्श्व जिनेश्वर वन्द।

यह भगवान् पार्श्वनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना की कड़िया सरल हैं और इसके भाव स्पष्ट हैं। लेकिन मनन करने पर इसमे गम्भीर बाते दिखाई देती हैं। यह तो आप जानते ही हैं कि सादी बातो मे भी गभीर भाव छिपे रहते हैं। इस प्रार्थना मे भी एक गम्भीर बात की सूचना की गई है।

कहा जा सकता है कि जब आत्मा का ही बोध करने की आवश्यकता है तो भगवान् पार्श्वनाथ की शरण मे जाने से क्या लाभ? इस कथन के उत्तर मे ज्ञानीजनो का कहना है कि आखो मे ज्योति होने पर भी कुछ दिखाई नही देता। आखो मे ज्योति होने पर भी सूर्य की शरण लेनी ही पडती है। अगर सूर्य की या किसी दूसरे प्रकाश की शरण न ली जाये तो आखो मे ज्योति होने पर भी सूर्य की शरण मे जाना पडता है, इसका कारण यह हे कि आखो मे अपूर्णता है। आखो की अपूर्णता के कारण सूर्य की सहायता लिये बिना काम नही चलता। इसी तरह आत्मा भी अपूर्ण है। आत्मा मे अभी ऐसी शक्ति नही है कि वह स्वतन्त्र रूप से अपना बोध कर सके। अतएव जिस तरह आखा की अपूर्णता के कारण सूर्य का आश्रय लिया जाता हे, उसी प्रकार आत्मा मे अपूर्णता होने के कारण परमात्मा की सहायता ली जाती हे। स्तुतिकार कहते हें –

सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्र! लोके

हे मुनियो के नाथ! आपकी महिमा सूर्य से भी बढकर हे।

इस प्रकार अनन्त सूर्यो से भी बढकर जो भगवान् पार्श्वनाथ हें उनकी सहायता आत्मा के उत्कर्ष के लिये अपेक्षित हे। भगवान् पार्श्वनाथ की शरण मे गये बिना आत्मा का बाध नही हो सकता। जा अपनी इस वास्तविक कमजोरी को जानता होगा और अपनी कमजोरी स डरा हागा वह पार्श्वनाथ की शरण म गये बिना नही रहेगा।

कोई कह सकता है—जब आत्मा का उत्कर्ष करने के लिए भगवान् पार्श्वनाथ की शरण मे जाने की आवश्यकता अनिवार्य है और शरण मे गये बिना काम चल ही नही सकता, तब फिर पार्श्वनाथ की ही शरण मे जाना चाहिए। ऐसी स्थिति मे आत्मा का बोध प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है?

इस प्रश्न का समाधान यह है कि अन्धे के लिये लाखो सूर्य भी किस काम के? सूर्य से वही व्यक्ति लाभ उठा सकता है जो स्वय आख वाला है। सूर्य का प्रकाश फैला होने पर भी अगर कोई अपनी आख मूद रखता है तो वह सूर्य से कोई लाभ नही उठा सकता। इस प्रकार भगवान की शरण मे जाने पर भी आत्मबोध की आवश्यकता है। जो अपनी आत्मा का उत्कर्ष साधना चाहता है उसे आत्मबोध भी प्राप्त करना होगा और ईश्वर की शरण भी लेनी होगी। आत्मदृष्टि के बिना भगवान् की शरण मे जाना अन्धे का सूर्य की शरण मे जाने के समान है। अतएव भगवान की शरण गहने के साथ—साथ आत्म बोध प्राप्त करना भी आवश्यक है।

पूर्वकृत कर्मो का कुछ क्षयोपशम होने से ही हम लोग भगवान् पार्श्वनाथ के समीप हुए हैं। भगवान् पार्श्वनाथ को शास्त्र मे 'पुरुषादानी पार्श्वनाथ' कहा है। इस प्रकार जगत् मे उनकी बडी ख्याति है। बल्कि बहुत लोग तो जैनधर्म को पारसनाथ का ही धर्म समझते हैं। वे जैनधर्म के अनुयायियो को पारसनाथ का चेला कहते हैं। अगर हम भगवान् पार्श्वनाथ का चेला कहलाने मे अपना गौरव समझते हैं तो हमे विचार करना चाहिये कि उन्होने अपने जीवन मे ऐसा कौन—सा कर्त्तव्य किया था, जिसके कारण उनकी ख्याति हुई? और हम लोग जब उनके चेले हैं तो हमे क्या करना चाहिये? भगवान ने अपनी ख्याति फैलाने के लिए न किसी की गुलामी की थी और न किसी को यह प्रेरणा ही की थी कि तुम हमारी प्रशसा करो। ऐसा करने से ख्याति फैलती भी नही है। तो फिर भगवान् ने क्या किया था? यह

व्याकुल, दु खपूर्ण और अशात था। भगवान् पार्श्वनाथ ने जगत को वे गुण बतलाये जिनसे जगत का कल्याण होता है। भगवान् ने जिन गुणो से विश्व का कल्याण होते देखा, उन्हीं गुणो को अपनाने के लिए जोर दिया और उनके भक्तो ने वे गुण अपनाए। भक्तो के इस कार्य से भगवान् पार्श्वनाथ अधिक प्रसिद्ध हुए। भगवान् को वस्तुत भक्त ही प्रसिद्ध करते हैं और भक्त ही बदनाम भी करते हैं। इस तथ्य को समझ लेने के पश्चात् हम सबको अपना कर्त्तव्य स्थिर करना चाहिए।

भगवान् पार्श्वनाथ के चरित्र मे एक बडी बात देखी जाती है। मैंने अनेक महापुरुषो के जीवनचरित देखे हैं और उनमे भी वह बात पाई जाती है। जिन्हें लोग महापुरुष मानते हैं उनकी जीवनी मे यह बात प्राय देखी जाती है। साधारण लोग साप को भी जहरीला कहकर उसके प्रति क्रूरतापूर्ण व्यवहार करते हैं, लेकिन महापुरुष साप पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। भगवान् महावीर ने चड कौशिक साप का उद्धार किया था यह बात तो प्रसिद्ध ही है। कृष्ण के जीवन चरित्र मे भी साप का सम्बन्ध पाया जाता है। मुहम्मद साहब के चरित्र मे भी साप का वर्णन आया है। इसी प्रकार ईसा के चरित्र मे भी साप का उल्लेख आता है। भगवान् पार्श्वनाथ के जीवनचरित्र मे भी साप का सम्बन्ध पाया जाता है। इससे प्रकट होता है कि महापुरुष माने जाने वाले व्यक्तियो के चरित्र मे साप का सम्बन्ध आता ही है और वे अपने महापुरुषत्व का प्रभाव सॉप पर डालते हैं। समवायाग सूत्र मे तीर्थंकरा के जो चोबीस चिन्ह बतलाये गये हैं उनमे भगवान् पार्श्व का चिह्न साप ही बतलाया हे। साप ने उनके मस्तक पर छाया करके उनकी रक्षा की थी। बोद्ध साहित्य मे एक जगह उल्लेख आया हे कि एक भिक्षु को साप ने काट खाया। जब उस भिक्षु को बुद्ध के पास ले जाया गया तो बुद्ध ने कहा—तुमने साप के प्रति मेत्री भावना नहीं रखी थी इसी कारण साप ने तुम्ह काटा हे।

भगवान् पार्श्वनाथ ने जब जहरीले साप पर भी प्रभाव डालकर उसे सुधारा था तथा उसका कल्याण किया था तब क्या आप उन मनुष्या को नही सुधार सकते जो आपकी दृष्टि म जहरीले हें? अगर आप अपन जीवन की उज्ज्वलता की किरण ऐसे लागा क जीवन म भी बिखेर द ओर उन्ह सुधार ल ता जनता पर आपका केसा प्रभाव पड।

भगवान पार्श्वनाथ न साप का कल्याण किस प्रकार किया था इस वृतान्त का ग्रन्थकारा न अपन ग्रथा म विशद रूप स लिखा हे। कहा गया हे कि भगवान क पूर्व क दसव भव क भाई कामठ जा नरक म जाता उसका

भगवान् ने सुधार किया था और उसका भी कल्याण किया था। लोग दुःख को बुरा कहते हैं मगर ज्ञानी पुरुष दुःख की भी आवश्यकता समझते हैं। दुःखों को सहन करके हम अपना भी कल्याण करते हैं और दूसरो का भी। दुःख सहने से स्व–पर–कल्याण होता है, यह बात भगवान् पार्श्वनाथ के चरित्र से समझी जा सकती है।

भगवान् पार्श्वनाथ जब बालक थे, उस समय उनके पूर्ववर्ती दसवें भव का भाई तापस बन कर आया। उसने धूनिया जगाई और इससे लोग बहुत प्रभावित हुए। झुंड के लोग उस तापस के पास जाने लगे और अपनी श्रद्धा–भक्ति प्रकट करने लगे। भगवान् पार्श्वनाथ की माता ने उनसे कहा–नगर के बाहर एक बडा भारी तपस्वी आया है। वह उग्र तपस्या कर रहा है। सब लोग उसे देखने के लिए जाते हैं। मेरे साथ तुम भी चलो हम सब भी देख आवे।

महापुरुष सादे बनकर प्रत्येक काम करते हैं। अतएव माता के कहने पर भगवान् पार्श्वनाथ ने तपस्वी के पास जाना स्वीकार कर लिया। माता के साथ वे तापस के स्थान पर गये। भगवान् राजकुमार थे और उसकी माता महारानी थीं। दोनों को देखकर तापस बहुत प्रसन्न हुआ वह सोचने लगा–जब महारानी और राजकुमार भी मेरी तपस्या से प्रभावित हो गये हैं तो मुझे और क्या चाहिये?

भगवान् पार्श्वनाथ ने हाथी पर बैठे हुए ही–उतरने से पहले ही जान लिया था कि यह तापस मेरे दस भव पहले का भाई है। मेरा यह भाई आज जिस स्थिति मे हैं अगर उसी स्थिति मे रहा तो अपना परलोक बिगाड लेगा। जैसे भी संभव हो, इसका उद्धार करना चाहिये। यह तो निश्चित है कि मैं इसका उद्धार करने चलूंगा तो इसके रोष और द्वेष का मुझे भाजन बनना पडेगा। इसे सहन करके भी उद्धार करना चाहिए। यह मेरा कर्त्तव्य है।

लोग कहते है कि भगवान् पार्श्वनाथ ने कमठ का मान भंग किया था। मै समझता हूं कि ऐसा कहने वालो मे मान है, इसी कारण से ऐसा कहते है। भगवान् पार्श्वनाथ ने जो भी कुछ किया था वह तापस के प्रति भगवान् की प्रशान्त करुणा का ही परिणाम था। भगवान् के सरल मृदुल हृदय मे तापस के प्रति असीम करुणा का भाव उत्पन्न हुआ और उसी करुणा ने उन्हे तापस के उद्धार के लिए प्रेरित किया। यह बात अलग है कि तापस का अभिमान स्वत चूर–चूर हो गया, मगर भगवान् की ऐसी कोई इच्छा नहीं थी कि तापस का नीचा दिखाया जाये। भगवान् ने तापस से कहा–'तुम यह क्या

कर रहे हो? इस प्रकार के कष्ट मे पडकर अपने लिए नरक का निर्माण क्या कर रहे हो? सरल बनो और ऐसे काम न करो, जिनसे तुम स्वय कष्ट मे पडो और दूसरे भी कष्ट पावे।'

यद्यपि अनन्त करुणा से प्रेरित होकर भगवान् ने तापस से ऐसा कहा था मगर तापस कब मानने वाला था? उसने कहा—तुम राजकुमार हो। राजमहल मे रहकर आनन्द करो। हम तपस्वियो की बातो मे मत पडो। तुम इस विषय मे अभी कुछ नहीं समझते हो। तुम अस्त्र—शस्त्र चलाना सीखो और घोड़े फिराओ। राजकुमार यही जानते हैं या उन्हे यही जानना चाहिए। हमारे किसी कार्य के औचित्य या अनौचित्य का निर्माण करना तुम्हारे अधिकार से बाहर है। तपस्वियो की बात तपस्वी ही समझ सकते हैं।

भगवान् ने कहा—अगर आप कुछ जानते होते तो कुछ कहने की आवश्यकता ही न रहती। लेकिन आप नही जानते हो, इसी कारण कहना पडा है कि आप ने अभी तक सच्चा मार्ग नही जान पाया है। अगर मैं कुछ नही जानता और आप सब कुछ जानते हैं तो बतलाइये कि आपकी धूनी म जलने वाली लकडी मे क्या है?

तापस—इसमे क्या है? अग्नि देव के सिवाय और क्या हो सकता है? सूर्य, इन्द्र और यह तीनो देव हैं। धूनी की लकडी म अग्नि देव हैं।

भगवान् ने शान्त स्वर मे कहा—धूनी मे जलने वाली इस लकडी म अग्नि देव के सिवाय और कुछ नही है यही आपका उत्तर है न?

तापस— हा, हा यही मेरा उत्तर है। उसमे ओर क्या रक्खा हे?

भगवान् बोले—इसी से कहता हू कि अभी तक आप कुछ भी नही जानते। आप जिस लकडी को धूनी मे जला रहे हें, उस लकडी के भीतर हमार आपके समान ही एक प्राणी जल रहा हे।

तापस की आख लाल हो गई। वह तिलमिला कर बाला—झूठ! एकदम झूठ! तपस्वी पर ऐसा आरोप लगाना घोर पाप हे।

भगवान्—हाथ कगन को आरसी क्या? आप झूठे हें या में झूठा हू, इसका निर्णय तो अभी हुआ जाता हे। लकडी चिरवाकर देख लो तो असलियत का पता लग जायेगा।

तापस—ठीक हे मुझे यह स्वीकार हे।

लकडी चीरी गई तो उसम स एक साप निकला। वह अधजला हो चुका था। उस तड़फत हुए अधजल साप का दखकर लागा क विस्मय का ठिकाना न रहा ओर साप क प्रति अतिशय करुणा जाग उठी। लाग कहन

लगे– धन्य है पार्श्वकुमार। उसके विषय मे जैसा सुनते थे, सचमुच वे उससे भी बढ कर हैं।' बहुतेरे लोग उस तापस की निन्दा करने लगे। अपनी प्रतिष्ठा को इस तरह धक्का लगा देखकर तापस बेहद रुष्ट हुआ। वह सोचने लगा–राजकुमार की प्रशसा हुई और मेरी निन्दा हुई।

भगवान् पार्श्वनाथ के हृदय मे जैसी दया तापस के प्रति थी वैसी ही दया साप के प्रति भी थी। भगवान् साप का कल्याण करने के लिए हाथी से नीचे उतरे। साधारण लोग समझते हैं कि साप क्या जाने ? लेकिन साप जानता है या नही, इसका निर्णय तो भगवान् के समान ज्ञानी पुरुष ही कर सकते हैं। सर्वसाधारण के वश की यह बात नहीं है। जिस साप को लोग अतिशय भयावह, विषैला और प्राणहारी समझते हैं, उसी के कल्याण लिए करुणानिधान हाथी से नीचे उतरे। वह साप अधजला हो गया था और उसके जीवन की कुछ ही घडियाँ शेष रह गई थी। भगवान् ने उसे पच नमस्कार मत्र सुना कर कहा–तुझे दूसरा कोई नही जला सकता और तू यह मत समझ कि दूसरे ने तुझे जलाया है। अपनी आत्मा ही अपने को जलाने वाली है। इसलिए समता भाव रख। किसी पर द्वेष मत ला। किसी पर क्रोध मत कर। इसी मे तेरा कल्याण है।

भगवान् ने उस साप को किन शब्दो मे उपदेश दिया होगा, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता और भगवान् की महिमा भी नहीं कही जा सकती। फिर भी अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका उपदेश इसी आशय का रहा होगा। प्रथम तो स्वय भगवान् उपदेशक थे दूसरे पच नमस्कार मत्र का उपदेश था। अतएव मरणासन्न साप अग्नि का सताप भूल गया। उसकी परिणति चन्दन के समान शीतल हो गई। वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ ओर बारम्बार भगवान् की ओर देखने लगा।

साप की कथा जो आप सुन रहे हें वह मनोरजन के लिए नहीं है। उससे बहुत कुछ शिक्षा ली जा सकती हे और शिक्षा लेने के लिए ही वह सुनाई गई। क्या आप भगवान् पार्श्वनाथ को भजते हें? अगर आप भगवान को भजते हे तो आपकी मनोवृत्ति ऐसी हो जानी चाहिए कि कोई कैसी ही आग [illegible] न जलावे आप शीतल ही बने रहे। वास्तव मे आग की ज्वाला [illegible] नही है सताप है क्रोध मे। अगर आप अपनी वृत्ति में से क्रोध को [illegible] दे तो आपको किसी भी प्रकार की आग नही जला सकती। लेकिन [illegible] है कि लोग भगवान पार्श्वनाथ का नाम जीभ से बोल कर आग को [illegible] हैं और कहते है कि आग शीतल क्यों नही हुई? वे यह नही देखते [illegible] जो आग को शान्त तो करना चाहते हें मगर हृदय की आग–

क्रोध की शान्ति हुई है या नहीं? अगर हृदय की आग शान्त नही हुई तो बाहरी आग कैसे शीतल हो सकती है ? हृदय की आग को शान्त करके देखो तो सारा जगत शीतल दिखाई देगा।

ग्रन्थो मे कहा है कि भगवान् के उपदेश के कारण वह साप मर कर धरणेन्द्र देव हुआ है। इस प्रकार भगवान् ने उस साप का भी कल्याण किया। ऐसी बातो के कारण ही जगत मे भगवान् की महिमा का विस्तार हुआ है।

भगवान् ने साप का कल्याण किया और कल्याण करने से भगवान् की महिमा का विस्तार हुआ, यह ठीक है। किन्तु इससे आपका क्या कल्याण हुओ? आपको अपने कल्याण के विषय मे विचार करना चाहिये। आपका कल्याण तभी सम्भव है जब आप भी भगवान् को अपने हृदय मे बसावे और जलती हुई क्रोध की आग को क्षमा, शाति, समभाव आदि के जल से शान्त कर दे।

कहा जा सकता हे कि अगर भगवान् पार्श्वनाथ हृदय मे बस सकते हैं तो फिर बसते क्यो नही है? क्या हम उन्हे बसने से रोकते हैं? लेकिन सही बात यह है कि भगवान् पार्श्वनाथ को हृदय मे बसने देने से एक प्रकार से नहीं तो दूसरे प्रकार से रोका जाता है। अगर उनके बसने मे रुकावट न डाली जाए तो वे बसने मे विलम्ब ही न करे। अगर आप अपनी मनोवृत्तियो की चौकसी रखते हैं, अपनी भावनाओं की शुद्धि–अशुद्धि उत्थान–पतन का विचार किया करते हैं तो यह बात समझने मे आपको दिक्कत नहीं हो सकती। लेकिन आम तोर पर लोग सट्टा बाजार के भावो के चढने–उतरने का जितना ध्यान रखते हें उतना भी आत्मा के भावो के चढाव–उतार पर ध्यान नहीं देते। यही कारण है कि आत्मा के पतन की भी उन्हे खबर नही पडती। शास्त्र म गुणस्थानो का विस्तृत वर्णन किसलिए आया हे? गुणस्थान आत्मा के उत्थान ओर पतन का हिसाब समझाने के लिए ही बतलाये गय हें। अतएव दखना चाहिये कि किस प्रकार हमने अपने हृदय के द्वार भगवान् पार्श्वनाथ के आन के लिए बन्द कर रखे हैं ओर उसका परिणाम क्या हो रहा हे? दूसरा के दुर्गुण देखने म मत लगे रहा अपने ही दुर्गुण देखो। दूसरा के दुर्गुण दखत रहन स अपन दुर्गुण दिखाई नही देते। अतएव अपने अवगुणा का दखो ओर सावो कि हृदय म परमात्मा को बसाने म कहा चूक हा रही हे? वास्तव म मनुष्य कहा चूकता हे यह बतान क लिए टाल्सटाय द्वारा लिखित ओर गाधीजी द्वारा अनुवादित सच्चा श्रमजीवी' नामक पुस्तक म स कुछ अश आपका सुनाता हू। उस पर स आप समझ सकग कि हमारी आत्मा कहा–क्या भूल कर रही हे।

'सच्चा श्रमजीवी' पुस्तक की जिस बात को मै कह रहा हू, वह वह किन्ही दूसरे शब्दो मे लिखी होगी। लेकिन उसका भाव यह है —

एक आदमी के तीन लडके थे और एक लडकी थी। उसके लडके का नाम मूर्खराज था। वह शारीरिक श्रम करने वाला था।

दुनिया मे दो प्रकार के मनुष्य हैं। एक वह जो शारीरिक श्रम करते हैं और दूसरे वे हैं जो केवल बुद्धि की खटपट से ही सब चीज प्राप्त करके मौज उडाते हैं। मूर्खराज श्रमजीवी था।

आप लोग जो कपडे पहनते हैं, उन्हे आपने बुद्धि द्वारा प्राप्त किया है या श्रम द्वारा? आपने श्रम द्वारा उन्हें प्राप्त नही किया है, बुद्धि के द्वारा प्राप्त किया है। लोगो का कहना है कि बुद्धि द्वारा ज्यादा काम होता है और शारीरिक श्रम से कम। उन्हें बुद्धिवाद के कारण मचे हुए हाहाकार पर ध्यान देना चाहिए। ससार मे श्रम की कीमत जितनी घटेगी और एकान्त बुद्धि की कीमत जितनी बढेगी उतना ही अधिक हाहाकार लोगो मे बढता जायेगा।

मूर्खराज श्रमजीवी था। लोग उसे मूर्ख समझते थे, किन्तु वास्तव मे वह मूर्ख था नही, यह तो उसी के कार्यो से समझा जा सकता है। ससार मे श्रमजीवी मूर्ख समझे जाते हैं, मगर देखा जाये तो ससार का अमन–चेन उन्ही पर निर्भर हैं बुद्धिजीवी लोगो को प्राण देने वाले श्रमजीवी ही हे। अन्न वै प्राणा अर्थात् अन्न प्राण हैं इस उक्ति के अनुसार श्रमजीवी कृषक ही तो बुद्धिजीवी लोगो को अन्न रूप प्राण देते हैं।

मूर्खराज को किसी प्रकार–तीन बूटिया मिल गई। उनमे यह गुण था कि उनमे से एक का सेवन करने से सब प्रकार के रोग नष्ट हो जाते थे। मूर्खराज के पेट मे दर्द था अतएव एक बूटी उसने खुद खाली। उसने सोचा–अपने ऊपर प्रयोग करना ठीक भी होगा। इससे पता चल जायेगा कि वास्तव मे यह बूटी सब रोगो को नाश करने वाली है या नही? उसने बूटी खाई और उसके पेट का दर्द चला गया। बूटी की परीक्षा भी हो गई, मूर्खराज बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा–बडी अच्छी चीज हे।

मूर्खराज घर आया। उसने देखा–घर का कुत्ता पडा तडफड़ा रहा है। कुत्ते मुह से अपना दर्द नही बतला सकते। अतएव मूर्खराज की समझ मे नही आया कि कुत्ते का क्या दर्द ह? उसने सोचा–सभव है, कुत्ता भूखा हो और भूख का मारा ही तडफ रहा हे। वह घर मे से रोटी लाया। कुत्ते के सामने रख दी। मगर कुत्ते ने राटी नही खाई। तब मूर्खराज ने विचार किया–इसे

कोई दर्द मालूम होता है। मेरे पास जो बूटी हे वह फिर क्या काम आएगी? एक बूटी से मेरा दर्द गया हे ओर दूसरी से इसका दर्द मिटा देना चाहिये।

क्या बुद्धिवादी लोग ऐसा करने को तेयार हागे? क्या कुत्ते के प्राणा की उनके आगे इतनी कीमत है कि ऐसी अनमोल बूटी देकर उसके प्राणा की रक्षा की जाये? बुद्धिवादी ऐसा करना बूटी का अपव्यय समझेगा। मगर वह तो मूर्खराज जो ठहरा? उसने एक बूटी रोटी म मिलाकर किसी तरह कुत्ते को खिला दी। थोडी देर मे कुत्ता ठीक हो गया और पूछ हिलाकर प्रसन्नता प्रकट करने लगा।

जो मनुष्य कुत्ते को एक भी टुकडा डाल देता है, उसे कुत्ता भोकता नहीं है लेकिन मनुष्य क्या करता हे? लड्डू खिलाने वाले पर भी मनुष्य भोकन से कब चूकता है? लोग लड्डू खिलाने वाले के लड्डू भी खा जाते हैं ओर उस पर भौंकने भी लगते हें। फिर भी मनुष्य के सामने कुत्ते के प्राणो की कोई कीमत ही नही है।

जब घर वालो ने देखा कि मूर्खराज ने कुत्ते को सहज ही ठीक कर दिया हे तो वे कहने लगे हम इसे मूर्ख समझते थे, मगर यह तो होशियार जान पड़ता है। इसने देखते–देखते कुत्ते को ठीक कर दिया। एक ने उसस पूछा–क्या तुम्हे कुछ जादू आता है कि आनन–फानन कुत्ते को ठीक कर दिया?

मूर्खराज ने बाकी बची बूटी दिखाकर कहा–में जादू नही जानता हू, पर मेरे पास यह बूटी हे। इस बूटी की करामात से ही कुत्ता अच्छा हुआ हे। इस बूटी से सब प्रकार के रोग मिट जाते हें।

जो मूर्खराज अभी–अभी होशियार हो गया था वही फिर अब बुद्धू बन गया। घर के लोग उससे कहने लगे आखिर ता मूर्खराज ही ठहरा न। ऐसी अमृत सरीखी अनमाल बूटी कुत्ते को खिलाकर तू न अपना नाम सार्थक कर दिखाया। भला यह कुत्ता अच्छा होकर क्या करगा? किसी दूसर का अच्छा किया होता तो कुछ लाभ भी होता।

बुद्धिमान कहलाने वाल अन्य लोग भी एसा ही साचत हाग। बचार कुत्त पर कोन दया करना चाहता हे? लकिन किसी प्रकार की आशा स किसी का भला करना सच्ची करुणा नही हे। निरीह भाव स बदला पान की आशा न रखते हुए दूसरा की भलाई करना ही वास्तव म करुणा हे।

भगवान् पार्श्वनाथ का साप स कुछ मिलना नही था। फिर भी करुणा स प्ररित हाकर भगवान् न उसका उपकार किया ही था। करुणा किसी प्रकार का भद–भाव नही रखती ओर जा लाभ म पडा हे उसस भदभाव

नही छूट सकता। अतएव करुणा करने के लिए 'मूर्खराज सरीखा बनना पडता है।

मूर्खराज के माता–पिता भी जब उसकी अवहेलना करने लगे और कुत्ते को बूटी खिला देने के लिए उपालभ देने लगे तो उसने उत्तर दिया–आप लोगो के लिए वह कुत्ता हे और मेरे लिए मेरे ही समान प्राणी है। अतएव उसके लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हू।

घर वाले खिन्न चित्त होकर कहने लगे–चलो, जो कुछ हुआ सो हुआ। अब एक बूटी बची है, वह किसी को मत देना।

मूर्खराज ने कहा–ठीक है, मैं इसे व्यर्थ नष्ट नही करूगा।

सयोगवश उस शहर के बादशाह की लडकी बीमार हो गई। लडकी बादशाह और उसकी पत्नी को अत्यन्त प्रिय थी इसलिए बादशाह ने ढिढोरा पिटवाया कि मेरी लडकी को जो अच्छा कर देगा उसे मुह मागा इनाम दूगा। बादशाह द्वारा पिटवाये गये ढिढोरा को मूर्खराज के घर वालो ने भी सुना। उन्होने मूर्खराज से कहा–बूटी की बदौलत अब तेरा भाग्य खुल जायेगा। तेरे पास जो बूटी है उसे बादशाह की लड़की को खिला दे। लडकी अच्छी हो जायगी तो उसके साथ तेरा विवाह हो जायेगा। तू सुखी हो जायेगा और तेरे साथ हम लोग भी सुखी हो जाएगे।

मूर्खराज ने माता–पिता आदि की बात स्वीकार करते हुए कहा–ठीक हे, मे जाऊगा।

माता–पिता आदि ने मूर्खराज को स्नान करवाया। अच्छे कपडे पहनने को दिये और बादशाह के पास जाने को रवाना किया। मूर्खराज बूटी अपने साथ लेकर बादशाह के महल की तरफ चल पड़ा। मार्ग मे उसने देखा कि एक स्त्री को लकवा मार गया हे जिसके कारण वह चल फिर नही सकती। उसका हाथ बेकार हो गया है और मुह टेढा हो गया है। मूर्खराज ने उस स्त्री से पूछा– मा जी। क्या हो गया है तुम्हे?'

स्त्री– बेटा देख ले। मेरी कैसी बुरी हालत है? मेरा शरीर बेकार हो गया है। पेट पालने के लिए भी दूसरो की मोहताज हो गई हू। बड़ा कष्ट है।

मूर्खराज मन ही मन सोचने लगा–यह बूढी मा इतने कष्ट मे है, मेरे पास बूटी है। मैं इसका कष्ट मिटा सकता हू। यह बूटी किस काम आयेगी? मेरे लिए बुढिया का कष्ट मिटा देना ही उचित हे।

मूर्खराज ने बुढिया से कहा—ले, मा जी! यह बूटी खा ले। तेरा रोग अभी चला जायेगा।

बुढिया बोली—बेटा, रोग मिटा देगा तो मैं समझूगी कि तू ही मेरे लिए ईश्वर है।

मूर्खराज—मैं ईश्वर नहीं हू। मुझे यह बूटी कहीं मिल गई है। इसका दूसरा क्या उपयोग हो सकता है? तू इसे खा जा।

बूढिया ने बूटी खाई। वह चगी हो गई। उसे सहसा अपना चगापन देख विस्मय के साथ आनन्द हुआ। मूर्खराज को उसने सेकडो आशीर्वाद दिये।

मूर्खराज सतोष के साथ अपने घर लोट आया। उसे आया देख घर वाले पूछने लगे—क्यो, बादशाह के पास नहीं गया? लोट क्या आया?

मूर्खराज—मार्ग मे मुझसे एक अच्छा काम हो गया इसलिए लोट आया हू। घर वालो को बडी चिन्ता हुई। उन्होने पूछा—क्या हुआ, कुछ बता भी सही।

मूर्खराज ने बुढिया का वृत्तान्त कह सुनाया। घर वालो ने यह सुना तो क्रोध के मारे पागल हो उठे। कहने लगे—मूर्खराज कही के! तू ने हमारे सारे मसूबे मिट्टी मे मिला दिये।

भगवान् पार्श्वनाथ को तो आप भी पुकारते हें मगर किसलिए पुकारते हें? आप उनके शिष्य कहलाते हें, मगर क्या करने के लिये? पार्श्वनाथ के शिष्य कहला कर भी क्या आप मे मूर्खराज सरीखी दया हे? मूर्खराज की निस्पृह दया कितनी सराहनीय हे? क्या आपका अन्त करण इस प्रकार की दया से जीवन मे एक बार भी कभी द्रवित हुआ हे? स्वय मे ऐसी दया हाना तो दूर रहा आपके घर का कोई आदमी इस मूर्खराज क समान कार्य कर तो आप उसे शायद घर से निकाल देने के लिए तेयार हा जाए! एसी स्थिति मे आप भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा की गई दया का असली महत्त्व समझ सकत हें ? अगर आप सचमुच ही दया का महत्व समझत हें ता अछूता का व्याख्यान सुनन देने से क्या वचित रखत हें? मं आपक मकान म ठहरा हू। अतएव आपकी इच्छा क विरुद्ध कुछ नही कर सकता। किसी का आन या न आन दन का मुझ अधिकार नहीं हे। लकिन इस विषय म आप क्या कहत हें? अगर हम आपक मकान म न ठहरे हात प्राचीन काल क मुनिया की तरह जगल म ठहर हात ता हमारा व्याख्यान सभी लाग सुन सकत थ। वहा किसी क प्रति किसी प्रकार का भदभाव का व्यवहार नही किया जा सकता था। भगवान् क

समवसरण मे बारह प्रकार की परिषद होती थी। उसमे किसी के प्रति, किसी प्रकार का भेदभाव नही किया जाता था। अगर आपके अन्त करण मे भगवान पार्श्वनाथ के समान दया हो तो आप किसी भी जाति वालो को व्याख्यान सुनने से न रोकते।

मूर्खराज के घर वाले क्रोध से बावले हो उठे। कहने लगे—यह मूर्ख कितना अभागा है? पहले तो इसने कुत्ते को बूटी खिला दी और अव, जव कि सभी का भाग्य चमकने वाला था, किसी बुढिया को बूटी देकर चला आया। ऐसा न किया होता और बादशाह की लडकी की बीमारी मिटाई होती तो खुद बादशाह का दामाद बन गया होता और हम लोगो को इस मकान के बदले राजमहल मिला होता। हमारा घर धन से भर जाता और सब दु ख दूर हो गये होते।

मूर्खराज ने अपने घर वालो से कहा—आप लोग मुझे क्षमा कीजिये। मेरा नाम ही मूर्खराज है। मैं आप लोगो की बुद्धि के अनुसार काम कैसे कर सकता हूं? आप मुझ से वृथा ही ऐसी बडी आशा क्यों रखते हैं? मैं मूर्ख ठहरा। सामने किसी को देखता हू तो अपने को रोक नहीं सकता। मेरे पास जो कुछ होता है सभी देने को उद्यत हो जाता हू और दे डालता हू। मेरी प्रकृति ही ऐसी बनी है। मैं क्या करूं?

मूर्खराज की सरल सीधी बात सुनकर सतान प्रेम के कारण माता—पिता आगे कुछ न कह सके। वे चुप ही रहे। सोचने लगे—इसका क्या दोष? दोष अगर है तो हमारी तकदीर का ही।

मूर्खराज के हृदय मे यह था कि जो भी दु खी सामने आवे, उसका दु ख दूर करने के लिए, अपने पास जो भी कुछ हो, दे देना चाहिए। मगर आपके हृदय मे क्या है? जरा अपने हृदय को टटोलो। आप भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य है। आपके अन्त करण मे दया का कैसा शीतल झरना बहना चाहिए? भगवान साप सरीखे जहरीले प्राणी के लिये भी हाथी से नीचे उतरे। उन्होने पास जाकर उसे उपदेश का अमृत पिलाया। मगर आप दया—दया की पुकार करते हुए भी मान के हाथी पर ही सवार बने रहते हैं। ऐसी दशा मे कैसे कहा जा सकता है कि आपने दया को पहचाना है? दया करने के लिए मूर्खराज के समान बनना पडता है। मूर्खराज को जेसी बूटी मिली थी, आपको वैसी मिल जाये तो आप उसे लेने को फौरन तेयार हो जाएगे ओर कदाचित् मूर्खराज मिल जाये तो कहने लगेगे 'यह तो मूर्खराज है। हम इसे लेकर क्या करें? आप मूर्खराज का अस्थिपजर लो यह मैं नही कहता। मैं कहता हू

कि मूर्खराज के गुणो को ग्रहण करो। जिस प्रकार मूर्खराज नि स्वार्थ ओर निष्पक्ष होकर दया करता था, उसी प्रकार आप भी दया करो।

खरगोश हाथी का क्या लगता था? हाथी को उसकी रक्षा करने से क्या मिलने वाला था? हाथी को खरगोश से कुछ भी आशा नही थी। फिर भी उसने घोर वेदना सहन करके भी खरगोश की रक्षा की थी। इसी तरह आप भी निष्काम भाव से दीन–दु खो पर दया करो। बुद्धि के चक्कर म मत पड़ो। दया करने के लिए 'मूर्खराज' के सदृश बनो। आप मे मूर्खराज की सी आदत नही हे, इसी कारण आप किसी के मरने के बाद तो उसकी याद कर–करके रोते हो परन्तु जब वह जीवित रहता है तब तक उसकी पूरी सम्हाल नही करते और उसे कल्याण के मार्ग पर नही लगाते।

यदि ससार मे मूर्खराज के समान ही प्राणी जन्मे, जो दिन–रात दूसरे की दया करने मे ही लगे रहे तो ससार सुखी हो सकता है। यह ध्रुव सत्य समझ लो कि ऐसे दयालु ओर परोपकारी मनुष्य ही ससार के शृगार है। ससार मे अगर कुछ सार है तो ऐसे मनुष्यो का जीवन ही हे। ऐसे दयावान मनुष्य ही ससार मे सुख और शाति का प्रसार करते हैं। मारकाट मचाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में सलग्न रहने वाले बुद्धिवादी लोग ससार को सुखमय नहीं बना सकते। मूर्खराज कपड़े पहन कर बादशाह की बेटी को बूटी देने चला था, मगर मार्ग मे बीमार वृद्धा को देखते ही उसका दिल द्रवित हो गया ओर उसने उसे बूटी खिला दी। मूर्खराज का यह त्याग मामूली नही कहा जा सकता। उसे राजकुमारी पत्नी मिल सकती थी कदाचित् राज्य का भी कुछ भाग मिल सकता था ओर कीर्ति तो मिलती ही पर उसने इन चीजा की तनिक भी परवाह नही की। सच्ची दया वही हे जहा लेशमात्र भी स्वार्थ नहीं हे। मगर बुद्धि की खटपट त्याग कर मूर्खराज क समान बनने पर ही एसी दया की जा सकती हे।

ग्रन्थकारा ने हमारे सामने सच्चे दयालुआ के चरित्र इसी उद्दश्य स रखे हें कि हम उन्हे सुन–समझ कर यह जान सक कि सच्ची दया किस प्रकार हो सकती हे। सभव हे आप किसी दयालु क चरित्र को पूरी तरह न अपना सक तथापि अगर ओर किसी रूप स अपनाएगे ता भी आपका कल्याण हागा। आत्मा म जो कर्म–रोग घुस हें व धन अथवा राज्य की शक्ति स नष्ट नही किये जा सकत। उनका विनाश करन के लिए दया ही आपकी दवा हे। अतएव अपन हृदय म दया का प्रकट करा। एसा करन स आपका कल्याण होगा आर साथ ही ससार का भी।

5. जो दृढ़ राखे धर्म को

श्री जिन अजित नमू जयकारी,
तू देवन को देवजी।। प्रार्थना।।

यह श्री अजितनाथ भगवान की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे यह भाव प्रकट किये गये हैं कि– हे प्रभो! मेरे ऊपर तू ऐसी कृपा कर कि मै तुझ पर एकनिष्ठ प्रीति रख सकू। तेरी कृपा के बिना मैं तेरे साथ एकनिष्ठ प्रीति नही रख सकता। क्योकि तेरे साथ एकनिष्ठ प्रीति रखने मे मेरे सस्कार मुझे तेरी प्राप्ति से गिरा सकेगे। इसलिए हे नाथ! मेरी प्रार्थना है कि तू मुझ पर ऐसी कृपा रख कि मेरे सस्कार मुझे तेरी ओर विमुख न बना सके। मै जानता हू कि तुझ मे ही ऐसी शक्ति है। तेरी कृपा के बिना मेरा उद्धार नही हो सकेगा।

परमात्मा से एकनिष्ठ प्रीति की इच्छा किसकी न होगी सभी कहेगे कि हम परमात्मा के प्रति एकनिष्ठ प्रीति रखना चाहते हैं। मगर हृदय की भावना को कौन जाने? कोई जाने या न जाने, सब को चाहिए कि वचन और मन की विरूपता का त्याग करके– हृदय मे विरोधी भाव न रखकर परमात्मा के साथ एकनिष्ठ प्रीति धारण करे। इस प्रकार का हार्दिक ध्येय होने पर ही आत्मा का कल्याण हो सकता है।

ससार मे सब की मति एक–सी नही होती। कहावत है– "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना। अर्थात् सब की मति न्यारी–न्यारी होती है। लेकिन इस भिन्नता मे भी कही न कही एकता भी मिलती हे। सूर्य ससार को प्रकाश दे रहा है, इस कथन मे किसी का मतभेद नही हो सकता। इस प्रकार भिन्नता के साथ एकता भी रही हुई है। परमात्मा के प्रति एकनिष्ठ प्रीति करने मे भी एकता होनी चाहिए। हम ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि सब लोग एक विषय मे एकमत हो और सभी परमात्मा के प्रति एकनिष्ठ प्रीति रखे। ऊपर से कुछ और भीतर से कुछ हो ऐसा नही होना चाहिए।

कहा जा सकता है कि भगवान अजितनाथ के प्रति एकनिष्ठ प्रीति रखने मे एकमत हो जाने की जो बात आप कहते हैं वह समस्त जगत के लिए है या सिर्फ जैनो के लिए? भगवान अजितनाथ को सिर्फ जैनधर्म के अनुयायी ही मानते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि आपका कथन केवल जैनो के लिए ही है।

इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक विवेकवान् पुरुष यही कहेगा कि भगवान अजितनाथ सारे जगत् के हैं। वे किसी वर्ग विशेष के नही, किसी खास जाति के नहीं। अजित उसे कहते हैं जो किसी से हारा न हो किन्तु जिसने सब को जीत लिया हो। तात्पर्य यह है कि जिसने राग–द्वेष आदि समस्त विकारो को जीत लिया हैं, जो निर्विकार, निर्लेप, निरजन शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानन्द रूप बन गया हो, परम पुरुषोत्तम "अजित" कहलाता है। यह व्याख्या जिसमे भली–भाति घटती है उसे कौन अपना परमाराध्य देव स्वीकार नहीं करेगा? ऐसे महान् आत्मा के समक्ष किसका सिर श्रद्धा – भक्ति के साथ विनत नही हो जायेगा? कौन ऐसे परमात्मा की शरण लेने मे सकोच करेगा? जो आत्मा को स्वीकार करता है, आत्मा को नित्य मानता है, आत्मा के परम विकास मे श्रद्धा रखता है, वह आत्मशुद्धि के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण स्वरूप भगवान अजितनाथ को अपना देव क्यो नही स्वीकार करेगा? अगर कोई पक्षपात मे पड़ा है तो समझना चाहिए कि उसने धर्म के मर्म को नही जाना है। तत्त्व तक उसकी पहुच नहीं हो पाई है। ऐसी स्थिति मे, एकमत होने की जो बात कही है वह सिर्फ जैनो के लिए नही वरन् सारे जगत् के लिए कही है। अतएव भगवान अजितनाथ की शरण जाना ही सब के लिए उचित है। आन्तरिक शत्रुओ को जीतने के लिए भगवान अजितनाथ की प्रार्थना करने की आवश्यकता है। जो अपने आन्तरिक शत्रुओ को बढना चाहता हे उसके लिए तो क्या कहा जा सकता हे? मगर जो शत्रुओ को जीतकर अनत और अक्षय विजय प्राप्त करना चाहता हे, उसे भगवान अजितनाथ की शरण ग्रहण करनी ही चाहिए।

प्रश्न हो सकता हे– भगवान अजितनाथ की शरण लेने से आन्तरिक शत्रु नष्ट हो जाते हें। किन्तु कर्मो का नाश होना क्या सभव हे? शास्त्र म जा स्पष्ट कहा –

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।

अर्थात् – भोग बिना किये गय कर्मो का नाश नही हो सकता। इस प्रकार जब किये कर्म भोगन ही पडते हें ता भगवान की शरण लन स क्या

लाम? अगर बिना भोगे ही कर्मो का नाश हो जाता है तो शास्त्र के कथन मे बाधा आती है। इस प्रकार इस प्रश्न का समाधान क्या है?

इस प्रकार के प्रश्न के उत्तर मे, सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि कर्म के भोगने के दो मार्ग हैं। उदय के मार्ग से भी भोगे जा सकते हैं और क्षय के मार्ग से भी भोगे जा सकते हैं। भगवान अजितनाथ की शरण लेने पर भी कर्म भोगने तो पडते ही हैं, किन्तु उदय के मार्ग से नहीं, किन्तु क्षय के मार्ग से भोगने पडते हैं। उदय–मार्ग की अपेक्षा क्षय–मार्ग छोटा है। इस प्रकार भगवान अजितनाथ की शरण लेने से भी कर्मो का नाश होता है। डाक्टर वही है जो रोग मिटाता है। ऐसा करने वाला ही डाक्टर माना जाता है मगर डाक्टर बेचारा शारीरिक रोग ही दूर कर सकता है। आध्यात्मिक रोग मिटाना उसके सामर्थ्य से परे है। आत्मा के रोग केवल परमात्मा ही मिटा सकता है और जो रोग मिटाता है, वही परमात्मा है। परमात्मा की शरण लिये बिना आत्मा के कर्म रोग नही मिट सकते। अतएव परमात्मा की शरण जाना चाहिए। अगर आपको पूर्ण रूप से नीरोग होना है तो परमात्मा की शरण अ[illegible] भाव से ग्रहण करो।

ससार मे शायद ही कोई व्यक्ति मिले जो अपनी आत्मा को पापग्रस्त बनाये रखना चाहता हो। सभी अपने पापो को नष्ट करना चाहते हैं। मगर किस मार्ग से पाप नष्ट हो सकते हैं यह विचार बहुत लम्बा है। तथापित, ज्ञानी–जनो के अनुभव के आधार पर यह नि सकोच कहा जा सकता है कि पाप नष्ट करने का सरल मार्ग परमात्मा का आश्रय लेना ही है अतएव जिसके अन्त करण मे पापो को नष्ट करने की प्रबल इच्छा जागी हो, उसे परमात्मा का सहारा लेना चाहिए। यह मार्ग इतना सरल है कि विज्ञ और अज्ञ सभी समान रूप से इसे अपना सकते हैं। मित्रों! परमात्मा की शरण समस्त भव–रोगो की अमोघ औषधि है। इसका सेवन करो और कल्याण के भागी बनो। ज्ञानियो का यह अनुभूत मार्ग है। इसमें सशय के लिए कोई स्थान नहीं है।

दु ख नष्ट करने के लिए परमात्मा की शरण मे जाने के उपाय ज्ञानियो ने अनेक प्रकार के बतलाये हैं। अनेक मार्गो से परमात्मा की शरण [illegible] जाया जा सकता है। जैसे एक ही नगर मे पहुचने के अनेक मार्ग होते हैं। फिर भी किसी अच्छे जानकार द्वारा बताये हुए किसी मार्ग को दृढतापूर्वक [illegible] से आराम के साथ नगर मे पहुच सकते हैं उसी प्रकार परमात्मा की शरण मे पहुचने के ज्ञानियो ने जो अनेक मार्ग बतलाये हैं, उनमे से किसी

भी एक मार्ग को पकड लेने पर परमात्मा की शरण म पहुचा जा सकता हे। शर्त यही हे कि जो भी मार्ग पकडा जाये वह दृढतापूर्वक पकडा जाना चाहिये और वह मार्ग ज्ञानियो द्वारा बतलाया हुआ होना चाहिए।

जब परमात्मा की शरण मे पहुचने के अनेक मार्ग बतलाय गये हैं तो सहज ही प्रश्न खडा होता है कि हमे उनमे से किस मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए? हमारे लिए कौन–सा मार्ग सरल और सुविधाजनक होगा? इस सम्बन्ध मे कोई भी निश्चय करने के लिए हम सबको एकमत हो जाना चाहिए। एकमत होकर ही किसी मार्ग का निश्चय करना उचित हे। शास्त्र परमात्मा की शरण मे पहुचने के लिए मार्ग की विशेष रूप से सूचना करते हैं। उनका कथन है कि अवसर को समझो ओर जो अवसर आया है उसे मत खोओ। हाथ आये अवसर को खो देना बडी मूर्खता हे।

किस प्रकार अवसर को जानना चाहिए ओर किस प्रकार उसका सदुपयोग कर लेना चाहिये, इस विषय मे आचारागसूत्र म एक कल्पना की गई हे। उसमे कहा गया है कि – मानो किसी कारागार म कुछ एसे केदी आये जिनके मुक्त होने की कोई अवधि नही थी। जेलर ने उनसे कह रखा था– अगर कुदरत ही तुम्हारी किसी प्रकार सहायता करे तो तुम्ह छुटकारा मिल सकता हे अन्यथा छुटकारा पाने का ओर कोई उपाय नही हे।

बेचारे उदास ओर निराश केदी जेलखाने म पडे थे। सयोगवश एक रात्रि मे मूसलाधार पानी बरसा। पुरानी दीवार गिर पडी। इसी समय बिजली चमकी। एक केदी ने बिजली के प्रकाश म देखा कि जल की दीवार टूट गिर पडी हे ओर जेल से निकल भागने का यही उत्तम अवसर हे। माना, कुदरत ने हमारी सहायता की हे। अब विलम्ब करना उचित नही। जेल स निकल भाग जाना ही श्रेयस्कर हे। उसन अपने साथियों से कहा– यह अपूर्व अवसर हे। जल से भाग निकला।

पहले केदी की बात सुनकर उसक एक साथी न कहा– यार आधी रात का समय हे। पानी बरस रहा हे। ठडी हवा क कारण मीठी–मीठी नीद आ रही हे। जल स निकल भागन क बाद फिर कब यहा आना हागा। अतएव जरा एक बार मज की नीद सा लन दा।

कल्पना कीजिय ऐसा कहकर वह केदी नीद म मस्त हा जाय ओर उसक सब साथी निकलकर भाग जाए ता असावधान किस समझा जायगा? आर सावधान किस माना जायगा?

ससार भी एक प्रकार का कारावास है। उसमे मनुष्य जन्म मे आर्य क्षेत्र, उत्तम–कुल, यह सुअवसर मिला है। ज्ञानी कहते हैं – ससार कारागार से निकलने का यही उत्तम अवसर हैं। इस अवसर का उपयोग करो और इस जेलखाने से निकल जाओ। ज्ञानियो के इस प्रकार सावधान करने पर भी अगर कोई ऊघता रहता है तो ज्ञानी–जन क्या कर सकते हैं?

आप मे से कई सोचते होगे कि अवसर मिला है तो क्या हमे साधु हो जाना चाहिये। अगर नही तो फिर अवसर से लाभ उठाने का अर्थ क्या है। इसका उत्तर यह है कि अगर आप मे साधु बनने की क्षमता न हो तो सत्कर्म मे लग जाना उत्तम ही है। अगर इतनी क्षमता न हो तो सत्कर्म मे लग जाना भी इस अवसर की साधना है। इस अवसर को साधने के लिए परमात्मा की शरण मे जाओ और ससार के कष्टो से बचो।

ससार वही कहलाता है। जिसके कर्म के अधीन होकर जीव परिभ्रमण करते हैं। यह परिणाम कारण से ही होता है– बिना कारण नही। परिभ्रमण के कारणो की खोज ज्ञानियो ने की है। वे इस परिभ्रमण पर पहुचे है कि राग और द्वेष के कारण ही जीव को परिभ्रमण करना पडता है। राग और द्वेष हमारे द्वारा ही उपार्जन किये गये हैं और हम ही उनका फल भोगते है। ऐसी अवस्था मे परमात्मा को बीच मे घसीटने की क्या आवश्यकता है, हमारे किये राग–द्वेष के विषय मे परमात्मा क्या कर सकता है?

इसका सरल और सक्षिप्त उत्तर है कि परमात्मा की शरण मे जाने से राग द्वेष मिट जाते हैं अतएव परमात्मा की शरण मे जाने की आवश्यकता है। यह सही है कि राग और द्वेष आत्मा के किए हुए हैं, फिर भी उनका विनाश किया जा सकता है। बल्कि यो कहना चाहिए कि राग–द्वेष आत्मा के लिए हुये हैं इसी कारण आत्मा उनका अन्त भी कर सकता है। अगर राग द्वेष का अभाव सभव न होता तो परमात्मा की शरण मे जाने की आवश्यकता ही नही थी। राग–द्वेष का नाश हो सकता है, इस बात का प्रमाण यह हे कि उसमे न्यूनाधिकता होती है जो वस्तु न्यून और अधिक होती हे वह कभी मिट भी सकती है। जो वस्तु कभी न्यूनाधिक नही होती वह तो नही मिट सकती, पर न्यूनाधिक होने वाली का विकास भी देखा जाता है। इस प्रकार राग ओर द्वेष का विनाश होना सभव हे ओर इसी निमित्त से परमात्मा की शरण मे जाने की आवश्यकता है। जेन शास्त्र राग–द्वेष को विनष्ट करने के लिए ही परमात्मा की शरण लेने का विधान करता है। अन्यान्य ग्रन्थ भी इसी बात को पुष्ट करते है। जैसे वैदिक साहित्य मे कहा है –

द्वेद्वे हवइ कर्मणी वेदितव्ये पापस्येको राशि पुण्यकृतोमहन्ति।
तदीच्छ स्वकर्माणि सुकृतानि कर्तु इहैव ते कर्म कवयो वेदयन्ते।।

इस श्रुति का आशय यह है कि हे शिष्य। जागृत हो। सोता मत रह। तुझे अवसर मिला है। सुकृत कर ले। पुण्यकर्म यानी सु कर्म कर। इसी के लिए तुझे अवसर मिला। तेरी आत्मा मे करने की शक्ति तो है, लेकिन यह रोच कि उस शक्ति से क्या करना चाहिए? इस बात का सोचकर जागश्त होना।

आत्मा मे कर्तृव्य शक्ति विद्यमान है। वह दोनो प्रकार के काम कर सकती है। अच्छे काम भी उससे हो सकते हैं और बुरे काम भी हो सकते हैं। आपको दो हाथ मिले हैं। इन हाथो से दु खी को आश्वासन भी दिया जा सकता हे और किसी को थप्पड़ भी मारी जा सकती है। इस प्रकार शक्ति तो दोनो प्रकार की हैं मगर सोचना यह चाहिए कि हमारा हित क्या करने मे हे? इस विवेक मे ही मनुष्य की उत्कृष्टता छिपी है। डाक्टर जब आपरेशन करता हे तो मन एकाग्र कर लेता हे। इसी प्रकार आपके लिए भी मन को एकाग्र कर श्वेत–कर्म करने की आवश्यकता है। हाथ से आपरेशन भी किया जाता हे ओर छुरा भी मारा जाता हे। लेकिन करने योग्य क्या हे ओर न करने योग्य क्या हे अकबर ने कहा कि मजहबी झगड़े त्याग कर एक बात सीख लो कि इन हाथा से क्या करना चाहिए ओर क्या नही करना चाहिए?

यू कर यू कर यू न कर, यू करिया यू होय।
कहत अकबर बादशाह, जीत न सकता कोय।।

अर्थात् हाथ से दूसरे को आश्वासन द, सन्तोष दे दान द। किसी को थप्पड मत मार। अगर थप्पड़ मारगा या दुसरे के गले पर हाथ चलाएगा तो तुझ ऐसा ही फल भुगतना पडेगा। तुझे जो शक्ति मिली हे उसका सदुपयोग कर। दुरुपयोग मत कर। जो अपनी शक्ति का लाभ दूसरे को नही देता वह ससार मे आदर नही पाता। सूर्य अगर दूसरा का प्रकाश न द ता उसे कोन सूर्य कहगा? कान उसका आदर करेगा? इसी प्रकार आप अपनी शक्ति का लाभ दूसरा को नही पहुचाते ता किस प्रकार आपकी प्रशसा हा सकती ह?

बिजली का प्रकाश प्राप्त करन क लिए आपका पेसे दन पडत हैं। लकिन सूर्य का प्रकाश विना मूल्य चुकाये ही मिल जाता हे। पेस न चुकान पर बिजली का प्रकाश बन्द हा जाता हे मगर सूर्य का प्रकाश पेस न दन पर भी बन्द नही हाता। आप सूर्य क प्रकाश का उपयाग करत हैं ओर बदल म पेस नही दत। फिर भी उस प्रकाश का बदला किसी रूप म ता चुकाना ही

चाहिए। इसलिए मैं कहता हू कि आपको थोड़ी या अधिक जितनी भी शक्ति प्राप्त है उसका उपयोग दूसरे के हित मे भी करो। दूसरो का लेकर ही मत बैठे रहो। दूसरो से लेते हो तो दूसरो को देना भी सीखो। अकबर ने कहा है कि तुझे हाथ मिले हैं। तो उनसे दान दे। किसी गिरते को बचाने का प्रयत्न कर अगर इतना भी नही कर सके तो मुख से मीठे बोल ही बोल। कम से कम मीठे वचनो से तो दूसरो को सन्तुष्ट कर। कहावत है –

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजे चहु ओर।
वशीकरण एक मन्त्र है, तज दे वचन कठोर।।

अगर आप दूसरो को और कुछ नही दे सकते तो इतना तो दे ही सकते हैं। जहा मीठे वचनो का प्रयोग किया जाता है वहा पारस्परिक व्यवहार मे मधुरता आ जाती है और पारवारिक एव सामाजिक जीवन भी माधुर्य मय बन जाता है। जहा भाई, बहन, पति–पत्नी आदि मीठे वचन बोल कर एक दूसरे का सत्कार करते हैं, वह घर स्वर्ग बन जाता है। मीठे वचन खराब चीज को भी अच्छी बना देते हैं। कल्पना कीजिए आपके आगे किसी ने अच्छे–अच्छे भोजन परोसे और उन्हे खाने के लिए आपसे अनुरोध किया। आप भूखे भी हें और भोजन करना चाहते हैं। इस स्थिति मे अगर भोजन कराने वाला कह देता है– ' खाइए ऐसा उत्तम और स्वादिष्ठ भोजन तो तुम्हे बाप के राज्य मे भी नही मिला होगा।" तो वह उत्तम और स्वादिष्ट भोजन आपके लिए कैसा हो जायेगा? ऐसा भोजन आपके लिए विष के समान प्रतीत होगा। इसके विपरीत यदि भोजन निकृष्ट श्रेणी का हो मगर खिलाने वाला नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे– मेरे घर जैसा भोजन करना स्वीकार करके आपने बडा अनुग्रह किया है, इस खराब अन्न को भी आप मेरे स्नेह की मधुरता से रुचिकर बना लीजिये"। इस प्रकार मधुर वचनो के साथ मिला हुआ साधारण भोजन भी आपको प्रिय लगेगा। यद्यपि पहला भोजन दूसरे भोजन की अपेक्षा अधिक उत्तम है फिर भी आपके लिए वह विष सरीखा क्यो लगता है? और दूसरा भोजन निकृष्ट होने पर भी प्रीतिजनक क्यो मालूम होता है? इसका एकमात्र कारण वचनो मे अन्तर है। एक जगह वचन की मधुरता से भोजन मधुर हो गया और दूसरी जगह वचन की कटुता के कारण भोजन कटुक हो गया।

आप और कुछ नही दे सकते तो मीठे वचन तो दे सकते हें। मीठे वचनो के लिए कोई कीमत नही चुकानी पड़ती। मीठे वचन बोलने मे कोई विशेष श्रम या कठिनाई भी नही होती। वे सबके लिये सर्वत्र सुलभ हें।

कहावत हे – "वचनो की दरिद्रता" अर्थात– मीठे वचन बोलने म काहे की कजूसी। ऐसी सस्ती सुलभ और उपयोगी वस्तु का भी आप उपयोग न करे तो कितने विषाद की बात है। जब कोई अकिचन दीन भिखारी आपके घर भीख मागने आता है तो आप उसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं? उसे अपशब्दो का दान तो नही देते? गरीब बेचारा बडी आशा बाधकर आपके द्वार पर आता है और अतिशय दीनता के साथ आपके आगे हाथ पसारता हे। क्या इसलिए कि आप उसे डाट–फटकार कर भगा दे? चल बे चल यहा क्या तेरे बाप का खजाना गडा है। इत्यादि शब्द कहकर तो आप उसका सत्कार नही करते?

भारतवर्ष अपनी अनेक विशिष्टताओ मे अतिथि–सत्कार की विशिष्टता के लिए भी प्रख्यात था। किसी समय भारत मे असाधारण अतिथि–सत्कार होता था। उपनिषदो मे 'अतिथि देवो भव' का कितना सुन्दर विधान किया गया हे। नीतिकार भी कहते है –

सर्वेषाम्भ्यागतो गुरु

अर्थात्– घर पर आया हुआ अतिथि सबसे बडा माना जाता है। इन सब साहित्यिक विधानो का प्रभाव भारतीय जीवन पर बहुत गहरा पडा था। घर आया मॉ का जाया' अर्थात्– जो हमारे द्वार पर आया है वह चाहे कोई क्यो न हो हमारा भाई हे, इस प्रकार की लोकोक्तिया उस समय का प्रत्यक्ष प्रमाण हें। भारतीय इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होगा कि कई बार विदशी धूर्त लोगा ने भारतीयो की अतिथि–सत्कार की परम्परा से अनुचित लाभ उठाया था फिर भी भारतीयो न अपनी प्रकृष्ट परम्परा का परित्याग नही किया था।

लेकिन आज क्या स्थिति हे? आज भारतीय जीवन की क्रमश अधोगति हाती जा रही हे। भारत धीर–धीर अपनी सुन्दर परम्पराआ का परित्याग करता जा रहा हे। आज आआ' आआ' क स्थान पर 'जाआ–जाआ' हा गया हे। किसी का गिरान क लिए ता बहुत लाग तेयार हा जात हें मगर गिर हुए का उठान वाल विरल ही मिलत हें। लाग काम ता करत हें मगर उस तरह नही करत कि जिसस किसी का सुधार हा ओर लागा का धर्म की सहायता मिल। उदाहरण क लिए– यहा अशुचि साफ करन क लिए भगी का आन दिया गया था मगर यदि वह मर्यादा स बढकर व्याख्यान सुनन क लिए आना चाह ता उस नही आन दिया जाएगा। यह जाआ–जाआ नही ता क्या ह? मं उचित आर न्याय सगत मर्यादाआ का भग कर दन क लिए नही

कहता। सिर की जगह सिर और पैर की जगह पैर तो रहेगा मगर ऐसा व्यवहार करना भी उचित नही कि जिससे सिर और पैर मे बहुत दूरी पड जाये। कम से कम मीठे वचन बोलकर तो सब को सन्तोष दिया जाना चाहिए।

पूर्व समय मे प्रत्येक व्यक्ति से मीठे शब्द कहे जाते थे चाहे वह कितना ही नीच श्रेणी का क्यो न माना जाता हो, जब मैं छोटा था तो भगिनी, धोबिन नाइन आदि को भी काकी, मा आदि कहता था और उस समय ऐसा ही कहने की पद्धति थी। लेकिन आजकल इन सब का तिरस्कार किया जाता है। अवसर का विचार न करना और एकदम उनका तिरस्कार करना भारत के लिए बहुत हानिप्रद सिद्ध हुआ है। जिस कमी के कारण उन लोगो का तिरस्कार किया जाता है, उस कमी को दूर करने का प्रयत्न ही नही किया गया। इस दिशा मे प्रयत्न किया गया होता तो उनमे वह कमिया रह ही नही पाती। बहुत अर्से के बाद गाधी जी ने इस ओर ध्यान दिया है। उन्होने जो प्रयत्न किया है वह सभी को मालूम है। मैंने पोरबन्दर मे गाधीजी का जन्म स्थान देखा है। कभी – कभी मैं सोचने लगता हू कि उस अन्धेरे कमरे मे जन्म लेने वाले गाधीजी ने जगत् मे अहिसा का कैसा प्रचार किया है। मेरी दृष्टि मे उनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होने ससार को अहिसा का प्रताप सिद्ध कर दिया है। जिस विकराल काल मे सारा ससार हिसा पर भरोसा रखकर मारफाट की तैयारी मे लगा हुआ हो और प्रत्येक राष्ट्र मे अधिक से अधिक हिसक शक्ति का सचय करने की प्रतिस्पर्द्धा हो रही हो, उस समय अहिसा के सहारे ही अपने देश की स्वाधीनता के लिए सग्राम करना और अहिसा का प्रताप बतलाना क्या साधारण बात है? फिर हिसा मिटाने वाले एसे अहिसा परायण परुष की अहिसा की बात पर ध्यान देना उचित नहीं है?

अहिसा मानने वाले तो आप भी हैं। लेकिन अहिसा जीवित होनी चाहिए। मुर्दा अहिसा से कोई लाभ नही होता। अहिसा ऐसी सक्रिय होनी चाहिए जो हिसा का प्रबल विरोध करे। अगर हिसा न करना ही अहिसा मान लिया जाय अर्थात हिसा के अभाव को ही अहिसा समझ लिया जाये तो अहिसा का [illegible] ही नष्ट हो जायेगा। वास्तव मे अहिसा वह हे जो हिसा का विरोध करे। जस सूर्य वही हे जो अधकार का विरोध करता हे दवा वही [illegible] का विरोध करे इसी प्रकार अहिसा का यह क्रियात्मक रूप देने [illegible] अच्छा नही लगेगा? ओर जब वह सभी के लिए अच्छा हे तो [illegible] पर ध्यान देना उचित ह या नही?

आपको जन्मकाल से ही अहिसा के सस्कार मिले हैं। अतएव आपके ऊपर विशेष उत्तरदायित्व है। आपको सोचना चाहिए कि अहिसक के वस्त्र ओर अहिसक का भोजन केसा हुआ करता हे? लाख रुपये आपके सामने रखकर कोई कहे कि ये रुपये ले लो और एक बकरे को मार डालो। तो आप बकरा मारने के लिए तैयार नही हो सकते। प्रत्यक्ष मे तो आप इस प्रकार अहिसा का विचार रखते हें किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से किस–किस तरह की हिसा मे शामिल हो जाते है या सहायता करते हैं, यह भी देखना–सोचना चाहिए। वात यह है कि आप अप्रत्यक्ष रूप से हिसा मे सहायता करने मे अभ्यस्त हो गये हें। इसी कारण उस ओर आपका ध्यान नही जाता है और आप उस हिसा का विरोध नही करते हैं। इस बात को दृष्टि मे रखकर ही मानो वेदकी पूर्वोक्त श्रुति मे यह कहा गया है कि सुकृत करने की इच्छा कर। हे आत्मन्! अगर तुझमे पाप है तो भी घबरा मत, किन्तु सुकृत करने की इच्छा कर। तेरे भीतर अगर पाप राशि है तो पुण्यराशि भी हे। ससार मे एक भी प्राणी ऐसा नही हे जो एकान्त पुण्यशाली या एकान्त पापात्मा हो। सवार्थसिद्धि विमान का आयुष्य वाधने वाले मे भी ज्ञानावरणीय आदि कर्मरूप पाप होता ही है। इसी प्रकार नरक के प्राणियो मे भी किसी न किसी रूप मे पुण्य विद्यमान रहता हे। इस प्रकार प्रत्येक ससारी आत्मा मे पुण्य ओर पाप का अस्तित्व रहता हे।

आत्मा म पुण्य ओर पाप दोनो हें, फिर भी वेद का कथन हे कि ह पापराशि वाले आत्मा! तू सुकृत करने की इच्छा कर। इस प्रकार जिस आत्मा म पुण्य विद्यमान हे उसे भी पापराशि वाला कहकर भी सबोधित किया गया हे। मेरी समझ म इस कथन का कारण यह हे कि यद्यपि ससार म सभी लोग पुण्यात्मा कहलाना चाहते हें, सभी पुण्यमय बनना चाहते हें लेकिन काई केसा ही पुण्यात्मा क्या न हो उसमे भी किसी न किसी रूप म पाप हाता ही हे। इसी कारण यह कहा गया हे कि ह पापराशि वाले आत्मा! तू सुकृत करने की इच्छा कर। अर्थात् इसी दष्टिकाण से आत्मा को पापराशि वाला कहा गया हे। थाडा बहुत राग जिसम होता हे उस भी रागी कहा जाता हे। यद्यपि उसम रोग थाडा ओर अराग वहुत हे फिर भी वह रोगी कहलाता हे ओर वह स्वय भी अपन का रागी मानता हे। जव वह स्वय का रागी मानता हे तभी ओषध लन की आर उसकी प्रवृत्ति हाती हे। इसी प्रकार थाड़ स पाप क कारण भी जा अपन का पापी मानता हे वही सुकृत करन क लिए तेयार हा सकता हे। इसी अभिप्राय स कहा गया हे कि ह पापराशि वाल आत्मा!

तू सुकृत करने की इच्छा कर। तू अपने अन्तरात्मा मे ऐसा प्रकाश उत्पन्न कर जिससे किंचित् भी पाप न रहने पाये। इस प्रकार का प्रकाश मनुष्यजन्म मे जैसा उत्पन्न किया जा सकता है वैसा किसी दूसरे जन्म मे नही। इसी कारण मनुष्यजन्म देवजन्म से भी उत्तम माना गया है। देव जो कार्य नही कर सकता उसे मनुष्य कर सकता है। यद्यपि भोगोपभोग की सामग्री जैसी देवो को प्राप्त होती है, वैसी मनुष्य को नहीं प्राप्त हो सकती, फिर भी मनुष्य को बडा कहने का कारण यही है कि आत्मा अपने पापो को क्षीण करने का जैसा प्रयत्न मनुष्यभव मे कर सकता है वैसा प्रयत्न देवगति मे नही कर सकता।

देवो मे आप बडे हैं। फिर भी आप देवो से किसी चीज की याचना तो नही करते? अगर आप अपने धर्म पर दृढ रहे तो देव आपके दास हैं। शास्त्र मे कहा –

देवा वि त नमसति जस्स धम्मे सया मणो।

कहने का आशय यह है कि मनुष्य जन्म सुकृत करने के लिए बहुत उपयुक्त है। अतएव इसे पाकर सुकृत कर लो। अगर आप सुकृत करते रहे तो इस मार्ग से भी परमात्मा की शरण मे पहुच सकते हैं। और अपने पापो को नष्ट कर सकते है। मगर इसके लिए मन को दृढ करने की आवश्यकता है। जिसका मन प्रबल नही है, जिसकी इच्छा शक्ति मे दृढता नही है वह किसी भी काम को भली भाँति सम्पन्न नही कर सकता। जो अधूरे मन से कार्य आरम्भ करता है वह जरा–सी कठनाई आते ही उसे छोड बैठता है। यही कारण है कि निर्बल मन वाला व्यक्ति किसी भी कार्य को पूर्णता पर नही पहुचा सकता। इस सम्बन्ध मे शास्त्रो मे और ग्रन्थो मे अनेक उदाहरण दिये गये है जिन्हे समय–समय पर मैं आपको सुनाता भी रहता हू। आज भी पाण्डव चरित की एक घटना सुनाता हू।

भलीभाति विचार–विमर्श करने के पश्चात् श्रीकृष्ण पाण्डवो की ओर से सधि कराने के लिए दुर्योधन के पास गये थे। मगर सधि नही हुई। दुर्योधन दुराचारी था उसने साफ–साफ कह दिया कि युद्ध बिना मैं सुई की नोक बराबर भूमि भी नही दूगा।

यह सुनकर कृष्ण सोचने लगे– अब युद्ध अनिवार्य हो गया है। यद्यपि इस युद्ध से अनेक हानिया होगी और युद्ध न होने देने के लिए ही मैंने प्रयत्न भी किया पर दुष्ट कौरव अन्याय करने पर तुले हुए हैं अतएव युद्ध [illegible] ही पडेगा।

जव पाण्डवा को यह बात मालूम हुई तो वे रण तेयारी करन लगे। कृष्णावती नदी के किनारे पाण्डवा ने अपनी सेना एकत्र करना आरम्भ कर दिया। उन्होने सैनिक ढग से अपना शिविर बनाया। बीचाबीच कृष्ण का तम्बू लगा ओर वही द्रोपदी का भी डेरा लगा हुआ था। द्रोपदी कार्य करन म तो पुरुषा से आगे नही बढती थी मगर अपने विचार प्रस्तुत करने म सबसे आगे रहती थी। वह बहुत उग्र विचार की थी और उसकी वाणी मे बहुत ओज भरा रहता था। इसी कारण तम्बू वही लगाया गया था। शिविर म सेनापति धृष्टद्युम्न, राजा द्रुपद, विराट आदि के डेरे भी ढग से लगे हुए थे। पाण्डव सबकी यथोचित व्यवस्था करते थे। उन्होने सब राजाओ के पास युद्ध का निमन्त्रण भेजा था ओर उसमे स्पष्ट लिख दिया था कि जिसकी इच्छा हो – जो अन्याय के प्रतिकार मे सहायक बनना चाहता हो वह हमारी ओर से युद्ध मे सम्मिलित हो जाये। कौरवो ने भी राजाओ को आमन्त्रण भेजा था। अतएव कई राजा पाण्डवो की ओर से सम्मिलित हुए और कई कौरवा की आर।

कुन्दनपुर के राजा भीष्म के पुत्र रुक्म ने आमन्त्रण पाकर साचा– युद्ध का आमन्त्रण आया हे अतएव सम्मिलित होना आवश्यक ही हे। इस अवसर पर घर म बेठा ता रह नही सकता। परन्तु प्रश्न यह हे कि किस आर जाना चाहिय।

प्रश्न उपस्थित हो सकता हे कि युद्ध का आमन्त्रण पाकर सिर कटान के लिए जाना क्या आवश्यक हे? आज क लोग विवाह की कुकुपत्रिका भेजते हें ओर पत्रिका पाने वाला प्राय विवाह म सम्मिलित होता हे। लकिन पहल वीर पुरुष युद्ध का आमन्त्रण पाकर सर कटान क लिए भी जाया करत थ। मेवाड का इतिहास दखा ता मालूम हागा किस तरह राजा लाग युद्ध का आमन्त्रण पाकर युद्ध क लिय जाया करत थ। वल्कि मवाड क राणा की आर स युद्ध का आमन्त्रण पाना ओर राणा की सहायता करना गोरव की बात समझी जाती थी। मगर आज वह वीरता कहॉ? आज एसी निर्वलता आ गई ह कि युद्ध का नाम सुनत ही लागा का बुखार चढ जाता हे।

रुक्म न साचा– युधिष्ठिर का पक्ष बलवान हे और न्याय भी उसी आर ह। अत युधिष्ठिर क पक्ष म ही युद्ध करना चाहिए। लकिन वहिन क विवाह क समय कृष्ण न मरा जा अपमान किया था। वह अब तक मर हृदय म काट की तरह चुभ रहा ह। युद्ध म उस अपमान का वदला लना चाहिए। कठिनाइ यह ह कि कृष्ण स्वय युद्ध नही करग एसी स्थिति म मैं उनस वदला

कैसे ले सकता हू? मगर उनके मित्र का अपमान करके मैं अपने अपमान की भरपाई कर लूगा। इस प्रकार विचार कर और अपनी विशाल सेना को साथ साथ लेकर रुक्म रवाना हुआ। वह पाण्डवो के शिविर मे आया युधिष्ठिर ने उसका स्वागत्त किया। रुक्म ने पूछा– आप अब आनन्द मे हैं न?

युधिष्ठिर – वैसे तो आनन्द ही आनन्द है परन्तु आपके आगमन से विशेष आनन्द हुआ।

रुक्म– अगर ऐसे समय पर भी मैं न आता तो मेरी वीरता को कलक लगता। दुर्योधन का अत्याचार और आपका सौजन्य जगत मे प्रसिद्ध हो चुका है। ऐसा होते हुए भी अगर मैं अपने घर पर बैठा रहता और आपका आमन्त्रण पाकर भी न आता तो मेरा क्षत्रियत्व कलकित हो जाता है।

युधिष्ठिर– आपके विचार उच्च हैं और आपका हमारे प्रति प्रेम है। इसी कारण आप आये हैं।

रुक्म– मैं क्षात्रधर्म का पालन करने आया हू। न्याय की रक्षा करना क्षत्रियो का धर्म है। 'क्षतात्नाशात् त्रायतेइति क्षत्रिय"। जो धर्म की रक्षा करता है वही वास्तव मे क्षत्रिय है। ऐसे प्रसग पर मैं न आता तो मेरी माता को भी कलक लगता।

युधिष्ठिर– आपका कहना यथार्थ है। आपको ऐसा ही विचार रखना चाहिए।

युधिष्ठिर – सहदेव को बुलाकर कहा – देखो, यह रुक्म आये हैं। तुम इनका सत्कार करो और इनके साथ जो सेना है उसका भी उचित सत्कार करो।

यह सुनकर रुक्म ने कहा – मैं आया तो हू पर स्वागत सत्कार करने से पहले एक बात का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए।

युधिष्ठिर– अगर कोई बात स्पष्टीकरण करने योग्य हो तो अवश्य ही उसका स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए।

रुक्म– मेरे हाथ मे यह जो धनुष है, इसका नाम विजय है। ससार [illegible] धनुष प्रसिद्ध है– सारग गाडीव ओर विजय। सारग तो कृष्ण के पास [illegible] गाडीव अर्जुन के पास हे यह विजय मेरे पास है। इन तीनो मे से [illegible] आपके काम नही आ सकता क्योकि कृष्ण ने निरस्त्र रहने का निर्णय [illegible]। इस प्रकार अकेला गाडीव आपके पक्ष मे रह गया हे। मगर गाडीव [illegible] की समानता नही कर सकता। यह विजय धनुष अकेला ही [illegible] पर विजय प्राप्त कर सकता है। कौरवो पर विजय पाने

के लिए आप म से किसी को भी कष्ट नही उठाना पडेगा। इस विजय की सहायता से में अकेला ही आपको विजयी बना सकता हू। परन्तु बात का खुलासा हो जाना चाहिए। इसके लिए आप अर्जुन को बुलवाइये।

रुक्म के कहन से युधिष्ठिर ने अर्जुन को बुलवाया। रुक्म ने अर्जुन से कहा– यदि आप मरे कथनासुसार एक कार्य कर तो में अपना समस्त बल दे सकता हू। क्या आप मरा कहा कार्य करेगे?

अर्जुन– पहिले कार्य बतलाइये तो समझ कर उत्तर दूगा। बिना कार्य को समझे करने की हा नही कर सकता। कार्य सुनने के बाद ही किसी प्रकार की प्रतिज्ञा की जा सकती हे।

रुक्म– कार्य यही हे कि तुम मेरे पेर पर हाथ रखकर यह कह दो कि– 'में भयभीत हू ओर तुम्हारी शरण म आया हू, मरी रक्षा करो। बस, इतना करने से मेरा समस्त बल तुम्हारे पक्ष म हा जायगा।

भीम उस समय वही मोजूद थे। रुक्म की बात सुन कर भीम क नत्र लाल हो गए। मगर युधिष्ठिर ने उसे रोककर रुक्म से कहा– आप अभी आये हें थोडी देर विश्राम कीजिए। इस सम्बन्ध म फिर विचार करग।

रुक्म– एसा नही होगा। इसका निर्णय ता अभी हा जाना चाहिए। बालो अर्जुन, तुम क्या कहते हो?

अर्जुन– मुझ आश्चर्य हे कि इस प्रकार का विचार आपक हृदय म केसे उत्पन्न हुआ। मेंन कृष्ण क चरणा का हाथ लगाया हे ओर मरी यह प्रतिज्ञाा हे कि कृष्ण क सिवाय किसी दूसर क चरण का हाथ नहीं लगाऊगा। इसके अतिरिक्त आप मुझस कहलाना चाहते हें कि में भयभीत हू। मगर में भयभीत कब हुआ हू? जिस अर्जुन न समस्त कोरव–सभा का परास्त करक भी विजय का श्रय उत्तर का दिया यह अर्जुन भयभीत हाकर आपकी शरण म आव यह सम्भव नही ह। इसक अतिरिक्त आपक लिए भी यह शाभनीय नही कि आप स्वय किसी का शरण म बुलाव मेंन सिर्फ श्रीकृष्ण की शरण ली ह। दूसर किसी की शरण न ली हे ओर न ही ल सकता हू। आप आय ह ता मित्र की भाति आनन्दपूर्वक रहिय किन्तु यह आशा न रखिय कि अर्जुन आपकी शरण म आएगा। फिर भी अगर आप यह आशा नही त्याग सकत ता जसी आपकी इच्छा हा वेसा कीजिय।

अर्जुन का स्पष्ट उतर सुनकर रुक्म क्रुद्ध हा गया। वह कहन लगा– म इतनी विशाल सना लकर तुम्हारी सहायता क लिए आया हू। तुम इतन स शब्द भी नही कह सकत? अगर तुम इतना कह दा ता एक घडी क छठव

भाग मे ही तुम्हे विजयी बना सकता हू और युधिष्ठिर के मस्तक पर राजमुकुट रखवा सकता हू।

ऐसे प्रसग पर आपसे सलाह ली जाती तो आप अर्जुन को क्या सलाह देते? शायद आप यही सलाह देते कि ऐसे नाजुक मौके पर रुक्म के आगे नम्र हो जाना और रुक्म के अभीष्ट शब्द कह देना ही उचित है। रुक्म को किसी भी प्रकार से अपने पक्ष मे रखना चाहिए। मगर अर्जुन वीर था। रुक्म ने उससे यह भी कह दिया था कि मेरा कहना न मानोगे तो अपनी मृत्यु समीप ही समझ लेना, मैं अभी तुम्हारे शत्रु के पक्ष मे मिल जाऊगा। रुक्म की इस प्रकार की धमकी सुनकर भी अर्जुन ने परवाह नही की। अर्जुन ने यही कहा– अगर आपकी इच्छा विरुद्ध पक्ष मे जाने की है तो प्रसन्नता के साथ जा सकते हो मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध आपको रोकना नहीं चाहता। लेकिन आपके सामने इस प्रकार की दीनता नही दिखला सकता। आप कौरव–पक्ष म सम्मिलित होने की सोचते हैं मगर दुर्योधन आपसे अधिक बुद्धिमान है। वह आपके चाहे हुए शब्द कदापि नही कह सकता।

रुक्म– दुर्योधन को भी मेरे कहे हुए शब्द कहने पडेगे। वह नही कहगा तो मे उसके पक्ष मे भी सम्मिलित नही होऊगा।

अर्जुन– यह तो आपकी इच्छा पर निर्भर है। मगर इस प्रकार के शब्द कहने वाला कोई नही है।

रुक्म पाण्डवो की छावनी से अपनी विशाल सेना के साथ चला गया और देखते ही देखते कौरवो के शिविर मे जा पहुचा। अर्जुन सोच रहा था– एसा अभिमानी व्यक्ति कदापि विजय नही दिला सकता। विजय धनुष ने उसे जीत लिया है। फिर भी उसका अहकार ससार मे समाता। हमारे पक्ष मे भले ही थोडे योद्धा हो अगर वे उच्च श्रेणी के होगे तो हमारी विजय होगी। इस प्रकार के लोगो की भर्ती करना वृथा हे। धर्म के साथ व्यवहार करने वाले थोडे व्यक्ति भी पर्याप्त हैं धर्म के साथ व्यवहार करने वाले थोडे व्यक्ति भी पर्याप्त हैं धर्म को हार जाने वाले बहुत व्यक्ति भी व्यर्थ हैं यही नही बल्कि हानिकारक भी है।

कहने का आशय यह हे कि मन की दृढता के बिना कोई भी मनुष्य, [illegible] महत्वपूर्ण काम को पूर्णता तक नही पहुचा सकता। अर्जुन के मन मे दृढता थी। इसी कारण रुक्म के बहुत कहने–सुनने पर भी उसने दीनता [illegible] स्वीकार नही किया। आपक सामने युद्ध क ऐसे अवसर तो नही [illegible] छोटी–मोटी बातो मे भी आप अपने धर्म का आर गारव को नही

छोड बेठते? अगर आपको धर्म पर विश्वास है आपके मन मे धर्म के प्रति दृढता है, तो चाहे जैसा कठिन अवसर आवे या केसा भी लोभ सामने आवे आपको धर्म का परित्याग नही करना चाहिए। कहावत हे –

सत मत छोड़ो सूरमा, लक्ष्मी चौगुनी होय।
सुख दुख रेखा कर्म की, टार सके नही कोय।।

चिट्ठी पर लिखा जाने वाला साढे चोहत्तर का अक यह सूचना देता है कि सत्य का परित्याग मत करो। सात का अक कहता है कि मेरी (सत्य की) रक्षा करो और चार अक प्रकट करता है कि चाहे लक्ष्मी चौगुनी होती हो फिर भी सत्य मत छोडो। दो लकीरे यह बतलाती है कि सुख और दुख कर्म से मिलते हैं। सत्य का त्याग देने से दु ख मिटकर सुख नही बन जायेगा। अतएव किसी भी दशा मे सत्य मत जाने दो किन्तु प्रत्येक परिस्थिति मे धर्म की ही रक्षा करो। उदयपुर का तो मुद्रालेख ही यह है –

जो दृढ राखे धर्म को तेहि राखे करतार।

अर्जुन ने सेना सहित रुक्म को जाने दिया पर अपना धर्म नहीं जाने दिया। उसने वास्तविकता के विरुद्ध यह नही कहा कि मैं भयभीत हू। वह क्षत्रिय था। उसके मन मे दृढ आस्था है। तो क्या आप श्रावको को सत्य की रक्षा नहीं करनी चाहिए? श्रावक सत्य का आग्रही होना चाहिए। सच्चाई ओर मानसिक दृढता से ही सत्कर्म सिद्ध होते हैं। सत्य सरलता चाहता हे। अतएव सरलता के साथ सत्य का पालन करो। ऐसा करने से सब कठिनाइया दूर हो जाएगी ओर आत्मा का कल्याण होगा। सत्य का पालन करके ही आप भगवान अजितनाथ की शरण म पहुच सकत हें। भगवान की शरण म पहुचने का यह मार्ग सरल हे। इस सरल सन्मार्ग पर चलते चलो ओर स्व कल्याण साधो।

6. व्यष्टि और समष्टि

आज म्हारा समव जिनजी का हित चित से गुण गास्या राज।

यह भगवान समवनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे भक्त ने भगवान से जो आशा बाधी है, वह आशा सिर्फ उस अकेले भक्त की नही है वरन सारे जगत् की है।

प्रश्न हो सकता है कि इस आशा को समस्त् जगत् की आशा कहने का आधार क्या है? प्रार्थना करने वाले कवि ने क्या सारे ससार से पूछकर प्रार्थना की है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यहा जगत् के समस्त जीव तो विद्यमान नही हैं कही सब एकत्र किये भी नही जा सकते, लेकिन यहा जो सघ उपस्थित है उसकी आन्तरिक आकाक्षा को पहिचानकर हम जान सकते है कि प्रार्थनाकार कवि को सारे जगत् का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है या नही? और कवि ने जो आशा प्रकट की है वह उपस्थित सघ की भी आशा है या नही?

कोई भी व्यक्ति जब प्रार्थना मे पूर्ण रूप से सलग्न हो जाता है, तब उसमे से व्यक्तिगत भावना निकल जाती है और उसका स्थान समष्टि–भावना ग्रहण कर लेती है। ऐसा होना अनिवार्य है। परमात्मा की प्रार्थना करते हुए भी अगर व्यक्तित्व की भावना न मिटी और समष्टि की भावना न आई तो समझना चाहिए कि अभी परमात्मा की प्रार्थना मे पूर्णता नही आ पाई है। ज्ञानी पुरुषो का कहना है कि मनुष्य अपने व्यक्तिगत हिताहित का विचार तो अनादिकाल से करता आ रहा है लेकिन परमात्मा की प्रार्थना करने पर तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना आ जानी चाहिए और समस्त जगत् को अपना ही मानना चाहिए। जब अहभाव मे से सकीर्णता समाप्त हो जाए और उसकी सीमित परिधिया खत्म हो जाए तब समझना चाहिए कि परमात्मा की प्रार्थना हुई है। जब तक ऐसी व्यापक भावना उत्पन्न न हो समझ लो कि प्रार्थना करने में कसर है।

परमात्मा की प्रार्थना करने पर किस प्रकार वेयक्तिक भावना मिटकर समष्टि भावना आ जाती हे ओर समष्टि भावना आ जाने पर मनुष्य किस प्रकार परामात्मामय हो जाता हे, इस प्रश्नो का उत्तर बहुत विशाल है। फिर भी इस बात पर कुछ प्रकाश डालने के लिए कहना ही होगा। जल जब तक घडे मे हे तब तक वह घडे का जल कहलाता हे। जब वह जल घडे से वाहर निकल कर किसी प्रकार समुद्र म मिल जाता हे तब वही जल सागर बन जाता हे। फिर वह घडे का जल नहीं रहता। यद्यपि जल दोनो अवस्थाओ म एक ही हे, फिर भी उपाधि के कारण उसमे घड़ा ही उस जल और सागर के बीच मे अन्तराय हो रहा था। जब अन्तराय मिट गया तो जल सागर म मिल गया – सागर रूप हो गया।

इसी प्रकार जब तक आत्मा इस शरीर मे बैठा हुआ हे तब तो वह आत्मा कहलाता हे, लेकिन शरीर से मुक्त होने पर आत्मा ओर परमात्मा मे किसी प्रकार की विषमता नही रहती। जब तक शरीर के प्रति ममता है तब तक आत्मा परमात्मा से दूर हे। इसी ममता के कारण आत्मा अनादिकाल स दु ख भागता ही रहेगा। इस प्रकार शरीर के प्रति जो ममता हट जायेगी आत्मा ओर परमात्मा के बीच कोई पर्दा नही रहेगा, किसी प्रकार की विषमता शेष नही रहगी। अतएव ममता को मारने की आवश्यकता हे इसका आशय यह न समझा जाये कि शस्त्र से या विष स आत्महत्या कर ली जाय ओर इस प्रकार शरीर त्याग दिया जाये। एसा करन स लाभ क बदले हानि ही हागी। विषभक्षण करक शरीर का पूर्णरूप स त्याग नही किया जा सकता। मर कथन का आशय यह हे कि शरीर क प्रति आत्मीयता का भाव हटा दिया जाव। इसे पर–पदार्थ माना जाय इसक सुख–दुख का ही आत्मा का सुख–दुख ना समझा जाय बल्कि समष्टि क सुख–दु ख का एकाकार कर लिया जाय– जगत की शाति म अपनी शाति मानी जाय ससार क दु ख का अपन दु ख क रूप म ग्रहण किया जाय। जा पुरुप व्यक्तित्व का भूलकर समष्टि का ध्यान रखता ह ओर शरीर स ममत्व नही करता हे वह शरीर म रहता हुआ भी परमात्मा स दूर नही हे। व्यक्तित्व की भावना हट जान पर भी समष्टि की भावना आ जान पर शरीर क रहत हुए भी शरीर पर ममत्व नही रहता।

श्रावक प्राय प्रतिदिन यह पाठ वालत हं।

मित्ती म सव्व भूएसु।

अर्थात्– समस्त प्राणी मेरे मित्र हैं। मगर क्या आप कह सकते हैं कि पाठ का उच्चारण आप केवल जीभ से करते हैं, या हृदय से करते हैं? अगर यह पाठ हृदय से बोला जायेगा तो व्यक्तिगत स्वार्थो का परित्याग किये बिना आपको चैन ही नही पडेगा। यही नही, बल्कि हृदय से पाठ उच्चारण करने वाला समष्टि के सुख के लिए अपने शरीर को भी निछावर करने के लिए तेयार हो जायेगा। उस अवस्था मे धन की तो बात ही क्या है, तन भी तुच्छ दिखाई देगा। इस प्रकार की शक्ति किस मे आ सकती है, और किस मे नही आ सकती ऐसा कोई नियम नही है। यह शक्ति ब्राह्मण कहलाने वालो मे भी नही आ सकती और चाण्डाल कहलाने वालो मे भी आ सकती है। इसी प्रकार दूसरे मे नही आ सकती और ब्राह्मण मे आ सकती है। यानी इस सम्बन्ध मे कोई जातिगत या कुलगत नियम नही है। कोई भी क्यो न हो, जिसने समष्टि की भावना को अपनाया है वह महापुरुष है और ऐसे महापुरुषो से ही जगत का कल्याण हो सकता है। जिसकी दृष्टि मे व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रधानता रहती है जो अपनी हानि और अपने लाभ के गजो से ही अपने कर्त्तव्य को नापना जानते हैं उन से विश्व कल्याण नही हो सकता। ऐसे लोग तो ससार बहुत हुए है जिन्होने अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए समष्टि को सकट मे डाला है। ऐसे लोगो से जगत का हित नहीं अहित ही हुआ है। जगत् का हित तो समष्टिगत लाभ के लिए अपने व्यक्तित्व को भूल जाने वाले पुरुषो के द्वारा ही हुआ है। ऐसे ही पुरुषो ने महापुरुषो का पद पाया है। ऐसे महापुरुषो की शरण मे जाने के लिए ही कवि ने कहा हे –

आज म्हारा सभव जिनजी रा
हित चित से गुण गास्या राज।। आज ।।

भगवान सभवनाथ ने अपने सुख–दुख को भुलाकर जगत् के सुख के लिए ही व्यापार किया था। स्वार्थ–भावना रखकर व्यापार करना कोयले का व्यापार करने के समान है जिससे हाथ तो काले हो जाते हैं मगर नफा ज्यादा नही होता और स्वार्थ–भाव त्याग कर समष्टि के लाभ के लिए व्यापार [illegible] हीरे से भी बढकर है। इस प्रशस्त व्यापार की प्रशसा करने के लिए शब्द पर्याप्त नही है।

अतएव मेरा सदेश यही है कि अगर आप सभवनाथ भगवान की [illegible] करना चाहते है तो व्यक्तिगत लाभ की भावना से ऊपर उठो। [illegible] न भूल सको तो कम से कम अपने स्वार्थ के साथ– साथ [illegible] हित का ही ध्यान रखो।

यहा जो सघ एकत्र हुआ हे, वह कुछ काम करने के लिए हुआ हे या यो ही? आपको यह नही भूलना चाहिए कि जो समाज जगत के हित के लिए हे, उस समाज मे भाग न लेना, उसका सदस्य न बनना आत्महत्या के समान हे। दूसरे के हित के काम मे प्रमाद नही करना चाहिए ओर उसमे इस प्रकार भाग लेना चाहिए मानो वह अपने ही हित का कार्य हे।

मेने आपको एक वैदिक श्रुति सुनायी थी। उसका आशय यह हे कि पुरुषो के हृदय मे एक पापकर्म की राशि होती हे ओर दूसरी पाप–पुण्य की मिश्र राशि होती है। यह दोनो राशिया सदैव नही बनी रहती, बल्कि सुकृत की एक उज्ज्वल राशि उत्पन्न होकर इन दोनो राशियो को भस्म कर देती हे। उदाहरणार्थ– एक कमरे मे पूरी तरह से अन्धकार हे। दूसरे कमरे म टिमटिमाता हुआ दीपक जलता है जिससे किचित प्रकाश तो हे मगर सब अधकार नही मिटा है। सूर्य प्रकट होकर दोनो कमरो का अधकार मिटा देता हे। इसी प्रकार आत्मा मे विद्यमान पाप राशि को ओर मिश्र राशि को सुकृत की उज्ज्वल राशि नष्ट कर देती है। अतएव सुकृत किये बिना समय मत गवाओ। सुकृत करने से आत्मा मे रही हुई पापराशि ओर मिश्रशक्ति मिट जायेगी। सुकृत करने के लिए मनुष्य जन्म ही सवोत्तम अवसर हे। इसके लिए दूसरा शरीर उपयुक्त नही हे।

शास्त्र का समीचीन अर्थ जानकार के विना भली–भाति समझ मे नहीं आता। महाभारत मे कहा गया हे कि धर्मक्षेत्र ओर कुरुक्षत्र म युद्ध हुआ। लेकिन धर्मक्षत्र का अर्थ क्या हे ओर कुरुक्षेत्र का तात्पर्य क्या हे, यह बात ता कोई समझदार ही समझ सकता हे। कुरु का अर्थ हे –कु–रु–। जहा आज काटे उगते हें उस भूमि का सुधार किया जाये तो उनम गहू भी पेदा हो सकत हें। यह शरीर कुरुक्षेत्र हे। इस कुरुक्षत्र को भी प्रयत्न द्वारा धर्मक्षत्र वनाया जा सकता ह। काम क्राध माह मत्सर आदि का वास हान क कारण शरीर कुरुक्षत्र बना हुआ हे। जव इन विकारा का अन्त हो जावेगा ओर उनक स्थान पर अहिसा आदि सद्‌गुण आ जाएगे ता यह शरीर कुरुक्षत्र स धर्मक्षत्र वन जायेगा। शरीर जव धर्मक्षत्र वन जाता हे तभी आत्मा का कल्याण हाता हे अन्यथा नही।

म बार–बार आपका सुनाता हू आर आप वार–वार सुनत हें। मगर सुन लन मात्र स आत्मा की भलाई नही हा सकती। धर्म की जिस वात का आप श्रवण करत हें उस अपनी शक्ति क अनुसार अमल म लाइए। यह अपूर्व अवसर जा आपका मिला हे सा सुन लन भर का नही। यह कार्य करन का

अवसर है। कार्य करके दिखाओ। लोग सभाए करते हैं अधिवेशन किया करते हैं, सो इस उद्देश्य से कि कोई जनहितकारी मार्ग निकले। लेकिन इस प्रकार की सभा देखकर ही रह जाना ठीक है या उसमे सम्मिलित होकर नियमो का पालन करना उचित है? जो सभा–सोसाइटी कुछ व्यक्तियो के स्वार्थ के लिए न हो किन्तु जगत् का हित करने के लिए हो वही सच्ची सभा–सोसायटी है, अन्यथा उसे स्वार्थियो का गुट ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार वही समाज समाज है जो समष्टि के हित को अपना लक्ष्य बनाता है। सब का हित सामने रखकर कार्य करने पर सभी कार्य सम्भव है।

व्यक्तिगत स्वार्थ को किस प्रकार भूल जाना चाहिए और समष्टि का किस प्रकार ध्यान रखना चाहिए यह बात भी पाण्डवो के चरित्र से समझी जा सकती है। कई लोगो को भ्रम हो रहा है कि अपने घर मे साहित्य नही मिलता किन्तु बाहर ही सत्य मिलेगा। यह भयानक भ्रम है। जब बाहर देखना त्याग कर अपने घर को देखोगे तो पता लगेगा कि जहा के पृथ्वी–पानी से आपका शरीर बना है उस भारत मे कैसा साहित्य विद्यमान है। दूसरा के साहित्य की प्रशसा मे अपने साहित्य को भूल जाना अनुचित है। आप जिस भूमि मे उत्पन्न हुए हैं उसकी महिमा का विचार करो उसकी ओर अवज्ञा का भाव रखना और दूसरे देशो की तरफ टकटकी लगाना कृतघ्नता है। अमेरिका के देश भक्त डॉक्टर थोर की बात मैं कई बार कह चुका हू। उनका कहना है कि जिस भूमि ने मेरा बोझ उठा रक्खा है उसे स्वर्ग से भी बढकर मानना चाहिए। यही बात हमारे यहा भी कही गई है –

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

बहुत से लोग स्वर्ग की प्रशसा के गीत गाते हैं और कहते हैं कि यहा तो दुख ही दुख है लेकिन शास्त्र के अनुसार इस भूमि का महत्व समझोगे तो पता चलेगा कि स्वर्ग बडा है या यह भूमि बडी हैं। इसी प्रकार बहुत से लोग भारत को तुच्छ और यूरोप के पेरिस आदि नगरो को महान समझते हैं। जो आदमी अपने घर को नही देखता है किन्तु बाहर ही देखता है, उसमे इस प्रकार का विचार होना स्वाभाविक है। लेकिन उन्हे यह नही भूल जाना चाहिए कि केवल बाहर देखकर घर की उपेक्षा या अवज्ञा करने से कुछ भी नही होगा। अपने घर मे कुछ है या नही इस बात का पता तो अभी लग सकता है जब ध्यानपूर्वक घर को टटोला जाय। जिस भारत के आगे यूरोप की प्रशसा की जाती है उसके विषय मे दुर्लभजी भाई (जयपुर निवासी श्री देवचद भाई जोहरी) के लडके जो कई बार यूरोप जा आये हैं, कहते थे

कि यूरोप मे तलाक तो होता ही था अब परिमित समय के लिए विवाह भी हो सकता है। इस नियत अवधि के पश्चात् पति और पत्नि दोनो स्वतन्त्र हैं। वे चाहे तो किसी दूसरे के साथ विवाह कर सकते हैं। यह उस स्वर्ग का हाल है जिस पर ललचाकर भारत की निन्दा की जाती हे। क्या यह पद्धति आर्यदेश के लिए घृणास्पद नहीं हे

खेद है कि आज अपने भारतवासी विदेश की चाल–ढाल पर ललचाकर भारत के शत्रु बन रहे हैं– मातृ भूमि के विराधी हो रहे हैं। यद्यपि प्रकट मे कोई अपनी मातृभूमि का शत्रु नही बनना चाहता लेकिन कार्य ऐसे किए जाते हैं। उदाहरणार्थ– जहा पैदा हुए है वहा का खाना–पीना पसन्द न करके दूसरे देश का खाना पीना पसन्द करना। यह मातृभूमि से शत्रुता करना नही तो क्या है? माता का बनाया भोजन पसन्द न आना और वेश्या का वनाया पसन्द करना क्या माता के प्रति द्रोह करना नही है? ऐसा व्यक्ति मातृद्रोही ही कहा जा सकता हे। इसी प्रकार जिसे भारत का रहन–सहन, खान–पान ओर पोशाक पसन्द नही हे वह मातृभूमि का द्रोही क्या नही? विदेशा की देखा–देखी अपने आचरण को खराब करना अपने आत्मा का अहित करना हे। क्योंकि जिसका बाहरी आचरण शुद्ध रहता हे उसी का आन्तरिक आचरण शुद्ध रह सकता है। जिसका बाहरी आचरण ही शुद्ध नही हे, उसका आन्तरिक आचरण शुद्ध किस प्रकार रह सकता हे? जब तक बाह्य आचरण शुद्ध नहीं हे तव तक यह नहीं कहा जा सकता कि आन्तरिक आचरण शुद्ध हे। मुझ म साधुता तो हो मगर साधु के योग्य वेष मेंन धारण न किया हो तो क्य आप मुझे साधु कह सकत हें? अगर नही तो आप हमार वेष का तो इतना ख्याल रखते हें ओर अपने वष का ख्याल नही रखते। यह कंस उचित कहा जा सकता हे? आज आप अपन वेष का ख्याल नही करते हैं लेकिन जरा विचार तो करो कि आपक पूर्वज कंस हुए हें इस वात का जानन के लिए पाण्डव–चरित्र म स एक घटना सुनिये।

कोरव ओर पाण्डवा म कलह क्या थी? इस प्रश्न का उतर लम्वा हें?। उस पर विवचन करने का समय नही हे। यहा सिर्फ इतना ही कह दना पर्याप्त ह कि युधिष्ठिर स दुर्योधन न साफ कह दिया– युद्ध क बिना मैं थाडी–सी भी भूमि नहीं दूगा। दुर्योधन का यह स्पष्ट उत्तर पाकर भी युधिष्ठिर न साचा– हम थाडा प्रयत्न ओर कर लना चाहिए जिसस काई हम दाषी न ठहरा सक। यह साचकर पाचा पाण्डव द्रापदी क साथ कृष्ण क पास द्वारका गय। युधिष्ठिर न कृष्ण का सारा वृतात सुनाया। उन्हान यह भी कहा

– दुर्योधन के भीषण अत्याचारो ओर अन्यायो के बावजूद भी मै यह चाहता हू कि भारतवश सुरक्षित रहे। उसे किसी प्रकार क्षति न पहुचे। लेकिन दुर्योधन हमारे राज्य मागने पर भी नही लौटाता और हमे दबाता है। हम आपके पास आये हैं। आप हमे जो आदेश देगे, उसे हम शिरोधार्य करेगे यह कहने की तो आवश्यकता ही नही है।

इस प्रकार युधिष्ठिर ने कृष्ण पर भार डाल दिया। भीम ओर द्रौपदी ने भी अपने उग्र विचार कृष्ण के सामने प्रकट किये। सब की बात सुनकर कृष्ण ने अर्जुन से पूछा तुम चुप क्यो हो? तुम भी अपने विचार प्रकट करो।

अर्जुन ने नम्रता के साथ कहा– जब मैं आपका शिष्य बन गया हू, मैने आपको हाथ जोड़ लिये हैं, तो आपसे भिन्न कहा रहा? मुझ मे कुछ जानने या पूछने की आवश्यकता ही क्या रह गई? मैं अपना सर्वस्व आपको सौप चुका हू। मेरा सिर्फ एक ही कर्तव्य है– आपके आदेश को स्वीकार करना। ऐसा करने मे चाहे सर्वस्व जाता हो या प्राण देने पडते हो।

कृष्ण – यह तो ठीक है मगर तुम्हारे विचार जाने बिना संधि करने जाऊ और वहा तुम्हारे विचारो के विरुद्ध कोई कार्य हो जाये तो ठीक नहीं होगा। अतएव मैं तुम्हारे विचार जान लेना चाहता हू।

अर्जुन – सूर्य के सामने दीपक की क्या बिसात है? फिर भी सूर्य की पूजा करने वाले लोग सूर्य को अपने घर का दीपक दिखाते ही हैं। इसी प्रकार आपके सामने मेरे विचार दीपक के समान हैं। लेकिन आपका आदेश है तो मै उसका उल्लघन नहीं कर सकता और अपने विचार आपके समक्ष रखता हू।

अर्जुन ने कहा– कृष्णजी, हम मे शक्ति है, मगर धर्मराज अवसर आने पर हमे दबा देते हैं। मुझे मे यह बात रुचती नही। यद्यपि मै अपने ज्येष्ठ भ्राता का विरोधी नही हू, और उनकी आज्ञा का अनुयायी हू, फिर भी इस समय मै अपने स्वतन्त्र विचार प्रस्तुत कर रहा हू। मैं मानता हू कि राज्य मागने से नही मिला करता। हमने दुर्योधन ओर धृतराष्ट्र के हृदय को परख लिया है। वे राज्य देने की इच्छा नही रखते। बल्कि हमारे मागने से उनका साहस और बढ गया है। वे समझने लगे हैं कि हमारे दिये बिना पाण्डव राज्य नहीं पा सकते। अगर राज्य पर इनका हक होता और उसे पाने की इनमे शक्ति होती तो याचना क्यो करते? इस प्रकार मागने से कौरव राज्य नहीं देगे। फिर भी अपने अधिकार का राज्य तो लेना ही है। अतएव हमे अपना अधिकार अपनी शक्ति से ही प्राप्त करना चाहिये। याचना करना पौरुष का नाश है।

कृष्ण– तो क्या तुम्हारा यह अभिप्राय हे कि भीम के कथनानुसार में कौरवो के सामने युद्ध का ही प्रस्ताव उपस्थित करू?

अर्जुन– मैंने भीष्म और द्रोण से समझा है कि युद्ध मे कितनी बुराइया हें और उससे कितनी अधिक हानि होती हे। युद्ध मे एक पक्ष दूसरे पक्ष का विनाश ही चाहता हे और विनाश ही करता है, लेकिन वास्तव म भावी प्रजा के लिए निर्णय करने के अधिकारी हम कैसे हो सकते हैं? अपने स्वार्थ के लिए भावी प्रजा को सकट मे डाल देना राजनैतिक बुद्धिमत्ता नही है। अतएव मैं युद्ध का ही प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए नही कहता। मेरा कथन सिर्फ यह हे कि हमारा हक हर हालत मे हमे मिलना चाहिये। आप जिस विधि से उचित समझे, हमारा हक दिलावे।

कृष्ण– यह तो ठीक है। मगर मैं जा रहा हू। अगर भीष्म और द्रोण को कोई सदेश कहना हो तो कहो।

अर्जुन– आपके द्वारा ही अगर उन्हे सदेश न भेजूगा तो फिर किसके साथ भेजूगा? आप कृपा कर मेरे काका धृतराष्ट्र से कहना कि आप आखा से अधे हें, मगर हृदय से पाण्डवो को और दुर्योधन को समान समझ। मगर आप पक्षपात मे पड गये हें ओर दुर्योधन को अधिक तथा हमे न्यून मान कर अपने बडप्पन म कलक लगा रहे हें। अभी तक जो हुआ सो हुआ। लेकिन अब ऐसा उपाय करो कि कुल का विनाश न हो।

काका से यह कहने के साथ ही आप भीष्म ओर द्रोण से यह कहना कि अर्जुन ने आपको प्रणाम किया हे। वह आपके उपकारा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हे। वेस ता आप सत्य के पक्षपाती हें ओर हमस स्नह करते हें लेकिन एसे नाजुक प्रसग पर चुप्पी साधना अपनी वीरता ओर अपन क्षत्रियत्व का कलक लगाना हे। आपन ऐन मोके पर मोन रह कर सत्य ओर स्नेह की रक्षा नही की हे अव भी आप सावधान हा। दुर्योधन आपक बल क भरोस ही सना सजा रहा हे ओर आप उसके अन्याय का जानत हुए भी उस सहयोग दन के लिए तेयार हुए हें यह सर्वथा अनुचित हे।

इतना कहकर अर्जुन न कहा – आप मरी तरफ स यह सदश कह दना। अन्त म यही कहता हू कि मरी बुद्धि अल्प हे ओर आपकी बुद्धि सागर क समान अथाह ह। अतएव आप जा भी कुछ करग। हम उसम अपना कल्याण मानग ओर आपक किय कार्य क विरुद्ध कदापि कुछ भी नहीं कहग।

अर्जुन से यह कह चुकने के पश्चात् कृष्ण ने युधिष्ठिर से पूछा – आपका क्या विचार है?

युधिष्ठिर– मैने आपकी शरण मे रहकर आपका उपदेश सुना है। मै जानता हू कि बडे–बडे शास्त्रज्ञ भी आपके विचार सुनकर नम्र हो जाते हैं और अपना पक्ष छोड देते हैं। आपके विचार हृदय को इस प्रकार प्रभावित कर दते है कि उनके विरुद्ध कोई कुछ भी नही कह सकता। अतएव आप जो कुछ करेगे, मुझे स्वीकार होगा।

युधिष्ठिर ने भीम, नकुल और सहदेव से पूछा– तुम्हारा क्या विचार है? सभी ने कृष्ण पर अपना विश्वास प्रकट किया और उनके निर्णय का स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की।

अन्त मे द्रोपदी की बारी आई। उससे पूछा गया– देवी, तुम्हारा क्या विचार है? इस प्रश्न के उत्तर मे द्रोपदी ने अपने केश हाथ मे लेकर कृष्ण से जो कुछ कहा था, वह कथन ऐसा था कि उससे मुर्दा हृदय मे भी एक बार जान आ सकती थी। उसने ऐसी उग्रता भरी बात कह कर भी अन्त मे यही कहा – आप मेरे केशो का विचार अवश्य रखे, यो तो मैं आपके साथ ही हू। आप जो कुछ करेगे हमारे हित मे ही होगा वह सब मुझे स्वीकार होगा।

इस प्रकार द्रोपदी सहित सभी पाण्डवो ने कृष्ण जी पर अपना पूर्ण विश्वास प्रकट किया। परिणाम इसका यह हुआ कि महाभारत – सग्राम मे पाण्डवो को ही विजय प्राप्त हुई। यद्यपि युद्ध मे कृष्ण निश्शस्त्र थे फिर भी कृष्ण पर ही सब ने विश्वास प्रकट किया। इसी विश्वास की बदौलत उन्होने विजय पाई थी। इस घटना के प्रकाश मे हमे अपने कर्त्तव्य का निर्णय करना चाहिए। आप को किस पर विश्वास रखना चाहिए? सासारिक सकट जब आपके मस्तक पर मडरा रहे हो और जब आपका अधिकार दूसरे ने अपहरण कर लिया हो तब आपको वीतराग भगवान पर अचल आस्था रखनी चाहिए। आपको उनका निर्णय स्वीकार करना चाहिए। ऐसा करने से आपकी विजय होगी। भगवान वीतराग का आदेश है कि काम, क्रोध मोह, मद, मत्सर, का त्याग करो। आप वीतराग के आदेशो पर आस्था रखो तो आपका कदापि अकल्याण नही होगा किन्तु कल्याण ही होगा।

7. जय जय जगत–शिरोमणि

मुझ पर महर करो चन्द्रप्रभो। जगजीवन अन्तर्यामी।

यह भगवान चन्द्रप्रभु की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे आगे चलकर यह सरल बात कही है –

जय जय जगत्–शिरोमणि।

अर्थात्– हे जगत् के शिरोमणि। तेरी जयजयकार हो। या तो यह सरल ओर साधारण सी बात हे परन्तु गभीरता के साथ विचार करने पर प्रतीत हाता हे कि सरल उक्ति मे भी अतीव गभीर रहस्य छिपा हे।

जगत विचित्रताआ से भरा हे ओर जो विचित्रताआ से भरा हे वही जगत् कहलाता हे। परमात्मा ऐस जगत का शिरामणि हे यह सुनकर किसी के मन मे किसी प्रकार की भ्रान्ति भी हा सकती हे। इस जगत् म स्वर्ग भी हे ओर नरक भी हे। स्वर्ग केसा हे ओर नरक केसा हे इन दाना म केसा विचित्रता हे? फिर भी जगत् म दाना का समावश हा जाता हे। जगत् के प्राणिया म भी कोई परमात्मा हे ओर कोई पुण्यात्मा हे। काई एसा सुखी जान पडता ह कि स्वर्ग का नीचा दिखलाता हे ओर काई नारकीय वदना भागता हुआ घार दु खी हे। काई एस कार्य करत हे कि स्वर्ग म रहन वाल भी नही कर सकत आर इसक विपरीत किसी–किसी की करतूता स नारकीय जीव भी लज्जित हो सकत हें। फिर परमात्मा एस विचित्र जगत का स्वामी कहलाता ह। यह बात किस प्रकार समझी जाय? परमात्मा का जानन क लिए कान–सा मार्ग ग्रहण किया जाय?

इस सम्वध म ज्ञानीजना का कथन हे कि घवराआ मत। जव तुम जगत क शिरामणि स भटना चाहाग आर भटन क लिय प्रवल इच्छा कराग ता भट अवश्य हागी। जव जगत का दख रह हा ता उसक शिरामणि की शरण म जाआ। जगत शिरामणि की शरण म जान पर तुम्ह अनन्य प्रकार की शान्ति प्राप्त हागी।

कहा जा सकता है कि वह जगत् शिरोमणि दूर–परोक्ष है। हम उसकी शरण मे किस प्रकार जाए? इसका उत्तर यह है कि जिसके पर दिख रहे हैं वह सामने ही है ऐसा माना जाता है। विद्वानो का कहना है कि जिसका एक अश दिखाई दे रहा है, उस अशी का अस्तित्व भी अवश्य स्वीकार करना चाहिए। जिसका एक अग दिखता है, वह प्रयत्न करने पर सम्पूर्ण भी दिख सकता है।

परमात्मा के विषय मे भी यही बात है। नीची स्थिति के लोग अर्थात् दुखीजन परमात्मा के चरण हैं, ऐसा मान लेने पर परमात्मा पहचाना जा सकता है। किसी दुखी का देखकर यह समझो कि यह परमात्मा का चरण है। इस प्रकार मानते रहने पर तुम परमात्मा को प्राप्त कर सकते हो, दुखी को परमात्मा का पर मानकर परमात्मा को प्राप्त कर सकने के अनेको उदाहरण है। मेघकुमार को दुखी शशक ने ही मेघकुमार बनाया था और राजा मेघरथ को दु खी कपोत ने ही शान्तिनाथ बनाया था। इसी तरह आत्मा को ऊची स्थिति मे चढाने वाले दु खी जीव ही हैं। दुखी या रोगी ही डाक्टर को डाक्टर बनाते हैं। दुनिया मे रोगी न होते तो डाक्टर कहा से आते? और उन्हें चिकित्सक कौन कहता? अतएव दुखी जीव को देखकर उन पर करुणा लाना ऊची स्थिति पर चढने का मार्ग है। इसी मार्ग पर चलने से परमात्मा की प्राप्ति हाती है। यह मार्ग दयाधर्म भी कहलाता है। दयामार्ग का मार्ग ही आत्मा को ऊची स्थिति पर चढाने वाला और परमात्मा से भेट कराने वाला है।

ससार दु खो से व्याप्त है। इसमे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दु ख बहुत भरे हुए है। इन विविध प्रकार के दु खो मे भी आध्यात्मिक दु ख सब स बढकर हे। इस दु ख ने बडे–बडे लोगो को भी घेर रखा है। इस आध्यात्मिक दु ख को मिटाने के लिए दयामार्ग बतलाया गया है।

अगर दयाधर्म का पालन करने से आध्यात्मिक दु ख की समाप्ति हो जाती है तो साधु इस मार्ग को क्यो नही अपनाते हे? साधु के पात्र मे रोटी मौजूद हो और सामने कोई भूखा आदमी आया हो तो साधु अपने पात्र की रोटी भूखे को नही दते। एसी स्थिति मे यह केसे कहा जा सकता है कि साधु [illegible] दयाधर्म का पालन करते है? अगर वे दयाधर्म के पालक हैं तो अपने पात्र की रोटी भूखे को क्यो नही दे देते? जब वे रोटी नही देते तो उन्हे दयालु कैसे कहा जा सकता है।

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि साधु स्वय तो रोटी बनाते नही है [illegible] भूख मिटाने के लिए गृहस्थ के घर से मागकर लाते हैं।

जब कि वे वह रोटी खुद के लिए मागकर लाए हें तो फिर दूसरे को कैसे दे सकते हैं? उन्हे वह रोटी दूसरे को देने का अधिकार नही है। अगर वे अपने लिए लाकर दूसरे को रोटी दे दे तो अप्रामाणिक ठहरे और गृहस्थी की दृष्टि मे अविश्वास के पात्र गिने जाए। मान लीजिए आपको किसी ने दस रुपये इसलिये दिये हैं कि आप इन रुपयो को गौशाला मे लगा देना। इसी बीच दस भूखे आदमी आपके सामने आ गये। अब क्या आप उन भूखो को भोजन देने के लिए उन रुपयो का उपयोग कर सकते हैं? ऐसा करने का आपको अधिकार नही है क्योकि रुपये आपको दूसरे उपयोग के लिए दिये गए हैं। आप उन रुपयो से भूखो को भोजन नहीं दे सकते, सिर्फ इसी कारण यह नही कहा जा सकता कि आप निर्दय हैं अथवा आप भूखो को भोजन देना बुरा समझते हैं। इसी प्रकार साधु के पास जो भी भोजन है वह स्वय के लिए ही साधु माग कर लाया हैं। साधु के लिए ही देने वाले ने भोजन दिया है किसी दूसरे को देने के लिए नही दिया है, ऐसी स्थिति मे साधु अपने पास की रोटी किसी दूसरे को देने का अधिकारी नही हे। मगर इतने मात्र से यह नही कहा जा सकता कि साधु के दिल मे दया नही है। साधु का हृदय दया से परिपूर्ण हाता हे वह दया धर्म का पालन भी करता है, फिर भी विश्वासघात करके या अप्रमाणिकता का सेवन करके अपना भोजन दूसरो को नही देता। अलबत्ता साधु दूसरे प्रकार के दयाधर्म का पालन करता हे। इस सम्बन्ध म कहा हे–

जहा पन्नस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ
जहा तुच्छस्स कत्थइ तन पुन्नस्य कत्थइ।।

अर्थात – साधु जिस प्रकार सम्पन्न पुरुष का धर्मोपदश सुनाता हे, उसी प्रकार दरिद्र को सुनाता हे ओर जिस प्रकार दरिद्र का सुनाता हे उसी प्रकार सम्पन्न का सुनाता हे। साधु का सधन निर्धन म किसी प्रकार का भद नही रखना चाहिए। उस दाना क प्रति समभावी हाना चाहिए। जा धनवान आर निर्धन म भद करता हे वह साधु नही हे। किसी न यथार्थ कहा हे–

धनवत को आदर कर निर्धन को करे दूर।
ते साधु खाणे मती रोटी तणा मजूर।।

इस प्रकार साधु धर्म का उपदश दन म किसी क साथ पक्षपात न कर। एसा करन पर ही वह साधु कहला सकता हे।

कहा जा सकता हे कि अगर विना भदभाव क साधु धर्मोपदश दता ह ता शास्त्र म राजा आदि का सम्बाधन करक सब वात क्या कही गई हैं।

इसका उत्तर यह है कि दवा देने वाला पहले उसी को दवा देता है जो ज्यादा रोगी हो। इसी के अनुसार साधु जिसके विषय मे सोचता है कि इस पर ससार के काम का बोझ ज्यादा है ओर इसको आध्यात्मिक कष्ट ज्यादा है, उसी को सम्बोधन करके उपदेश देता है, जिससे उसके साथ ही साथ दूसरो का भी कल्याण हो सके। यद्यपि शास्त्र मे जो कुछ कहा गया है वह सारे ससार के लिए है। उससे प्राणीमात्र का समान रूप से हित है। फिर भी राजा आदि को सम्बोधन करने का कारण यह नही हैं कि साधुओ को उससे किसी प्रकार की आशा रही हो। जिन्होने उपदेश दिया है उनमे से बहुत से स्वय राजा थे और राज्य को उपाधि समझकर, उसे त्यागकर साधु बने थे। फिर वे राजाओ से क्या आशा रखते? उन्हे सम्बोधन करने का बोझा बहुत ज्यादा था और आध्यात्मिक दु ख उन्हे बहुत था। आपके सामने दस स्त्रिया अपने सिर पर खाली घडे रखे खडी हो और दस ऐसी हो जिनके सिर पर पानी से भरे घडे हो। अगर आपको उनका बोझ उतारने का मौका आवे तो पहले किसका बोझ उतारेगे? निस्सन्देह अगर आप समभावी हैं तो पहले उनका बोझ उतारेगे जिनके सिर पर ज्यादा बोझ है। इसी प्रकार राजा आदि मे आध्यात्मिकता की ज्यादा कमी देखा देखता कि वे ससार मे ज्यादा फसे हैं तो उन्हे सबोधन किया।

आपके सामने आपके पिता खडे हो और राजा भी खडा हो, ऐसी अवस्था मे आप पहले किसे नमन करेगे? आप अपने पिता को पहले नमन न करके राजा का ही करेगे। इसका कारण यह है कि आपका पिता तो सिर्फ आपका पालन करता है और राजा समस्त प्रजा का पालन करता है। महात्मा सब को समान मानते हैं। वे किसी के प्रति भेदभाव नही रखते। फिर भी जिस पर ज्यादा बोझ देखते हैं और समझते हैं कि उसके सुधारने से बहुतो का सुधार हो जायेगा उसको सम्बोधन करके बात कहते हैं। तात्पर्य यह है कि साधु समान भाव से आध्यात्मिक दु ख मिटाने रूप दया करते हैं। यह दया करने मे वे किसी प्रकार का पक्षपात या भेदभाव नही करते। साधु के हृदय से समान रूप से सभी पर दया का अमृत बरसता है।

इस प्रकार परमात्मा से मिलने का मार्ग दु खी जीवो पर करुणा [illegible] है। कदाचित आप सब पर दया न कर सके सब दुखियो की सहायता [illegible] भी जो दु खी आपके सामने आये जिसका दु ख दूर करना [illegible] बाहर न हो उसका ही दु ख मिटाओ। उन पर तो करुणा [illegible] भी दवाखाना ससार के समस्त रोगियो की दवा नही

पहुचा सकता फिर भी जिस दवाखाने में किसी प्रकार का भेदभाव नही किया जाता ओर आने वाल प्रत्येक रोगी को दवा दी जाती है, वह सार्वजनिक दवाखाना कहलाता हे। इसी प्रकार जो पुरुष अपन हृदय म दया का मार्ग खुला रखता हे जिसके दिल मे प्रत्येक दुखिया को स्थान है, वह दयालु ही कहा जाता हे। उसके विषय मे यही कहा जायेगा कि वह परमात्मा का प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हे।

आत्मा, परमात्मा से तभी भेट सकता हे जब वह अपने दुर्गुण आप दखने लगता हे और सम्मान पाने की इच्छा का परित्याग कर देता हे। जो सम्मान पाने की इच्छा का परित्याग कर देगा, वह अपने पाप दूसरे के समक्ष प्रकट भी कर देगा। अपने पाप दूसरे पर प्रकट कर देने से आत्मा मे से पुरस्कार का भाव मिट जायेगा ओर अपुरस्कार भावना उत्पन्न होगी। इसी कारण यह अप्रशस्त योग स निकल कर प्रशस्त योग म प्रवेश करेगा। इसके विरुद्ध जहा सम्मान की इच्छा हे वहा अपने पापो को प्रकाशित कर देने की शक्ति का अभाव हे। ऐसे व्यक्ति मे अहभाव होता हे। वह प्रशस्त योग म भी नही वर्तता हे। जहा पुरस्कार की भावना होती हे अप्रशस्त योग बना रहता हे वहा यह भावना बनी रहती हे कि मेरे दुर्गुण प्रकट हो जाएगे तो मेरी निन्दा होगी। इस प्रकार वह व्यक्ति निन्दा से घबराता हे। मगर शास्त्र का कथन हे कि निन्दा स घबराने का काई कारण नही है। अवगुण प्रकट कर दने पर निन्दा तो शायद हागी लकिन उस निन्दा को सह लेना अप्रशस्त योग स निकल कर प्रशस्त याग म प्रयाण करना हागा।

जितना अन्तर धूल म ओर सान म हीरे ओर ककर म अथवा विष आर अमृत म माना जाता हे उतना ही अन्तर प्रशस्त योग ओर अप्रशस्त याग म हें। अगर धूल दन पर साना ककर दन पर हीरा ओर विष दन पर अमृत मिलता हा ता कान लन का तेयार न हागा? अप्रशस्त याग धूल ककर या विष क समान हे। फिर इस त्याग कर सान हीर ओर अमृत क समान जा अप्रशस्त याग ह उस कान न लना चाहगा? अतएव ज्ञानीजना का कथन हे कि निन्दा स घबराआ मत।

आपक कपड पर काई दाग हा आर दूसरा उस साफ कर द ता क्या आप उस आदमी पर नाराज हाग? इसी प्रकार जिस निन्दा स आत्मा का दु ख मिटता ह उस निन्दा का सुनकर आप बुरा क्या मानत हें? पापा का स्वय प्रकट कर दन स जा निन्दा हाती हे उसस आत्मा क दु खा का विनाश हाता ह। भक्त तुकाराम का कहना ह कि निन्दक का घर मर समीप ही हा ता

अच्छा है। जब–जब मेरी निन्दा करोगे और उसके द्वारा की हुई निन्दा से मुझे बहुत कुछ जानने को मिलेगा। इससे मेरी अवनति रूकेगी और उन्नति होगी। मेरी आत्मा की अशुद्धि हटेगी और शुद्धि की वृद्धि होगी।

किसी कवि ने राजा से कहा– आपके शत्रु चिरजीवि हो। यह विचित्र आशीर्वाद सुनकर राजा नाराज हो गया। दूसरे सुनने वालो को भी इस आशीर्वाद से बुरा लगा। मगर उनमे एक पकी हुई बुद्धि का समझदार आदमी था। उसने राजा से कहा– आप यह सुनकर नाराज क्यो होते हैं? आपको तो प्रसन्न होना चाहिए।

राजा झुझलाकर कहने लगा यह तो शत्रुओ के लिए आशीर्वाद दे रहा है। तब उस समझदार आदमी ने कहा– ऐसा आशीर्वाद देकर कवि ने आपका हित ही चाहा है। जब आप के शत्रु जीवित रहेगे तो आप मे बल, पराक्रम और सावधानी जागृत रहेगी। आप सावधानी रखने के कारण ही राजा हैं। राजा को सदा सावधान रहना चाहिये, सावधानी तभी रह सकती है जब शत्रु का भय हो। शत्रु के होने पर ही होशियारी आती है। इस प्रकार कवि ने आपको दुराशिष नही वरन शुभाशीष ही दिया है। कवि ने सूचित किया है कि आप आलसी और भोग के कीड़े मत बन जाना किन्तु बलवान बनना और सावधान रहना। इसमे आपके नाराज होने योग्य कोई बात नही है।

यह तो व्यवहार की बात हुई। मैं आपको आध्यात्मिक बात सुना रहा हू, लोग कहते है – काम, क्रोध लोभ और मोह आदि हमको हराते हैं। लेकिन ज्ञानी कहते है कि यदि हराते न हो तो फिर हमारे उपदेश की भी क्या जरूरत है? उसी प्रकार अगर काम क्रोध आदि हराने का प्रयत्न न करे तो तुम्हारी वीरता का भी पता कैसे लगे? तुम अपनी वीरता किस प्रकार प्रकट करो? लाखो वीरो को जीत लेने वाले वीर की अपेक्षा वह वीर बड़ा हे जो काम को जीत लेता है। काम क्रोध आदि शत्रुओ को जीतने के जिए अप्रशस्त योग से निकल कर प्रशस्त योग मे जाने की आवश्यकता है ओर इसी उद्देश्य से उपदेश दिया जाता है। अक्सर लोग अपने विरोधी समझे जाने वाले के विषय मे यह सोचते है कि यह मेरा अहित या बुरा करता हे, लेकिन उसके स्थान पर अगर यह भावना आ जाय कि दूसरा तो मुझे सावधान करता है अतएव मैं भी तो कभी न उसका अहित न चाहू, तो इस प्रकार की भावना के व्यक्ति [illegible] अपना विरोधी समझते हे अवश्य नम्र हो जायेगा।

मतलब कि स्वय गड्ढा करने से अपुरस्कार भाव उदित होगा। लोगों मे निन्दा होगी। उस निन्दा को सुनकर जो समभावपूर्वक सहन कर लेगा वह अनन्त कर्मो का घात करेगा।

भगवान को नमो अरिहताण कहकर नमस्कार किया जाता है। अर्थात् उसे नमस्कार है जिसने शत्रुओ का हनन किया है। जैसे भगवान ने अनन्त शत्रुओ का घात किया था, उसी प्रकार आप भी अनन्त शत्रुओ का घात करो। आप भी काम क्रोध आदि शत्रुओ को जीतो। ऐसा करने से आप भी वैसे ही बन जाऐगे।

सुदर्शन सेठ के सामने अर्जुन माली मुद्गर लेकर आया। उस समय सुदर्शन ने यही कहा था कि– प्रभो! अब तक मैंने निरपराधी को ही मारने का त्याग किया था, अपराधी को मारने का त्याग नही किया था। लेकिन अब अपराधी को भी मारने का त्याग करता हू। नाथ! मेरी प्रार्थना है मुझे ऐसी शक्ति दो कि मेरे अन्त करण मे अर्जुन के प्रति लेशमात्र भी द्वेष उत्पन्न न हो। इस प्रकार सुदर्शन ने अर्जुन के प्रति रचमात्र भी द्वेष उत्पन्न नही होने दिया ओर अवैरभाव ही रखा। फल यह हुआ कि अर्जुन की शक्तिया स्वत कुण्ठित हो गई वह स्वय नम्र हो गया। अगर आपके अन्त करण मे इसी प्रकार की भावना उत्पन्न हो गई तो निश्चित हे कि आपके शत्रु भी आपके पेरा पर पडे विना नही रहेगे।

कृष्ण ओर युधिष्ठिर मे भी शत्रुआ के प्रति क्षमा रखने की ही बात हुई थी। युधिष्ठिर अहिसा ओर क्षमा आदि के लिए प्रसिद्ध हैं। कृष्ण से अर्जुन भी कहा करता था ओर द्रोपदी भी कहा करती थी कि युधिष्ठिर हमारी बात ता नही मानते हें पर आपकी बात भी नही मानते ओर आपकी बात भी नही मानते तो हमारी बात तो मानगे केसे? इसक उत्तर म कृष्णजी न कहा– यह बात दूसरी ह कि कभी प्रकट रूप म एसा प्रतीत हा कि व मरी बात नही मानत हें मगर वास्तव म दखा जाय तो व पूरी तरह मरी बात मानत हैं। ससार म कोई मारकर विजय प्राप्त करना चाहता हे काई मरकर विजय पाना चाहता हे। युधिष्ठिर मरकर विजय प्राप्त करन वाला म स हें। आर यह मरी बात हे। एसी दशा म किस प्रकार कह जा सकता हे कि मेरी बात नही मानत।

कृष्ण न अर्जुन स कहा– में जानता हू कि युधिष्ठिर का स्थूल युद्ध करना हागा आर सिर पर राजमुकुट भी धारण करना हागा लकिन उस दशा म भी यह रहग धमराज आर अजातशत्रु ही। इनम स धर्म की भावना कभी

नही जायेगी। अनेक जन्मों के पुण्य सचय होने पर ही यह स्थिति प्राप्त होती है। युधिष्ठिर पुण्यशाली हैं इसी कारण उन्हे यह स्थिति प्राप्त है।

यो तो ससार मे स्थूल अर्थात् मारकाट करने वाले लोगो का भी मार्ग चलता है लेकिन इस मार्ग के साथ ही मरकर विजय चाहने वालो का अर्थात् अर्हन्त का मार्ग भी चलता ही है। बीच–बीच मे कोई न कोई महात्मा ऐसा उत्पन्न होता रहता है जो अपने को इस मार्ग का मुसाफिर बनाता है और जगत् मे अपनी असाधारण विजय की महत्ता स्थापित कर जाता है। यह मार्ग महान् मगलकारी है। विश्व के लिए आशीर्वाद है। कल्याण की कामना है तो परमात्मा के इस पथ पर चलो।

8. गांधी जी

श्री सुबुद्धि जिनेश्वर वन्दिये रे।

यह श्री सुबुद्धिनाथ भगवान की प्रार्थना हे। इस प्रार्थना म यह वतलाया गया है कि भगवान सुबुद्धिनाथ सुबुद्धिनाथ किस प्रकार हुए? भगवान सुबुद्धिनाथको भगवान का पद प्राप्त करने म जो विघ्न या जो अन्तराय बाधक हो रहा था, भगवान ने उसे दूर किया था। उसे दूर करने पर भगवान सुबुद्धिनाथ का आत्मधर्म प्रकट हुआ था। प्रार्थना म कही गई बात को सुनकर यह विचार स्वत उत्पन्न होता हे कि– ह प्रभो! तेरे ओर मर बीच मे केवल इतनी ही दूरी हे कि तू ने तो विघ्ना को दूर कर दिया हे ओर में उन्ह अभी तक दूर नही कर सका हू। तेरे ओर मरे बीच मे सिर्फ इतना ही अन्तर हे, सिर्फ इतना ही पर्दा हे। इतनी–सी दूरी के कारण में आपसे दूर पडा हू।

हम ओर आप यह तो समझ गये कि आत्मा ओर परमात्मा म इतना ही अन्तर हे ओर सिर्फ विघ्ना का दूर होन ओर न हान का पर्दा बीच म हे। मगर प्रधान प्रश्न यह हे कि अब हम करना क्या चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट हे कि अगर हम भगवान से भट करना चाहते हें ता हम बीच का पर्दा हटा देना चाहिए। विघ्ना अन्तरायो का दूर कर दना चाहिए। जव तक एसा नही किया जायेगा अर्थात् पर्दे का नही हटाया जायगा तव तक परमात्मा स भट केस हा सकती ह? अगर काई इस पर्दे का हटान का प्रयत्न नही करता तो यही कहा जायगा कि वह परमात्मा स भट नही करना चाहता।

ससार म सवस वडी भूल जा रही हे वह यही हे कि जा वस्तुए परमात्मा स भट करन म विघ्न रूप हें उन्ही वस्तुआ का लाग हितकारी समझत ह। इस भूल क कारण आत्मा ओर परमात्मा क वीच की दूरी वढती चली जाती ह। अगर आप इस दूरी का खत्म करना चाहत हें ता इस पद्धति का पलट दीजिय ओर सच्ची वस्तु प्राप्त कीजिय।

भगवान सुबुद्धिनाथ का "सुबुद्धिनाथ" नाम केवल पद प्राप्त करने से पहले का है– बाद का यह नाम नहीं है। केवली पद प्राप्त करने के बाद तो उनके अनन्त नाम हो गये हैं। हम लोग केवल अपनी क्षुद्र बुद्धि के सहारे ऐसा तर्क–वितर्क करते हैं, जिसका करना उचित नही है। इस प्रकार हम भगवान को प्राप्त करने के मार्ग मे काटे बिखेर लेते हैं। भगवान सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने पर बुद्धि का दुरुपयोग मिट जायेगा और सुबुद्धि प्रकट होगी। अतएव अपनी बुद्धि को सुबुद्धि बनाने के लिए भगवान की शरण मे जाना उचित है।

कहा जा सकता है कि यह तो सभी जानते हैं कि हमारी दुर्बुद्धि मिट जाये और सुबुद्धि का प्रकाश हो, लेकिन ऐसा होता क्यो नहीं है? इसका उत्तर यह हे कि आकाश से जो पानी गिरता है वह तो सर्वत्र समान ही होता है परन्तु पात्र उसे अपने अनुसार ही ग्रहण करता है। इसी प्रकार भगवान की दृष्टि मे तो शुद्ध स्वरूप से सभी जीव समान हैं लेकिन विकारो के कारण अपनी बुद्धि मे की विचित्रता को मिटाने के लिए ही भगवान सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने की आवश्यकता है। बुद्धि मे विचित्रता किस तरह आ रही है, इस सम्बन्ध मे विचार करने की आवश्यकता है।

परस्पर विवदमानाना शास्त्राणा
अहिसा परमो धर्म इत्यत्रैकवाक्यता।

इसका अर्थ है कि और मतभेद तो बहुत मगर अहिसा परमधर्म है, इस विषय मे किसी का भी मतभेद नही है। अहिसा धर्म सभी को मान्य है, ऐसा होने पर भी धर्म के नाम पर कितनी खून–खराबी हुई है। जहॉ धर्म के नाम पर इस प्रकार खून–खराबी हो यानि हिसा हो, समझना चाहिये कि वहा वास्तविक धर्म नही है। वहा धर्म के नाम पर ढोग किया जाता है। सच्चा धर्म अहिसा है और अहिसा के कारण न कही लडाई हुई है न हो सकती है। अहिसा सत्य आदि के कारण न कभी लडाई होती है और इसके पालन करने मे । किसी का मतभेद है। फिर भी इनके या धर्म के नाम पर जो लड़ाई की जाती है वह केवल हृदय के विकारो के ही कारण की जाती है। अपने हृदय के विकारो को ही धर्म का नाम दिया जाता हे और फिर लडाई की जाती है। ऐसे समय पर व्यक्ति का स्वातन्त्र्य का विचार करना चाहिए। व्यक्ति स्वातन्त्र्य के बिना धर्म टिक नही सकता। कोई भी धर्म यह नही कहता कि परस्पर लडो और एक दूसर का दु ख पहुचाओ। फिर भी धर्म के नाम पर जो परस्पर दु ख देता है वह धर्म को नही जानता ह। इस प्रकार बुद्धि मे

विचित्रता आ रही है। इसे मिटाने के लिए सुबुद्धिनाथ की शरण म जाने स बुद्धि की विचित्रता मिट जायेगी।

लोग मुझे अहिसाधर्म का प्रचारक कहत हें पर वास्तव म में अहिसाधर्म का सेवक हू। अहिसाधर्म क प्रचार की योग्यता मुझ म अभी नही आई हे। मेरे भीतर जो विकार मोजूद हें उन्ह में जानता हू। काई कह सकता हे कि अगर मुझ मे विकार मोजूद हें ता में अहिसाधर्म का उपदेश क्या दता हू? इसका उत्तर यही हे कि ऐसा करने म में भी अपनी आत्मा का हित देखता हू। अपने विकारो को जीतने का यह भी एक मार्ग हे। में इतने श्रोताआ के समक्ष जो कुछ कहता हू– श्रोताओ को जिस कर्त्तव्य की ओर प्ररित करता हू, मेरा कर्त्तव्य हो जाता हे कि में स्वय उसका पालन करू। अगर में ऐसा न करू में जो कहता हू उसमे अपने आपको न लगाऊ ओर विपरीत ही व्यवहार करू तो यह उलट मार्ग पर चलना होगा। अतएव भगवान की शरण मे जाकर प्रार्थना करता हू कि मेरी बुद्धि म किसी समय विकृति न आवे ओर में जेसा दूसरो के सामने बोलता हू उसी के अनुसार स्वय भी व्यवहार करू। प्रत्येक मनुष्य का यही कर्त्तव्य हे कि वह अपनी बुद्धि म किसी भी क्षण विकृति न आन दे ओर भगवान सुबुद्धिनाथ की शरण से अपनी बुद्धि का सदा निर्मल रखे। भले ही ऐसा करने मे सकट क्यो न आये।

प्राचीनकाल मे पुरुषो क अनेक उदाहरण ऐस मिलत हें कि घार सकट आने पर भी उन्हाने अपनी बुद्धि को स्वस्थ रखा था। बुद्धि म किसी प्रकार का विकार नही आन दिया था। उन उदाहरणा का दखकर काई ख्याल कर सकता हे कि वास्तव म ही एसी घटना घटी हे या यह कवल कल्पना ही हे? लकिन जब वर्तमान म भी उन उदाहरणा की पुनरावृत्ति– आशिक रूप म या पूर्ण रूप म दिखाई दती हो ता मानना चाहिए कि पहल क उदाहरण काल्पनिक नही हें। य वास्तविक हें। वर्तमान क उदाहरणा स यह विश्वास हाता हे कि पूर्वकाल क उदाहरणा म जिन बाता का उल्लख मिलता हे उनम असत्य नही हे। उदाहरणार्थ– अहिसा सत्य आदि क विषय म जा पूर्वकालीन वृत्तात हमार समक्ष हें उनकी सच्चाई समझन क लिए वर्तमान म गाधीजी प्रमाण रूप हा जात हे।

गाधीजी का जन्म पारबन्दर म हुआ था। मंन पारबन्दर दखा हे ओर वहा क राजा भी मरा व्याख्यान सुनन आय थ। पारबन्दर क राजा साहब स बातचीत करन पर मालूम हाता ह कि गाधीजी क विचारा की छाप उन पर लगी ह। वह अपन राज्य म गाधीजी क विचारा क अनुसार सुधार करन क

लिए उत्सुक हैं। वे देशहित के कामो का प्रचार करने वाले लोगो को प्रचार करने का अवसर देते हैं। मेरी मौजूदगी मे वहा डाक्टर पट्टाभी सीतारामैया भी आये और उनका सार्वजनिक सभा मे भाषण हुआ। सभा मे भाषण देने मे उन्हे कोई दिक्कत नही उठानी पडी जैसे कि कई दूसरी रियासतो मे उठानी पडती है। इससे पोरबदर मे गाधीजी के प्रभाव के विषय मे बहुत कुछ जानकारी हो जाती है।

आज गाधीजी की जन्मतिथि है। साधु किसी की जन्मतिथि नही मानते हैं लेकिन आज मैं बतलाना चाहता हू कि गाधीजी ने अहिसा के प्रभाव को किस प्रकार प्रकट किया है। पजाबकेसरी लाला लाजपतराय का जन्म जैन परिवार मे हुआ था। उसके दादा या किसी दूसरे पूर्वज ने साधुमार्गी समाज मे ही दीक्षा भी ली थी। लेकिन लाला लाजपतराय को कोई ठीक तरह जैन सिद्धान्त समझाने वाला नही मिला। अतएव उनके विचारो मे परिवर्तन हो गया और वे आर्य समाजी बन गये। मगर आर्य समाज से भी सन्तोष नही हुआ। वे कहने लगे– तलवार के बल के बिना देश का कल्याण नही हो सकता। उन्होने यह भी कहा कि जैन और बौद्धो की अहिसा ने देश को कायर बना दिया है। जब तक कायरता नही मिटेगी, देश का कल्याण नही होगा।

इस प्रकार लाला लाजपतराय अहिसा के विरोधी हो गये। जब गाधीजी ने अहिसा का प्रचार आरम्भ किया तब उन्होने गाधीजी को एक पत्र लिखा। उसमे उन्होने लिखा कि देश पहले ही कायर बना हुआ है। आप अहिसा का उपदेश देकर उसे इस समय अधिक कायर क्यो बनाते हैं जब कि उसमे कुछ जागृति आई है। गाधीजी ने लालाजी के पत्र का उत्तर दिया और कहा जाता है कि अन्त मे लालाजी, गाधीजी के उत्तर से प्रभावित हो गये। उन्होने बम्बई मे गाधीजी और एनी बेसन्ट आदि के समक्ष खुले हृदय से कहा कि इतने लम्बे समय के पत्र–व्यवहार के पश्चात् मैं स्वीकार करता हू कि सत्य और अहिसा की शक्ति महान् है और मै उस शक्ति को मस्तक झुकाता हू।

लाला लाजपतराय दिमागदार आदमी थे। उस समय भारत मे लाल, बाल (बाल गगाधर तिलक) और पाल (विपिनचन्द्र पाल) प्रसिद्ध थे। उन लाला लाजपतराय से भी गाधीजी ने अहिसा का महत्त्व स्वीकार करा लिया। अहिसा का परिणाम तत्काल दिखाई नही देता किन्तु हिसा का परिणाम [illegible] दिखाई देता है। इसलिए आमतौर पर राजनीति मे हिसा को ही

स्थान दिया जाता है। लेकिन गाधीजी ने असाधारण बुद्धिकोशल से अपनी पारदर्शिनी प्रतिभा से अहिसा के सामर्थ्य को देख लिया ओर इस कारण उसे उन्होने राजनीति मे भी स्थान दिया। गाधीजी राजनीति को जीवन नीति स सर्वथा भिन्न करके नही देखते हैं। वह तो जीवननीति का ही अग हे ओर जब जीवननीति मे अहिसा की आवश्यकता हे तो राजनीति मे अहिसा केसे अलग रह सकती है? मगर सारा ससार जब हिसात्मक राजनीति मे डूबा हो तब राजनीति मे अहिसा को दाखिल कर देना कितना कठिन कार्य है? फिर भी गाधीजी ने यही किया। कठिनाइयो पर विजय पाना तो उनके जीवन का मूल–मत्र ही है।

बगाल के रवीन्द्रनाथ ठाकुर को कवि सम्राट की पदवी प्राप्त है। भारत मे ही नहीं सम्पूर्ण ससार मे उनकी बडी प्रतिष्ठा है। उनके और गाधीजी के कतिपय विचारो मे भले मतभेद रहे मगर गाधीजी के अहिसा के गुण को वे भी मस्तक झुकाते हैं। इससे आपको यह सीखना भले ही हो पर अहिसा के विषय मे तो किसी प्रकार का मतभेद नही होना चाहिए।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर जब अमेरिका गये तब वहा के लोगो ने उनस कहा– हम भारत के गाधीजी की बडी प्रशसा सुनते हैं। आपने तो उन्हे देखा होगा आप उनके सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट कीजिये। रवि बाबू ने कहा– मैंने गाधीजी को देखा तो हे, मगर जिस रूप मे मैंने उन्हे देखा हे उसका मैं वर्णन नही कर सकता। गाधीजी की प्रशसा उनके शरीर के कारण नही हे। शारीरिक दृष्टि से दुर्बल होने पर भी वे महान हैं।

भूतवादी लोग सब करामात भूतो की ही मानते हैं। इस दृष्टि से जिसका शरीर महान् हो उसी को महान् होना चाहिए और जिसका शरीर दुर्बल हा, तो तुच्छ होना चाहिए। मगर गाधीजी का उदाहरण भूतवादिया की मान्यता को गलत प्रमाणित करता हे। रवीन्द्रनाथ ने कहा गाधीजी शरीर स बहुत दुर्बल दिखाई देत हं। मगर उनम तीन बात एसी हैं जिनके कारण वे महान मान जाते हें ओर वे बात उनकी महत्ता को प्रकट करती हे। पहली वात यह हे कि उनम निर्भयता हे। मैं कवि–सम्राट कहलाता हू फिर भी यदि काई व्यक्ति छुरा लकर मुझे मारन आयगा ओर मैं जान पाऊगा ता विना भाग नहीं रहूगा। मर हृदय म भय का सचार हागा लकिन काई गाधीजी का मारन क लिए छुरा लकर उनक सामन आयगा ता उस समय व एस प्रसन्न हाग जेस पहल नहीं थ।

कवि–सम्राट फिर कहने लगे– गाधीजी मे दूसरी विशेषता सत्य पर दृढता है। अगर अमेरिका की समस्त सम्पत्ति उनके समक्ष रख दी जाए और उनसे सत्य का परित्याग करने के लिए कहा जाये तो गाधीजी उस विशाल सम्पत्ति को ठुकरा देगे, मगर सत्य का परित्याग नही करगे।

मित्रो! गाधीजी इतनी सम्पत्ति मिलने पर भी सत्य का नही त्याग सकते। लेकिन आप लोगो मे कोई ऐसा तो नही जो चार–आठ आन के लिए सत्य को छोडकर झूठ का सहारा लेता हो? अगर कोई हे तो उसे अपन कार्य के लिए पश्चात्ताप करना चाहिए और भविष्य के लिए सावधान होना चाहिए। भीलो के विषय मे कहा जाता है कि वे शपथ खा जाने के बाद मोत से बचन के लिए भी झूठ नही बोल सकते। ऐसी दशा मे आप शिक्षित और सस्कारी होने का दावा रखते हुए भी अगर शपथ खाकर झूठ बोले तो कितना अनुचित है?

सत्य के प्रति गाधीजी की दृढता के आधार पर यह भी सोचा जा सकता है कि जब आज भी इतना सत्य विद्यमान है तो अहितो के समय मे पूर्ण सत्य हो तो क्या आश्चर्य है? कामदेव श्रावक के सामने घोर भय उपस्थित किया गया था, फिर भी उसने सत्य नहीं छोडा था। सीता को बेहद प्रलोभन दिये गये थे मगर उसने सत्य का परित्याग नही किया था। गाधीजी मे सत्य के प्रति जो दृढता है उसे देखते हुए प्राचीनकाल की इन घटनाओ को कैसे असत्य कहा जा सकता है? इस गये– गुजरे जमाने मे कामदेव जैसे श्रावको के सत्य पर अटल रहने मे कैसे शका की जा सकती है?

आगे कहते हुए कवि सम्राट बोले– गाधीजी मे ऐसी प्रामाणिकता है कि उन्हे कितनी ही सम्पत्ति क्यो न दी जाये, उसे वे काम मे लगाएगे जिस काम के लिए वह दी गई होगी। वे उस सम्पत्ति मे से अपने लिए एक पैसा नही खर्चेगे।

एक ओर गाधीजी मे इतनी प्रामाणिकता हे और दूसरी ओर क्या देखा जाता ह? कई लोग अपने पास जमा धर्मादा खाते की रकम मे से कुछ देकर कीति उपार्जन करते हे। इतना ही नही बहुत से लोग धर्मादे की ही रकम हजम कर जाते है। ऐसे लोगो को क्या गाधीजी की प्रामाणिकता से शिक्षा नही लनी चाहिए?

कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ने गाधीजी के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा – उसे सुनकर अमरीका क बडे–बडे पादरियो ने कहा– 'जब गाधी ऐसा हे तो कहा जा सकता ह कि ससार मे सबसे बडा पुरुष महात्मा गाधी ही है। इस

प्रकार गाधीजी के गुणो से प्रभावित होकर लोगो ने स्वीकार किया कि गाधीजी ससार के सबसे बडे पुरुष हैं।

रविबाबू ने गाधीजी की कतिपय विशेषताओ का ही जिक्र किया है। उनमे और जो गुण है, उनके विषय मे तो वही पूरी तरह कह सकता हे जिसने सन्निकट रहकर अभ्यास किया हो। फिर भी कह जा सकता हैं कि गाधीजी मे कुछ गुण ऐसे हैं जो उनका महत्व बढाते हैं और जो सबके लिए अनुकरणीय भी हैं। उनमे कितना सेवा भाव है इस सम्बन्ध मे श्री निवास शास्त्री ने कहा है। श्रीनिवास शास्त्री का हृदय पलट गया ओर उन्हे पश्चात्ताप हुआ कि मैं ऐसे सेवाभावी पुरुष की अवज्ञा करके अपराध कर रहा हू।

गाधीजी तो इस तरह के लोगो की सेवा करते हैं। लेकिन आप लोग अपने घर के लोगो की या अपने सहधर्मियो की भी सेवा करते हैं या नही? किसी को दुखी देखकर यह तो नही कहते कि यह तो अपने कर्मो का फल भोग रहा है। हमे इससे क्या सरोकार– ऐसा कहना अपनी वाणी का दुरुपयोग करना है। हाथी के भव मे मेघकुमार ने कहा होता कि यह खरगोश तो अपने कर्मो का फल पाता है तो क्या वह मेघकुमार हो सका होता? क्या भगवान उसके विषय मे ऐसा कहते कि– मेघकुमार। तुमने शशक पर दया की थी, इस कारण तुम मेघकुमार श्रेणिक के पुत्र हुए हो। अतएव जब कभी कोई दु खी प्राणी दृष्टिगोचर हो तो सोचना चाहिए – यह अपने कर्मो का फल भोग रहा हे लेकिन हमे इसकी सेवा करनी चाहिए। इस प्रकार विचार करन से ही सेवाभावना कायम रहती हे। शास्त्र का यह उपदेश हे कि स्वयमेव सेवा करने की भावना रखो। शास्त्र का तो यह आदेश हे किन्तु आप लोगा को दूसरा की सेवा करना बहुत कठिन जान पडता हे। गाधीजी जेसी महिमा आपको मिले ता आप फोरन उस लने के लिए तेयार हो जाएगे लकिन गाधीजी की तरह सेवा करन के लिए कितन लोग तेयार हे? गाधीजी का सेवाभाव देखकर उसके विरोधी का भी हृदय पलट गया ओर वह उनक व्यक्तित्व स प्रभावित हो गया।

जेन शास्त्र म क्षमा का सबस बडा गुण कहा हे। दस प्रकार क यतिधर्मो म क्षमा का पहला स्थान दिया हे। साथ ही क्षमा केसी हाती हे ओर वह किस सीमा तक रखी जा सकती हे यह बतलान क लिए गजसुकुमार मुनि का उदाहरण भी दिया गया हे। कहा जा सकता हे कि जरा सा बिच्छू काटा का कष्ट सहना भी कठिन हा जाता ह ता मस्तक पर जलनवाली आग क दु ख का किस प्रकार सहन किया गया हागा? लकिन आज क्षमा क जा

उदाहरण सुने जाते है उन पर से इस प्रकार का सन्देह मिट जाता है और ऐसा सन्देह रखने वालो को भी मानना पडता है कि जब इस समय भी ऐसी अपूर्व क्षमा करने वाले पुरुष मौजूद हैं तो प्राचीनकाल मे सिर पर जलने वाले अगारो से न घबराकर अगर गजसुकुमार मुनि ने क्षमा रखी तो कोई आश्चर्य की बात नही है।

गाधीजी मे क्षमावृत्ति कैसी है इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण सुना गया है। उन्होने दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह का युद्ध छेडा था। उस समय एक पठान को यह सदेह हो गया कि गाधी ने हमे तो सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह मे लगा रखा है और स्वय सरकार से मिल गया है। ऐसा सन्देह होने पर पठान को बहुत क्रोध आया। उसने सोचा– अगर गाधी मुझे मिल जाए तो उसे जिन्दा नही रहने दूगा।

सचमुच एक दिन गाधीजी पठान को मिल गये। उसने गाधीजी को उठाकर गटर मे डाल दिया। गाधीजी को चोट आई और वे बेहोश हो गये। उनके मित्र उन्हे अस्पताल मे ले गये। जब वे होश मे आए तो उन्होने पूछा– बात क्या है?

मित्रो ने कहा– अमुक पठान ने आपको गटर मे फेक दिया था। आपको अमुक–अमुक जगह पर चोट आई है। आप जरा अच्छे हो जाइये, तब उस पर मुकदमा चलाया जायेगा।

उस समय गाधीजी ने कहा– मैं अपने एक भाई पर मुकदमा चलाऊ? यह कैसे सभव हो सकता है? मेरे हृदय मे क्षमा भावना है या नहीं, इसी बात की कसौटी हुई है। गन्ना जब खेत मे रहता है तब भी मीठा रहता है पला जाता है तब भी मीठा रहता है, उबाला जाता हे तब भी मीठा रहता है ओर जब गुड या शक्कर बनता हे तब भी मीठा रहता है। वह अपने स्वभाव को किसी भी हालत मे नही छोडता। ऐसी दशा मे मैं अपने भाई पर कैसे मुकदमा चला सकता हू! चलो उस भाई के पास चले और कसौटी पर कसने के लिए उसका उपकार माने।

गाधीजी ने उस पठान पर मुकदमा नहीं चलाया, लेकिन लोग अपने सगे भाई पर भी मुकदमा चलाने से बाज नहीं आते। क्या आप मे कोई ऐसा है जो अपने भाई पर अदालत मे मुकदमा चलाने का त्याग करने को तैयार हो। जिन हाकिमो के सामने भाई–भाई के मुकदमे सामने आते हैं, वे इस विचार से और अधिक शिक्षा ले सकते हैं कि ससार मे किस तरह की आग लग रही है। यहा भाई–भाई का दुश्मन बन जाता है।

गाधीजी की क्षमा के उदाहरण से यह समझा जा सकता है कि जब इस काल मे भी इस तरह क्षमा करने वाले मौजूद हैं + तो भगवान के समय मे गजसुकुमार सरीखे क्षमापूर्ति महापुरुष हो तो आश्चर्य ही क्या है।

गाधीजी की दया के सम्बन्ध मे भी एक घटना सुनी है। दया का पात्र प्राय दुर्गुणी होता है। जिसे जगत् के सामान्य लोग दुत्कारते हैं दयालु उस पर भी दया करते हैं। आज बहुत से लोग मुह से दया–दया तो कहते हैं मगर दया के खातिर करते कुछ नही हैं। लेकिन गाधीजी ने दया के लिए क्या किया। यह ध्यान देने योग्य बात हे। गाधीजी एक बार गन्तूर गये थे। वहा वेश्याओं ने भी एक सभा का आयोजन किया ओर गाधीजी से मिलने का विचार किया। गाधीजी ने कहा कि वे भी मेरी बहिने हे इसलिए प्रसन्नता से मिल सकती हें। वेश्याए उनसे मिलने गई। गाधीजी ने वेश्याआ के वस्त्र दखकर उनसे कहा– बहिनो! तुम ऐसे गन्दे वस्त्रा को मत पहना करो। वेश्याओ ने कहा आप इन वस्त्रा को गन्दे कहते हें लेकिन हमारे पास यही वस्त्र हें दूसरे वस्त्र ही नही हें।

वेश्याआ का उत्तर सुनकर गाधीजी ने सोचा – मरी यह बहिन ऐसा नीचा धधा करती हें फिर भी इन्ह पूरी तरह वस्त्र नहीं मिलत। तो दूसरे गरीब

+ गाधीजी का जीवन ज्या–ज्या अग्रसर हाता गया, उनकी क्षमा भावना वढती गई। अन्तिम दिना वह इतनी वढ गई थी कि बम फक कर अपन प्राण ल1 की चष्टा करन वाल पुरुष का भी क्षमा कर दिया था ओर उस दण्ड न दन क लिए सरकार स अपील की थी। गाधीजी का अवकाश मिलता ता निश्चित रूप स कहा जा सकता हे कि व अपन हत्यार का भी क्षमा कर दन की अपील करत।

भाइयो की क्या दशा होगी? उन्हे ऐसे भी वस्त्र प्राप्य न होते होगे। इस प्रकार विचार कर उन्होने सब कपडे त्याग दिये तब से वे एक लगोटी और एक चादर मे ही रहने लगे।

यह दया का कितना उत्कृष्ट उदाहरण है? आप तो दया के लिए चर्बी के वस्त्र भी नहीं त्याग सकते। अगर आप दयाधर्म का पालन करे तो आपका भी कल्याण हो और दूसरो का भी कल्याण हो। आप को मिल मे बने और चर्बी लगे हुए वस्त्रो की अपेक्षा खादी मे अधिक खर्च भले जान पडता हो मगर आपको यह भी सोचना चाहिए कि खादी के निमित्त खर्च किया हुआ प्रत्येक पैसा देश के गरीब भाइयो के पास ही पहुचता है। इसके विपरीत मेचेस्टर के मलमल मे लगा हुआ पैसा विदेशो मे जाता है। अगरेज लोग अपने देश की चीजो का बहुत ख्याल करते हैं और कई गुनी कीमत चुका कर भी अपने ही देश की चीज खरीदते हैं। ऐसा न करना उन्हे देशद्रोह मालूम होता ह। क्या स्वदेशी वस्तुओ की उपेक्षा करके विदेशी वस्तुए खरीद करके आप देशद्रोह के भागी नही होते?

यह तो निश्चित है कि खादी के लिए जो ज्यादा पैसे देने पडते हैं वे गरीब देश बन्धुओ के पास पहुचते हैं और मिल के वस्रो के पैसे विशेषत विदेशी पूजीपतियो के पल्ले पडते हैं। एक बार किसी ने बतलाया था कि मद्रास के राजगोपालाचार्य ने खादी के प्रयोग का एक कारखाना खोला था। उस कारखाने के द्वारा 158 ग्रामो के गरीबों का दुष्काल के समय गुजारा चला। इस प्रकार छोटे-छोटे कार्यों द्वारा भी गरीबो की किस प्रकार सहायता की जा सकती है। इस बात पर विचार करो ओर खादी तथा मिल के वस्त्रो मे होने वाले आरम्भ-समारम्भ का भी विचार करो और देखो कि अल्पआरम्भ किसमे है और महारम्भ किसमे है? अब आपको मिल के और खादी के वस्त्रो का अन्तर प्रतीत हो जाएगा। खादी पहिनने के कारण आपको कुछ असुविधा

इतिहास के अनुसार ढाके के इस व्यवसाय को बडी बेरहमी के साथ खत्म किया गया। यहा तक कि मलमल बनाने वाले लोगो के अगूठे भी कटवा दिये गये। यह निर्दयता मिल के चर्बी वाले वस्त्रो के लिए ही की गई थी।

मतलब यह हे कि गाधीजी ने दया से प्रेरित होकर वेश्याओ के कपडे देखकर अपने वस्त्र सीमित कर लिये। गाधीजी ने इतना त्याग किया लेकिन आप क्या चर्बी लगे वस्त्रो का भी दया के खातिर त्याग नही कर सकते?

चर्बी के कपड़े का विचार अव्रत (महारम्भ) की क्रिया की दृष्टि से भी विचारणीय है। मेचेस्टर मे बना हुआ कपड़े का एक टुकड़ा भी पहनने से मेचेस्टर की अव्रत की क्रिया लगती है या नही? इतना होने पर भी आप चर्बी लगे मिल के वस्त्र त्यागने को तैयार नही हैं?

गाधीजी के ह्रदय मे कितनी दया हे, इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण ओर लीजिये। सुना हे कि राजकोट के ठाकुर साहब लाखाजीराज गाधीजी पर सद्भाव रखते थे। गाधीजी जब राजकोट गये तो लाखाजीराज ने उन्हे मानपत्र देने का विचार किया ओर इसके लिए पेरिस से एक सन्दूक बनवाकर मगवाया। उसमे रखकर गाधीजी को मानपत्र दिया जाना था। सन्दूक बहुत सुन्दर था लेकिन जिसके ह्रदय मे गवीभाव होता हे वह दूसरो क पाप को ही अपना पाप मानता हे। बेटा जब रोगी होता हे तो बाप भी इसक लिए अपना अभाग्य समझता हे। साधारण लोग अपने बटे को ही बटा मानत हैं, लेकिन जिसकी भावना विशाल ओर 'वसुधेव कुटुम्बकम्' की हाती हे, वह दूसरे के पापो के लिए भी अपने का उत्तरदायी समझता हे।

गाधीजी ने राजकोट म ही शिक्षा पाई थी ओर वही पर साधुमार्गी जन महात्मा बेचरजी स्वामी क समक्ष मदिरा मास ओर परस्त्री सवन त्याग किया था। गाधीजी ने इस प्रतिज्ञाआ का बडी दृढता क साथ पालन किया। अनक प्रकार क कष्ट झलकर भी उन्हान अपनी प्रतिज्ञाआ का निभाया।

मर सम्बन्ध म कहा जाता हे कि मैं दूसरा त्याग करन–करान क लिए बहुत कहता हू मगर लीलात्तरी (वनस्पति) जमीकन्द आदि क त्याग क लिए कम कहता हू। पूज्य श्रीश्रीलालजी महाराज इसक सम्बध म बहुत कहा करत थ। मर विषय म एसा कहा जाता हे किन्तु आज जिस तरहक बड–बड पाप फूट निकलत हें वस पहल नही थ। एसी दशा म पहल बड पाप का

त्याग कराया जाये या छोटे पाप का? इस समय जमीकन्द त्यागने का उपदेश दू या चर्बी लगे मिल के वस्त्रो के त्याग का उपदेश दूं? पहले पापो के त्याग का उपदेश देना अधिक लाभदायक होता है। बड़े पापो की ओर ध्यान न देकर छोटे पापो को मिटाने का प्रयत्न करना कैसे उचित कहा जा सकता है?

लाखाजीराज पेरिस से बनकर आये सन्दूक मे गाधीजी को मानपत्र देने लगे। उस समय गाधीजी ने कहा– मेरे लाखो भाई तो रोटी के बिना दु ख पा रहे है फिर मुझे इस प्रकार के सन्दूक मे रख कर मानपत्र देना क्या मेरी हसी कराना नही है? मेरे घर मे इस सन्दूक को रखने की जगह भी तो नही है। गाधीजी का यह उदार भाव कितना सराहनीय है?

गाधीजी का सादगी का क्या बखान किया जाए। उनके विचार मे और आचार मे स्पृहणीय सादगी हैं। उनका भोजन लिबास आदि सभी कुछ आपके समक्ष आदर्श सादगी का नमूना पेश करते हैं। वास्तव मे जहा दयालुता होती हे वही ऐसी सादगी रह सकती है। श्रीमताई का आडम्बर त्यागे बिना न दया आती है न सादगी आती है। इसीलिए गाधीजी ने श्रीमताई का ठाठ त्यागा है अन्यथा वे श्रीमत की तरह भी रह सकते थे। उनके लडके ने उन्हे पत्र लिखा था कि आप बडे आदमी माने जाते हैं, आप बैरिस्टर हैं और बुद्धिमान है। अतएव किसी ऐसे व्यवसाय की बात सोचिये जिससे अपन श्रीमत बन जाए। इस पत्र का उत्तर देते हुए गाधीजी ने लिखा था कि मैं सुदामा और नरसी मेहता से भी ज्यादा गरीब बनना चाहता हू। तुम ज्यादा श्रीमत बनना चाहते हो और मैं ज्यादा गरीब बनाना चाहता हू। ऐसी स्थिति मे मेरा और तुम्हारा कैसे मेल बन सकता है?

तिजोरियो मे धन भरा है। वह हम गरीबो से ही तुम्हारे पास पहुचा है। बस हो गया। अब हम गरीब और तुम श्रीमत नही रह सकते। हम सब समान होकर ही रहेंगे। इस प्रकार आज जिन गरीबो की उपेक्षा की जा रही है, वही गरीब आपकी श्रीमताई खत्म कर देगे। इसके विपरीत अगर आप श्रीमताई के ढोग मे न पड़कर गरीबो की रक्षा करेगे तो गरीब अपने प्राण देकर भी आपकी रक्षा करेगे।

इसलिए मैं कहता हू कि गरीबो की सहायता के लिए खादी को अपनाना सीखो। गरीबो की रक्षा करने पर ही आपकी श्रीमताई टिक सकती है। अतएव अपनी भलाई के उद्देश्य से भी आपको गरीबो की भलाई करनी चाहिए। मेरी इच्छा है कि आपको सद्बुद्धि प्राप्त हो और आप परमात्मा की शरण मे जाये, जिससे आपकी आत्मा का कल्याण हो, तथास्तु।

गाधी जयन्ती
2 10 1937
जामनगर

9. अन्त्यजोद्धार और जैन धर्म

ठक्कर बापा अन्त्यजोद्धार का जो कार्य कर रहे हैं वह जैनधर्म के सिद्धान्तो से प्रतिकूल नही है बल्कि जैनधर्म के अनुकूल है। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है –

सोवागकुल सभूओ गुणत्तरधरो मुणी।
हरिएसबली णाम आसी भिक्खू जिइन्दिओ।।

भगवान महावीर ने कहा है– चाडालकुल में उत्पन्न, उत्तम गुणो को धारण करने वाले जितेन्द्रिय हरिकेशबल नामक मुनि हुए हैं।

इस गाथा से स्पष्ट है कि जैनशास्त्र के अनुसार चाडाल भी जैनधर्म मे दीक्षित हो सकते है और वे उत्तम गुणो के धारक और जितेन्द्रिय मुनि भी हो सकते हे। इस प्रकार जैनधर्म के समीप मनुष्यमात्र समान है। जैनधर्म जाति–पाति का कोई भी अनुचित पक्षपात नही करता। जैनधर्म की शीतल छाया मे प्रत्येक मनुष्य को शातिलाभ करने का अधिकार है, चाहे वह नीचे समझे जाने वाले कुल मे उत्पन्न हुआ हो, चाहे उच्च माने जाने वाले कुल मे। वास्तव म कोई ऐसा हो ही नही सकता जिससे घृणा की जावे या जिसे छूने से छूत लग जाये।

लेकिन उसकी स्थिति तो पेरो पर ही हे। हरिजन ईश्वर के चरण हें। अत हरिजनो से घृणा करना ईश्वर को भूलना हे ओर देश को डुबोना हैं। गनीमत है कि भारत अब करीब अढाई हजार वर्ष बाद फिर इस दिशा मे चेता हे ओर वह हरिजनो के महत्त्व जानने लगा हे। प्राय यह माना जाता हे कि जब बड़े–बडे रोग मिट जाते हैं तो छोटे रोगो से क्या डरना! इस विचार से कभी कभी छोटे रोगो की उपेक्षा कर दी जाती हे ओर वे बने रहते हैं लेकिन हरिजनो के प्रश्न की उपेक्षा करना ठीक नही हे।

जैनधर्म के चरम तीर्थंकर भगवान महावीर ने भारतवर्ष मे महान् क्राति की थी। उनकी क्राति का क्षेत्र सकीर्ण नही था। सिर्फ धार्मिक क्षेत्र म ही नही वरन् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उन्होने क्राति की थी। जाति–पाति के आधार पर उच्चता और नीचता की कल्पना के विरुद्ध उन्होने उपदेश दिया था ओर जातिगत अधिकारो का निषेध किया था। मगर भगवान महावीर का अनुयायी जेनसघ अपने बहुसख्यक पडोसियो से प्रभावित होता गया। धीरे–धीरे ऐसा समय आ गया कि उनकी मान्यता सिर्फ शास्त्रा म रह गई और उसका व्यवहार वेसा ही वन गया जेसा कि सर्वसाधारण बहुसख्यक जनता का। लेकिन अव जेन समाज भी हरिजनो के विषय मे सचेत हुआ है। जेन सभा को सोचना चाहिए कि हरिकेषी मुनि के चाण्डाल कुल से किसी प्रकार का परहेज नही किया गया हे। फिर आप इतना परहेज क्यो करते हैं? उनक प्रति जघन्य व्यवहार क्या करते हैं? जब चाण्डाल कुल म उत्पन्न होने वाल अनुत्तर धर्म का पालन कर सकते हें तब ओर क्या कमी रह गई जिसक कारण उनसे घृणा की जाती हे? जेन समाज मे छुआछूत का भाव मोलिक नही हे। यह दूसरा के ससर्ग से ओर कुछ–कुछ अज्ञान के कारण आ गया हे। किसी भी जेन शास्त्र मे ऐसा उल्लेख नही मिल सकता कि अमुक जाति क मनुष्य को छू लने से काई भ्रष्ट हो जाता हे।

इस प्रसग पर कोई हरिजना म रही हुई खराबिया की बात कह सकता हे। में स्वीकार करता हू कि उनम कई बुराइया भी पाई जाती हें। मगर ससार म कोन–सी एसी जाति हे जो दूध की धुली हा? किस जाति म अच्छाई–बुराई नही पाई जाती? उसक अतिरिक्त हरिजना की बुराइया क सम्बन्ध म सवर्ण लाग भी उत्तरदायी हे। यह नियम हे कि जिस चीज की सारसभाल नही की जाती वह बिगड जाती हे। आपन हरिजना की सम्भाल नही की! उनकी आर उपक्षा रही। इस कारण उनम खराबी आ गई। आप उनका सुधार कर सकत हें। इसक बदल उनस घृणा करना ओर उन्ह अछूत

मानना उचित नही है। और के बिना तो कदाचित् काम चल सकता है लेकिन जिन्हे आप भगी कहते हैं और घृणा करते हैं, उनके बिना एक दिन भी काम चलना कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ अगर कचहरी और कॉलेज मे कुछ दिन छुट्टी हो जाये तो कोई हानि नही होगी, आपका जीवन व्यवहार ज्यो का त्यो चलता रहेगा लेकिन भगी अगर एक दिन के लिए तातील कर दे और स्वच्छता न करे तो सारे समाज को कठिनाई मे पडना होगा।

जैनधर्म कहता है कि चाण्डाल कुल मे उत्पन्न व्यक्ति भी मुनि हो सकता है और मुनि होने पर वह महान् से महान् वस्तु का उपदेश ब्राह्मण तक को दे सकता है। ब्राह्मणो ने हरिकेशी मुनि से कहा था – आप यज्ञ क्यो नही करते? इस प्रश्न के उत्तर मे हरिकेश मुनि ने कहा– हम मुनि यज्ञ करते ही हैं। उन्होने कहा–

सुसबुडा पचहि सबरेहि द्रह जीयिय अणकखमाणा।
चोसट्टकाय सुचइत्तदेह महाजय जइय जन्नसिट्ट।।

सच्चा त्यागी मुहामुनि ही सच्चा यज्ञ कर सकता है। इस प्रकार कहकर उन्होने ब्राह्मण को भी सच्चे यज्ञ का उपदेश दिया है।

यज्ञ का अर्थ आग मे घी होमना ही नही है। वास्तविक यज्ञ के नाम पर घोटाला चला था और जब यह घोटाला चला था तभी हरिकेषी मुनि ने ब्राह्मणो को सच्चे यज्ञ का उपदेश दिया था। गीता मे भी कहा है –

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञ योगयज्ञास्तथा ऽपरे।
स्वाध्यायज्ञान यज्ञाश्च यतय सशितव्रता।

गीता मे कहा है कि अगर तुम्हारे पास द्रव्य है तो द्रव्य का यज्ञ करो अर्थात द्रव्य को 'इदम् न मम' कहकर त्याग दो। द्रव्य न हो तो तपयज्ञ करो तप करे उसका भी यज्ञ कर दो। अगर तप को अपने लिए रखोगे तो तपोमद हो जायगा और उससे आत्मा का पतन ही होगा। अगर तप नही है और योग है तो योग का यज्ञ करो। अगर योग को अपने लिए रखोगे तो लोगो को चमत्कार दिखाने मे लग जाओगे जिससे गिरोगे ही, उठोगे नही। अगर स्वाध्याय करते हो तो उसका भी यज्ञ कर दो। अगर तुम्हारे पास ज्ञान है तो ज्ञान का अभिमान मत करो। ससार के कल्याण मे इस सब को होम दो।

प्रश्न किया जा सकता है कि शास्त्र मे नीच गोत्र की बात फिर छुआछूत जैन शास्त्र से सेगत क्यो न मानी जाये? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि शास्त्र मे कही भी नीच गोत्र वाले को अछूत नही बतलाया। जेन धर्म का तत्त्व विवेचन सिर्फ मनुष्य समाज को लक्ष्य करके नही है। जैनशास्त्रो मे वनस्पतिकाय तक के जीवो की चर्चा की जाती है। शास्त्र अनुसार सभी पशु नीच गोत्र कर्म के उदय वाले हैं। क्या कोई उन्हे अछूत समझता है? लोग गाय–भैंस आदि नीच गोत्र वाले पशुओ का दूध पीने मे सकोच नही करते। फिर नीच गोत्र की कल्पना करके किसी मनुष्य को अछूत कैसे कहा जा सकता है? तात्पर्य यह है कि नीच गोत्र की अस्पृश्यता का कोई अविनाभाव सम्बन्ध नही है।

तात्पर्य यह है कि ठक्कर वापा हरिजनो के लिए जो काय कर रहे हैं, वह कार्य जैनधर्म से प्रतिकूल नही है। ठक्कर वापा इसके लिए जो श्रम उठा रहे हैं वह प्रशसनीय है। जैन समाज इसमे अपना सहयोग जितना देगा वह उतनी ही अपने धर्म की सेवा करेगा। नेहरू परिवार ने भी देश के लिए बहुत त्याग किया है। एक सम्पन्न परिवार का इस प्रकार सादगी से जीवन बिताना आदर्श के अनुरूप ही है।❖

4 10 1937

जामनगर

❖ श्री अमृतलाल ठक्कर ओर श्रीमती राजेश्वरी नहरू क आगमन क अवसर पर दिया हुआ पूज्यश्री का सक्षिप्त भाषण।

10 : ठक्कर वापा का वक्तव्य

श्री जवाहरलालजी महाराज का नाम बहुत दिनो से सुना करता था। महात्मा गाधी ने भी आपका उपदेश सुनने की इच्छा दर्शायी थी। इसी से जाना जा सकता है कि आपका उपदेश कितना बोधप्रद होगा। आप खादी को अपनाने और हरिजनो का उद्धार करने के उपदेश भी सुन्दर रीति से दिया करते हैं। आपका उपदेश जितना भी माना जाये, कम ही है। हरिजन सेवा का कार्य पराया नही है। वे दूसरे नही हैं किन्तु अपने घर के ही हैं। अपने घर के किसी आदमी को हल्का या नीच कहकर अलग कर देना अनुचित है। वे तो आपकी सेवा करे और आप उनको छिटकावे, यह भी अनुचित है। इसलिए हरिजनो को छिटकाना नही चाहिए। हरिजन किस प्रकार एकनिष्ठा से सेवा करते हैं इसको बताने के लिए मैं आप लोगो के सामने एक उदाहरण रखता हू – पोरबन्दर मे मैं नौकर था तब की बात मुझे मालूम है कि जैन कुटुम्ब जब कही बाहर जाता था तब वह अपने घर की और तिजौरी आदि की चाबिया एक भगी को दे जाया करता था। उस पर यह कैसा विश्वास था? और विश्वास का कारण यही है कि हरिजन लोग एकनिष्ठा से सेवा करते है। इसीलिए भ्रातृभाव रखकर उन्हे अपना मानना चाहिए और उन्हे धर्म की शिक्षा देनी चाहिए। बस, इतना ही कहकर मैं बैठने की इजाजत चाहता हू।

11. कौन जतन ग्रम भागे

प्रणमू वासुपूज्य जिननायक सदा सहायक तू मेरो।

यह भगवान वासुपूज्य की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे यह आशय दिखलाया गया है कि ससार जीवन मे जो दु ख या विघ्न भोगते हैं उन्हे निष्कारण नही मानना चाहिए किन्तु यह मानना चाहिए कि वे दु ख और विघ्न सकारण ही हैं। बिना कारण के कोई कार्य नही होता। घडा तभी बनता है जब मिट्टी उपादन कारण ओर चाक आदि निमित्तकारण होते हैं। इस प्रकार घडा मिट्टी के होने पर ही बनता हे लेकिन घडा बन जाऊपर भी मिट्टी म से मिट्टी के सस्कार नही जाते। मिट्टी मे घडा बनने के जा सस्कार हैं वही सस्कार मिट्टी का घडे के रूप मे परिणत करते हैं।

जो वस्तु सकारण हे– किसी कारण से जिसकी उत्पति हुई हे वह मिटने के कारण मिलन पर मिट भी जाती है। जब दु ख सकारण हे तो उनका भी विनाश हो सकता हे।

दु खा का विनाश किस प्रकार हो सकता हे? इस विषय म ज्ञानीजना का कथन हे कि ससार म जा भी आधिभोतिक आधिदेविक ओर आध्यात्मिक दु ख भोगे जा रह हें ये सब परमात्मा की प्रार्थना करने पर नष्ट हा सकत हें। इन दु खा का विनाश करने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि – हे प्रभा! मरी बुद्धि म ऐसी प्ररणा ऐसी जागृति हा कि में यथार्थ तत्त्व का जानन लगू। इस प्रकार सच्चे अन्त करण स परमात्मा की प्रार्थना करन से बुद्धि म एसी शक्ति आ जायेगी कि वह तत्त्व का जान सकगी ओर जब बुद्धि यथार्थ तत्त्व का जानन लगगी तब सभी प्रकार क दु ख ओर ताप मिट जाएग।

परमात्मा की प्रार्थना म कितनी ओर केसी शक्ति हे प्रार्थना करन स किस प्रकार दु खा का विनाश हाता हे इस विषय म इस प्रार्थना म कहा गया ह –

खलदल प्रबल दुष्ट अति दारुण जो चौतरफ करे घेरो,
तदापि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरियन होय प्रगटे चेरो।।

हे प्रभो! तराजू के एक पलडे मे ससार के समस्त दु ख रखे जाये और दूसरे पलडे मे तेरी कृपा रखी जाये तो तेरी कृपा का पलडा भारी होगा। एक पलडे मे ससार के समस्त शत्रुओ को रखा जाये और दूसरे मे तेरी कृपा रखी जाए तो शत्रुओ का पलडा ही हल्का रहेगा और तेरी कृपा का पलडा भारी ठहरेगा। तेरी कृपा होने पर शत्रु लोग शत्रुता त्याग कर मित्र बन जायेगा। उनमे मेरे प्रति शत्रुता ही नही रहेगी। प्रभो! कोई शूर पुरुष अपनी शूरता के बल से अपने शत्रुओ को अगर झुका भी ले तो शत्रु अपने शरीर से ही झुकेगे। शूर पुरुष उनके अन्त करण को नहीं झुका सकता। जिन्हे मैं अपनी भौतिक शक्ति से नमाता हू वे आज नम भी सकते हैं किन्तु कल ऐसा भी अवसर आ सकता है कि मुझको उन्ही के आग नतमस्तक होना पडे। इस तरह कभी मेरे सामने नमे और कभी मैं उसके सामने नमू, यह श्रृखला बन जायेगी। लेकिन मेरी कृपा होने पर सदा के लिए शत्रुता का अन्त हो जाता हे और वैर की परम्परा नही चलती।

कहा जा सकता है कि परमात्मा तो वीतराग है अतएव उनकी प्रार्थना करने से दु खो का किस प्रकार विनाश हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर मे ज्ञानीजन कहते है कि परमात्मा की प्रार्थना से बुद्धि यथार्थ तत्त्व को जानने लगेगी ओर जब बुद्धि यथार्थ तत्त्व को जानने लगेगी तब किसी प्रकार का दु ख रह ही नही सकता। जो सत्य है वह सक्रिय है निष्क्रिय नही है और जो निष्क्रिय हे वह सत्य नही है। सस्कृत भाषा मे एक श्लोक प्रसिद्ध है –

एष वध्यासुतो याति खपुष्पकृत शेखर ।
मृगतृष्णाम्भसि स्नात्वा शशशृग धनुर्धर ।।

देखो आका के फूलो की माला पहने खरगोश सीगो का धनुष धारण किये मृगतृष्णा के जल मे स्नान करके वह वध्या का पत्र जा रहा है।

खलदल प्रबल दुष्ट अति दारुण जो चौतरफ करे घेरो,
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरियन होय प्रगटे चेरो।।

प्रार्थना मे ऐसी शक्ति तो है लेकिन उस शक्ति का पता तभी लगता है जब प्रार्थना सक्रिय हो। मान लीजिये मणि पास होने से अग्नि शात हो गई। यद्यपि यह नही दीखता कि मणि ने आग को किस प्रकार शात किया है? फिर भी आग के शान्त हो जाने से यह तो जाना ही जाता है कि मणि मे आग को शात करने की शक्ति मोजूद है। इसी प्रकार प्रार्थना मे भी शत्रुओ को मित्र बना देने की शक्ति विद्यमान है। मगर उस शक्ति पर विश्वास हो तभी उसका पता लगता है। वास्तव मे प्रार्थना मे ऐसी शक्ति तो है लेकिन लोगो को उस शक्ति पर भरोसा नही है। अगर आप परमात्मा की प्रार्थना का चमत्कार देखना चाहते हैं तो प्रार्थना मे अटल विश्वास उत्पन्न कीजिए। विश्वासपूर्वक अन्त करण से प्रार्थना करने पर किसी भी प्रकार का दुख या उपद्रव नहीं हो सकता और अगर प्रार्थना करने पर भी दुख या उपद्रव हो तो समझना चाहिए कि अभी मेरे अन्त करण मे प्रार्थना पर सम्पूर्ण विश्वास नही हुआ हे। परमात्मा की प्रार्थना करने पर किसी भी प्रकार का दुख नही हो सकता यह बात सिद्ध करने के लिए अनेको उदाहरण दिये जा सकते हैं। दूसरो का उदाहरण दने की अपेक्षा में अपना ही उदाहरण उपस्थित करता हू। मुझे जब परमात्मा की प्रार्थना पर पूर्ण श्रद्धा नही थी, किन्तु हृदय म भ्रम था, तब में पोने पाच मास तक कष्ट भोगता रहा मुझे वह क्रम ही सताता रहा। लेकिन परमात्मा की प्रार्थना पर पूर्ण विश्वास होने के पश्चात् यह बहम मिट गया ओर किसी प्रकार का भय नही रहा। अतएव परमात्मा की सक्रिय प्रार्थना करने पर किसी भी प्रकार का दुख शेष नही रहेगा।

जिस बड क वृक्ष के नीचे हजारो आदमी बेठ सकत हैं ओर जिसे हाथी भी नही उखाड सकता वह बड का वृक्ष एक साथ ही नही तेयार हा जाता हे अर्थात चुटकी मारते ही उसका विस्तार नही हा जाता। वह उत्पन्न हाता हे बीज स मगर धीरे–धीरे उठता हे बढता हे, फेलता हे ओर विस्तृत हाता ह। क्या इसी कारण यह कहा जा सकता हे कि वट क वृक्ष म बीज नही छिपा ह? बीज म वृक्ष हे ता अवश्य किन्तु उसक तेयार हान क लिए समय की आवश्यकता हे। अलवत्ता धेर्य रखना चाहिय। इसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना म जा शक्ति रही हुई हे वह भी सहसा दिखाई नही दती। उस प्राप्त करन क लिए भी धेर्य की आवश्यकता हे।

कोई कह सकता है– अमुक को परमात्मा का फल तत्काल मिल गया और हमे प्रार्थना करते–करते वर्षो हो गये, फिर भी फल नही मिला। इसका कारण क्या है?

इस प्रश्न का उत्तर ज्ञानी यो देते हैं कि बड का बडा वृक्ष देखकर आप यह मानते हैं कि अभी इसमे होने वाली क्रिया के लिए काल बाकी है। यही बात – परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे समझना चाहिए कि परमात्मा की प्रार्थना से हमे शक्ति नही मिल रही है तो इसका कारण यही है कि अभी क्रिया करने का काल बाकी है। अतएव निराश होने की आवश्यकता नही बल्कि अधिक तत्परता के साथ क्रिया करते जाने पर बड का छोटा वृक्ष भी वृक्ष हो जाता है, उसी प्रकार धैर्य रखकर परमात्मा की प्रार्थना करते रहने से क्रिया का परिपाक होने पर फल की प्राप्ति होगी। निराश मत होओ क्रिया करते जाओ ओर सावद्य योग से बचते रहो। सावद्य योग परमात्मा की प्रार्थना के फल को कलुषित कर देता है।

सावद्य योग किस समझना चाहिए? इस विषय मे कहा गया हे –

कम्मवज्ज ज गरिहय त कोहाइयणो व चत्तारि।
स तेहि जो उ जोगो पच्चकखाण भवइ तस्स।।

इस गाथा मे सावद्य योग की व्याख्या की गई है। इसका आशय यह है कि निन्दनीय कर्म को सावद्य कहते हैं अथवा क्रोध, मान, माया और लोभ को भी सावद्य योग कहते हैं। क्योकि समस्त निन्दनीय कर्म क्रोध आदि के अधीन होकर ही किये जाते हैं। क्रोध आदि निन्दनीय कर्म के कारण हैं। अतएव कारण मे कार्य का उपचार करे। क्रोध आदि को भी सावद्य कर्म कहा है। ऐसे सावद्य के साथ किये जाने वाले व्यापार को सावद्य योग कहते हैं। उस सावद्य योग का विरोध करना सावद्य योग का प्रत्याख्यान कहलाता है।

गाथा मे प्रयुक्त हुए 'सावज्ज' शब्द का अर्थ 'सावर्ज्य' भी होता है। और सावद्य भी होता हे। जो कम पाप युक्त होते हैं वे 'सावद्य' कहलाते है और जो कार्य गर्हित या निन्दित होते हें वे 'सावर्ज्य' कहे जाते हैं। आर्य किसे [illegible] ह यह बताने के लिए मैने कहा था –

आरात् सकल हेय धर्मेभ्य इति–आर्य ।

[illegible] जो समस्त् पाप कर्मो का त्याग करता हे वह आर्य कहलाता [illegible] द्वारा त्यागे गये या निन्दित कार्य हे वे सावद्य हैं। श्रेष्ठ लोग [illegible] ही करते किन्तु श्रेष्ट कर्म ही करते हैं। जिन कार्यो से अपना [illegible] होता है वे कार्य श्रेष्ठ हे ओर जिनसे दोनो का अहित होता

हे वे निन्दित कर्म हैं। कल्पना करो कि दुनिया के सब लोग जुआ खेलने लगे तो क्या दुनिया के लोगो की हानि नही होगी? प्रकट रूप से तो जुआ मे थोडा आरम्भ दीखता है लेकिन जुआ खेलना वास्तव मे दुनिया के लागो के लिए अहितकर है। अतएव शास्त्र मे इसे महाप्रमाद कहा हे। इसी प्रकार ससार के सब मनुष्य चोरी करने लगे तो ससार का काम कैसे चल सकता हे? एसा होने पर ससार मे दु ख ही दु ख छा जायेगा। इसलिए ऐसे कार्यो को सावर्ज्य कर्म भी कहते हैं।

ससार मे जितने भी पाप होते हें क्रोध मान, माया ओर लोभ से होते हैं। इसलिए इस कारणो मे कार्य का उपचार करके इन्हे भी सावद्य कर्म माना गया है ओर इन कारणो के अधीन होकर किये गये कार्य भी सावद्य हे।

आज ससार पिछली रात मे, एक बात मेरे ध्यान मे आई। वही बात में आप लोगो के सामने प्रकट करता हू, क्योकि आपका और मेरा आत्मा समान ही हे ओर जो वस्तु मेरी आत्मा के लिए लाभप्रद हो सकती हे वह आपकी आत्मा के लिए लाभप्रद हो सकती हे सभव है उस बात को मरी आत्मा न अपना सक ओर आपकी आत्मा अपना ले। यह विचार कर वह बात में आपके समक्ष करता हू –

भक्तो क शब्दा म ही वह बात कहता हू –

हे प्रभु! कोन जतन भ्रम भागे।
देखत सुनत विचारत यह मन,
निज स्वभाव नही त्यागे।। हे प्रभु ।।

हे प्रभो! मरे मन का स्वभाव किस प्रकार बदला जा सकता हे? वह सभी कुछ दखता हे सुनता हे विचारता हे लकिन अपना स्वभाव नही छाडता। मेंने बहुत ग्रन्थ दखे बहुत सत्सग किया बहुत भक्ति ज्ञान वेराग्य आदि किया परन्तु मर मन का स्वभाव ता यही हे कि किसी रा बाहरी वस्तु न मागू, लकिन यह लालसा तो मर मन म बनी ही रहती हे ओर जा कुछ कहता हू, वह सब इसलिए कहता हू कि लाग मुझ भला कह। प्रभा! मर मन का यह भ्रम कस मिट सकता हे?

यह भक्ता का कथन हे। भक्त जा कुछ कहत हें। उसक लिए अपन अन्तरात्मा स पूछा कि वह आपक विषय म भी सत्य ह या नहीं? आप धर्मक्रिया किस लिए करत हें? किस प्रकार की प्राप्ति क लिए धर्मक्रिया करत ह या निजरा क लिए? यह बात दूसर की आत्मा क लिए आप नहीं जान सकत मगर अपनी आत्मा क लिए ता जान ही सकत हें। दूसर की आत्मा

को तो अनुमान से ही जानी जाती है किन्तु स्वय की आत्मा का तो प्रत्यक्ष प्रमाण से ही जानते हो। अपना आपा आपसे छिपा हुआ नही है। अतएव अपनी आत्मा से पूछो कि– हे आत्मा! तू धर्मक्रिया किस उदेश्य से करती है? धर्मकरणी के पीछे अगर किसी प्रकार की लालसा लगी हुई है तो समझ लो कि अभी आप सच्ची धर्मकरणी से दूर हैं। अतएव किसी प्रकार की लालसा से धर्मक्रिया मत करो किन्तु कर्मो की निर्जरा के लिए करो ओर निन्दित कर्म से बचते रहो।

किस प्रकार निन्दित कर्म से बचना और अनिन्दित कर्म करना चाहिए यह बात समझने के लिए महाभारत का एक उदाहरण लीजिये।

विजय प्राप्त करने के बाद महाराज युधिष्ठिर भीष्म के पास गये। भीष्म ने उनसे कहा – महाराज युधिष्ठिर! आइये।

युधिष्ठिर शर्मिदा होकर बोले – आज मुझे महाराज न कहिए पोत्र ही कहिए।

भीष्म – जिस पद को प्राप्त करने के लिए अठारह अक्षौहिणी सेना का सहार हुआ है जिस पद के लिए अनगिनत स्त्रिया विधवा हुई हैं ओर अनेक बालक अनाथ हो गये है तथा जिस पद के लिए कुल का सहार हुआ है वह पद प्राप्त करने के पश्चात् आपको "महाराज" क्यो न कहा जाये?

युधिष्ठिर – पितामह मैं इस पाप के दबाव से ही आपके पास आया हू। मुझे जो राजमुकुट प्राप्त हुआ है उसमे शूल ही शूल जान पडते हैं। वह मुझे ऐसा चुभता है जैसे शूलो का बना हुआ हो। मैंने महल की अटारी पर चढकर देखा तो राजमुकुट ओर भी अधिक सुइयो से भरा हुआ जान पडा। जो मेदिनी वीरो से भरी थी आज वह सुनसान दीख पड़ती है। यह देखकर सिर का मुकुट हृदय मे शूल–सा चुभने लगा। में यही सोच रहा हू कि इस मुकुट के पाने के लिए कितना पाप हुआ है ओर कितना सावद्य योग करना पडा है?

युधिष्ठिर के इस कथन से आप अपने सम्बन्ध मे विचार कीजिए। आपके सिर पर जो पगडी है उसके लिए किस–किस तरह के पाप होते हैं? अपने शरीर का रक्त–मास बढाने के लिए दूसरो को किस प्रकार के दुख दिये [illegible]

तुम महाराज युधिष्ठिर कहे जाने मे सकोच कहते हो तो अब से मैं बेटा युधिष्ठिर कहूगा।

भीष्म पितामह के मुह से अपने लिए बेटा शब्द सुनकर युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वह बालक की तरह नम्र होकर पिता के समीप जा बैठे। इसके अनन्तर उनका हाथ अपने सिर पर रखकर कहते लगे – पितामह, राजमुकुट मुझे तो शूल की तरह चुम रहा है, कृपा कर मुझे ऐसा उपदेश दीजिये जिससे मैं शातिलाभ कर सकू।

भीष्म धर्मशास्त्र के ज्ञाता थे। जैनशास्त्र भी यही कहते हैं और महाभारत भी। वे पूर्ण ब्रह्मचारी के रूप मे प्रसिद्ध हैं। जैनशास्त्र के अनुसार उन्होने अविवाहित जीवन ही बिताया था। अतएव वे सारे जगत के पितामह बनने के योग्य ही थे।

भीष्म कहने लगे – बेटा युधिष्ठिर! तुम किसी प्रकार का खेद मत करो। अलबत्ता यह सोचो कि विजय के लिए तुम्हे जो सहायता मिली, वह किस प्रकार मिली है? दुर्योधन का पाप फूट निकला था और इस कारण लोग समझने लगे थे कि दुर्योधन बड़ा पापी है जो धर्मनिष्ठ पाण्डवो को इस प्रकार कष्ट दे रहा हे। यह सोचकर स्वय ही अपना सिर कटाने के लिए तेयार होकर तुम्हारी सहायता के लिए आए थे। इस प्रकार दुर्योधन के पाप से ही तुम्ह सहायता मिली थी। इसी से तुम विजयी हुए हा। दुर्योधन का पाप तुम्हारी विजय ओर उसक विनाश का कारण बना हे। एसी दशा म तुम्ह किसी प्रकार का खेद नही करना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा– पितामह यह ता ठीक हे लकिन युद्ध क कारण जो वेर बध गया हे, वह तो मेर सिर पर ही रहा न! जिन लोगा क घरवाले मारे गये हैं, उनका वेर मेरे ओर दुर्योधन के प्रति बध गया हे। दुर्योधन ता मर गया हे आर मर हुए से वेर नही भजाया जाता। वेर का बदला तो जीत हुए से ही लिया जाना हे। अतएव दोना पक्ष क लाग मुझ ही वेरी समझग। व यही मानग कि हमार पिता, पुत्र भाई या पति की मृत्यु का कारण यही युधिष्ठिर हे। यह वर की स्मृति मुझ कष्ट पहुचा रही हे और इसी कारण यह मुकुट मुझ काटा की तरह चुभता हे।

भीष्म पितामह – ठीक हे पर इस वेर का तुम अपनी विशिष्ट वृति क द्वारा शात कर डाला। एसा कराग तभी ता तुम राजा हा।

युधिष्ठिर– पितामह इसीलिए मैं आपक पास आया हू। इस सम्बध म आप मुझ उचित उपदश दीजिय। मै जानना चाहता हू कि जा वेर बध गया

है वह क्या मिटाया जा सकता है? किस प्रकार उसका शमन किया जा सकता है?

भीष्म– ससार मे ऐसी कोई आग नही है जो सुलगे ओर बुझे नही। इस प्रकार जब बैर बधता है तो मिट भी सकता है। लेकिन दूसरे के वेर को शान्त करने के लिये पहले अपने हृदय को शात करना चाहिए। उदाहणार्थ– किसी राजा ने तुम्हारी सेना को या तुम्हारे किसी सम्बन्धी को मारा होगा परन्तु उसकी स्त्री या उसके बालको ने तो तुम्हारा कुछ नही बिगाडा है। अतएव जहा तक सम्भव हो, उनकी ऐसी सहायता करना जिससे वे समझने लगे कि युधिष्ठिर हमे सुखी बनाने के लिए ही युद्ध मे प्रवृत्त हुआ था। जब तुम उनके हृदय मे ऐसी भावना उत्पन्न कर दोगे तो वैर का शमन आप ही हो जायेगा। बधा हुआ वैर रोने से नही मिट सकता। अगर रोना था तो युद्ध के पहले ही रोना था। जब युद्ध आरम्भ होकर समाप्त भी हो गया और अठारह अक्षौहिणी सेना का सहार हो चुका तब रोने से क्या लाभ? अब रोना त्यागो और सबको शान्ति पहुचाओ।

तुम कहते हो, जिस भूमि पर वीर ही वीर दिखाई देते थे आज वह सुनसान दिखाई देती है। लेकिन इस विचार से दु खी होने की आवश्यकता है? बीज शून्य भूमि मे ही बोया जाता है, उस भूमि मे नही बोया जाता जहा काटे और झाड–झखाड़ खडे हो। जब काटे साफ हो गये और बीज बोने का समय आया है तब तुम रोने बैठ गये हो? रोना छोडकर इस शून्य भूमि मे ऐसा बीज बोओ कि लोग दुर्योधन को भूल जाये। विचार करो, लोग दुर्योधन को बुरा क्यो कहते थे? इसी कारण कि वह स्वार्थी था और उसकी सज्जनता एव नम्रता को सत्ता खा गई थी। अगर तुमने भी अपनी सज्जनता को सत्ता का ग्रास बन जाने दिया तो तुम मे और दुर्योधन मे क्या अन्तर रहा? बल्कि तुम जिस धर्म का प्रदर्शन करते हो वह ढोग मात्र रह जायेगा और इस प्रकार तुम दुर्योधन से भी ज्यादा बुरे हो जाओगे। अतएव सत्ता मिलने पर सज्जनता को मत भूलना उसकी रक्षा करना। स्मरण रखना कि सत्ता जाये तो भले जाये मगर सज्जनता न जाये।

सिर जावे तो जावे मेरा सत्य धर्म नही जावे।
सत्य की खातिर रामचन्द्रजी वन–फल खावे।। मेरा ।।

राम को राज्य मिलने की तयारी थी लेकिन पिता का सत्य जाने [illegible] राम ने सोचा – जिस राज्य से पिता का सत्य जाता है उस राज्य [illegible] करना ही उचित है। ऐसा सोचकर वे राज्य का परित्याग कर वन

को चल दिये। राम राजपुत्र थे और जन्म से सुखा मे ही पले थे। फिर भी सत्य की रक्षा के लिए उन्होने वन–फल खाना स्वीकार किया किन्तु अपनी सज्जनता नही जाने दी।

कामदेव और अरणक पर कैसी विपत्ति आई थी? अरणक के जहाज को पिशाचरूपधारी देव उगली पर उठा कर आकाश मे ले गया था। वह कहता था कि तू सत्य को छोड दे अन्यथा मैं तेरे जहाज को यही से छोडता हू। तेरा जहाज समुद्र मे अथवा जल मे विलीन हो जायेगा और तुझे प्राणो से भी हाथ धोना पडेगा। अरणक जहाज के व्यापार के लिए ही गया था। ऐसी स्थिति मे उसे जहाज का प्रिय लगना स्वाभाविक ही था। अरणक सोच सकता था कि 'धर्म छोड़ा' कह देने मात्र से क्या बिगड जाता है। इतना कह देने से अगर जहाज बचता है तो बचा ही लेना चाहिए। मगर नही अरणक ने ऐसा विचार नही किया। वह सोचता था कि मेरी सज्जनता पहले हे, सत्य पहले हे और जहाज फिर है। जहाज डूबता हो तो भले डूबे। सत्य का परित्याग मैं नही कर सकता। मैं धर्म अधर्म का अन्तर प्रत्यक्ष देख रहा हू, फिर धर्म का परिज्याग कैसे कर दू? धर्म न होने के कारण ही यह पिशाच मेरा जहाज डुबा रहा है। जहाज की रक्षा हुई तो धर्म से ही होगी। धर्मो रक्षति रक्षित।"

आपके सिर पर ऐसा सकट तो नही आया होगा फिर भी आप दमडी–दमडी के लिए तो असत्य का आश्रय नही लेते?

पितामह का उल्लिखित वक्तव्य सुनकर युधिष्ठिर सोचने लगे – मैं तो भागना चाहता था मगर पितामह ने मेरे मस्तक पर ओर ज्यादा बोझ डाल दिया। मुझे पितामह का परामर्श स्वीकार करना चाहिए ओर सग्राम मे मारे गये लोगो के परिजनो को शाति पहुचाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार मे क्रियात्मक सत्य का पालन कर सकूगा।

साराश यह हे कि सावद्य कार्यो से समझदार व्यक्ति का वेसा ही पश्चात्ताप होता हे जसा युधिष्ठिर का हुआ था। मगर कोरे पश्चात्ताप से क्या लाभ है? जिस कार्य के लिए पश्चाताप किया जाता हे उससे आगे के लिए उपरत होना आवश्यक हे ओर इस उपरति के लिए परमात्मा की प्रार्थना सरल ओर श्रेष्ठ साधन है। अगर आप सावद्य योग से बचकर परमात्मप्रार्थना मे अपना चित्त लगाएगे तो आपका कल्याण होगा।

12 : लघुता – प्रकाश

(पूज्यश्री की जयन्ती के उपलक्ष्य मे अनेक वक्ताओ ने प्रासगिक भाषण दिये थे। उन सब भाषणो के पश्चात् पूज्य श्री का प्रवचन हुआ। उसी का आशय यहा दिया जा रहा है।)

आप लोगो ने आज जो कुछ सुनाया है, उस पर विचार करते–करते यहा बैठे–बैठे मुझे एक विचार आया है। उपनिषद् मे एक वाक्य आया है –

यानि अस्माक सुचरितानि तानि त्वया पालनीयानि।

गुरु अपने शिष्य से कहता है – हे शिष्य! मुझ मे जो सुचरित्र हो उसी का तू पालन करना। अगर मुझमे कोई बात प्रपच भरी जान पडे तो उसे तू ग्रहण मत करना। जिस बात को तेरी आत्मा स्वीकार न करती हो उसे तू मत मानना। तू उसी को अगीकार कर जो बात अच्छी हो।

यही बात मै आप लोगो से कहता हू। आप लोगो ने मेरी प्रशसा मे जो कुछ कहा है वह मेरे लिए भाररूप है। वास्तव मे मुझे भाषा का भी पूरा ज्ञान नही है। गुरु–चरणो के प्रताप से विरासत मे मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ है या जो कुछ मै प्राप्त कर सका हू वही आप लोगो को सुनाता हू और उसी के द्वारा सबकी आत्मा को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करता हू। उस बात को [illegible]। मुझसे कोई भूल होती हो और जिसे स्वीकार करना आपकी आत्मा को अनुचित प्रतीत होता हो उसे आप भले स्वीकार न करे। लेकिन जिस चीज को आपकी आत्मा उचित समझे उसे स्वीकार करो।

मे जो गुण बताये गये हैं वे गुण अभी पूरी तरह नही आ पाये हैं। उन्हे प्राप्त करने के लिए मुझे सद्बुद्धि प्राप्त हो और सद्भावना प्राप्त करके मैं स्व–पर का कल्याण साधन करू। एक कवि ने बडी सुन्दर बात कही हे उसे आपको सुना देना उचित प्रतीत होता है। कवि कहता है –

जोई जोई मोतियो चणजे हस, छोल मर्यो सिधु छलके,
पण बिन्दु मधुर न झलके हस।

अर्थात्– हे हस! तू मोती तो चुगता है पर देख–देखकर चुगना। समुद्र भरा है और छलक रहा है, किन्तु उसके सब बूद मधुर नही होते और न उसकी प्रत्येक छलक मे मोती होते हैं। इस कारण हे हस, तू देख–देखकर मोती चुगना।

यही बात मैं आपसे कहता हू। आपके समक्ष मैं जो कुछ कहता हू उसे आप विचार करने के बाद ग्रहण करना। मेरा कथन उचित हो तो ग्रहण करना। उचित न हो तो छोड देना। मैंने अपने गुरु से जो कुछ प्राप्त किया हे, उसका भली–भाति पालन करने मे अभी तक मुझे पुर्णता प्राप्त नही हुई। मुझ मे भी अभी तक बहुत अपूर्णता है। मैं चाहता हू कि मेरी अपूर्णता मिट जाये। मैं परमात्मा से भी यही प्रार्थना करता हू कि मेरी इच्छा पूर्ण हो।

जेसे हस माती चुगता हे उसी प्रकार आप मेरे कथन म स अच्छी बातें चुनकर ग्रहण करे। समुद्र मे लहर बहुत आती हे पर सभी लहरा म स मोती नही आते। लेकिन मोती चुगने वाला हस लहरा म से मोती चुग ही लेता हे। आप भी हस की भाति विवेकबुद्धि प्राप्त करो ओर मोती क समान अच्छी बातों का स्वीकार कर लो ओर शेष का परित्याग कर दो। मैं भी हस के समान बनना चाहता हू। जेसे हस दूध ओर पानी को पृथक् कर देता हे उसी मोती को ही चुगता हे उसी प्रकार मैं भी अच्छी बातो को ही ग्रहण करना चाहता हू।

हम साधुआ को मनुष्यो के परिचय म बहुत आना पडता हे हमारा लक्ष्य यही होना चाहिए कि इन मनुष्यो म से हम माती जेसे सद्गुणा को ही ग्रहण कर। मोती चुगने वाला कभी–कभी फिसल जाता हे। मैं चाहता हू कि सदगुण रूपी माती वीनत समय मं कभी फिसल न जाऊ ओर अपन पुरुषार्थ द्वारा गुण–मातिया का ही ग्रहण करता रहू। परमात्मा स मरी प्राथना हे कि मरी यह भावना पूर्ण हा।

जामनगर
6 11 1937

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर

– एक परिचय –

स्थानकवासी जैन परम्परा मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा एक महान् क्रातिकारी सत हुए है। आषाढ शुक्ला सवत् 2000 को भीनासर मे सेठ हमीरमलजी बाठिया स्थानकवासी जेन पौषधशाला मे उन्होने सथारापूर्वक अपनी देह का त्याग किया। उनकी महाप्रयाण यात्रा के बाद चतुर्विध सघ की एक श्रद्धाजलि सभा आयोजित की गई जिसमे उनके अनन्य भक्त भीनासर के सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया ने उनकी स्मृति मे भीनासर मे ज्ञान–दर्शन चारित्र की आराधना हेतु एक जीवन्त स्मारक बनाने की अपील की। तदन्तर दिनाक 29 4 1944 को श्री जवाहर विद्यापीठ के रूप मे इस स्मारक ने मूर्त रूप लिया।

शिक्षा–ज्ञान एव सेवा की त्रिवेणी प्रवाहित करते हुए सस्था ने अपने छह दशक पूर्ण कर लिए हैं। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा के व्याख्यानो से सकलित, सम्पादित ग्रथो को 'श्री जवाहर किरणावली' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। वर्तमान मे इसकी 32 किरणो का प्रकाशन सस्था द्वारा किया जा रहा है इसमे गुफित आचार्यश्री की वाणी को जन–जन तक पहुचाने का यह कीर्तिमानीय कार्य है। आज गोरवन्वित हे गगाशहर–भीनासर की पुण्यभूमि जिसे दादा गुरु का धाम बनने का सुअवसर मिला और ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा की कालजयी वाणी जन–जन तक पहुच सकी।

सस्था द्वारा एक पुस्तकालय का सचालन किया जाता है जिसमे लगभग 5000 पुस्तके एव लगभग 400 हस्तलिखित ग्रथ है। इसी से सम्बद्ध वाचनालय मे देनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक– कुल 30 पत्र–पत्रिकाये उपलब्ध करवाई जाती हैं। प्रतिदिन करीब 50–60 पाठक इससे लाभान्वित होते हैं। ज्ञान–प्रसार के क्षेत्र मे पुस्तकालय वाचनालय की सेवा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हे और क्षेत्र मे अद्वितीय है।

महिलाओ को स्वावलम्बी बनाने हेतु सस्था द्वारा सिलाई, बुनाई, कढाई प्रशिक्षण केन्द्र का सचालन किया जाता हे, जिसमे योग्य अध्यापिकाओ द्वारा महिलाओ व छात्राओ को सिलाई, बुनाई, कढाई व पेन्टिग कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है। इससे वे अपने गृहस्थी के कार्यो मे योगदान दे सकती हैं और आवश्यकता पडने पर इस कार्य के सहारे जीवन मे स्वावलम्बी भी बन सकती हैं।

सस्था के सस्थापक स्वर्गीय सेठ चम्पालाल जी बाठिया की जन्म जयन्ती पर प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति मे एक व्याख्यानमाला का आयोजन किया जाता है जिसमे उच्च कोटि के विद्वानो को बुलाकर प्रत्येक वर्ष अलग–अलग धार्मिक, सामाजिक विषयो पर प्रवचन आयोजित किए जाते है।

उपरोक्त के अलावा प्रदीप कुमार जी रामपुरिया स्मृति पुरस्कार के अन्तर्गत भी प्रतिवर्ष स्नातकस्तरीय कला, विज्ञान एव वाणिज्य सकाय मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो को नकद राशि, प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता हे एव स्नातकोत्तर शिक्षा मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे सर्वाधिक अक प्राप्त करने वाले एक विद्यार्थी को विशेष योग्यता पुरस्कार के रूप मे प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता हे।

विद्यापीठ द्वारा ठण्डे मीठे जल की प्याऊ का सचालन किया जाता हे। जनसाधारण के लिए इसकी उपयोगिता स्वय–सिद्ध हे। इस प्रकार अपने बहुआयामी कार्यो से श्री जवाहर विद्यापीठ निरन्तर प्रगति–पथ पर अग्रसर हे।

महिलाओ को स्वावलम्बी बनाने हेतु सस्था द्वारा सिलाई, बुनाई, कढाई प्रशिक्षण केन्द्र का सचालन किया जाता हे, जिसमे योग्य अध्यापिकाओ द्वारा महिलाओ व छात्राओ को सिलाई, बुनाई, कढाई व पेन्टिग कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है। इससे वे अपने गृहस्थी के कार्यों मे योगदान दे सकती हैं और आवश्यकता पडने पर इस कार्य के सहारे जीवन मे स्वावलम्बी भी बन सकती हे।

सस्था के सस्थापक स्वर्गीय सेठ चम्पालाल जी बाठिया की जन्म जयन्ती पर प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति मे एक व्याख्यानमाला का आयोजन किया जाता है जिसमे उच्च कोटि के विद्वानो को बुलाकर प्रत्येक वर्ष अलग–अलग धार्मिक, सामाजिक विषयो पर प्रवचन आयोजित किए जाते है।

उपरोक्त के अलावा प्रदीप कुमार जी रामपुरिया स्मृति पुरस्कार के अन्तर्गत भी प्रतिवर्ष स्नातकस्तरीय कला, विज्ञान एव वाणिज्य सकाय मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो को नकद राशि, प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता हे एव स्नातकोत्तर शिक्षा मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे सर्वाधिक अक प्राप्त करने वाले एक विद्यार्थी को विशेष योग्यता पुरस्कार के रूप मे प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता हे।

विद्यापीठ द्वारा ठण्डे मीठे जल की प्याऊ का सचालन किया जाता हे। जनसाधारण के लिए इसकी उपयोगिता स्वय–सिद्ध हे। इस प्रकार अपने वहुआयामी कार्यों से श्री जवाहर विद्यापीठ निरन्तर प्रगति–पथ पर अग्रसर हे।